सत्यार्थ-प्रकाश

का

कथात्मक पद्यानुवाद

सत्य-सागर

लेखक
वैद्यवर पं० गदाधरप्रसाद (इष्ट) वानप्रस्थी
अवैतनिक उपदेशक आर्य्यप्रतिनिधि-सभा
संयुक्तप्रान्त (यू० पी०)

सं० १९९० वि०

चतुर्थ बार ४००० } सर्वाधिकार स्वरक्षित { मूल्य १॥)

प्रकाशक
आर्य-आदर्श-ग्रन्थमाला,
मक़बूलगंज,
लखनऊ.

मुद्रक
केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस,
लखनऊ.
सन् १९३२ ई०

भूमिका

परम पिता परमात्मा की असीम कृपा से कई वर्षों से लगातार उद्योग करने पर अब यह ग्रन्थ सम्पूर्ण प्रकाशित करा सके हैं। इसके लिखने की आवश्यकता क्यों हुई इसका कारण प्रकट करते हुए निवेदन है कि मैं जिस समय आर्यप्रतिनिधि-सभा संयुक्तप्रान्त में वैतनिक रूप से उपदेशक था, उस समय कतिपय प्रान्तों के विभिन्न नगरों में प्रचारार्थ जाया करता था। इसी भ्रमण में मुझे एक बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि भारतीय जन-समाज आर्य-सिद्धान्तों को मानने के लिये पूर्णतया तैयार हैं। किन्तु पारस्परिक प्रचार के रोचक साधनों के अभाव के कारण अन्य सम्प्रदायों के समान आर्यसिद्धान्तों का प्रचार नहीं होने पाता। और मुझसे कतिपय ग्रामीण भाइयों ने प्रश्न भी किया कि "तुलसीकृत रामायण, हिन्दी महाभारत अथवा आल्हखंड के समान कोई कथात्मक ग्रन्थ समाज के पास नहीं है; जिससे हम अबोध देहाती भी पूरा लाभ उठा सकें। हम लोग जिस समय छुट्टी पाते हैं तो ऐसी ही सरल पुस्तक पढ़ते हैं और दूसरों को भी सुनाते हैं। यदि आर्यसिद्धान्त की कोई पुस्तक सरल दोहा, चौपाई के रूप में प्रकाशित हो जावे, तो हम लोग उसकी कथा कहकर जीवन को सुधार

सकते हैं।" अतः मैंने इस ओर दृष्टि डाली और यह प्रतीक्षा की कि कोई योग्य व्यक्ति इस कार्य का सम्पादन करे। परंच कुछ काल के पश्चात् मैंने ही इस भार को अपने ऊपर लिया और मनुष्य-जीवन को सुधारनेवाले आर्यसिद्धान्त के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को ही सरल और सरस तुलसीदास रामायण के ढंग पर "सत्य-सागर" ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ कर दी। मुझे यह भय था कि पूज्य गुसाईंजी के पश्चात् इस शैली पर जो कथात्मक ग्रन्थ लिखे गये, उसमें सरसता तथा लालित्य रामायण के सदृश नहीं आया। प्रभु की कृपा से इस सत्य-सागर के पढ़ने से ठीक रामायण का स्वाद आता है। इसमें उतनीही सरसता और लालित्य है। हाँ, हम उपमा और रूपक आदि अलंकार नहीं ला सके। उसका मुख्य कारण कि हम कविता करने में स्वाधीन नहीं थे। अनुवादक की परिमित परिस्थिति से जो कुछ कर सके किया है। इसमें इस बात का मुख्य ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल और सरस रहे और मुख्य पुस्तक सत्यार्थप्रकाश का कोई विषय सामर्थ्य भर छूटने न पावे, एवं सर्वसाधारण इसका पाठ करते हुये उकता न जावें, लड़का-लड़की, स्त्री तथा पुरुष सभी समान भाव से लाभ उठा सकें।

वास्तव में एक बार इसके पढ़ने से सत्यार्थप्रकाश बड़ी जल्दी समझ में आ जाता है। १४ समुल्लासों के स्थान पर १४ तरंगें हैं और स्वामीजी का स्वमन्तव्या-मन्तव्य भी अन्त में है। यह भी इच्छा थी कि ऋषि का बालजीवन तथा जीवन

की कुछ घटनाओं को भी इसके साथ संयोजित करता, परन्तु ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से ऐसा न कर सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ किस प्रकार का है इसके सम्बन्ध में महानुभावों के विचार प्रथम और द्वितीय संस्करण में उद्धृत हो चुके हैं; जिन्होंने लिखित पुस्तक देखकर अपनी सम्मति प्रकट की थी। यदि मैं आये हुए प्रशंसा-पत्र प्रकाशन करूँ तो एक बड़ी सी पुस्तक ही हो जायगी।

वास्तव में सत्यार्थप्रकाश मनुष्य-जीवन को अवश्य उपयोगी बनानेवाली पुस्तक है। आज सब भाषाओं में अनुवाद हो गया है जो कमी थी सरल कविता में **सत्यसागर** लिख कर पूरी कर दी है। जिस प्रकार हो सके सर्वसाधारण में ऋषि के मूल तत्त्वों को पहुँचाने का यत्न करते रहना चाहिये। हम यदि प्रतिज्ञारूप से नियमपूर्वक थोड़ा-सा भी समय लगाकर नित्यप्रति पाठ करने लगें तो अत्यन्त लाभ हो सकता है। हम पुस्तक हाथ में लेकर उसके भावों की गम्भीरता विचार कर नहीं पढ़ते, परिणाम यह होता है कि हम मूल सिद्धान्तों के भावों को भी समझने में असमर्थ हो जाते हैं। सिद्धान्त की पुस्तक एक बार ही पढ़ने से यथार्थ फल प्राप्त नहीं हो सकता। पहिली बार के पढ़ने से पुस्तक का भाव प्रकट होता है। दूसरी बार पढ़ने से अर्थ का बोध होता है। तीसरी बार पढ़ने से अपने कर्तव्य में लानेवाली बातों पर विचार होता है। चौथी बार में कर्तव्यता की बातों को हम कहाँ से प्रारम्भ करें। अस्तु उपरोक्त प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए।

पुस्तक के प्रकाशनार्थ मैंने बहुत कुछ चाहा कि कोई सभा या पुस्तकविक्रेता इस भार को अपने ऊपर ले लेता, पर जब हमको ऐसा अवसर न मिला तो प्रथम बार अपनी स्वर्गीय योग्य पत्नी श्रीमती यशोदादेवी ने निज व्यय से १००) देकर आर्य-आदर्श-ग्रन्थमाला की नींव डाली। मेरा विचार यह हुआ कि यदि सौ-सौ रुपये के १० संरक्षक मिल जायँगे तो उन्हीं के आधीन प्रकाशन-विभाग हो जायगा परंच केवल कुँअर रणञ्जयसिंह राज्य अमेठी ने १००) देकर संरक्षता स्वीकार की, शेष हमारी आशा वैसे ही रही। अब भी यदि १० महानुभाव संरक्षक बन जावें तो सत्यार्थप्रकाश का इस रूप से प्रचार करने में सरलता हो सकती है। इस बार पुस्तक-प्रकाशन में विलम्ब होने का यह कारण हुआ कि सत्यार्थप्रकाश का सुलभ प्रकाशन जो सार्वदेशिक सभा के सहयोग द्वारा हो रहा है उसके सदृश सस्ते मूल्य पर पुस्तक का विक्रय हो सके; इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भरसक उद्योग करता रहा अंत में यह इच्छा पूर्ण हुई कि श्रीमान् बाबू राजकुँआर स्टेशनमास्टर सिटी लखनऊ के योग से ४ सहस्र पुस्तकें नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में प्रकाशनार्थ दे दी गई थीं। दैवात् योग देनेवाले उपरोक्त महानुभाव का देहान्त हो गया और पुस्तक अधछपी प्रेस में पड़ी रही। बहुत उद्योग करने पर श्रीमान् पं० महेशीलाल तेवारी रिटायर्ड डिप्टी इन्सपेक्टर फ़ैज़ाबाद तथा श्रीमान् पं० व्रजगोपाल मिश्र पोस्टमास्टर फरीदपुर के

सहयोग से पुस्तक प्रकाशित हो सकी। जो ६२४ पृष्ठों में २४ पौं० सफ़ेद काग़ज़ लगाकर तैयार हो सकी है। आशा है कि आर्य-संसार शीघ्र से शीघ्र प्रचार की दृष्टि से इसको अपनावेगा और मेरे इस भार को उतार कर मुझे आगे के आश्रम में प्रविष्ट होने का सुअवसर देगा।

मुझे बड़ा हर्ष है कि हमारे सुयोग्य कवि बाबू साधूचरन चौधरीजी ज़ि० गोंडा-निवासी ने पुस्तक का संशोधन किया, जिनको मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। चौधरी महोदय ने बड़ी तत्परता और लगन के साथ पुस्तक के मुख्य उद्देश्य की ओर ध्यान रखते हुये संशोधन का कार्य्य संपादन किया। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि चौधरी साहब ने पुस्तक की उपयोगिता की ओर पूर्णरूपेण ध्यान दिया तभी तो आप प्रस्तुत पुस्तक के संबन्ध में अपनी अमूल्य राय का उद्घाटन करने में समर्थ हो सके। यहाँ मैं चौधरीजी के शब्दों को उद्धृत करता हूँ जिससे प्रकट हो जायगा कि मेरा कथन कहाँ तक सत्य है—

स्वामी दयानन्द जो भाषा। रवि-समान सत्यार्थप्रकाशा॥
सो रवि यक दिश जग-तम नासा। छितिय कविनहिय मोद हुलासा॥
कविहियमहिरविरश्मिविवेका। बनेउ भाष्यश्रुतिज्ञान अनेका॥
काव्य ज्ञानघन नभ कविमाथा। सीत वायु रचना रुचिगाथा॥
अक्षर बुन्द पत्र महि जानो। पंक्ति अनेक सरित सर मानो॥
अगणितपंक्तिसरितजेहि ठामा। सोइ सागरसमग्रन्थललामा॥

यहिविधिनिर्मितसत्यकोसागर। तेहिरचनाकृतसुयशउजागर।
प्राप्ततुम्हैं सबविधि गुणआगर। कविवर वैद्य प्रसाद गदाधर॥
दो०—प्राकृत सागर स्वादबिन, अवगुन मय अतिक्रूर।
पर साहित्यिक सिन्धु यह, सुधा-सरिस गुणपूर॥
यहि महँ यत्र-तत्र जो, रह्यो फेन सम भूल।
ताहि सुधार्‌यो "साधु" जन, रखिये लखि अनुकूल॥

निवेदक—

गदाधरप्रसाद वैद्य वानप्रस्थी

नोट—पुस्तक का प्रकाशन-विभाग आर्यआदर्श-ग्रन्थमाला है, समस्त अधिकार उसी के आधीन हैं।

प्रार्थना—ज्ञात हो कि मैंने कथा की शैली बनाने के निमित्त प्रत्येक तरंग के आदि में जो भावमय भूमिकाएँ बाँधी हैं वे मूल सत्यार्थ-प्रकाश में नहीं हैं, केवल हमारी भावना मात्र हैं।

अनुमति—कुछ महानुभावों की सम्मति से इस संस्करण में कांडों का क्रम नहीं रक्खा गया है; क्योंकि उससे समुल्लासों का बोध शीघ्र नहीं होता था। अब प्रत्येक तरंग से प्रत्येक समुल्लास विदित हो जायँगे।

लेखक

चौथे संस्करण की भूमिका

हिन्दी-संसार में उस पुस्तक और लेखक का परम सौभाग्य समझना चाहिये, जिसको पुनः प्रेस में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हो सके। यह संतोष की बात है कि प्रस्तुत पुस्तक के एक नहीं तीन संस्करण समाप्त हो चुके। अब यह चौथा संस्करण है, जिसके प्रकाशन में जो-जो अड़चनें और कठिनाइयाँ पड़ीं वे सब भूमिका में लेखक ने कथित कर दीं; यहाँ उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं।

चौथे संस्करण में सत्यार्थ-प्रकाश का उत्तरार्ध भी कथा-रूप में प्रकाशित होकर पूर्ण ग्रंथ तैयार हो गया। इसकी शैली और इसकी भाव-सरलता सुबोध और सुवाच्य है। कथात्मक ग्रंथ में सजीवता का होना नितान्त आवश्यकीय है। वह सजीवता संभवतः इससे एक-एक शब्द में मिलेगी। अपने अशिक्षित ग्रामीण भाइयों के योग्य भाषा का प्रयोग किया गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इसमें निरानिर ग्रामीण भाषा ही है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है जो पठित समाज को भी प्रिय हो सकती है और देहाती किसान भी उसको सुन कर समझ सकते और लाभ उठा सकते हैं।

संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं मिल सकेगा जो बिना सज्जनों के सदुपदेश के ही आत्मोन्नति के आसन पर आसीन हो सका हो। उपदेश दो ही रीतियों पर प्राप्त किये जा सकते हैं। या तो किसी के श्रीमुख से सुनें अथवा किसी की उपदेशमय वाणी का पाठ करें। इन दो रीतियों

के अतिरिक्त कोई साधन नहीं है। सत्य-सागर इन दोनों साधनों को सफल और कृतकार्य बनाने में आर्य्य-संसार का हाथ बँटायेगा। यह देहात के किसानों को उनके शिक्षित भाइयों के श्रीमुख द्वारा शिक्षा देगा और पठित एवं सभ्य जनों को पाठमात्र से सन्मार्ग की ओर अग्रसर करेगा।

आशा है श्रीमान् इसको अवश्य अपनावेंगे और लेखक तथा हमारे परिश्रम को सफल करेंगे। ॥ इति ॥

भवदीयः—

मैनेजर, आर्य्य-आदर्श-ग्रंथमाला।
मक़बूलगंज,
लखनऊ.

लेखक का परिचय

आपका जन्म संवत् १९३९ माघ मास में प्रान्त हरदोई के पश्चिम ६ मील की दूरी पर क़सबा "बावन" में हुआ। यह स्थान बहुत पुराना है। किंवदन्ती है कि महाराजा बलि के समय का बसाया हुआ है, और उसी समय में एक बृहत् यज्ञ वहाँ पर हुआ था। आपके पिता का नाम पं० बाँके-लालजी था। पिता तीन भाई थे, गोत्र उपमन्यु उपाधि पाठक; परंतु हमारे लेखक महोदय कई भाइयों के होने पर भी दैव की कृपा से अकेले रह गये। प्रारम्भ से ही आपको विद्या से बड़ा प्रेम था और वृद्धों के ही पास बैठते थे। ११ साल की अवस्था में जनेऊ हुआ, और १३ साल की अवस्था में स्वर्ग-वासी कविशिरोमणि पं० गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट "नवीन" कवि ने गायत्री अनुष्ठान की शिक्षा दी, और हिन्दी तथा कविता का प्रेमी बनाने का प्रयत्न किया। पश्चात् १५ वर्ष की ही अवस्था में पिता के आग्रह से गृहस्थ बन्धन में डाल दिये गये। गृहस्थी में दाम्पत्य प्रेम सराहनीय रहा। आपने संस्कृत की शिक्षा पूज्य पं० रघुनन्दन शर्मा 'साँडी' प्रान्त हरदोई के यहाँ प्राप्त की। आपको पढ़ने और पढ़ाने का बड़ा प्रेम है। यहाँ तक कि आपने अपनी बहिन को प्राइमरी तक

पढ़ाया और पुनः लखनऊ भेजकर मिडिल तथा नारमल पास कराया और अपनी धर्मपत्नी को भी यथासम्भव शिक्षा दी। पर अभाग्यवश लेखक के पिता को अपने भाइयों से पृथक हो जाना पड़ा जिससे लेखक महोदय की पढ़ाई का कार्य अधूरा ही रहा, तथापि अपने परिश्रम और पुरुषार्थ के बल से यथासंभव कुछ कर लिया और आर्य्य-समाज की शिक्षा ग्रहण करते ही यह धुन समाई कि किसी प्रकार सत्यवादी बनना चाहिये। पिता कपड़े का व्यवसाय करते थे। लेखकजी का मन उसमें नहीं लगा। होते-होते आपने ऐसी योग्यता प्राप्त की कि आर्य प्रतिनिधि-सभा के वैतनिक उपदेशक हो गये और बहुत काल तक सभा की सेवा की। इस अवसर में आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हुईं। जब आप परिवार-सहित लखनऊ आये, उस समय होनहार दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। बड़े पुत्र की योग्यता संस्कृत में मध्यमा तक थी और अँगरेज़ी में एन्ट्रेन्स। उसने असहयोग आन्दोलन में पढ़ना त्याग दिया था। छोटा पुत्र ६ साल की अवस्था में यजुर्वेद का पाठ तथा अग्निहोत्रादि करता था। अस्तु, बड़े ही होनहार बच्चे थे। दैव की इच्छा और पूर्व कर्म के संस्कारानुसार पुत्रों का देहान्त हो गया, पर पण्डितजी ने कर्मों का भोग समझकर किंचित् भी शोक नहीं किया। कुछ काल के पश्चात् धर्म-पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया। तब पण्डितजी ने संसार के जीवन-सुधार तथा अपनी शान्ति और नाम

(वंश) को जीवित रखने के निमित्त 'सत्यार्थ-प्रकाश' का अनुवाद कर सत्य सागर लिख कीर्ति और यश के भागी बने।

आपने पुत्रियों का विवाह कर दिया है, और वान-प्रस्थ आश्रम में आपका प्रवेश है। आप सदा अपने औष-धालय में दवाई मुफ़्त देते हैं और दूसरों को भी यही शिक्षा देते रहते हैं कि वैद्यक जीविका का साधन नहीं ; वरन् उपकार का स्थान है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हुए पण्डितजी की शान्ति और धैर्य पर बधाई देते हैं कि इतनी विपत्तियाँ पड़ने पर भी आप विचलित न हुए।

मैनेजर

आर्य्य आदर्श-ग्रन्थमाला, लखनऊ

ग्रंथ-गरिमा

(१)

जीवन का धेय है कि जग की भलाई होवे,
शान्ति की हो वृद्धि और भ्रांति-भाव भागें सब;
गुरुजन-सेवा पुनि निजजन-सेवा सदा,
देशजन-सेवा का भाव उदय होवे अब।
अभी है औसर बल देह में बना है शेष,
अब भी किया न कुछ भला तो करोगे कब;
आओ अपनाओ सत्य-सागर की सत्यता को,
जीवन बनेगा शुद्ध ध्यान से पढ़ोगे जब॥

(२)

जैसे मृग-झुंड देख केसरी को भाग जाता,
जैसे अंधकार रवि-रश्मि देख जाता है;
जैसे शुभ कर्म से न पाप कर्म रहें शेष,
सज्जनों का संग फल उत्तम दिखाता है।
पारस के स्पर्श से है लोहा भी स्वर्ण बनता,
स्वाँति बुन्द सीपी में मोती कर दिखाता है;
उसी भाँति स्वामी दयानन्द का सदोपदेश,
मानव-मनों से भ्रम-जाल को भगाता है॥

(३)

जो गुरुजनवत सदा हमारा हितचिंतक है,
जो शिक्षाकृषि भाव-वारि से नित सिंचक है।
जिसके मृदु उपदेश हमें हैं मनुज बनाते,
जिनका विमल प्रभाव भाव सुन्दर उपजाते।
उस शुभचिंतक संसार के, सदुपदेश गाते रहो,
कर प्रण पूर्वक नित पाठ पुनि, अनुपम फल पाते रहो॥

(४)

कथा रूप से वही आज प्रस्तुत है बानी,
जिसकी महिमा कहे थकत हैं पंडित ज्ञानी।
जिसका कर आचरण बहुत से सुधरे प्रानी,
जिससे जग में मिली कीर्ति सम्पति मनमानी।
उस सत्सागर के पाठ से, विमल बुद्धि बानी करो,
शुभ यश शुभज्ञान विवेक से, नित-निज मनमानस भरो॥

(५)

इसकी तरल तरंग सदा सुखदा मनभावनि,
मनकी कठिन कराल कालिमा सकल नशावनि।
समुल्लास उल्लासपूर्ण चौदह करती है,
मानों सुख-संपदा जगत भर में भरती है।
शंका लंका भस्म करि, तुमको सुभग बनायगी,
विमल ज्ञान सिद्धान्तकी, जगमगज्योति जगायगी॥

(६)

पढ़ो सुनो और बन्धु गणों को सदा सुनाओ,
भक्ति भाव युत मोद सहित नितप्रति मिलि गाओ।
ईश्वर का आधार निरन्तर मन में राखो,
नित्य कर्म करि पूर्ण मधुर जीवन-फल चाखो।
आबाल, वृद्ध वनिता, युवा, इसे पढ़ें सुधरें सकल,
है यही विनय जगदीश से, होवें सबके मन विमल।।

[रामलाल अग्निहोत्री]

विषय-सूची

प्रथमतरंग (स० १ स०)

[ईश्वर के नाम और व्याख्या]

द्वितीय तरंग (स० २ स०)

[शिक्षा]

तृतीय तरंग (स० ३ स०)

[ब्रह्मचर्य]

चतुर्थ तरंग (स० ४ स०)

[गृहस्थाश्रम]

पञ्चम तरंग (स० ५ स०)

[वानप्रस्थ और संन्यास]

षष्ठ तरंग (स० ६ स०)

[राज-धर्म]

सप्तम तरंग (स० ७ स०)

[ईश्वर और वेद]

अष्टम तरंग (स० ८ स०)

[सृष्टि-उत्पत्ति]

नवम तरंग (स० ६ स०)

[विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष]

दशम तरंग (स० १० स०)

[भक्ष्याभक्ष्य आचार-अनाचार]

(उत्तरार्ध)

एकादश तरंग (स० ११ स०)

[वेद-विरुद्ध मतमतान्तर विषय]

द्वादश तरंग (स० १२ स०)

[चार्वाक, बौद्ध, जैनमत-समीक्षा]

त्रयोदश तरंग (स० १३ स०)

[क्रिश्चियन (ईसाई)-मतविषय-समीक्षा]

चतुर्दश तरंग (स० १४ स०)

[यवनमत-विषयसमीक्षा]

शुद्धाशुद्धपत्र

[सूचना—प्रत्येक पाठक को चाहिये कि अशुद्धियाँ सुधार लें।]

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द	पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या
४	४०	१	४
प्रचार	प्रचारत	२७	१२
प्रभाव	अभाव	३०	१
लाक	लोक	३५	६
श्लाक	श्लोक	४५	१२
बास	बसर	५६	३
पुत्रन	पुत्रिन	६६	२१
जिन	निज	८१	३
सत्य	असत्य	१०४	७
असद्ग्राही	सद्ग्राही	१०४	८
सुनत	सुतन	११८	२०
वाण	वाणी	१६१	१
कम	कर्म	१६२	१
भेद	वेद	१६३	१७
ह्न	ह्नै	२००	१०
निद्रा	मुद्रा	२०४	११
निज	जिन	२०६	७
सप्त	सत्य	२१३	१६
अरई	अहई	२१८	१३

मुक्ता	मुक्ती	२५४	७
का	की	२८२	१४
जप	जस	२८२	१७
पं	पन्थ जौन	२९९	१
व	वर्ष	३३२	८
वन	नव	३३५	१४
विस्तारा	निस्तारा	३३९	१६
गि	लगि	३४२	५
भागत	भोगत	३७६	११
पावत	आवत	३८०	४
जान	जौन	३८८	१७
कहत	करत	४२१	१०
बात	बातैं	४३२	५
छिप्या	छिप्यो	४३६	१५
जा	जग	४५४	१५
अद्भुत	अद्भूत	४६७	८
नाहा	नाहीं	४७४	१
वि	विषे	४७९	१२
जा	जो	५११	१६
करान	क़ुरान	५३१	१९
अथर्व	अर्थ	५७३	२१

* ओ३म् *

अथ सत्य-सागर

अथ प्रथम तरङ्ग (स० १ स०*)

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

य० अ० ४ म० १६

सो०—हे प्रभु मंगल मूल, जगत सृष्टि जिन निर्मयो ।
यजुर्वेद अनुकूल, कहत ओ३म् खं ब्रह्म सब ॥१॥
स्वप्रकाश सुख देत, तुम पूरन विद्या निपुण ।
ज्ञान राज्य मम हेत, देहु सुपथ करिके कृपा ॥
हरहु कुटिल मम दोष, सम्पूरन सर्वज्ञ तुम ।
नाथ करहु जनि रोष, शिशु सेवक मोहिं जानिकै ॥
शुभ पुनीत वह देश, जहाँ विराजे ऋषि-चरन ।
सुनत रहत उपदेश, छूटहिं सकल कलेश तिन ॥

* सत्यार्थ-प्रकाश प्रथम समुल्लास ।

शिष्य

दोहा—हे गुरु मोहिं सुनाइये, कछुक पूर्व इतिहास ।
जाहि सुने नर भव तरहिं, "इष्ट" सु विना प्रयास ॥ १ ॥

गुरु

ऋषि की कथा सुनहु मनलाई । पावै सुख जो करै उपाई ॥
पुष्कर-तीर्थ महा विख्याता । आवहिं मुनिगन कहहिंसुबाता॥
तहां एक दिन ऋषिवर गयऊ । दै उपदेश सबन चित लयऊ ॥
पुनि एकांत बैठि सब काहू । कथा सुनावत सहित उछाहू ॥
सत्य कथा जस वेदन गाई । सोइ कहत सब कहँ समुझाई ॥
बहु भूपति तेहि अवसर आये । ऋषि के वचन सबहिं मनभाये ॥
राज-पुरुष यक बोल्यहु भाई । हमहिं सुनावहु ईश बड़ाई ॥
नाम कवन जग तारन हेता । कवन नाम जपि होत सचेता ॥

दो०—स्वामि कह्यो तव ध्यान धरि, सुनहु सकल महिपाल ।
नाम सुनावहुँ ईश के, हैं जो परम कृपाल ॥२॥

छंद—ब्रह्मा, सु विष्णू, इंद्र, मित्र, विराट, अग्नी, जानिये ।
खं ब्रह्म, अक्षर, मातरिश्वा, गुरुत्मान, प्रमानिये ।
है दिव्य, भूमि, विराट, अग्नी, ओ३म् ईश्वर मानिये ।
कालाग्नि,विश्व,बृहस्पती,नित ईशको पहिंचानिये ॥१॥
वायू, सुपर्ण, हिरण्यगर्भ-अरु मित्र, तैजस, ईश है ।
आदित्य,प्राज्ञ,सुप्राज्ञ,वसु,सविता,कवी, जगदीश है ।

है आतमा, परमातमा, शम, इंद्र, वरुण, मुनीश है ।
यमे, अर्य्यमा, आकाश, पृथिवी, अन्न प्रानिन ईश है ॥२॥
ईश्वर, उरुक्रम, चंद्र, मंगल, शुक्र, शनि, सब कोइ भजै ।
परमेश, अंत, अनंत, बुधवर, यज्ञ गणपति, गुरु, अजै ।
अप, राहु, केतु, सुरुद्र, निर्गुन, करि प्रलय पुनि जग सृजै ।
यह जानि नर नित भजै प्रभु को, सकल औगुन को तजै ॥३॥
पितु, मातु, बंधु, पितामहा, प्रभु न्यायकारि दयालु है ।
चित, ज्ञान, आनँद, सत, अनादि, सो, मुक्त शुद्ध कृपालु है ।
ब्रह्मा, निरंजन, सगुन, शंकर, पुरुष विश्व भुआलु है ।
श्री, शक्ति, देवी, लक्ष्मी, जग-नाश हित प्रभु काल है ॥४॥
भगवान, आप्तै, सरस्वती, शिव, महादेव, उचारिये ।
शम्भू, स्वयम्भू है अजन्मा, सकल जन उर धारिये ।
वह लेत सुधि जन भरन पोषन जानि नहिं बिसराइये ।
यह गुनमई लखि नाम प्रभु के ओ३म् को चितलाइये ॥५॥

दो०—इन शत नामन को सदा, पाठ करै चितलाय ।
पूरित हों सब कामना, मन-विकार नशि जाय ॥३॥
सगुन नाम जगदीश के, ये हैं परम अनूप ।
मुख्य नाम प्रभु ओ३म् है, गाइ तरहिं भवकूप ॥ ४ ॥

ओ३म् एक रक्षक जग माहीं । शरण तासु की गहहु सदाहीं ॥
ओ३म् अकार उकार मकारा । करत ऋषीगन पुलुत उचारा ॥

अग्नि विराट विश्व जे नामा। ते अकार में पावहिं ठामा॥
अरु उकार से तैजस जानौ। हिरण्यगर्भ अरु वायु बखानौ॥
ईश्वर आदित प्राज्ञ समाना। प्रगट मकार होत जग जाना॥
जो नहिं नष्ट होत दर्शाई। सोइ उपासक ओ३म् सुहाई॥
ओ३म् एक प्रभु नाम अलीका। नशहि न कतहुँ होय नहिं फीका॥
करि समाधि जो जानन योगू। परम पुरुष तेहि मानहिं लोगू॥

दो०—ओ३म् एक अक्षर परम, सर्वेश्वर जगदीश।
उद्गाता तेहि गावहीं, ध्यावहिं सकल मुनीश॥५॥

सर्व वेद जेहि आदर करहीं। नर जपि ताहि वेगि भव तरहीं॥
तेहि उर धरत होहिं ब्रह्मचारी। ओ३म् नाम महिमा अति भारी॥
बहुत नाम हैं प्रभु के नीके। ओ३म् मुख्य है नाम अलीके॥
रक्षा करत सकल जग केरी। ता कहँ ओ३म् कहत सब टेरी॥
जो व्यापक जग गगन समाना। तेहि विद्वान सकल खं जाना॥
महत बड़ाई जो जग माहीं। ताहि बतावहिं ब्रह्म सदाहीं॥
देहि सकल शिक्षा दिन राती। स्वप्रकाश अति सूक्ष्म सुहाती॥
स्वतः प्रकाश मान जगमाहीं। अग्नि स्वरूप विलोकहु ताही॥

दो०—सकल जगत पालन करै, है ऐश्वर्य महान।
इन्द्र ताहि सब कहत हैं, मनु स्वरूप विज्ञान॥६॥

जीवन मूल प्राण यक अहई। निशि दिन व्यापक ब्रह्म कहाई॥
ब्रह्मा जगत बनावहि नीके। व्यापक विष्णु सकल जगती के॥

दे दुख रुद्र रुलावहिं दुष्टन । हैं सदैव शिव मंगल दायन ॥
जो अति श्रेष्ठ जगत के माहीं । वरुण देव जग बीच कहाहीं ॥
है बहु बृहत सकल जग स्वामी । सकल लोक-पति अन्तरयामी॥
देवन गुरू बृहस्पति जानो । सगुण ईश के नाम बखानो ॥
जासु प्रकाश परम हित होई । ता कहँ सूर्य कहत सब कोई ॥
जो सामर्थवान जगराई । ईश्वर ताकहँ जानहु भाई ॥

दो०—जो जग व्यापक है सदा, आतम रूप लखाइ ।
प्रकृति जीव से पृथक नित, परमात्मा कहाइ ॥ ७ ॥

परम समर्थ समर्थन के बिच । परमेश्वर मानहु हिरदय खिच ॥
जो उत्पत्ति करत जग केरी । सविता नाम कहत मुनि टेरी ॥
रचि ब्रह्मांड करत जन छाया । धनपति ताहि कुबेर बताया ॥
जल समान जो व्यापक अहई । नारायण ताको मुनि कहई ॥
है आनन्द प्राण को दाता । चन्द्र इष्ट शीतल विख्याता ॥
मंगल रूप एक रस भानू । मंगल है मंगल परिमानू ॥
जो है ज्ञान रूप जगत्राता । बुद्ध सकल जीवन को दाता ॥
नाम ईश जग तारन हेता । जपत निरन्तर मुनिगन नेता ॥

दो०—जो अति परम पुनीत है, पावन करत जहान ।
शुक्र नाम यह ईश को, जानहु जगत सुजान ॥८॥

मिलहि जो सहजधैर्ययुतहोई । ईश शनीचर जानहु सोई ॥
जो एकांत स्वरूप अकाया । लगहि न ताहि कतहुँ कोइमाया॥

जो जग दुष्टन द्वैष छोड़ावहिं । राहु ईश ताकहँ सब जानहिं ॥
जो जग रोग छोड़ावन वारो । केतु नाम ईश्वर उच्चारो ॥
मातु पिता, गुरु नाम ईश को । भजहु सकल मन भव जगतीको॥
तीनों काल एक रस रहई । ईश नाम सत कविगन कहई ॥
चेतन रूप काल गति जानै । चित सर्वज्ञ सोई प्रभु मानै ॥
आनँदरूप सदा प्रभु लसई । ताहि भजे हिय आनँद बसई ॥

दो०—जो जग पावन करत है, शुद्ध महा भगवंत ।
कतहुँ नाश नहिं होवई, नित्य सदा सुखवंत ॥९॥

जाननहार सदा जग स्वामी । बुद्ध विलोकहु अन्तर्यामी ॥
जो सब दुःख हरै जन केरे । सुमिरत पावन होत घनेरे ॥
सुनहु शिष्य स्वइ मुक्त स्वरूपा । ताहि भजे उबरहिं भवकूपा ॥
हैं प्रभु बिन अकार जगसृष्टा । नैनन बिन सब कर्म न दृष्टा ॥
ईश निरंजन नाम जो भावहिं । देहिं सुपन्थ कुपन्थ छोड़ावहिं ॥
पालहिं सृजै सकल जगतीको । गणपति ईश हरै दुख नीको॥
प्रकृति सदा जाके बस रहई । श्री शक्ती देवी बुध कहई ॥
जो नित देखत सकल जहाना । करहि हर्महिं बहु शक्ति प्रदाना॥
तेहि जानहु लक्ष्मी सब भाई । भजहु ताहि सब काम बिहाई॥

दो०—हो पूरित सब कामना, दुख न रहै लवलेश ।
सर्व शक्ति सम्पन्न है, शक्तीमान सुरेश ॥ १० ॥

सवैया

होत अभय जन जासु कृपा बल जानहि सत्य असत्य बिचारी।
सोइ दयालु कृपालु प्रभो भजिये निशिवासर चित्त सम्हारी ॥।
है वह एक अनंत गुणेश विलोकहु नाथ सदा सुखकारी
'इष्ट' सु शंकर देत सबै सुख नाश करे जन के दुख भारी ॥१॥

विद्या निपुण प्रकाशक भानू। महादेव सब देवन जानू॥
ईश नाम नित जपहु सकलजन। अन्तःकरण विशुद्ध होय मन॥
बुद्धि, मान देवै दिन-राती। सरस्वति नाम ईश सुखमाती॥
जो जन जपै सदा प्रभु नामू। पावहि सुख पूरित हो कामू॥
कह्यो नृपति सुनिये ऋषिराई। जानेहुँ आजु नाम प्रभुताई॥
मोहिं सुनावहु नाम बड़ाई। सुमिरत जासु सकल दुख जाई॥
मुख प्रसन्न बोले ऋषिराई। औरहु एक सुनहु चित लाई॥
निन्दा रहित कर्म जो अहहीं। बुधजन तेहि करिके सुख लहहीं॥

दो०—तासों नित प्रति नेह करि, तजहु अधर्म भुवाल।
करहु धर्म निशि द्योस सब, तजहु सकल जंजाल ॥११॥

जासु कर्म कीन्हें अधिकाई। बढ़ै अधर्म होय दुख भाई॥
कर्म सो सदा त्यागिवे लायक। पावैं सुख निज कर्म विधायक॥
अधरम के दश चिन्ह बताये। मनु आदिक इसमिरतिन गाये॥
ध्यान करैं पर द्रव्य निरंतर। मनहिं अनिष्ट विचारहिं जो नर॥

मानत ईश कतहुँ जो नाहीं। मनसा पाप तीन ये आहीं॥
पारश्वता पिशुनता दोऊ। बोलत झूठ कतहुँ जो कोऊ॥
बिना प्रयोजन कर बकवादा। पातक चारि बाक मर्यादा॥
उलटि लेहिं जो जन जग-दाना। हिंसा रत नित प्रेम निदाना॥

दो०—पर त्रिय प्रेम करै सदा, विलँब न लावहिं नेक।
शारीरिक यह पाप हैं, त्यागहु जानि विवेक ॥१२॥
वेद शास्त्र की रीति यह, जो हम वर्णन कीन्ह।
पड़हु न तुम भ्रमजाल में, जो प्रभु बुद्धी दीन्ह ॥१३॥

इति श्रीमत्सत्यसागरमहर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वतीवर्णित
ईश्वरनामव्याख्या पं० गदाधरप्रसाद वैद्य वानप्रस्थ
द्वारा विरचित गुरुशिष्यसंवाद प्रथम-
तरङ्ग ॥ १ ॥ (स० १ स०)

अथ द्वितीय तरङ्ग (स० २ स०)

शिष्य

सो०—गुरुवर भयो अनंद, सुनत कथा ऋषिराज की।
अब बरणौं सुखकंद, जाहि सुने हित होय मम ॥ १ ॥

गुरु

दो०—कह्यो गुरू आदर सहित, सुनहु शिष्य करि नेह।
ऋषिवर की दूजी कथा, बरणौं सहित सनेह ॥ १ ॥

ऋषि की कथा सुनन के काजा। आये सब मिलि सहित समाजा॥
देखि विशाल नेत्र अरुणारे। भये मगन दृग टरत न टारे॥
गौर अंग तनु बाहु विशाला। देखि दुष्ट सब होत बिहाला॥
मुखकी कांति त्रिलोकहि जोई। नशहिं सकल भ्रम बुधवर होई॥
याविधि ऋषिहिं विलोकिसबैजन। भरनलगेहियऋषिके बयनन॥
स्वामि कह्यो सब नर जग माहीं। बिन शिक्षा कछु जानत नाहीं॥
शिक्षा मार्ग मुख्य हैं तीनो। मातु पिता गुरु पुरुष अधीनी॥
शतपथ ब्राह्मण में यहि भाँती। लिख्यो जगत हित कर्म सुहाती॥

दो०—पिता एक शिक्षक परम, दूजी मातु महान।
अहैं तीसरे गुरु जगत, आचारी सुखमान ॥ २ ॥

धन्य सो कुल जहँ मातु कुलीना। धन्यसो सुतजो पितुआधीना॥
गुरु सोइ धन्य जोहित अनुसरई। पितुसोइ धन्यपुत्रहितकरई॥
पर यहबात सकलजगमानत। सुतस्वभाव पितुमातु से आवत॥
देहिं मातु पितु जेती शिक्षा। मिलै न और काहु सों दिक्षा॥
माता सुतहिं सिखावहिं नीके। गर्भ समय से वयस जती के॥
तौ लगि शील सनेह सिखावे। मातृ मान सोइ मातु कहावे॥
उचितमातु पितु असजगमाहीं। त्यागहिं मादक द्रव्य सदाहीं॥
जौ लगि गर्भ न धारहिं बाला। गर्भ मध्य अरु अंतिम काला॥

दो०—नित प्रति मादक द्रव्य को, त्यागहिं रुचि सों बाल।
रहैं सदा आचार सों, परैं न कहूँ भ्रम-जाल॥३॥

बालक जन्मत स्नान करावें। नाल छेदि पुनि होम रचावें॥
माता सीख देइ नित नीके। दुर्गुण सकल निकारहिं जीके॥
तोतलि बात कहन नहिं पावे। आखर ठीक ठीक सिखरावे॥
बोलनि उठनि चलनि व्यवहारू। मातु सिखावहिं सकल अचारू॥
मातु उपाय करै नित ऐसा। तजै कुसङ्ग बाल हित वैसा॥
अधिक खेल अरु रुदन लड़ाई। करै न शिशु सोइ रचै उपाई॥
त्यागहिं हर्ष शोक लोलुपता। ईर्षा द्वेष कर्ष निष्ठुरता॥
इन्द्रिय गुप्त छुए नहिं बालक। हों दुर्गंध पुरुष कुल घालक॥

दो०—सदा सत्य भाषन करैं, लहैं धैर्य्य को बाल।
मातु करैं सोइ यतन नित, सुख उपजै तिहुँ काल॥४॥

पांच वर्ष का बालक होई। पढ़न हेत बहु यतन करोई॥
नित नव प्रेम करहिं सब ही सों। विद्या विमुख न हो काहू सों॥
भूत प्रेत की कथा न कहई। सुनै न बालक भय नहिं लहई॥
सुनहु बतावहिं भूत कहानी। जाहि वरणि मुनिगन हित जानी॥
गुरु पितु मातु मरै जाही दिन। ताकहँ कर्म करै सब कुल ठनि॥
सोई शव जग प्रेत कहावे। दाहक प्रेतहार कहलावे॥
पाछिल पुरुष व पाछिल काला। कहत भूत सब बुद्धि विशाला॥
या विधि शिशुहिं सिखावे नीती। कुल अरु वेद बतावे रीती॥

दो०--बुधजन को सिद्धांत यह, जो हम कह्यो बखान।
जासु हृदय संकित महा, सो मतिमंद महान॥ ५॥

पुत्र सदा माता हित करहीं। जासों मातु मोद नित भरहीं॥
उठत प्रात पितु मातु नमामी। ईश बन्दि अरु गुरुहिं प्रणामी॥
करत कुसंग सदा दिन-राती। लाज नशै अपयश बहु भाँती॥
जो पाखंडी धूर्त अनारी। महा मूर्ख अरु अत्याचारी॥
स्वार्थी भंगी शूद्र चमारा। म्लेच्छ आदि जे हैं परिवारा॥
ढोंग करैं छल कपट निरन्तर। बाँधहिं यंत्र देहिं बहु मन्तर॥
और करावहिं जूठ अहारा। करहिं सो यतन न हो आचारा॥
नाना भाँतिन ढोंग रचावैं। बाल-वृद्ध सब को अपनावैं
नाउत बनि जब मूड़ हिलावैं। कहि देवी भैरों बतलावैं॥
पियें शराब करैं बलिदाना। बोलैं सदा करहु बहु दाना॥

दो०-पूरे हैं जे गाँठ के, अरु हैं नेत्र विहीन।
ते जन इनमें फँसत हैं, अति स्वार्थी बुधिहीन ॥६॥

जो कोउ इन ते पूछै कतऊ। देखहु यहि सुतको का भयऊ।
तब ये कहत परम हित जानी। ग्रसेहु पुत्र कहँ भूत मसानी।
पूजा पाठ करावहु हित सों। दीजे भेंट समिग्री मन सों॥
जब कोउ हो इन धूर्तन के बस। ह्वै उनमत्त करत सब कनफुस॥
लैकर ढोल मृदंग नकारा। नाचहिं कूदहिं करत इशारा॥
ह्वै उनमत्त एक उठि बोलत। हम हैं भैरव जग में डोलत॥
हमही हैं हनुमान हठीले। मारहिंगे जो हैं गर्वीले॥
लावहु लाल लंगोट मिठाई। सेर सवा मन सिन्दुर भाई॥
औरहु बहुतक बात बतावहिं। करि बहु यत्न जगत भरमावहिं॥

दो०-जब ये नाचहिं कूदहीं, ढोंग करहिं बहु भाँति।
कबहुँ न इनके फंद में, आवै कोई जाति ॥७॥

आदर काहू भाँति न कीजै। देखि ढोंग कछुहू ना दीजै॥
ये सब मूर्ख ढोंग बहु करहीं। इनके जाल अबुध जन परहीं॥
औरहु एक ज्योतिषी आवहिं। सबको ग्रह को दोष बतावहिं॥
ता हित पूजा पाठ करावहिं। लेहिं दान अरु भोजन पावहिं॥
करहिं ठगी छल जगत भुलावहिं। जड़ को चेतन रूप बतावहिं॥
देखहु सूर्य चन्द्र तारागन। ये जड़ लोक कहत सब बुधजन॥
यक पंडित तब पूछन लागा। हमहिं बतावहु ग्रहन विभागा॥

जो जन सुख दुख पावहिं निशिदिन। कहहु कहा यह नहिं ग्रहदूषन॥

दो०—जा नर के ग्रह दुखद हों, पावत दुःख महान।
होहिं सुखद ग्रह जासु के, सो सुख लहत जहान॥८॥

स्वामि कह्यो यह भूल तुम्हारी। है फल पाप पुण्य अधिकारी॥
जो जस कर्म करै संसारा। फल पावे ताके अनुसारा॥
काहू को ग्रह दुःख न देवें। कर्म समान सकल फल लेवें॥
बहुरि कह्यो पंडित इमि बानी। जोतिष झूठ कौन विधि मानी॥
स्वामि कह्यो सुनिये मन लाई। अङ्क बीज सब सत्य सदाई॥
जो फल रच्यो स्वार्थिन निज हित। वह सब झूठ कपट की मूरत॥
जो अस छल न करत जग भाई। पूछहि इन कहँ को घर जाई॥
जन्मपत्र लिखि लोग भुलावत। ग्रह उपग्रह के दोष बतावत॥

दो०—या विधि सों रचि के सदा, करत अडम्बर मान।
अबुध सदाही फँसत है, डरत रहत दिन रात॥९॥

शोक पत्र वह हमरी जानी। रंग बिरंग बनाय सुमानी॥
धनी पुरुष जे हैं जग मांहीं। तिनहिं पाइ ये ठगत सदाहीं॥
ग्रह की दशा क्रूर कहि देवें। शोक होय सुनि जन धन खोवें॥
रचि के ढोंग जो माँगै कोई। चाहे गुरु पंडित कोउ होई॥
तिन सतकार करौ जनि कोई। कोउ न पूछहु बात संजोई॥
निशि-दिन मातु पिता आदरई। सदगुरु की सेवा नित करई॥
आवत आसन देवें ऊँचा। दैकर अर्घ करहिं बहु पूजा॥

जो गुणवन्त होय जग कोई। आये आदर करिये सोई॥
सुजन सुसंगति करहि सदाई। दुष्टन संग तजै दुखदाई॥

दो०—मातु पिता गुरु की सदा, आज्ञा पालै बाल।
रहै सदाही नेम सों, पड़ै न कहुँ भ्रम-जाल॥१०॥

मात पिता नित शिक्षा करई। पर उपकार पुत्र हिय भरई॥
करै उपाय सदा हित जानी। धारै उत्तम कर्म अमानी॥
त्यागहिं सदा दुष्ट पथ बालक। होहिं सुबल नहिं हों कुल घालक॥
सिखवहिं पिता नीति व्यवहारा। प्रिय भाषन अरु शब्द उचारा॥
योग-क्रिया कछु देय सिखाई। जासों ब्रह्मचारी बनि जाई॥
सन्ध्या-वन्दन सकल सिखावै। नित्य कर्म सबही करवावै॥
जेहिविधि रोग न होवे तन में। धरै सदा बालक सोइ हिय में॥
चलै देखि मारग हर्षाई। पीवे वस्त्र छानि जल भाई॥
सत्य विचारि कहै सब बैना। मनहिं विचारि करै आचरना॥

दो०—तन मन वाणी से सदा, करैं पुत्र हित नेह।
सदा यत्न जग करत है, होवे पुत्र सनेह॥११॥

सो पितु मातु शत्रु जग माहीं। जो न पढ़ावत पुत्रन काहीं॥
सभा मध्य वह सोहत कैसे। हंसन बिच बक बैठत जैसे॥
जो न बाल विद्या युत होई। जीवन भर दुख पावै सोई॥
याते बालन विद्या दीजै। दै बुद्धी औगुन हरि लीजै॥

धन जेतो जग विदित महाना । विद्या धन पूरण जग माना ॥
या को चोर न सकै चोराई । ना कोउ लेवै बन्धु बँटाई ॥
तासु वृद्धि दीन्हे पर होवे । अरु जन हृदय मूर्खता खोवे ॥
विद्या ही जग निपुण सुहाई । ग्रहन करै पावे सुख भाई ॥

गुरु

दो०—याते शिष्य समूह सब, पढ़िये देकर ध्यान ।
स्वामि कह्यो यहि कथा में, शिक्षा विविध विधान ॥१२॥

शिष्य

दो०—नाथ कृतारथ भयो मैं, सुनिके ऋषि के बयन ।
बहुरि सुनावहु ऋषि कथा, खुलै हृदय के नयन ॥१३॥

इति श्रीमत्सत्यसागर महर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वती
वर्णित शिक्षाविषय पं० गदाधरप्रसाद वैद्य वान-
प्रस्थीद्वारा विरचित गुरु-शिष्य संवाद
द्वितीय तरङ्ग ॥ २ ॥ (स० २ स०) ।

अथ तृतीय तरङ्ग (स० ३ स०)

शिष्य

दो०—शिक्षा की जो ठीक विधि, बरणि सुनायहु तात।
पढ़न पढ़ावन की विधी, कहहु जगत सुखदात ॥१॥

गुरु

दो०—एक समय बहु शिष्य युत, ऋषिवर पहुँचे जाय।
गंगातट सुंदर विशद, मुनिगन जहँ सुखदाय ॥२॥

ऋषिवर तुरत सुनावन लागे। जाहि सुने अवगुन सब भागे॥
जो नर विद्यावान सदाई। धैर्य्य शील शिक्षा सुखदाई॥
जाकहँ सत्य नेम जग भाई। तासु सकल औगुन नशि जाई॥
जाकर भूषन देश सुधारू। धन्य सो नर जो कर उपकारू॥
विद्या निपुण होय सब कोई। जानै धर्म कर्म बुधि सोई॥
बालक आठ बरस को होई। पढ़न हेत पठवहु सब कोई॥
जा विधि पुत्र पढ़हि मन लाई। ता विधि कन्या जानहु भाई॥
पुत्रिन की अध्यापक नारी। होवैं शुभ गुन शुचि व्रत-धारी॥

दो०—जहाँ पढ़त हों पुत्र सब, तहाँ न जावहिं बाल।
बाल बालिका को मिलन, है असंग तेहि काल ॥३॥

जो अध्ययन काल है भाई। तामँह बालक पढ़त सदाई ॥
मैथुन तजहि सदा ब्रह्मचारी। बाल बालिका जो व्रत-धारी ॥
मैथुन आठ प्रकार बताई। बचै तासु सों मन चित लाई ॥
दरश, परश, एकान्त निवासू। भाषन विषय कथा सहबासू ॥
खेल परस्पर, विषयन ध्याना। मैथुन, आठ प्रकार बखाना ॥
इनसे बचहिं सदा नर नारी। जासों मिलै सदा सुख भारी ॥
योजन एक गाँव से दूरी। होहिं पाठशाला सुत छोरी ॥
तामँह रंक राउ सब पढ़हीं। एक समान सो गुरु-गृह रहहीं॥

दो०—मात पिता सुत सों नहीं, करैं पत्र व्यवहार ।
गृह चिंता फँसि के तवै, होत न पढ़न विचार ॥ ४ ॥

राजा नियम बनावै एका। पढ़ैं सकल बालक धरि टेका ॥
पुनि बहु जाति सभा नर करई। जेहि बल बालक वेदन पढ़ई ॥
सुतउपवीत करहिं घर माहीं। दूसर आचारी पहिराहीं ॥
गुरु पितु पुत्रन धर्म सिखावहिं। गायत्री * को अर्थ बतावहिं ॥
भू उत्पन्न करत संसारा। स्व: पूरन सुख देवन हारा ॥
जो जन दुःख छोड़ावन हारा। सोइ भुवः जानहु सुख सारा ॥
जो जग व्यापि रह्यो सब ठामा। परमेश्वर स्वइ नाम ललामा ॥
जेहिं सब जगत बेगि उपजावा। सविता देव जानि अस पावा ॥

* ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्। यजुर्वेद ३६–३

दो०—निज शक्ती सों जगत में, सूर्य्य चंद्र उपजाय ।
सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुत, सविता ईश कहाय ॥ ५ ॥

है अति श्रेष्ठ वरेण्यं जानो । परमातम सोइ इष्ट प्रमानो ॥
है स्वइ ग्रहन योग जग त्राता । स्वइ त्रिज्ञान स्वरूप विधाता ॥
ताकहँ हम धारहिं हिय माहीं । कारन कवन जगत मनुसाहीं ॥
सो मम बुद्धि धर्म की ओरा । प्रेरहु नाथ जाय दुख मोरा ॥
यह गुरु मन्त्र जगत के माहीं । बल बुधि दायक सकल पढ़ाहीं ॥
प्रथम उपासक ईश मनावहिं । धर्म नीति कुल रीति सिखावहिं॥
पुनि सिखलाय शौच की रीती। है मन्त्रादिक की जो नीती ॥
जल सों होत शुद्ध सब अङ्गा । होय शुद्ध मन सत्य प्रसङ्गा ॥

दो०—शुद्ध होत बुधि ज्ञान सों, तप सों आत्म पुनीत ।
याते सब जन प्रेम सों, मानहु मनु की नीत ॥ ६ ॥
बढ़ै ज्ञान यश कीर्ति जग, करै जो प्रणायाम ।
नशै अशुद्धी प्राण की, पावै सुख अभिराम ॥ ७ ॥

सो०—धातु सकल मल जाय, अग्नि तपावै यत्न करि ।
इन्द्रिन विषय नशाय, करै जो प्राणायाम नित ॥१॥

प्राणायाम करहिं सब जाती । ऋषिन बतायहु नाना भांती ॥
प्रथम क्रिया यहि भांति बताई । प्राणायाम सुरीति सोहाई ॥
बल करि प्राण*निकारहिं बाहर। रोकहिं पुनि ताकहँ समरथ भर

---

* प्राणवायु

मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचे। जौं लगि प्राण रहत हैं नीचे॥
बाहर प्राण टिकै जेहि भांती। करै सो यत्न सकल मनुजाती॥
पुनि वायू को भीतर लीजै। या विधि प्राणायाम करीजै॥
मन में ओ३म् जपहु तेहि काला। रक्षक सदा जगत महिपाला॥
हृदयाकाश धरहु प्रभु ध्याना। उपनिषदन जेहि भांति बखाना॥

दो०—सुखमय आसन बैठि कै, करिये प्राणायाम।
सीध अंग तनु ढील करि, जपहु सदा प्रभु नाम॥ ८॥

बुधजन एकहि बाह्य* बतावें। दूजो अभ्यन्तर† दर्शावें॥
तीजो स्थित‡ वृत्ति अलोपी। चौथा बाह्याभ्यन्तर× क्षेपी॥
जबहीं प्राण वश्य हो जाई। मन इन्द्रिय स्वाधीन लखाई॥
बुद्धि बढ़ै पुरुषार्थ अधिक तर। पहुँचे सूक्ष्म विषय के अन्तर॥

---

* बाह्य—वेग से प्राणवायु को बाहर छोड़े जिस प्रकार वमन में बाहर निकलती है और बाहर रोक देवे उसी समय मूल इन्द्रिय और गुदा को ऊपर की ओर संकोचन करे तो इस अभ्यास से प्राण अधिक बाहर ठहरता है।

† आभ्यन्तर—प्राणवायु को अन्दर अधिक रोका जावे। घबराहट होने पर सांस लेकर फिर भीतर ही रोकने का अभ्यास करे।

‡ स्थिरवृत्ति—श्वास को जहाँ का तहाँ एक दम रोक देवे और सामर्थ्य भर योग का अभ्यास करे।

× बाह्याभ्यन्तरक्षेपी—श्वास भीतर जाती हो तो जाने से रोके और बाहर आती हो तो आने से रोकने का अभ्यास करे। इसी प्रकार प्राणायाम करते करते मन वश में हो जाता है।

शारीरिक बल बढ़ै सदाई। वीर्य-वृद्धि दोनौ अधिकाई॥
ह्वै इन्द्रीजित सूक्षम काला। पढ़ै शास्त्र ह्वो बुद्धि विशाला॥
यहिविधि पुरुष नारि द्वौ करहीं। योगाराधन में चित धरहीं॥
या विधि बालक सिखवै माता। भोजन छादन सुन्दर बाता॥

दो०—यथा योग्य व्यवहार को, सिखवै पितु अरु मात।
ऊँच नीच की रीति सब, अभिवादन की बात॥ ९॥

संध्योपासन बहुरि सिखावहिं। ब्रह्म यज्ञ ताकहँ बतलावहिं॥
प्रथम आचमन करैं विशेषी। मध्यस्थलि परिमाण अशेषी॥
जासों कंठ शुद्ध होइ जाई। कफ अरु पित्त दोष नशि जाई॥
बहुरि मारजन या विधि करई। अंगुलि मध्य अनामिक धरई॥
वाक आदि इन्द्री जो अहहीं। करि पावन आनँद को लहहीं॥
अङ्गन ऊपर वारि गिरावै। आलस जाय सुःख उपजावै॥
प्राणायाम उक्त विधि करई। अघमर्षण को पुनि चित धरई॥
मानस परिकरमा जो अहई। उपस्थान की रीति सुहाई॥
ईश्वर स्तुति और उपासन। करैं निरन्तर मंगल दायन॥

दो०—विधिवत नितप्रति प्रेम सों, जा अरण्य के बीच।
सुखद तड़ाग नदी निकट, हिय सावित्री खींच॥ १०॥

प्रथम यज्ञ संध्या नित करई। दूजो देव यज्ञ अनुसरई॥
अग्निहोत्र जा कहँ बुध कहई। कीजै प्रात समय सुख लहई॥
सोलह अंगुल कुंड खनावै। विधि सों चौरस वेदि बनावै॥

यज्ञ-पात्र सब राखहु भाई । रुचि सों होम करहु सुखदाई ॥
काष्ठ सुचन्दन आम-पलासा । राखहु यज्ञ माहिं सुख आसा ॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई । यज्ञ हवन सों कहा भलाई ॥
कहत स्वामि सब सुनहु भुआला । बढ़ै सुगंध नशै दुख जाला ॥
तौ कह चन्दन माथ लगावे । सबको एक उपाय सिखावे ॥

स्वामी का उत्तर

दो०—भू-विद्या जो जानते, तो न कहत अस बात ।
सूक्षम ह्वै फैले महा, यज्ञ हवन की बात ॥११॥
सो०—रोग सकल नशि जात, हवन करे जो नेह करि ।
अरु दुर्गंध नशात, ग्रहन करै सुख सम्पदा ॥२॥

प्रश्न

केसर कस्तूरी बहु भाँती । अतर फुलेल सुगन्धित जाती ॥
राखै तिनहिं भवन के माँहीं । तबहु सुगन्धित पवन लखाहीं ॥
तौ फिरि मंत्र पढ़ै केहि हेता । होम करै बिन मंत्र सचेता ॥

उत्तर

वेद पाठ होवे सुखदाई । वैदिक कर्म लखहु चित लाई ॥

प्रश्न

जो न करे जन होम निरन्तर । तौ कह पाप होत ? उर अंतर ॥

उत्तर

अवशि पाप होवे सब काहू । जो न करै जन यज्ञ [illegible] ॥
निशि दिन करै त्याग मल मूता । वायु बिगाड़े सकल सँजूता ॥

दो०—प्रात साँझ द्वौ काल में, करैं हवन सब कोय।
षोडश आहुति नित करें, पति पत्नी युत दोय ॥१२॥

जब लगि रही होम की रीती। सुखपूरित हो अविचल नीती॥
पंच यज्ञ नर-नारी हित सों। करैं सप्रेम सबल हो जन सों॥
ब्रह्मचारी दो ही यग करहीं। सन्ध्या अग्नि होत्र उर धरहीं॥
है अधिकार विप्र के माहीं। दें उपवीत बरण त्रय माँहीं॥
क्षत्री दोउ कुल दे उपवीता। वैश्य स्वकुल दे करै पुनीता॥
शूद्र सकल गुणशुभ कुलनीता। धरम निरत अधरम विपरीता॥
तेहि उपवीत न दीजै भाई। मंत्र छांडि सब वेद पढ़ाई॥
सुश्रुत आचारी यहि भाँती। लिखि निजग्रन्थ माहिं कछु पाँती॥

दो०—अवधि जो छत्तिस बरस की, पढ़ै सो तीनों वेद।
यक यक द्वादश वर्ष में, पढ़ै सकल तजि खेद ॥१३॥

उत्तम मध्यम अधम प्रकारा। तीनि भाँति ब्रह्मचर्य अचारा॥
अड़तालिस उत्तम व्रत जानौ। मध्यम छत्तिस लौं परिमानौ॥
चौबिस अधम निकृष्ट लम्बाई। ब्रह्मचर्य की रीति सुहाई॥
याविधिपितुअरुमातुसिखावें। निजनिजसुतब्रह्मचारि बनावें॥
प्रथम अवस्था विद्या देई। दूजे तप हित यतन करेई॥
तीजे निज सन्तति उपजावे। चौथे उपदेष्टा कहलावे॥
जो ब्रह्मचर्य करै चित लाई। आयु वृद्धि होवे सुखदाई॥
धर्म अर्थ कामादिक जेते। युक्ति सहित नर पावहिं तेते॥

दो०—चारि अवस्था देह की, वृद्धि सु यौवन देख।
सम्पूरणता को लखहु, किंचित हानि विशेष ॥१४॥

षोड़श वर्ष वृद्धि जग माना। पंचविंश यौवन परिमाना॥
चालिस सम्पूरणता मानो। ता पीछे कछु हानि बखानो॥
पुरुष पंचविंशति के माहीं। नारि जो षोड़श बरस सदाहीं॥
वीरज रज समानता जानो। वयस युवा या विधि पहिचानो॥
याही समय विवाह विचारा। नारि पुरुष दोउ सुख संचारा॥
रोकब काम कठिन है भाई। वश न होत इन्द्री सुखदाई॥
विद्यार्थिन के नेम सुनावहुँ। जो हैं करन योग बतलावहुँ॥
धारहिं सदा सुदृढ़ व्रत बालक। पावे सुख हो जन दुखघालक॥

दो०—विधिवत रहि आचार सों, पढ़ै पढ़ावै बाल।
सत विद्या अरु सत्य को, धारहि तीनों काल ॥१५॥

धरम सहित तप करै निरंतर। पढ़ि सबवेद धरहिं उर अन्तर॥
दमन करैं इन्द्री निशि वासर। शमन होय मन हो बहु आदर॥
पंच यज्ञ हित सों नित भाई। विद्यारथी करैं सुखदाई॥
पालहिं प्रजा करैं व्यवहारू। देश हेत बहु करत विचारू॥
तदपि करैं स्वाध्याय नवीना। जासों होयँ न कतहुँ अधीना॥
बिन यम नियम न होवे कतहूँ। नियम विना यम सधै न कबहूँ॥
ताते यम अरु नियम सदाही। करैं सुबुध जन प्रेम निबाही॥

यम

वैर त्याग अरु सत्य प्रसङ्गा। करै न चोरि रहै चहुँ चङ्गा॥

दो०—ब्रह्मचर्य व्रत धारई, अपरिग्रहा महान ।
पंच अंग यम के कहे, धारहिं सकल जहान ॥१६॥

नियम

रहै पवित्र तोष बहु करई । नित अध्ययन माहिं चित धरई ॥
धर्म सहित तप करै निरंतर । ईश्वर ध्यान धरै उर अन्तर ॥
यहि ते जो न करै यम भाई । नियम न होत ताहि सुखदाई ॥
अति कामना और निष्कामा । द्वौ से पावत दुःख ललामा ॥
बिन इच्छा नहिं होवे ज्ञाना । कर्म न बनत जो वेद बखाना ॥
नित प्रति पढ़ै पढ़ावै वेदा । ब्रह्मचर्य व्रत धरै अखेदा ॥
होम करै नित सत्य अचारा । त्यागहि झूठ असद् व्यवहारा ॥
याज्ञिक बने वेद अनुकूला । सोइ ब्राह्मण तनु होत अमूला ॥

दो०—विषयन बिच धावै सदा, इंद्रिय मन के साथ ।
करत चपलता वाजि जिमि, बाग सारथी हाथ ॥१७॥

जीव जबै इन्द्रिन बस होई । नित प्रति दोषित कर्म करोई ॥
जबहिं जीव इन्द्रिन अपनावे । सिद्धि होत अति सुखको पावे ॥
त्यागहिं यज्ञ वेद पथ जोई । दुष्टाचार करत नित सोई ॥
तिनसों उत्तम काम न होई । लहै न सिद्धि परम गति सोई ॥
पंच यज्ञ त्यागै ना कबहीं । या कहँ नित्य कर्म बुध कहहीं ॥
जो लगि श्वास चलत तनमाहीं । तौ लगि कर्म करै जग माहीं ॥
जिमि जग धारै सत्य प्रसंगा । त्यागै झूठ स्वभाव कुसंगा ॥
या विधि निशदिन कर्मन पेखैं । दिनचर्य्या को विधिवत देखैं ॥

दो०—बुध सुशील विद्वान की, सेवा करत जो काउ ।
चारि पदारथ बढ़त हैं, विद्या, यश, बल, आयु ॥ १८॥

छन्द—विद्वान त्यागहिं वैर को उपदेश नव नूतन करें।
बोलें मधुर अरु सत्य वाणी धर्म की उन्नति करें॥
मन वाक जाकी होहिं पावन देश रक्षा चित धरें ।
सब भांति सौं सो लहैं फल को 'इष्ट' भवसागर तरें ?

विप्र सोइ जो वेदन ज्ञाता । परमेश्वर नित भजत सुहाता ॥
निज स्तुति विषवत जो जानै । डरै सदा अपयश भय मानै ॥
निज अपमान अमर पद माने । चहै सो निशि दिन विप्रसयाने॥
द्विज नित बनै वेद अनुगामी । करहिं सुयोग सदा शुभकामी ॥
नाना भाँतिन योग सुरीती । ब्रह्म प्राप्ति हित करै सो रीती ॥
करै जो श्रम वेदन हित नाहीं । भरमत भूलि अपर मग माहीं ॥
जीवत ही सो शूद्र कहावै । विप्र भाव ताको नशि जावै ॥
द्विजन केरि यह रीति बताई । करहु सदा जो चहहु भलाई ॥

दो०—ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी, करहिं सदा आचार ।
मद्य मांस अरु विषय सँग, त्यागैं परुष विचार ॥ १९॥

अरु शृङ्गार तजै सब कोई । इन्द्रिय गुप्त छुप नहिं सोई ॥
काम क्रोध मद मोह लड़ाई । इर्षा द्वेष मोह डरपाई ॥
शोक करन चिन्ता हिय राखन । पढ़न कुग्रंथ असत को भाषन ॥
द्यूत कर्म जग निन्दा भाषन । नारि वश्य एकान्त सुडाशन ॥
रहै एकान्त नेम व्रतधारी । नशै न वीर्य्य बनै ब्रह्मचारी ॥

नशै वीर्य लघु वय के माहीं। पावै दुःख वंश नशि आहीं॥
या विधि ब्रह्मचारी नित रहहीं। करहिं नेम व्रत दुख बहु सहहीं॥
गुरुपितुसदासिखावहिंबालन। पड़ैं न कबहुँ कोइ भ्रम जालन॥
गुरु उपदेश करहिं बहु भाँती। सुनहिं चित्त दै बटुकन पाँती॥

छन्द

सदासत्य बोलैं रहैं धर्मचारी,
जो त्यागैं प्रमादैं बनैं ब्रह्मचारी।
गहैं सर्व विद्या गुरू के अधीना,
गृहस्थी बनें कर्म होवे नवीना॥
कभी सत्य औ धर्म त्यागैं न कोई,
जो मत्थे विपत्ती पड़े आन गोई॥
तजैं नाहिं विद्वान विद्या सुप्रेमी,
बनै सर्वदा धर्म औ कर्म नेमी॥
+सुरौ पितृ के कर्म में चित्त देई,
न ह्वै आलसी कर्म त्यागैं भलेई॥ २॥

दो०—मातु देव पितु देव है, और गुरू है देव।
आज्ञा इनकी मानिकै, करिये हित सों सेव॥ २०॥

सो०—पलक उठावत नाहिं, विना कामना के जगत।
सोइ कामना आहि, कर्म जो जन जग करत हैं॥ ३॥

+ सुर=औ-सुरौ।

जो सद् चरित होहिं पितु केरे । चलै सुबुध सुत हेतु घनेरे ॥
परम धर्म्म आचार प्रवीना । वेद-स्मृति ने जो कहि दीना ॥
ताते नित प्रति द्विज गन प्रेमो । धर्म्म चरित के बनहिं सुनेमी ॥
धर्म्माचार हीन द्विज जोई । फल पावै नहिं वैदिक सोई ॥
जो आचार करत द्विज नेमी । पावे फल सब सद्गति प्रेमी ॥
जो जग नास्तिक वेद विहीना । ताहि बहिष्कृत करत प्रवीना ॥
विधिवत आचारी दिन राती । दै उपदेश सबन बहु भाँती ॥
राजा नियम बनावे एका । करहि सो प्रेम सहित धरि टेका॥
दो०—श्रुति-स्मृति आचार सद्, निज आतम प्रिय होय।
चिह्न धर्म के चारि यह, करु धारण सब कोय॥ २१ ॥
अर्थ काम में रत नहिं होई । धर्म ज्ञान तेहि मिलत सँजोई ॥
क्षत्रिय सदा द्विजन के माहीं । विद्या रीति प्रचार जाहीं ॥
विप्र केर व्यवसाय निरन्तर । विद्या धरै सकल उर अन्तर ॥
जीवन वृत्ति क्षत्रि आधीना । चलै विप्र सद् पन्थ प्रवीना ॥
क्षत्रिय करै सकल जन रक्षा । पालहि प्रजा दिलावहि दिक्षा ॥
नित नव वैश्य वनिज व्यवहारू । शूद्र करहिं सेवा आचारू ॥
वरण सबै विद्यावित होहीं । क्षत्रिय करै निरीक्षण जोहीं ॥
जो कोउ चलै वेद पथ त्यागी । देहि दण्ड ताकहँ भय त्यागी ॥
दो० क्षत्रिय हों विद्वान सब, देखहिं मार्ग पुनीत ।
तौ फिर उनके सामुहे, होय न ढोंग प्रतीत ॥ २२ ॥
राज कर्म विद्या वित रहेऊ । क्षत्रिय तबै राज पद लहेऊ ॥
जा दिन ते सब गये भुलाई । ता दिन ते यह गति भइ भाई ॥

ब्राह्मण निडर भये जग माहीं। प्रकटि पंथ सब जग भरमाहीं॥
ताते सुनहु हमारी बाता। निज निज कर्म करहु विख्याता॥
जब सब वरण होहिं विद्वाना। तब न रहै पाखण्ड ज़माना॥
याते सिद्ध भई यह बाता। क्षत्रिय नियम चलावत ताता॥
ब्राह्मण संन्यासी जग माहीं। नियम बतावत परम सदाहीं॥
सबही हैं क्षत्रिय आधीना। नियम चलावत पात्र प्रवीना॥
दो०—विप्र क्षत्रि द्वौ जगत में, शक्ति समान लखात।
यक मस्तिष्क सम्हारई, यक शरीर सुखदात॥२३॥
अब पुनि पढ़न रीति सुखदाई। तासु परीक्षा करहु सुहाई॥
ताकी पांच रीति दरशाई। देखहु सुनहु करहु मनलाई॥
ईश्वर के गुण कर्म स्वभावा। श्रुति अनुकूल सत्य पथ गावा॥
यहि को जानि प्रथमपद† भजिये। तासु विरुद्ध असत मगतजिये॥
दूजे सृष्टि कर्म अनुकूला। है विपरीत तासु प्रतिकूला॥
तीजे जो विद्वान बतावें। आप्त ताहि सब ही बुध गावें॥
चौथे जो निजात्म प्रिय होई। सुख दुख सबमें देखहु सोई॥
पंचम अष्ट प्रमान बताई। तिन से देखहु चित्त लगाई॥
सो०—है प्रतक्ष, अनुमान, संभव, अर्थापत्तियुत।
ऐतिहेय, उपमान, शब्द, अभावहिं, के सहित॥४॥
दो०—लक्षण ये प्रत्यक्ष के, सुनहु सकल धरि ध्यान।
इंद्रिय मन आतम विषे, होत प्रकट जो ज्ञान॥२४॥

---

† ईश्वर के गुन, कर्म, स्वभाव को प्रतिक्षण हृदय में राखे।

जो समान प्रत्यक्ष के होई । अपर काल में देखहि सोई ॥
तब अनुमान होत दिन राती । देखहु वस्तु सबै बहु भाँती ॥
देखि धूम अग्नी अनुमाना । बिन अग्नी नहिं धूम प्रमाना ॥
देखि मेघ वर्षा बुध कहहीं । इमि अनुमान करत जग रहहीं ॥
साधन है प्रत्यक्ष समाना । ताकहँ सब मानत उपमाना ॥
समता देत एक की एका । ताहि विचारत सुबुध अनेका ॥
शब्द प्रमान वेद के वचना । पूर्वज ऋषिन करी जो रचना ॥

दो०—प्रकट होत इतिहास सों, ऐतिहेय तेहि जान ।
चरित पुर्वजन के लखहु, कर्म सकल सुखदान ॥२५॥

कारन बिन कारज नहिं होई । अर्थापत्ती जानहु सोई ॥
बादल जिमि देखत जग धाई । वर्षा कारण मानत भाई ॥
प्रकृति आत्मा ईशनुकूला । सम्भव सोई होत समूला ॥
प्रकृतिविरुद्ध असम्भव जानहु । ताकहँ सत्य कतहुँ नहिं मानहु ॥
जिमि कोउ कहै मातु बिन पूता । मृतक जियावन देत सबूता ॥
अरु कोइ कहत पहाड़ उठाये । पत्थर सागर माहिं तराये ॥
कोऊ कहत रविहिं है लीन्हों । कोउ कह चन्द्रटूक करि दीन्हों ॥
ईश्वर जन्म लेत जग माहीं । यह कहि सकल जगत भरमाहीं ॥

सो०—सृष्टि कर्म प्रतिकूल, जो कछु देखहु सुनहु जग ।
बुध न होत अनुकूल, ताहि असम्भव मानिकै ॥ ५ ॥

दो—संभव ताकहँ कहत है, जो प्रकृती अनुकूल ।
सदा चलै बुध पंथ यह, करै न कतहूँ भूल ॥२६॥

जो न होय निज थान पै, जानहु ताहि प्रभाव ।
सत अरु असत विचार को, कहत प्रमान स्वभाव ॥२७॥

सो०—गुन, अरु कर्म स्वभाव, धर्माधर्म विचारिये ।
जानहु द्रव्य प्रभाव, शास्त्र रीति यह जग विदित ॥६॥

दो०—गगन वायु अरु तेज जल, भूमि काल दिशि मान ।
और आत्मा मन सहित, इष्ट द्रव्य नव जान ॥२८॥

मन, वायू, भूमी अरु वारी । तेज, आत्मा, षष्ठ विचारी ॥
हैं यह क्रिया सहित गुणवाले । द्रव्यकेर गुण लखहु निराले ॥
गगनकालदिशिद्रव्यजोअहहीं । ते बिन क्रिया सदा गुन रहहीं ॥
शब्द अकाश केर गुन एका । सुनत श्रवन ताकहँ धरि टेका ॥
शब्द स्पर्श वायु के माहीं । स्वगुण एक स्पर्श लखाहीं ॥
शब्द स्पर्श रूप युत होई । ताकहँ तेज कहत सब कोई ॥
तेज अंग निज है परकाशा । देखत नेत्र सकल तजि आशा ॥
जल में शीतलता गुन बसई । जिह्वा सों जो रस जन चखई ॥
शब्द स्पर्श रूप रस चारी । बारि माहिं यह रहत सम्हारी ॥

दो०—शब्द स्पर्श रूप रस, गन्ध भूमि के माहिं ।
निज गुण केवल गन्ध है, लखत नासिका जाहिं ॥२९॥

छणिक निमेष कालगति जानौ । होय न नित्य अनित्य प्रमानौ ॥
पूरब पच्छिम दच्छिन देखहु । उत्तर ऊपर नीचे पेखहु ॥
चारहु कोणचारिदिशि जानहु । याविधिदशहु दिशापहिचानहु ॥
है सो दिशा विलोकहु जाई । प्रात सूर्य सम्मुख है भाई ॥

उदय भानु प्राची दिशि जानौ। अस्त काल पच्छिमपहिचानौ ॥
दाहिन अङ्ग सुदच्छिन भाई। लखहु सु उत्तर बाम सदाई ॥
पूरब दच्छिण कोण निहारहु। कहि अग्नेय ताहि उच्चारहु ॥
दच्छिण पच्छिम कोण जो भाई। कहि नैऋत्य सकल समुझाई ॥
दो०—पच्छिम उत्तरकी दिशा, है वायव्य सुजान।
उत्तर पूरब मध्य को, जानहु कोण इशान ॥ ३० ॥
या विधि दिशा कही शुभ नीता। सुनहु आतमा अङ्ग पुनीता ॥
इच्छा द्वेष प्रयत्न सुज्ञाना। सुख दुख आतमलिङ्गबखाना॥
दर्शन न्याय कहत यहि भांती। लिखत सुवैशेषिक कछु पांती ॥
प्राण अपान निमेष उन्मेषा। जीवन मन गति इन्द्रि विशेषा ॥
क्षुधा तृषा ज्वर पीड़ा सुखदुख। इच्छा द्वेष प्रियतनन उत्सुख ॥
यक क्षण गहहि वस्तु द्वौ नीके। ताकहँ मन मानहु जग जीके ॥
याविधिद्रव्यसरूपकह्योसुनि। ज्ञान न कहततताहि कोउबुधगुनि॥
सुनहु द्रव्य गुन आगे भाई। चौबिस * की संख्या दरशाई ॥

---

* १—नेत्र से जिसका ग्रहन हो (रूप) २—नासिका से जिसका ग्रहन हो (गन्ध) ३—त्वचा से जिसका ग्रहन हो (स्पर्श) ४—जिह्वा से जिसका ग्रहन हो (रस) ५—जो गिनती से जाना जाय (संख्या) ६—जिसका अलग होना (पृथक्) ७—जिसका मिलाप (संयोग) ८—इससे यह पर है (पर) ९—इससे अन्य (अपर) १०—जिससे टुकड़े हो सके (विभाग) ११—दुःख जिससे हलका भारी विदित हो (परिमाण) १२—सुख १३—बुद्धि—१४—द्वेष—१५इच्छा १६—कोमलता हो (द्रवताई) १७—जिससे भारीपन (गुरुत्व) १९—अनेक प्रकार का पुरुषार्थ (प्रयत्न) २०—न्यायाचरण (धर्म) २१—अन्यायाचरण (अधर्म) २२—प्रीति और चिकनापन (स्नेह) २३—दूसरे योग से वासना का होना (संस्कार) २४—जो श्रोत्र व बुद्धि से ग्रहन हो (शब्द) यह २४ द्रव्य गुण हैं।

दो०—रूप अरु, गन्ध, स्पर्श, रस, संख्या, प्रथक, संयोग।
पर, अरुअपर, विभाग, दुख, परिणामहु सुख भोग ३१॥

बुद्धि, द्वेष, इच्छा, द्रवताई, । गुरुत, प्रयत्न, धर्म, चिकनाई, ॥
संस्कार, अधरम, अरु बानी । हैं सब द्रव्य केर गुण खानी ॥
गुण केहि कहत सुनहु चितलाई । जो जग द्रव्य सहारे भाई ॥
औरो कोई गुन ना धारै । नहिं संयोग वियोग सम्हारै ॥
अरु साधर्म विधर्म बताई । कारण कार्य केर निपुणाई ॥
बिना कार्य कारन नहिं भाई । बिन कारन कारजहू नाई ॥
या विधि द्रव्य सरूप बखाना । परखहुजड़ चेतन परिमाना ॥
सद् अरु असद् बिचारहु भाई । लक्षण परखहु चित्त लगाई ॥

दो०—उत्पेक्षण अवक्षेपण, आकुंचन को जान ।
गमन प्रसारण कर्म ये, वैशेषिक परमान ॥३२॥

ऊपर को चेष्टा जो करई । उत्पेक्षण ताकहँ उर धरई ॥
अरु नीचे को लेइ निहारी । अवक्षेपण तेहि कहत उचारी ॥
अरु संकोचन करहि बनाई । आकुंचन तेहि कह गोहराई ॥
है फैलावन की जो रीती । ताहि प्रसारण कहत सप्रीती ॥
गमनागमन भ्रमन जो करई । गमन नाम कहि के उरधरई ॥
द्रव्य केर गुन कार्य मन्या । कारण द्रव्य कर्म सामान्या ॥
हैं सामान्य विशेष लखाई । कार्य कारण द्रव्य जो भाई ॥
बुधि बिचार सों जानहु ताई । कार्य कारण की निपुणाई ॥

दो०—पशु ते मनुष विशेष है, व्यक्ति माहिं सामान्य ।
तिमि विशेष ब्राह्मण लखहु अन्य सकल सामान्य ॥३३॥

निज व्यक्ती सामान्य सब, अन्य से अन्य विशेष ।
नित्य जौन सम्बन्ध है, कह समवाय अशेष ॥३४॥

गुन अरु द्रव्य अरम्भै करमा । तेहि जाती फल कह साधरमा ॥
जिमि भूमी में है जड़ताई । अरु घटादि कारज उपजाई ॥
तैसेहि जड़ता जल के माहीं । उपजत तिमि कारज दर्शाहीं ॥
भूमि और जल धर्म समाना । गुण विरुद्ध वैधर्म लखाना ॥
भूमि कठिनता शुष्क महाना । गन्धयुक्त गुण प्रकटत नाना ॥
अरु जल में है बहु द्रवताई । कोमलता रस गुण दर्शाई ॥
कारन तेही कारज होवै । कारज बिन कारन नहिं खोवै ॥
कार्य कबहुँ कारन बिन नाहीं । होत न कबहूँ सो दर्शाहीं ॥

दो०—जिमि कारण में गुण रहत, तैसेहि कारज माहिं ।
द्वैविधि को परिमाण है, अणु[1] अरु महत[2] लखाहिं ॥३५॥

१—त्रसरेणु जो छिद्र में कण दिखाई पड़ते हैं, उनके भागांशकों को कहते हैं अर्थात् छोटे से छोटा कण ।

२—अणु से बड़ा यथा पहाड़, पृथिवी से छोटा और वृक्षों से बड़ा है ।

भावरूप सामान्य लखाई। पाँच प्रकार अभाव बताई ॥
संस्कार अरु इन्द्रिय दोषा। उत्पति होत अविद्या दोषा ॥
जा विपरीत दुष्ट है ज्ञाना। ताहि अविद्या करत प्रमाना ॥
जो है परम यथारथ ज्ञाना। बुधजन विद्या ताहि बखाना ॥
पृथिवि आदि जो कार्य सरूपा। गन्ध स्पर्श जो रस गुण रूपा ॥
यह सब द्रव्य अनित्य लखाहीं। तैसेहि गुण सब ही दर्शाहीं ॥
विद्यमान जो है जगमाहीं। कारन तासु न कोइ लखाहीं ॥
वह है नित्य सदा सबभांती। कारन कार्य अनित्य सोहाती ॥

दो०—गुन अरु कर्म स्वभाव को, जानहु या विधि भाय।
पढ़न पढ़ावन की विधी, सुनहु जो है सुखदाय ॥३६॥

१—जो सबके साथ अनुवर्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता है।

२—१-क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से पूर्व न था। जैसे घर वस्त्रादिक उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे, इसका नाम "प्रागभाव" है।
२-जो होके न रहे जैसे घर उत्पन्न होके नष्ट हो जाय वह "प्रध्वंसाभाव"।
३-जो होवे और न होवे जैसे घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं। घोड़े में गाय का अभाव, गाय में घोड़े का, यह "अन्योन्याभाव" है।
४-जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है, उसको "अत्यन्ताभाव" कहते हैं जैसे मनुष्य का सींग, आकाश-पुष्प।
५-घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है। घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है, यह "सम्बन्धाभाव" है।

वरण उचारन की विधी, सिखवै पितु अरु मातु ।
जो अक्षर जेहि भाँति के, शब्द क्रिया अरु धातु ॥३७॥
चित लगाइ के नेह सों, पढ़ै पढ़ावै कोय ।
अल्प काल में वह पुरुष, विद्यावित जग होय ॥३८॥
सो०—वरष सु द्वादश मांहि, वेद पढ़ै बहु यत्न करि ।
बिना वेद सुख नाहिं, मनुज न पावे लाक में ॥ ७ ॥

कवित्त ।

पाणिनी मुनी की निर्धारी बरण शिक्षा क्रांहि,
एकही सुमास में प्रयत्न ते पढ़ावैंगे ।
अष्टाध्याई केर पाठ शुद्ध पदच्छेद युत,
एक ही बरष मांहि छात्रन बतावैंगे ॥
धातु पाठ दशहू लकारन के रूप घने,
साथ साथ दशहू क्रियान को सधावैंगे ।
लिङ्ग अनुशासन उणादिगण पाठ भले,
प्रत्यय सुबन्त षट मास में सिखावैंगे ॥ १ ॥

शंका समाधान संस्कृत माहिं भाषण जो,
अव्यय उत्सर्ग औ समास भी पढ़ावैंगे ।
आठ ही महीने माहिं अष्टाध्याई पाठ काहिं,
करके समाप्त पुनि आवृत्ती करावैंगे ॥

ता पाछे महाभाष्य मुनिवर पतंजलि की,
सहित गण पाठ षट मास में सिखावैंगे।
शिक्षा-व्याकरण की सँपूरण योग्यता को,
चारही बरस इस काम में लगावैंगे ॥ २ ॥

यास्क मुनि की निघण्टु और जो निरुक्त दोऊ,
कोष कात्यायनादि उनको बतावैंगे।
डेढ़ सालही में वाच्य वाचक सम्बन्धहू को,
योगिक औ योगरूढ़ि भेद को बतावैंगे ॥
तीन ही महीना माहिं पिंगल के नियम जानि,
काव्य-रचना को तीन मास में सिखावैंगे।
एक बरस भर में साहित्य औ सिद्धान्त ग्रंथ,
जोतिष बीज अंकगणित की करावैंगे ॥ ३ ॥

या विधि वेदांग ग्रंथ चार ही महीना माँहिं,
पूरित अध्यापक ब्रह्मचारिन करावैंगे।
दो ही वर्ष माहिं दर्शनउपनिषद् पढ़ि,
सूत्र ग्रंथ ब्राह्मण सकल उर धारैंगे ॥
शेष दो बरष माहिं पढ़िकै सु एक वेद,
बारह बरष माहिं पण्डित कहावैंगे।
करि पुरुषारथ प्रयत्न करि आठों याम,
वेदन को पढ़ि सब देशन सुधारैंगे ॥ ४ ॥

तजि आधुनिक ग्रन्थ समुदाई । पढ़हु आर्ष ग्रंथन सुखदाई ॥
पढ़हु व्याकरण हित हो भाई । पाणिनि मुनि की रीति सुहाई ॥
नूतन ग्रन्थ पढ़ै जो कोई । बहुत समय में कुछ फल होई ॥
स्वार्थिननिजहितग्रन्थबनाये । ऋषिन नाम धरि जग भरमाये ॥
यामें भई देश की हानी । तजि श्रुति पंथ भये अज्ञानी ॥
अब यह सुनहु प्रेम सों ताता । त्यागि पक्ष हम कहत सुबाता ॥
त्यागि नवीन पंथ सब भाई । वैदिक पंथ गहहु सुखदाई ॥
वैदिक पथ शुभ कामन दाता । याते प्राप्त होत जग-त्राता ॥

दो०—पुरुष एक बोलत भयो, सुनहु देव ऋषिराज ।
का पुराण इतिहास सब, नाहिं सुधारत काज ॥३९॥

ऋषिवर कहत सुनहु चितलाई । ग्रन्थ पुरातन हैं सुखदाई ॥
मानत हैं हम सत्य सुबानी । जो कोउ ग्रन्थ पुरान कहानी ॥
है यह व्यास कथा विख्याता । मानत जिन्हें वेद-पथ ज्ञाता ॥
पुनि कहि झूठ सत्य बतरावहु । भ्रम जेहि जाय विभेद सुनावहु ॥
कहत जो जन इतिहास पुराना । वेदन में केहि भाँति बखाना ॥
कह्यो स्वामि सुनिये चितलाई । अब हम कहत विभेद बताई ॥
सतपथ ब्राह्मण में यहि भाँती । लिख्यो सो ऐतरेय बहुपाँती ॥
कल्प पुरान और इतिहासा । गाथा नाराशंसी भासा ॥
पंच नाम श्रुति कहत पुराना । नाम भागवत तिन नहिं माना ॥

दो०—सत्य लिख्यो जेहि ग्रंथ में, हम मानत सब भाँति ।
धर्म वेद अनुकूल है, ग्रहण करहिं सब जाति ॥४०॥

पर जो सत्य झूठ युत होई । त्याग करै ताकहँ सब कोई ॥
सुनहु बेद मारग मन लाई । वैदिक धरम परम निपुणाई ॥
जो विरोध शास्त्रन बिच माहीं । ताकहँ तुम समुझत कछु नाहीं ॥
दरशन शास्त्र परख के हेता । ताको जानहिं परम सचेता ॥
जिमि विद्या बहुतक जगमाहीं । निज निज भांति कार्य्य दर्शाहीं ॥
तेहिविधिदर्शनशास्त्रनमाहीं । लिख्योऋषिननिजमनअनुसाहीं ॥
कारन कार्य्य जगत की रचना । मीमांसा में अस ऋषि वरना ॥
वैशेषिक में काल बखाना । जो है समय गती जग जाना ॥

दो०—उपादान कारण कह्यो, न्याय बीच मुनिराज ।
योग कहत पुरुषार्थ को, सांख्य तत्व उपराज ॥४१॥

है वेदान्त ईश गुन ज्ञाना । रच्यो ऋषिन इमि विविध विधाना ॥
जोबिधि वैद्यकशास्त्रबखानत । रोग निदानचिकित्सा जानत ॥
तेहिविधिषटऋषियनयहिभांती । लिख्योसोनिजअनुभवसुखराती
औरहु सृष्टि भेद निपुणाई । कहिहौं बहुरि तुमहिं समुझाई ॥
है अध्ययन समय जो भाई । तामहँ विघ्न तजहु मन लाई ॥
दुष्ट संग अरु विषयन प्रीती । सेवन मद्य दुखद जो रीती ॥
वेश्या गमन द्यूत व्यवहारा । बाल-बिवाह निषिद्ध अचारा ॥
त्यागन करै प्रेम सों भाई । पावै सुख सब दुख नशि जाई ॥

दो०—मातु पिता अरु नृपति जग, बुधमंडली जो आहिं ।
वेद शास्त्र परचार में, करत प्रेम जो नाहिं ॥४२॥

बाल-अवस्था करहिं जो ब्याहा । त्यागि देहिं ब्रह्मचर्य अथाहा ॥

अति भोजन अति ही जागरना । विद्याध्ययन में आलस करना ॥
लाभ न समुझत विद्या माँहीं । कपट करैं त्यागहिं मनसाँहीं ॥
राज श्री बल बुधि औ रोगा । ब्रह्मचर्य्य के जे उपभोगा ॥
तिनहिं न मानत जे नर भाई । ईश त्यागि जड़ मूर्ति पुजाई ॥
खोवहिं व्यर्थ समय जग माहीं । दर्शन पूजन व्यर्थ सदाहीं ॥
जो गुरु मातु पिता विद्वाना । अतिथि जे हैं जग मूर्ति समाना ॥
तिन कर सङ्ग न सेवा करहीं । धर्म त्यागि अधरम अनुसरहीं ॥

दो०—माला तिलक त्रिपुण्डको, मानहिं मुक्ती धाम ।
एकादशी त्रयोदशी, करत सो व्रत निज काम ॥४३॥

पाप छोड़ावन रीति सँचारी । राम कृष्ण जग नाम उचारी ॥
काशी जाकर गङ्ग नहावें । अस विश्वास पाप नशि जावें ॥
वेदउपनिषद्कथाकोत्यागत । नाना भांति पुरान बखानत ॥
लोभी या जग भरमन करहीं । विद्या त्यागि अविद्या गहहीं ॥
जब से भये वेद प्रतिकूला । प्राप्त भयो अज्ञान समूला ॥
निज पथप्रकटि जगतभरमावें । स्वार्थ सधैसोइ रीति सिखावें ॥
नष्ट करहिंसबकेतनमन धन । तिनकेजालफँसहिं जे सद् जन ॥
दिन प्रति शोच करतयहि भांती । हो विद्वान न कोऊ जाती ॥

दो०—होवे जो विद्वान जग, फँसे न सो भ्रमजाल ।
दुष्टन को अपमान हो, सत्य बढ़ै तिहुँकाल ॥४४॥

पण्डित एक कहत यहि भांती । वेद पढ़त कहुँ अन्त्यज जाती ॥
देखहु वेदन केर प्रमाना । तिरिया शूद्र न पढ़न बखाना ॥

कहत स्वामि तुमही जग माहीं । रचिश्रुतिवेगिजगत भरमाहीं ॥
है अधिकार जगत के माहीं । वेद पढ़ैं सब जन हरषाहीं ॥
कह्यो ज्ञान होवे कल्याना । मनुजन हित वरन्यो करि ध्याना ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य समाना । शूद्र नारि अरु दास बखाना ॥
सब कोइ पढ़हिं वेद की बानी । चलहिं सुवैदिक पंथ अमानी ॥
जाके वाणी बुद्धि विराजै । पढ़न हेत अधिकार समाजै ॥

दो०—ब्रह्मचर्य व्रत युक्त हो, अरु विद्वान सु योग ।
कन्या युवती व्रती ह्वै, करहि पती सुख भोग ॥४५॥

पंडित कहत बहुरि यहि भाँती। वेद पढ़ति कहुँ नारी जाती ॥
स्वामी कहत बहुरि समुझाई । वेदन की अस रीति सोहाई ॥
एक बात हम पूछत भाई । हमहिं बतावहु सो समुझाई ॥
यज्ञ विषे बहु स्थल माहीं । नारि पढ़ैं यह मन्त्र सदाहीं ॥
जो न नारि हो वेदन ज्ञाता । तौ कस यज्ञ करहिं सुख राता ॥
जो न पढ़ जग नारि सदाई । तौ कस पुत्रन देत पढ़ाई ॥
बहुतक नारि भई जग माहीं । गार्गी लीलावति अनुसाहीं ॥
घर के कार्य्यसकल बनि जाहीं । जो घर नारी पढ़त सदाहीं ॥

दो०—आर्य्यवर्त के देश में, राज-पुरुष की नारि ।
धनुर्वेद-विद्या निपुण, युद्ध कार्य सुख-सारि ॥४६॥

कैकेइ आदि युद्ध में देखौ । गईं साथ नृप दशरथ पेखौ ॥
या विधि क्षत्रिय विप्र सुनारी । पढ़हिं सकल विद्या सुखसारी ॥
वैश्या पढ़हिं सकल व्यवहारू । शूद्रा पाकादिक आचारू ॥

अरु सेवा विधि शूद्रा पढ़ई। जासों उचित कार्य्य सब करई॥
पुरुष व्याकरन धर्म सुहाई। अरु व्यवहार सकल निपुणाई॥
वैद्यक धर्म्म गणित व्याकरना। शिल्पकला पाकादिक वरना॥
सब विधिसिखै प्रबंधक रीती। जासों चलै स्वकुल की नीती॥
गृह परिवार सकल के माहीं। चलै सुरीति दुःख नशि जाहीं॥
दो०—सासु ससुर जेहि भांति सों, पावें सुःख महान।
हित सों यत्न करै सोई, जेहि होवे सनमान॥४७॥
सो०—दान सकल जग माहिं, अन्न गऊ जल वस्त्र तिल।
केवल विद्या आहि, दान दिये बहु बढ़त है॥८॥
सुनि ऋषिकथासरलमृदुबानी। गये सकल अवगुन अपमानी॥
सत्य दृढ़ाइ असत्य छोड़ावहिं। धर्म्म-राह पर सबन चलावहिं॥
महा पखण्डी जे जग माहीं। सुनि यहकथासुधरितेउजाहीं॥
जो जग दुराचार कोउ करई। समुझत कथा ज्ञान उर धरई॥
अवगुन रहै न तन कोइ भाई। जो कोइ चलत सुपंथ दृढ़ाई॥
वेदरीति पथस्वामिसिखायहु। तापर चलत परम सुख पायहु॥
जो कोइ बाल वृद्ध अरु नारी। सुधरहिं यहां जगत हितकारी॥
याते प्रेम सहित निशि वासर। सुनहु कथा आनन्द उजागर॥
सो०—प्रेम सहित जो नेह करि, पढ़ैं कथा मन लाय।
होवें सब विद्वान जग, मूढ़ अविद्या जाय॥९॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीवर्णित ब्रह्मचर्य्यकाल अध्ययनाध्यापन विधि पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरु-शिष्यसंवाद तृतीयतरंग (स०३ स०)

अथ चतुर्थ तरङ्ग (स० ४ स०)

शिष्य

सो०–जानि परम हित मोर, बेगि बतावहु कृपा करि ।
मैं विनवौं कर जोरि, जेहि न पड़ौं भ्रमजाल में ॥१॥

गुरु

अस कहि गुरु बोल्यो हर्षाई । सुनहु प्रेम युत चित्त लगाई ॥
एक दिन दयानन्द ऋषिराई । बैठे सहित समाज बनाई ॥
कहन लगे कछु कथा पुरानी । सुनहिं सप्रेम सो पंडित ज्ञानी॥
देवदत्त एक शिष्य अनूपा । विद्या निपुण सील गुण रूपा ॥
बोल्यो नाथ बतावहु मोहीं ।केहिबिधिगृहस्थाश्रमसबहोहीं॥
ब्रह्मचारी कब करहिं विवाहू । त्यागहिंगुरुकुलसहितउछाहू ॥
कह्यो स्वामि हे शिष्य प्रवीना । पूछेहु कारज सकल नवीना ॥
सुनहु कान दै कहहुँ बुझाई । वेद शास्त्र की रीति सुहाई ॥
दो०–विधिवत रहि आचार्य कुल, पढ़ै वेद करि धर्म ।
बनि ब्रह्मचारी व्रती ह्वै, जानि लेहि सब मर्म ॥१॥
जाति स्वभाव धर्म्म निपुणाई । गुरु पितु मातु करै सेवकाई ॥
गुरुहिं देय गोदान सम्हारी । करिसतकार जगत हितकारी ॥
जो शुभ लक्षण अरु विद्वाना । कन्यादान करहिं गुनवाना ॥

अनुमति गुरू सनातक लेहीं। करन विवाह मांहि चित देहीं॥
पिता गोत्र अरु मातु सपिण्डी। त्यागहिं ब्याह सकलबलखंडी॥
दुहितननिकट न करहिंविवाहू। नेह न होय, होय उर दाहू॥
परोक्ष वस्तु सों बढ़ै सुप्रीती। नहिं प्रत्यक्ष होत मन दीठी॥
बिन चाखे गुन सुनि ललचाई। प्राप्त होन हित करहिं उपाई॥

सो० निकट ब्याह के दोष, सकल सुनाऊँ नेह करि।
प्रेम न होत विशेष, जाने पर गुन दोष के॥ २॥

दो० एक सङ्ग के रहन से, जानहि सकल सुभाउ।
प्रेम लड़ाई दोष गुन, करत रहत चित चाउ॥ २॥

एक गोत्र में करहि विवाहू। उन्नति होय न रहै उछाहू॥
यक रस मिलेनगुन अधिकाई। जिमि मिलि वारिवारि गुन भाई॥
बिलगगोत्रसोंगुन अधिकाई। जिमि सुंठी दूधहिं मिलि जाई॥
पुत्र पुत्रि यदि रोगी होई। मिटै सो रोग तजै गृह सोई॥
यदिसम्बन्धनिकटहोइजाई। दुख सुख नित्त सामुहें आई॥
दूर न होय दुःख लवलेशा। होवे निशि-दिन प्रेम विशेषा॥
याही से दुहिता जग गाई। होत दूर हित दुहितन भाई॥
निकटघमण्डहोतपितु केरा। निन्दा अधिक विरोध घनेरा॥

दो० गौ अरु हाथी अश्व युत, जो होवें धनवान।
जो दश कुल आगे कहत, लेहु न कन्यादान॥ ३॥

जा घर क्रियावान नहिं कोई । वेद पाठि सत पुरुष न होई ॥
जाके तन पर लोभ विशाला । स्वेत कुष्ठ युत गलित कराला॥
अर्श छुई दम खांसी रोगा । आमाशय मिरगी संयोगा ॥
ये दुर्गुन युत कुल जो होई । करै विवाह मिलहि तेहिं सोई ॥
पीले वर्ण न अँग अधिकाई । अधिक बली नहिं रोगिनि भाई॥
ना विन लोम न लोमधिकाई । बकै न बहुत न नेत्र भुराई ॥
नाम न होय नखत नद केरे । पर्वत पत्तो पेड़ घनेरे ॥
सर्प दासिनी भीषन नामनि । करै विवाह चहै सुख धामनि ॥

सो०--सरल सुसीधे अङ्ग, हंस ठवनि गजगामिनी !
लोम केश मृदु दंत, जानि विवाहै नारि शुभ ॥ ३ ॥
दो०--बनावंत की सकल विधि, नाथ सुनायहु मोहिं ।
पुनि विवाह के समय को, बेगि बतावहु जोहिं ॥ ४ ॥

कन्या जब सोलह की होई । करै विवाह सकल गुन जोही ॥
बहु व्रत नेम करै जब कन्या । चाहै वर चौबिस में धन्या ॥
याविधिपच्चिसऔअड़तालिस । निष्टोत्तम अरु मध्यम चालिस ॥
ब्रह्मचर्य्य युत करहिं विवाहू । लहहिंसकलगुनसहितउछाहू॥
तब यक पंडित कहत सुनाई । बात तुम्हारि हमैं न सुहाई ॥
यद्यपि तुम बरणी बहुत रीती । देखि प्रथा नहिं होत प्रतीती ॥
वर्ष आठ लौं गौरी जानो । नव के होत रोहिनी मानो ।
दसहीं वर्ष लोग अस कहहीं । कन्या होत सबै गुन लहहीं ॥
लगत एकादश ऋतुवति होई । माता पिता न देखै कोई ॥

दो०—जेष्ठ भ्रात अरु मात पितु, देखत ऋतुवति बाल ।
जाहिं नर्क यह कह्यो गुनि, काशिनाथ निजकाल ॥ ५ ॥

ताही को जग मानत नीके । संशय रहित भावते जीके ॥
यह जो कछु तुम कह्यो सुनाई । मानन योग न हमहिं लखाई ॥
तब बोले ऋषिवर हर्षाई । सुनहु शिष्य कछु चित्त लगाई ॥
हमहुँ सुनावहिं ब्रह्म पुराना । निर्मित आज भई जग जाना ॥
इक क्षण गौरी संज्ञा होई । द्विक्षण रोहिणि मानहु सोई ॥
तिसरे क्षण या कन्या जानहुँ । ता पीछे ऋतुवति अनुमानहुँ ॥
माता पिता सु भगिनी मामा । देखत बाल नरक अभिठामा ॥
क्षण होवे परमाण समाना । कन्या जन्म समय यह माना ॥
स्वामिबैन सुनिचित अकुलाई । बोल्यो पुनरपि शीश नवाई ॥

दो०—नहिं परमाण शलाक यह, जानि असंभव सार ।
कह्यो स्वामि बतलाइये, तुम्हरे में कह सार ॥ ६ ॥

पारासर अरु काशीनाथा । गायो इन बहु जोतिष गाथा ॥
तुम इनकी नहिं मानहु बाता । कारन कहा कहहु जग त्राता ॥
बोले स्वामि बहुरि मुसकाई । मानन योग बात यह नाईं ॥
सद्यो निर्मित ब्रह्म पुराना । तुमने ताहि असम्भव माना ॥
ताते सुनहु सकल चित लाई । वेद मार्ग पर प्रीति दृढ़ाई ॥
जेहिविधिकाशीनाथसुपंडित । रचत भयो पारासर मंडित ॥
तेहि विधि हम हूँ तुम्हरे हेता । ब्रह्मपुरान बनाइ सचेता ॥
यह उत्तम प्रसङ्ग नहिं दोऊ । जानि विरुद्ध तजै सब कोऊ ॥

दो०—पंचविंश में पुरुष के, षोड़श नारि प्रमान।
सम रज वीरज होत है, यह वैद्यक अभिमान ॥ ७ ॥
षोड़श से जो न्यून में, नारि चहै अौधान।
पुरुष पंचविंशति बिना, करै जो गर्भाधान ॥ ८ ॥
सो०—चिरजीवी नहिं सोय, पुत्र जनै यदि कहुँ त्रिया।
निर्बल रोगी होय, जीवे तो बल अधिक नहिं ॥ ४ ॥

यह जग नियम सृष्टि क्रम भाई। देखहु सुनहु विचार दृढ़ाई ॥
अष्ट वर्ष में जनहि न बाला। यह नहिं सृष्टि नियम शुभकाला ॥
याको कहत मनू यहि भाँती। सुनहु पढ़हु करि शीतल छाती ॥
जब हीं ऋतुवति कन्या होई। तीन बरस तक बीते सोई ॥
निजअनुकूल नारिपति जोवै। करहि विवाह सकल सुख होवै ॥
छत्तिस रज दर्शन यहि भांती। बीते नारि होय सुख माती ॥
यह है समय विवाह प्रवीना। याही को उत्तम जग चीन्हा ॥
उत्तम कर्म स्वभाव निहारी। करहिं विवाह सकल गुनकारी ॥

दो०—रहैं कुमारे आयु भर, पुत्र पुत्रि जग माह।
विरुध कर्म गुण में कतहुँ, करै न "इष्ट" विवाह ॥ ६ ॥

पुनि बोल्यो एकशिष्य प्रवीना। कन्या मातु पिता आधीना ॥
है विवाह पितु मातु अधीना। अथवा वर कन्या निज चीन्हा ॥
स्वामी उत्तर दियो बिचारी। वर कन्या अनुमति सुखकारी ॥
जो पितु मातु करैं सुत ब्याहू। बिन सुत अनुमति सधै न काहू ॥
याद प्रसन्न दोनों गृह माहीं। होय बिरोध कतहुँ कोउ नाहीं ॥

अरु सुत उत्तम होय प्रबीना । बल बुधि विद्या अर्थ नवीना ॥
बिन प्रसन्नता करैं विवाहू । होय कलेश अधिक उर दाहू ॥
है विवाह वर कन्या काजू । मात पिता कर नाहिं समाजू ॥

दो०—तिय पति सों है नेह जहँ, पति तिय सों अति नेह ।
तेहि कुल में सुख होय अति, बसै सिद्धि सब गेह ॥१०॥

जब विवाह की इच्छा होई । विद्या विनय शील बल जोई ॥
रूप आयु कुल सबल शरीरा । यथायोग्य परिमाण गँभीरा ॥
जौ लगि मेल न होत दृढ़ाई । तौ लगि सुख नहिं परत लखाई ॥
जो सुख चहै जगत नर नारी । बाल विवाह न करै विचारी ॥

छन्द

उत्तम सु शिक्षा ब्रह्मचर्य, पवीत धारण करत जो ।
विद्या ग्रहण करि जीति इंद्रिन, शुभ भवन पग धरत सो ।
तबहीं द्विजन्म प्रसिद्धि होकर, मंगल श्री लहत जो ।
विज्ञान ध्यानायुक्त विद्या, वृद्धि धीरज युक्त हो ॥ १ ॥
विद्वान् वाही को प्रतिष्ठित, शील उन्नत जानहीं ।
बनि कै युवा शुभ वस्त्र धारै, ताहि पण्डित मानहीं ।
ब्रह्मचर्य बिन विद्या सुशिक्षा बाल त्रिय जग ब्याहहीं ।
विदुषन विषे नहिं होत आदर, नसत कुल निश्चय सही ॥२॥

धेनु समान नारि बुध कहहीं । दुहि न काहु वह उत्तम अहहीं॥
बालापना बीति जब गयऊ । सब व्यौहार करन युत भयऊ ॥
है सुकुमार अवस्था नाहीं । पूरन वय युत शिक्षा माहीं ॥

दो०--ब्रह्मचर्य्य विद्या विनय, पूरण युवती नारि ।
तरुण पती सँग चहै जग, गर्भ लहै निरधारि ॥११॥

पूरन युवा अधिक सुखकारी । नारि हेत बहु काल सुखारी ॥
मिलहि परस्पर प्रेम दृढ़ाई । रहैं बरस शत लौं सुख पाई ॥
'अधिक विषय सों बल क्षति होई । ताते नियम गहहु सब कोई ॥
जब तक रही वेद की रीती । सुख पायहु रहि अविचल नीती॥
त्यागि वेदविधि नर दुख पावहिं। विद्या विमुख कुव्याह रचावहिं॥
बाल भये पितु मातु अधीना । करहिं छोट बड़ व्याह नवीना ॥
जा दिन ते मति गति भइ भोरी । बँध्यो देश हरिवर की डोरी ॥
अबहूं समुझि बिचारहु नीके । दुर्गुण सकल निकारहु जीके ॥

दो०--गुण अरु कर्म स्वभाव को, करि विचार जग माह ।
वर्ण व्यवस्था आयुबल, समता में करु व्याह ॥१२॥

देवदत्त अस पूछत भयऊ । बिन ब्राह्मण ब्राह्मण कोउ भयऊ ॥
स्वामि कह्यो बहुतक जगमाहीं । भये ऋषीश्वर मानत जाहीं ॥
बिन जाने कुल ऋषि जाबाला । छान्दोग्य उपनिषद हवाला ॥
विश्वामित्र सुक्षत्री अहहीं । अरु मतङ्ग चण्डाल कहाहीं ॥
ये दोनों भये ब्राह्मण नीके । देखहु महाभारत यह गनिके ॥

जो विद्या गुणशील स्वभावा । ब्राह्मण योग्य होत तेहि भावा ॥
जो अति मूरख दुखद अनारी । ताकहँ शूद्र कहत नर नारी ॥
तबहीं बोलि उठ्यो इकपण्डित । अपनी बातबताय अखण्डित ॥
तुम्हरी जगत अनोखी रीती । बीज स्वभाव न मानहु नीती ॥

दो०--रज बीरज के योग से, ब्राह्मण तनु नहिं होय ।
स्वामि कहत मनु के वचन, पण्डित सुनिये सोय ॥१३॥

पढ़न पढ़ावन करत विचारा । नाना भाँतिन होम सँचारा ॥
नित्य हवन पक्षेष्टि सुहाई । पौरणमास इष्टि सुखदाई ॥
सम्बत श्रेष्ठी औ नव श्रेष्ठी । करहि सकल विधि नाना इष्टी ॥
वेद पढ़हिं स्वर अर्थ समेता । अनुष्ठान युत कर्मनिकेता ॥
धर्म सहित सन्तति उपराजें । महा यज्ञ करि आसन साजें ॥
सत्य वचन सज्जन कर सङ्गा । पर उपकार सुकर्म अभङ्गा ॥
सबविधि शिल्प क्रिया पढ़ि लेहीं । दुष्टाचार त्यागि जग देहीं ॥
करैं सदा आचार प्रबीना । तब ब्राह्मण तनु होत नवीना ॥

दो०--मानत जो यह मनु वचन, पुनि क्यों करत विवाद ।
वेद पुरातन जग विदित, है मनु की मर्य्याद ॥१४॥

तुम पुरान मानहु कछु पीढ़ी । द्वै अरु चार सात दश सीढ़ी ॥
हम तो कहत सनातन ताहीं । वेद शास्त्र जो रीति बताहीं ॥
मानहिं यदि तुम्हार अनुमाना । लागै दोष होत अपमाना ॥
कहुँ पितु श्रेष्ठ पुत्र दुखदाई । कहुँ सुत श्रेष्ठ पिता कदराई ॥
कहुँ दोनों दुष्टातम जानो । दोनों कहुँ अति श्रेष्ठ बखानो ॥

याते सब भ्रम छोड़हु ताता। मानहु सकल मनू की बाता॥
जेहि मग चलै पिता सतभाऊ। पुत्र सोइ लखि करै सुभाऊ॥
यदि कोइ पिता दुष्ट मगु जाई। चलै पुत्र स्वइ पन्थ बिहाई॥

दो०--धर्म पुरुष के मार्ग में, चलत दुःख नहिं होय।
मानत जो यहि भाव को, वेगि बतावहु सोय॥१५॥

बहुरि सनातन रीति बतावहुँ। जेहि भ्रम जाय सो बात सुनावहुँ॥
वेद विदित ईश्वर परकासा। ताहि सनातन कहत हुलासा॥
वेद विरुद्ध कर्म जो अहई। तिनहि सनातन कोउ न कहई॥
जाके जिय विरुद्ध सतिभाऊ। तेहि पूछहु तुम सहज सुभाऊ॥
जाकर पिता दरिद्री होई। सुत सम्पति युत होवै सोई॥
पितु अभिमान देइ धन फेंकी। पितु दारिद सुत चहै न नेकी॥
जाकर पितु अन्धा जग होई। फोड़ै आँख कतहुँ सुत कोई॥
जाकर पिता कुकर्मी होई। करै कुकर्म कहा सुत सोई॥

दो०--ताते जग यह विदित है, त्यागै दुष्ट स्वभाव।
अति उत्तम गुन गहै नर, देखि उचित सब ठाँव॥१६॥

यदि जग उचित वीज निपुणाई। तौ काहे बनि जात इसाई॥
त्यागि देत सब निज निज जाती। नाहिं बिठावत आपनि पाँती॥
याते भई सिद्ध यह बाता। गुनते ऊँच नीच बरियाता॥
यजुर्वेद इकतिस अध्यावा। मंत्र एकादश माहिं सुनावा॥
अर्थ न संगति लागै भाई। वेगि बिचारहु चित्त दृढ़ाई॥
है प्रभु निराकार सुखदाई। इन्द्रिय रहित सुवेद बताई॥

ताकहँ तुमयहिभांतिबखानहु । ब्राह्मण मुख उरुवैश्यहु मानहु ॥
सुनहु ध्यान दै चित्त लगाई । मंत्र अर्थ हम कहत सुनाई ॥

दो०—निराकार व्यापक जगत, परमातम जग जान ।
तासु अंग होवे नहीं, है यह वेद प्रमान ॥१७॥

जाके नख शिख अंग विशाला । सो नहोय व्यापक तिहुँकाला ॥
नहिं वह शक्तिवान जग स्रजता । नहिं सर्वज्ञ न परलय करता ॥
नहिं दै सकै मनुज फल भाई । करै जो पाप पुन्य अनुसाई ॥
मंत्र अर्थ सुनिये चित लाई । ब्राह्मणस्य मुखभास सुहाई ॥

सवैया

है ईश्वर व्यापक सृष्टि विषे, मुख सदृश उत्तम विप्र लखाई ।
बाहु समान सु बीरजवान, बली बल संयुत क्षत्रि जनाई ।
देश विदेश फिरै उरु के बल, जानै पदारथ वैश्य सुहाई ।
जो पग के सम अंग कहावत, शूद्र गुनो जो न हों बुधभाई॥ ३॥

उत्तम गुन अरु कर्म सुभाऊ । विद्या निपुण नीति सतिभाऊ ॥
श्रेष्ठ विप्र स्वइ मनुज समूहा । जिमि निजअंग बीच एकमूहा ॥
निराकार प्रभु वेद बखानत । ताके मुखकेहिविधि सों मानत॥

सो०—गुन अरु कर्म स्वभाव, हों य द्विजाती के सदृश ।
द्विज होवे सतिभाव, यद्यपि शूद्र कुल में उपज ॥ ५ ॥

दो०—होवें द्विज यहि भांति सों, शूद्र कर्म करि शूद्र ।
गती करम की जग विदित, करै सो भोगे क्षिप्र ॥१८॥

यह जग विदित मनू की नीती । आपस्तम्ब की सुनिये रीती ॥
करहिं नीच उत्तम आचरणा । पावहिं उत्तम जाति सुवर्णा ॥
उच्च चलैं जो नीच सुभाऊ । घृणित वरण पावैं सतिभाऊ ॥
जा विधि पुरुष कथा मैं बरनी । नारितासु बिधिजानहु करनी ॥
याते सिद्धि भई यह बाता । निज निज कर्म करहि सतराता ॥
जगत न निन्दित कोउ लखाई । संकर वरन रीति उठि जाई ॥
पूछत भयो शिष्य हर्षाई । मोहिं समुझाइ कहहु ऋषिराई ॥
जाके गृह सुत एक प्रबीना । पायहु त्यहि सद बरन नवीना ॥
भयहु प्रबिष्ट अन्य गृह माहीं । ताके मात पिता कहँ जाहीं ॥
भंग मातु पितु सेवा होई । तेहि निर्वंश कहै सब कोई ॥

दो०—स्वामि कह्यो हे शिष्य सुनु, हो न वंशविच्छेद ।
भंग न सेवा होवई, वैदिक रीति अभेद ॥१६॥

ता नर के गुन कर्म स्वभाऊ । मिलहिपुत्रतेहिसहित उछाहू ॥
शासन राज-सभा को जोई । करि नहिं सकै उलंघन कोई ॥
या विधि गुनअरु कर्मविचारी । करहिंविवाह सकलनर-नारी ॥
सुनहु सुनावहिं इनकी करनी । जाविधिमनुकृष्णादिक बरनी ॥
बनि अध्यापकजगतपढ़ावहिं । पढ़ै आप बहुसुख उपजावहिं ॥
नितप्रति यज्ञकरहिं सतिभाऊ । यज्ञ करावहिं सहज स्वभाऊ ॥
देहिं दान उत्तम गुन जानी । लेहिं दान ब्राह्मण हित मानी ॥
ये षट कर्म विप्र के अहहीं । करै सदा या विधि मनु कहहीं ॥

दो०—ज्ञान शौच सम दम तपः, शांति नम्रता सात ।
आस्तिकता विज्ञानता, ब्रह्म कर्म विख्यात ॥२०॥

कहत कृष्ण नवगुन यहि भांती । उपजस्वभावहोत दिनराती ॥
अति कोमलचितसरल सुहाई । कुटिल दोष जो त्यागत भाई ॥
जेहिनर कोयहिभाँति स्वभाऊ । सो प्रसिद्धि ज्ञानी सद्भाऊ ॥
जो नर दयावान जग माहीं । क्षमावान जानहिं बुध ताहीं ॥
जल सों शुद्ध होत सब अंगा । होत शुद्ध मन सत्य प्रसङ्गा ॥
करै प्रीति विद्या तप माहीं । आतम तासु पुनीत लखाहीं ॥
बुद्धि ज्ञान ते पावन होई । या विधि शौच कहत मनु गोई ॥
दुराचार सों इन्द्रिन रोकै ! ज्ञान अनल बिच औगुन झोंकै ॥
ताहि कहतदमसकल प्रवीना । जानहु तप आचरन नवीना ॥

दो०—निंदास्तुति सुख दुःख में, हर्ष शोक नहिं होय ।
हानि लाभ शीतोष्ण बिच, दुःख करै नहिं कोय ॥२१॥

लखहु ताहि शान्ती की खानी । धर्म धुरन्धर सुन्दर बानी ॥
सरल स्वभाव सु कोमलताई । निरअभिमानसकलनिपुणाई ॥
कुटिलदोष त्यागहिं जगमाहीं । आर्जव गुन तामहँ सुखदाई ॥
ईश्वर वेद धरम सत सङ्गा । सेवा मातु पिता गुरु अङ्गा ॥
करै न निन्दा जग काहू की । आस्तिक सत्य टेक है जाकी ॥
सकल पदारथ जानहु नीके । जड़ चेतन सब उपज जमीं के ॥
चेतन बुद्धि सदा थिर रहई । जड़ में चेतन बुद्धि न अहई ॥
सोइ विज्ञानवन्त जग माहीं । करि विचार देखहु मन माहीं ॥

दो०—यज्ञ करन विद्या पढ़न, प्रजा पालिबो दान ।
विषयन में आसक्त नहिं, क्षत्रि स्वभाव प्रमान ॥२२॥

भय न होय शत सहस समूहा। भिरहिं अकेल सूर बनि जूहा ॥
दीन वचन मुख से नहिं बोलैं । तेजवन्त तनु बचन अडोलैं ॥
होवैं धैर्यवान अधिकाई । राजनीति महँ अति निपुणाई ॥
रहै निसंक सदा रण माहीं । पाछिल पांव धरत जो नाहीं ॥
करत विजय हित नाना रीती । जीतन शत्रु करत बहु नीती ॥
दान शील द्वौ भूषन नीके । दुष्ट स्वभाव निकारहिं जीके ॥
सबसों यथा योग्य दिन राती। रहित पक्ष बरतै बहु भाँती ॥
ये क्षत्रिन गुन सहज स्वभाऊ । कह्यो वरणविधिसब मुनिराऊ ॥
यह जग वैश्य कर्म सुनि लेहू । पालहिं सबमिलि सहित सनेहू ॥

दो०—दान करै विद्या पढ़ै, पालै पशू निदान ।
करै यज्ञ वाणिज्य पुनि, कृषी कर्म सुखदान ॥२३॥

तजि अभिमान ईर्षा निन्दा । करहि शूद्र सेवा यक धन्दा ॥
यह संक्षेप रीति सों भाई । वरण कर्म गुन तुमहिं सुनाई ॥
जाकह जो अधिकार सुहाई । दीजै ताहि सकल मिलि भाई ॥
उच्च वरण जासों भय करिहैं । शूद्र होनके भयसो डरि हैं ॥
या डर बालक चलहिं सु चाली । पढ़ैं वेद अरु तजैं कुचाली ॥
नीच बरन अति होत उछाऊ । कर्म करै फल पावै चाऊ ॥
विद्या धर्म प्रचार पुनीता । दीजै विप्रन जानि सुनीता ॥

क्षत्रिय सदा राज अधिकारी। करहिं सङ्गठन प्रेम विचारी॥
काम वनिज वैश्यहिं सुखदाई। करहिं सदा बहु प्रीति दृढ़ाई॥

दो०—शूद्र मूर्ख विद्या रहित, दीजै नहिं अधिकार।
सेवा ही यक धर्म है, देखहु सहित विचार॥२४॥

बहुरि सकल शुभ रीति बिवाहू। कहतस्वामिअतिपरमउछाहू॥
ब्रह्म दैव अरु आर्ष विवाहू। प्रजापत्य आसुर सतिभाऊ॥
पुनि गन्धर्व राक्षसी जानौ। अष्टम अधम पिशाच बखानौ॥
धर्म कर्म विधिवत हैं जोई। कन्या वर समानता होई॥
तात परस्पर करहिं विवाहू। ब्रह्म विवाह कहत सब काहू॥
यज्ञ विषे जो ऋत्विज अहई। करत यज्ञ नित आनँद लहई॥
भूषन सहित सुकन्या देही। दैव विवाह कर्म लखु एही॥
वर सों लेत द्रव्य जो कोई। आर्ष विवाह बतावहिं सोई॥
लेन देन दोउ निन्दित आंहीं। ताते त्यागहु याहि सदाहीं॥
दै दहेज जो करत विवाहू। देत कुटुम्बिन को धन काहू॥
आसुर ताहि कहत मुनि गाई। है यह निन्दनीय अति भाई॥

दो०—नियम रहित कुसमय कतहुँ, नारि पुरुष सतसंग।
ताहि कहत गंधर्व जग, करै सो सद ब्रत भंग॥२५॥

छल अरु कपट करै बहु भाँती। नारि हेत निश्चर की जाती॥
सोवत नारि सङ्ग जो करहीं। ते पैशाच सदा उच्चरहीं॥
इन में उत्तम ब्रह्म विवाहू। मध्यम दैव बतावहिं जाहू॥
आर्ष असुर गन्धर्व निकृष्टा। अरुपिशाचराक्षस अति भ्रष्टा॥

याते सकल विचारहु रीती । बिन विवाह होवे नहिं प्रीती ॥
नरअरुनारिएकान्त जोरहहीं । सकल कवी जन दूषित कहहीं ॥
जबहि विवाह समय नगिचावे । एक वर्ष एहि भांति बितावे ॥
वर अरु कन्या चित्र खिंचाई । पठवहु ताहि दोऊ ढिग भाई ॥

सो०—पठवहु कन्या चित्र, अध्यापक कुल के निकट ।
दीजै चित्र पवित्र, याही विधि अध्यापिकन ॥ ६ ॥

जन्म चरित्र सकल वय केरे । मांगहिं गुरुहित सहित घनेरे ॥
पुनि देखै गुन कर्म स्वभाऊ । कह्यो सकल जो पाछिल भाऊ ॥
या विधि निश्चय होत विवाहू । करै मातु पितु सहित उछाहू ॥
मिलहिं परस्पर वर अरु कन्या । शास्त्रविवाद करहिंअतिधन्या ॥
पूछन योग गुप्त कोउ बाता । पूछहिं लेखबद्ध सतराता ॥
पुनि ऋतुकाल समयजब आवै । कुण्ड खोदि मण्डप सजवावै ॥
पुनिविवाह की विधिजो बरनी । संसकार विधिहै हित करनी ॥
अर्ध निशा लौं करहिं विवाहू । पाणि-ग्रहनविधिसहितउछाहू ॥

दो०—राति पाछिली में अवशि, करै सो गर्भाधान ।
शुभ विचार हिय राखई, होय बली सन्तान ॥२६॥

गर्भाधान रीति सुखदाई । करै सो नारि पुरुष चित लाई ॥
ता पीछे दोउ करि असनाना । दूध पियें जो कह्यो विधाना ॥
सोंठिइलायचि असगँधकेसरि । शालममिसिरीसहितदूधकरि ॥
दोनों प्रेम सहित करि पाना । सोवैं प्रथकप्रथक धरि ध्याना ॥

चतुर नारि जानै तेहि काला[1] । जानहिं एक मास सब बाला ॥
गर्भ रहे ऋतुवति नहिं होई । यह पहिचान कहत सब कोई ॥
जबहीं गर्भ क्रिया चित धरहीं । तबहिंप्रेमयुतयहविधि करहीं ॥
निश्चय गर्भ नारि के होई । त्यागहि एक बरस रति सोई ॥

दो०—याते हो बलवान सुत, पुनरपि बारहिं बार ।
नारि पुरुष सँग को तजै, करत रहै आचार ॥२७॥

जो न करै यह विधि सुखदाई । घटै आयु बीरज नशि जाई ॥
होवें रोग अनेकन भाँती । रमै वाम संग जो दिन राती ॥
सुन्दर भाषन अरु व्यवहारू । अवशि प्रेमचाहिय अधिकारू ॥
पुरुष करै बीरज की रक्षा । लहै गर्भ हित नारि सुदिक्षा ॥
गर्भ माहिं आचार प्रवीना । जासों पुत्र बलिष्ठ नवीना ॥
चौथे मास पुंसवन करई । नारि विशेष ध्यान उर धरई ॥
अति विशेष है अष्ट महीना । करि सीमन्त कर्म गुन चीन्हा ॥
रेचक मादक रुक्ष अहारू । बुधि बल नासक जो व्यवहारू ॥
त्यागहिं नारिपरमहित मानी । गर्भ माहिं जो अवगुन खानी ॥

दो०—चावल गेहूँ दूध घृत, मूंग उर्द जे अन्न ।
देश-काल को ध्यान धरि, सदा खाय हविषान्न ॥२८॥

बीते गर्भ काल बहु भाँती । आयो प्रसव काल सुखमाती ॥
बालक जन्म भयो जेहि ठामा । सकल मनावत सुकृतललामा ॥

---

१. गृहदीपक को देखो ।

शीतउष्ण जल मिश्रित करिकै । बाल न्हिलाय उपटनोकरिकै ॥
चतुर धाय तेहि क्षण बुलवाई । छेदन नाल तुरत करवाई ॥
अंगुल चारि नाभि के ऊपर । बांधै सूत नाल में कसकर ॥
तेज धार की छूरी लेवै । काटै नाल परम विधि सेवै ॥
जातिकर्म कीविधिजेहि भांती । करै गृहस्थ परम सुखराती ॥
लिखै ओ३म् बालक की जीहा । कहै कर्ण वेदोसि अजीहा ॥

दो०—पुनरपि युवती होन हित, यत्न करै सोइ नारि ।
शिशुपालन की नेक विधि, धारै चित सुकुमारि ॥२६॥

संस्कार विधि के अनुसारा । नाम करन आदिक संस्कारा ॥
प्रेम सहित सो करै सदाई । जा विधि वेद रीति चलि आई ॥
बहुरि नारि ऋतुवति जबहोई । गर्भाधान करै सुख सोई ॥
ऋतु अनुकूलपुरुष रति करहीं । अरु निज नारि प्रेम उर धरहीं॥
तिनहिं सकल ब्रह्मचारी कहहीं । बलिआश्रमशुभकीरतिलहहीं॥
नारि पुरुष सों करै सुप्रीती । पुरुष नारि हित चहैं सुरीती ॥
जा कुल दोउ प्रसन्न बहु भाँती । तहँ कल्यान होत दिन राती ॥
जो न नारि पति आदर करई । सुत न प्राप्त होवे दुख भरई ॥

दो०—जाकुल नारी लहै सुख, बढ़ै सो कुल बहु भांति ।
दुखित नारि के होतही, घटै तुरत वह जाति ॥३०॥
पितु भ्राता पति देवरहु, पूजनीय जहँ नारि ।
कुल भूषन कल्यान युत, प्राप्त होय सुख भारि ॥३१॥

सवैया

पूजित हैं जहँ नारि सदा, तहँ आइ बसैं सब देव सुभाऊ।
नारि निरादर होत जहाँ, तहँ जाय क्रिया अरु आव कुभाऊ।
पुत्रिन शोच जहाँ निशिवास, सो कुल नाशत है सतिभाऊ।
"इष्ट" सु बालन शोच दुरावहु, जाते बढ़ै कुल आदर भाऊ॥६॥

नित प्रति नारि करै सतकारू। प्रेम सहित मिलि करै जुहारू॥
नारि प्रसन्न रहै गृह माहीं। दक्ष कार्य्य गृह चतुर कहाहीं॥
संसकार उत्तम मन रहई। लघु वय में बालक तेहि लहई॥
दासी दास सकल गृह केरे। निज चातुर्ता राखै चेरे॥
गृह व्यय नारि सँभारहि नीके। त्यागि कुभावसकल निजजीके॥
सुनहु शिष्य यह बात अनूपा। रतनन में स्त्री धन रूपा॥
रतन सकल अरु उत्तम नारी। विद्या सत्य शुद्धता भारी॥
नीक वचनअरु शिलप कलाको। धारै नर पावे जहहीं सों॥
बोलै सत्य सहित प्रिय होई। अप्रिय सत्य न बोलै कोई॥

दो०—यद्यपि प्रिय बोलै सदा, झूठ न होवै बात।
धर्म सनातन रीति यह, तुम्हहिं सुनावहुँ तात॥३२॥

बोलै वचन सदा हितकारी। रूख वैर नहिं करै विचारी॥
बिन अपराध विवाद न करई। पर हित काज मौन नहिं रहई॥
ते दुर्लभ जन हैं जग माहीं। जस होवै तस बरनत जाहीं॥
जो नर चहै बुद्धि धन वृद्धी। शास्त्र पढ़ै जेहि होय समृद्धी॥

जिमि जिमि होय शास्त्र परिज्ञाना। बढ़ै ज्ञान यहु पावहिं माना ॥
पंच यज्ञ निशि वासर करई। त्यागै कबहुँ न यह उर धरई ॥
ऋषि यजदेव यज्ञ सति भाऊ। भूत यज्ञ नृयज्ञ सुभाऊ ॥
पितृयज्ञ नित करत सप्रीती। यथाशक्ति नहिं त्यागहिं रीती ॥
अध्यापन ऋषियज्ञ कहाई। पितृयज्ञ तर्पन सुखदाई ॥

दो०—भूत यज्ञ बलि वैश्व है, हवन देव यज जान।
अरु अतिथी सतकार को, 'इष्ट' नृयज्ञ प्रमान ॥ ३३ ॥

गृहपति साँझ समय यज्ञ करहीं। प्रातकाल लौं सो सुख भरहीं ॥
प्रात करै नित हवन सप्रीती। रहै साँझ लगि अग्नि सुनीती ॥
ताते दिवस राति जब मिलई। संध्योपासन को चित धरई ॥
जौ लगि भानु उदय नहिं होई। नित प्रति बनै उपासक सोई ॥
प्रात काल पूरब दिशि जाई। साँझ सु पच्छिम देखै भाई ॥
साँझ प्रात संध्या नहिं करई। द्विजगण त्यागि देत तेहि त्तणई ॥
शूद्र समान अहै सो भाई। जो न करै नित कर्म सुहाई ॥
तबहिं शिष्ययक बोलत भयऊ। नाथ हृदय मम भेद न गयऊ ॥
तीन काल संध्या का हानी। सुनत स्वामि बोल्यो इमि बानी ॥

दो०—तीनकाल संध्या नहीं, सुनहु शिष्य धरि ध्यान।
बिछुरन मिलन प्रकाशतम, यह है सन्धि प्रमान ॥ ३४ ॥

काल तीन इमि सब जग जाना। भूत भविष्यत अरु वर्तमाना ॥
बीत गयो जो पाछिल काला। मानत ताहि भूत नर बाला ॥
बहुरि जो आगे आवे भाई। कहत भविष्यत तेहि जगगाई ॥

जो प्रत्यक्ष कार्य जग होई । तेहि वर्तमान कहत सब कोई ॥
काल गती यहि भाँति बताई । देखहुनिशि-दिन नीति दृढ़ाई ॥
जो तुम कहत हानि का यामें । तीनि काल स्तुति संध्या में ॥
तो हमकहतसुनहु चित लाई । अर्ध रात्रि औ प्रति पल भाई ॥
बनहु उपास्य नेम करि भाई । पर संध्या द्वै काल सदाई ॥

दो०—पित्र-यज्ञ को प्रेम सों, करै सकल मन लाय ।
तर्पन श्राद्ध अनेक विधि, पितु सेवा चित लाय ॥ ३५ ॥

श्रुति को सत्य कहत मुनि लोगू । सत्य युक्त जो कारज भोगू ॥
ताही को श्रद्धा मुनि गाई । करहिं प्रेम सों श्राद्ध बताई ॥
तरपन है सत्कार प्रवीना । सेवा जीवित कर्म नवीना ॥
जो विद्वान जगत के माहीं । तृप्तकरिहुसबबिधितिनकाहीं॥
ऋतु, पितु, चन्द्र, औषधीजानौ । तर्पन हित शुभदेव बखानौ ॥
जीवित ही पितु सेवा करिये । यहयकनियमहृदयबिचधरिये॥
मृत्यु भये कछु मिलत न भाई । केवल एक नाम रहि जाई ॥
ताते प्रेम सहित निशि वासर । करहु सदा वृद्धन को आदर ॥
दो०—मरीच्यादि ऋषि को सदा, सहित नारि सुत-भ्रात ।
पितृ नाम तरपन करो, जो जग हैं सुखदात ॥ ३६ ॥

छन्द

सोमसद, अरु अग्निश्वाता, सोमपा, को जानिये ।
आज्यपा, बर्हिषदः, अरु हविर्भुज, पहिचानिये ।

हैं यमादिक, पितु, पितामह, "इष्ट" मित्र, प्रमानिये।
वृद्धपितामह, मातु, मातरु, जगतहित सुखदानिये॥ ७॥

सम्बन्धि, और सगोत्र, सारे, नारि निज अपनाइये।
हों वृद्ध बुधवर जो अवनि पर, नेह सों चित लाइये।
बहुभाँति आदर दीजिये, सब भाँति सों सुखदानिये।
निज "इष्ट" इच्छा हेत नितप्रति तृप्त करि सुख पाइये॥८॥

जो परमातम की गति जानत। अरु पदार्थ विद्या पहिचानत॥
पित्र सोमसद जानहिं ताही। हरषि तृप्त कीजै तिन काही॥
जो विद्युत विद्या जग जानहिं। अग्नीश्वात पित्र बुध मानहिं॥
विद्या बुद्धि युक्त व्यवहारू। पित्र वर्हिषद देखु सम्हारू॥
रक्षा करत सदा सब केरी। पियत सु औषध सोम घनेरी॥
ताकहँ पित्र सोमपा जानहुँ। याविधि "इष्ट" सकल पहिचानहुँ॥
मादक द्रव्य त्याग जो करहीं। अरु हिंसा में नहिं चित धरहीं॥
बनहिंसदाहविषान्नके भोजी। सोइ हविर्भुज है बहु योजी॥

दो०—जग पदार्थ ज्ञातव्य जो, जानि धरै उर माँहिं।
पान करे घृत दुग्ध को, तेइ आज्यपा आंहि॥ १०॥

सदा काल की गति जो जानत। दुष्टनदण्ड सुजन हितमानत॥
करै न्याय नित नीति विचारी। सोई यम जानहु सुखकारी॥
जो जग सत्य पिता तेहि गाई। संतत पालन करै सदाई॥
पितु के पिता पितामह जानौ। तापितु वृद्ध पिता पहिचानौ॥
या विधि मातृ पक्ष जग जानत। पित्र सकलयहिभांति बखानत॥

इनहिं तृप्त कीजै बहु भाँती। जासों सुख उपजै दिन राती॥
श्रद्धा सहित करत हित भाई। प्रीति सहित तर्पन सुखदाई॥
तर्पन श्राद्ध पित्र यज्ञ अंगा। करत सदा धरि नेम अभंगा॥

दो०-श्रद्धा भक्ती सों सदा, करै मातु पितु नेह।
जीवत ही सब भोग को, भोगै सहित सनेह॥३८॥
पितु सेवा की जगत से, उठी बानि तेहि काल।
मृतक श्राद्ध जब से चल्यो, वृथा जगत जंजाल॥३९॥
पितु के जीवित प्रेम सों, देय न पानी बाल।
मरे पिता पर सकल जन, ख़ूब उलीचत ताल॥४०॥

पित्र यज्ञ की रीति बताई। सुनिये वैश्वदेव चित लाई॥
जो कुछ पाक भवन में होई। वैश्वदेव हित धरै सँजोई॥
मिष्ट अन्न की आहुति देवे। दुखद कीटनशिअतिसुखहोवे॥
अरु कछुभाग अलगकरिलेहीं। बली कर्म जन करत सनेही॥
पापी स्वपच पतित अरु स्वाना। वायस कीर क्षुद्र जन नाना॥
देहि इनहिं कछु कौर सप्रीती। वैश्वदेव बलि कर्मन रीती॥
जाकी तिथी न निश्चित होई। ताकहँ अतिथिकहत सबकोई॥
धर्मवान उपदेशक साँचो। नितप्रति मन उपकारहिं रांचो॥

दो०-ब्रह्मचारी अरु वनी को, अरु सन्न्यासिहु मान।
येही अतिथि कहावहीं, इनहिं न भुलिये जान॥४१॥

वेद विरुद्ध कर्म जो करहीं। झूठ बोलि जग उदरसों भरहीं॥
करहिं पखण्ड रूप बहु धरहीं। जग वैडाल वृत्ति शठ करहीं॥

इन सों बात न पूछै कोई। करै न कछु सतकार सँजोई ॥
पंच यज्ञ का यह फल भाई। सुनिये सब कोउ चित्त लगाई ॥
करहिं जो ब्रह्म यज्ञ सुखदाई। पावैं शुभ गुन कर्म सदाई ॥
जो नित अग्नि-होत्र को करई। वायु शुद्ध जल निर्मल रहई ॥
पितु यग मातु पिता आदरहीं। बढ़ै ज्ञान जग यश को लहहीं ॥
पंच यज्ञ की विधि जो बरनी। है सो सकल जनन हित करनी ॥

दो०—ब्रह्म मुहूरत के समय, उठै सो मानवजाति।
धर्म लालसा जासु हिय, यत्न करै बहुभाँति ॥४२॥

ता नर के तन दुख नसि जाहीं। जानहिं वेद ततत्तण माहीं ॥
पिछले भाग निशा के माहीं। चारि घड़ी जब शेष रहाहीं ॥
सोई ब्रह्म मुहूरत जानौ। ता महँ ईश भजन नित ठानौ ॥
करहिं न कतहुँ अधर्म अचारा। निश्चय फल भोगै विस्तारा ॥
करत कर्म फल तुरत न होई। ताते डरत रहत जन सोई ॥
बढ़त बढ़त जब पूरन होई। तब नशि जात पाप सों सोई ॥
त्यागहिं धर्म अधर्म चलावहिं। कपट पखण्ड झूठ सिखलावहिं ॥
अरु यह चहैं होय कल्याना। करैं निरन्तर सो विधि नाना ॥

दो०--पर यह जानत बात सब, जो अधर्म बढ़ि जाय।
सहित मूल सब नशत इमि, मूल कटे तरु जाय ॥४३॥

जो वेदोक्त सत्य है कर्मा। आर्य्य जगत को है सो धर्मा ॥
दै उपदेश शिष्य कहँ सोई। बढ़ै निरन्तर बुधिवर होई ॥
ऋत्विज प्रोहित औ आचारी। मामा अतिथि वैद्य सुखकारी ॥

आश्रित बालवृद्ध दुख पीड़ित । अरु निजबांधवमातुलसुरहित ॥
भ्राता पिता सुभगिनी नारी । पुत्री अरु सेवक अति प्यारी ॥
इनसों कबहुँ विवाद न करई । कलह विरोध हिये नहिं धरई ॥
सत्य रहित अनपढ़ जे आहीं । धर्मी ह्वै लैं दान सदाहीं ॥
तीनों पत्थर तरणि समाना । दुख सागर बिच डूबत जाना ॥

दो०—इनहिं दान जे देवहीं, सो दाता नसि जात ।
जन्म दूसरे में अवशि, मँगता सुःख बिलात ॥४४॥

पाहन नाव चढ़त जो धाई । डूबत अवशि बिलम्ब न लाई ॥
तिमि दोनों दुख लहत सदाई । देहिं दान अरु लेहिं जो भाई ॥
अब पाखण्डिन कहहुँ स्वभाऊ । सुनहु दियोदुखजिन सबकाऊ ॥
करहिं न धर्म ठगैं धर्मी बनि । धनहित देशफिरैंबहुबनिठनि ॥
लुब्धक सदा कपट की मूरति । लोक दम्भ में सकल बिसूरति ॥
हिंसक सदा वैर हिय राखहिं । अरु बिडाल वृत्ती जिय धारहिं ॥
कीरति चाहै ईर्षा वादी । स्वार्थी कपटी बहु बकवादी ॥
हठकरि अपनी झूठ कहानी । करहि सत्य नितही मनमानी ॥

दो०—ऊपर मीठे वचन नित, कहत नेह दिखराय ।
वकवृत्ती हिय में रहै, सोई दुष्ट कहाय ॥४५॥

सो०—मरत गेह बिच जोय, भस्म करत ताको सबै ।
जाय नहीं संग कोय, केवल धर्म बिहाय यक ॥ ७ ॥

नारि पुरुष अस उचित सदाई । करै सुधर्म कर्म निपुणाई ॥

धर्म हेतु पुरुषारथ करई। दीमकको गति को उरधरई॥
मातु पिता भगिनी सुत दारा। हैं जो इष्ट मित्र परिवारा॥
नहिं परलोक सहायक कोई। केवल धर्म जीव संग होई॥
फल है धर्म सुःख जग माहीं। अधरमसे दुख लहत सदाहीं॥
समुझहु याहि सकल जिय लाई। पाप कर्म की रीति सुहाई॥
धनहित एक पाप नित करई। तेहि धन कुटुम्ब उदरनितभरई॥
पाप केर फल भोगै सोई। करै कर्म जग में नर जोई॥

दो०—एक धर्म ही सों सदा, दुख अरु पाप नशात।
लोक और परलोक में, साथ सबन के जात॥४६॥

हिंसक क्रूर दुष्ट आचारी। संग करै पावै दुख भारी॥
इनते अलग रहै जो कोई। ताहीं को सुख जीवन होई॥
है व्यवहार बचन के माहीं। जो कोउ बोलत सत्य सदाहीं॥
है अधर्म यक झूठ सुभाऊ। तजहु ताहि सुख लहहु सदाऊ॥
दुष्टाचार करत जग आई। निन्दित होत पुरुष सो भाई॥
भोगे व्याधि अधिक दुखपावैं। खोवैं सुख अरु आयु नशावैं॥
परवश काज तजै दिन राती। धारै हिय स्वाधीन सुजाती॥
परवश समदुख और न दूजा। सुख स्वाधीन एक रस पूजा॥

दो०—याते सब मिलिके सदा, चलिये सुख के पंथ।
जासों दुःख नशावई, पढ़हु सोई सद ग्रंथ॥४७॥

या विधि पुरुष नारि नित रहई। चलहिपरमपथजेहि सुखलहई॥
पुरुष सदा बालकन सिखावहिं। पुत्रन को नारी समुझावहिं॥

जौलगिगुरुकुलबसहिंसुबालक। तौलगिमानतगुरुनिजबालक॥
जानहिं अध्यापक यहि भाँती। सिखवत सुत-समानदिनराती॥
गुरु पंडित ताकहँ जग मानत। आतमभेद सकल विधि जानत॥
निशि-दिनआलसकरै न जोई। इद्रथ सदा पुरुषारथ होई॥
सुख-दुखहानि-लाभअपमाना। स्तुति हर्ष शोक अरु माना॥
इनमें समता सों जो रहई। ताही को पंडित मुनि कहई॥

दो०—नित प्रति धर्म करै महा, त्यागै अधरम रीति।
ईश-भक्ति-आचार शुभ, पढ़ै शास्त्र बहु नीति॥४८॥

जानहिं शीघ्र कठिन जो भावा। अति उपकार करत मन लावा॥
सोइ पंडित गुणज्ञ जग माहीं। बोलत समय विचारि सदाहीं॥
वस्तु अप्राप्त चाह नहिं करई। नष्ट भये मन शोक न धरई॥
है बुधिवान सो पंडित ज्ञानी। मानत ताकहँ सब गुनखानी॥
निपुण होय वाणी जेहि केरी। विद्यावारिधि शास्त्र घनेरी॥
तर्क वितर्क स्मृतिको ज्ञाना। पंडित वक्ता ताहि बखाना॥
प्रज्ञा सत्य अर्थ अनुकूला। चलै न आर्य्य पंथ प्रतिकूला॥
कर्म जासु बुद्धी अनुसारा। ताको पंडित नाम उचारा॥

दो०—बुधिवर पण्डित जहाँ पर, अध्यापक बनि जात।
सत्य धर्म आचार शुभ, बढ़ै परम सुखदात॥४९॥

सो०—मूढ़न की पहिचान, विदुर कह्यो जेहि भाँति सों।
सोउ सुनहु धरि ध्यान, त्यागनयोग स्वभाव सो॥८॥

छन्द

जब वेद शास्त्र न पढ़त कोऊ,
अति घमण्ड दरिद्र सो।
नहिं सुनत सद उपदेश को,
अरु बहु मनोरथ करत जो॥
निज कामना की करत इच्छा,
कर्म विन जग झूठ सो।
साई कहावे मूढ़ जग बिच,
नित कुपन्थन चलत जो॥ ७॥
अरु बिन निमंत्रण जाय पर घर,
उच्च आसन बैठहीं।
बकवाद बहुत करैं सदा,
कोऊ न उनसों पूछहीं॥
जो योग्य नाहीं वस्तु जग,
विश्वास तामहँ मानहीं।
वह मूढ़ प्रकृती नीच जग बिच,
मूर्ख पुरुष कहावहीं॥ ८॥

दो०—यहि प्रकार के पुरुष जहँ, अध्यापक होइ जाहिं।
विद्या धर्म विचार शुभ, गुन कीरती नशाहिं॥५०॥

जबहिं होहिं अस गुरु उपदेशक। कलह अधर्म अविद्या प्रेरक॥

फूट विरोध बढ़ै दुखदाई। तबहिं सुराजहु जात बिलाई॥
लक्षण विद्यारथिन सुनाऊँ। तिनकर अब स्वभाउ बतलाऊँ॥
आलस औ मद मोह चपलता। जो अभिमान-जाल जगफँसता॥
सात दोष विद्यारथि माहीं। त्यागन करैं जो जनसुखचाहीं॥
सुख अर्थी कस विद्या पावे। विद्यार्थिन कस सुख भावे॥
सुखी त्यागि विद्या नित देहीं। जाय न विद्या जन ढिग तेहीं॥
विद्यारथी तजै श्रृङ्गारा। विद्याभ्यास ताहि अति प्यारा॥

दो०—सदा सत्य भाषन करैं, इन्द्रिय जित जो होय।
वीर्य गिरावहि नाकतहुँ, व्रती सुबुध जन सोय॥५१॥

जहँ सुयोग्य अध्यापक बसहीं। विधिवत सो आचारी लसहीं॥
गुरु बहु जतन करै दिन राती। जासों शिष्य पढ़ैं बहु भाँती॥
और बनावहिं शिष्य प्रवीना। जासो जग-हित होय नवीना॥
बोलहिं सत्य प्रेम मन लाई। मानहि सत्य करै सतभाई॥
इन्द्रिय जीति सुशील कहावे। शुभ गुणयुक्त शरीर बनावे॥
आत्म-ज्ञान विद्या अभ्यासू। सभ्य बतावहि तेहिं सहबासू॥
विप्र सदा विद्यावित होई। क्षत्रिय राज-धर्म रत सोई॥
वैश्य बनिज व्यापारहिं करई। शूद्र सु सेवा को उरधरई॥
सेवा करै प्रेम सों जोई। रक्षक बनहिं द्विजाती सोई॥

दो०—सुख-दुख हानी लाभ में, सज्जनता उपकार।
करहिं परस्पर प्रीति सब, द्विजन केर व्यवहार॥५२॥

नृपति प्रजा में प्रेम जो होई। बाढ़ै सुख कीरति तहँ सोई॥

कबहुँ न विलग पुरुष तिय होवै । जेहि विधि सुख हो सो इम गजोवै ॥
अवगुन षट बस होवै नारी । सुनहु लहहिं जेहि ते दुखभारी ॥
मद्यपान जो करहिं सदाई । दुष्टन संग करत नित धाई ॥
पति वियोग अरु फिरहिं अकेली । करत परखण्डन दरश अमेली ॥
शयन करै पर घर में जाई । यह षट औगुन नारि लखाई ॥
पुरुषहु जो रत इनमें भाई । बढ़ै दुःख सब सुख नशि जाई ॥
नर-नारी वियोग दुइ भाँती । मानत दुख सुख मानव जाती ॥

दो०—है विदेश को गमन यक, दूजो मृत्यु वियोग ।
सती नारि जो सँग रहै, होत विदेश सँयोग ॥५३॥

नीक वियोग नाहिं बहु काला । युवा पुरुष अरु योवन वाला ॥
पूछत ऋषिहिं जोरि दोउ पानी । करहिं कहा बहु ब्याह सज्ञानी ॥
तबहिं ऋषीश्वर बोलयहु भाई । एक संग बहु नाहिं सुहाई ॥
बहुरि सो पंडित ने अस कहेऊ । पुनरविवाह कबै कहँ भयऊ ॥
स्वामि कह्यो मनुस्मृति देखहु । धर्म की रीति सुपंडित लेखहु ॥
अक्षत योनि पुरुष अरु नारी । पुनर्विवाह केर अधिकारी ॥
केवल पानिग्रहन ही भयऊ । पति-पतनी संयोग न ठयऊ ॥
यहि विधि की जो तियवर होई । करहु विवाह कह्यो मनु सोई ॥

दो०—जो नारी क्षत योनि जग, कहत मनू महराज ।
पुनर-विवाह न होवई, द्विजगण केर समाज ॥५४॥

दोष कहा प्रभु मोहि समझावहु । सुपथ बताय कुपंथ छोड़ावहु ॥
सम्भव चारि दोष होइ जाई । हम जो कहत सुनत मनलाई ॥

नर अरु नारि प्रेम घटि जावे । त्याग भाव निश्चय मन आवे ॥
निजपतित्यागि चहै दूसरपति । पुरुष न रहैं कबहुँ स्त्री व्रति ॥
दूसर दोष होत यहि भांती । पुरुष मरै जब नारिल जाती ॥
पितु सम्पति दूसर लै जावें । तबहिं कुटुम्बी रार मचावें ॥
दिन प्रति कलह होत तेहि ठाँवा । लेवे सो जा ढिग जो पावा ॥
तीसरि बात सुनहु चितलाई । बहुतक कुल के नाम नशाई ॥

दो०—चातुर्थिक हैं दोप यह, पातिव्रत नशि जाय ।
पुनर और बहुब्याह को, करैं द्विजाती नाय ॥५५॥

पुनरपि पूछन लाग सुपण्डित । जो कहुँ होवे वंश अखण्डित ॥
नर अरु नारि होहिं व्यभिचारी । होहिं गर्भ पातादिक भारी ॥
याके अर्थ सुनहु यक रीती । जोकुछ सद शास्त्रन की नीती॥
जो ह्वै रहैं व्रती जग माहीं । ताके ढिग कोइ पाप न जाहीं ॥
जेहि सन्मान चाहना होई । करहिं नियोगस्वकुलमहँ सोई ॥
पण्डित कहत सुनहु मुनिराई । भेद कौन सो कहहु बुझाई ॥
तबहिं कहत ऋषिराज सुबानी । पंच भेद की रीति बखानी ॥
समता ब्याह नियोग व भाई । हैं बहु भेद कहत समुझाई ॥

दो०—है विवाह की रीति यह, कन्या पति-गृह जाय ।
पिता केर सम्बन्ध बहु, करत विवाह नशाय ॥५६॥

जो विवाह होवे सुख भारी । तो दूसर घर जाय सुनारी ॥
पर जो करत नियोग सुनारी । प्रथम पतीसम्पति अधिकारी॥
नारि विवाहित का सुत जोई । पावे निज पितु को हक सोई ॥

अरु विधवा के जो सुत होई । करै नियोग जो विधि सों सोई ॥
पूर्व पिता सुत सोइ कहावे । सोइ कुल गोत्र सोइ पद पावे॥
बीरज दाता को नहिं नामू । दूसर भेद लखहु परिणामू ॥
नारि विवाहित को असयोगा। सेवा पती नारि उप-भोगा ॥
नहिं नियुक्त पति सेवा भाई । नहिं कछु कारज और दृढ़ाई ॥
दो०—पती विवाहित से सदा, मरण काल सम्बन्ध ।
पर नियुक्त पति सों रहै, वीर्य दान सम्बन्ध ॥५७॥
दोनों गृह के काज सम्हारें । है विवाह अधिकार उचारें ॥
पर नियुक्त निज-निज गृहमाहीं । करैं सुकाज परम सुखदाई ॥
दस सुत नारिजननअधिकारी । यह विवाह की रीति सँचारी ॥
अरु नियुक्त पति से सुतचारी । जनै नारि सन्तोष सम्हारी ॥
रहतसदाजिमिब्याहकी नारी।तिमिनियुक्तपति नहिंअधिकारी॥
जब ऋतु-दान-काल तिथि होई। तब नियोगविधिकरतसँजोई॥
ऋतु के बाद न कुछ सम्बन्धा । सेवै पुत्र तजै सब धन्धा ॥
निज निज हेत पुत्र उपराजै । शुभनियोगविधिकोवहसाजै ॥
दो०—वंश नशे यह नियम है, शुभ नियोग विख्यात ।
याते ही संसार में, होत नहीं कुल-घात ॥५८॥
तब पण्डित बोलत मुसकाई । यह व्यभिचार रीति दिखराई॥
सुनहु तात व्यभिचार न होई । रीति नियोग सकल शुभ सोई ॥
बिन विवाह व्यभिचार सदाई । तिमि नियोगविधिजानहुभाई ॥
याते सिद्ध भई यह बाता । अनियमकाजसदा दुख-दाता॥

जिमि विवाह उत्तम जगमाहीं । तिमि नियोग की रीति सुहाई ॥
पण्डित कहत सत्य यह भाई । वेश्या-गति यह मोहिं लखाई ॥
जीवित पुरुष नारि हर्षाई । जाय सु दूसर पति ढिग भाई॥
पुरुष जाय सुत हेतु निरन्तर । पर तिय हेत करे बहु आदर ॥
दो०—तबहिं स्वामि इमि कहत भे, सुनहु चतुर द्विज-राज ।
नहिं नियोग वेश्या सदृश, सोचहु कछु महराज॥५६॥
वेश्यहिंनिश्चितपुरुष न कोई। विषयासक्त जात तहँ सोई ॥
विधि नियोग की ब्याह समाना। ताते यहि उत्तम जग जाना ॥
जिमि जगकरत सुता को ब्याहा। लाज न होत होत उतसाहा॥
तबहीं एक पुरुष अस कहई। पाप समान नियोगहु अहई ॥
यह धुनि ऋषी कान जब आई। कहत सबन सों भुजा उठाई ॥
वेगि बतावहु सब नर-नारी। कहा नियोग पाप अति भारी ॥
तौ विवाह किमि पाप न होई। हिये विचारि लेहु सब कोई ॥
हमरे जान पाप अति भाई। रोकत जो नियोग सुखदाई ॥
दो०-या प्रभु के संसार में, नारि पुरुष व्यवहार ।
स्वाभाविक यह काज है, याते नहिं निस्तार ॥६०॥
जो वैराग्यवान जग होई । विद्यावित योगी जग जोई ॥
सोइ नर बचत प्रकृति सों भाई। नतु सबकी मति जाति भुलाई ॥
बिना नियोग काम जग सोई। गर्भ-पात निशि-वासर होई ॥
याको कह तुम पावन मानहु । विधवन के सन्ताप न जानहु ॥
जौ लगि युवा अवस्था रहई। विषय चाह ताके मन बसई ॥

काम वेग की गति अधिकाई। जीतै जो कोउ सो सुख पाई॥
रोकै राज्य जाति व्यवहारा। तौ वे करहिं गुप्त व्यभिचारा॥
रोकैं सदा कुकर्म कुचालो। चलैं सदा जो चाल सुचालो॥

दो०—इन्द्रिय बस करि जो रहै, जग में कोउ नर नारि।
तौ उत्तम नर जन्म है, देखहु याहि विचारि॥६१॥

जो नर कबहुँ ब्याह नहिं करहीं। ब्रह्मचर्य-व्रत हिय महँ धरहीं॥
ऊरध-रेता बनि जग माहीं। सकल जगत को योग सिखाहीं॥
जो नर यह व्रत मनहिं न धारैं। करहिं विवाह काम मद मारैं॥
पर आपत्ति काल जब आवे। अवशि नियोग सकल जिय भावे॥
याते जग व्यभिचार नशाई। गर्भपात जो बहु दुखदाई॥
प्रेम बढ़ै उत्तम सुत होई। हो सन्तानवान जग सोई॥
नीच पुरुष सम उत्तम नारी। उत्तम पुरुष नारि व्यभिचारी॥
संग कुसङ्ग होय दिन राती। कुल कलंक होवे बहु भाँती॥

दो०—नारि पुरुष संताप सब, निर्वंशी को दोष।
यह नियोग सों मिटत है, करहु सफल तजि रोष॥६२॥

कहहु नाथ मो कहँ समुझाई। विधि नियोग को रीति सुहाई॥
स्वामि सुनाय कहत यहि भांती। जस विवाह सब करत सजाती॥
सोई विधि नियोग को जानहु। है सन्तान हेत यह मानहु॥
उच्च वरण निज वरण सुहाई। करहिं नियोग जगत सुखदाई॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। पुरुष नियोग करे किमि भाई॥
नारि मरे नर दूसर ब्याहा। करहिं पुत्र हित अधिक उछाहा॥

तब ऋषिराज कह्यो मुसकाई। पूर्व कथा कह दीन भुलाई ॥
द्विज नर नारिन एकहि बारा। ब्याह करन को वेद उचारा ॥
दो०—नर अरु नारि कुमार द्वौ, तौ विवाह शुभ होय।
यक विधवा यक क्वांर जग, शुभ विवाह नहिं सोय॥६३॥
जब यह नियम चलै जग माहीं। तो नियोग की रीति सुहाहीं ॥
जस नर चहत न विधवा नारी। तिमि हैं नारि सबै अधिकारी ॥
तब पुनि सब सोचहिं गृहमाहीं। बिननियोग जग सन्तति नाहीं ॥
अब हम एक प्रमाण सुनावहिं। ऋग को मंत्र तुमहिं समुझावहिं ॥
मंडल दशम सूक्त चालिसवाँ। दूसर मंत्र वेद में जहवाँ ॥
बहुरि सूक्त अष्टादश देखहु। अष्टम मंत्र तहाँ अवलोकहु ॥
वर औ देवर दोउ यहि भांती। निजनिज नारि सकलसुखराती ॥
सधवा निज पति संग सप्रीती। नारि सु विधवा देवर रीती ॥
दो०—स्थित ह्वै ऋतु-काल में, करै सो गर्भाधान।
करै यत्न बहु पुत्र हित, नारि परम सुख दान॥६४॥
आशय मंत्र सुनहु चित लाई। नारि जासु हित जानहु भाई ॥
जिमि सधवा जग सुत उपजावे। तिमि नियुक्त पति विधवा पावे ॥
है नियुक्त पति नाम सु देवर। मानत जग ताकहँ दूसर वर ॥
अथरवकाण्ड चतुर्दश माहीं। है अनुवाक दूसरा ताहीं ॥
मंत्र अठारह में यहि भाँती। देखहु प्रकट नियोग सजाती ॥
नारि सदा पति को सुख देवै। धर्म नियम सब गृह के सेवै ॥
रूप शास्त्र विद्या युत होई। उत्तम पुत्र जनै सब कोई ॥

पति सुख दै सुत वीर सयाना। जनै नारि अस वेदन माना॥
दो०—इच्छा करै नियोग की, जो गृह पुत्र न होय।
अग्निहोत्र को सकल त्रिय, करै प्रेम सों सोय॥६५॥
अक्षत योनि नारि जग माहीं। करहिं नियोग कहहु कै भाई॥
तब ऋषि कहत वेद की बाता। मंडल दश ऋगवेद सुताता॥
सूक्त पचासी में लखि लेहू। मंत्र सुचालिस में अस कहेऊ॥
प्रथम नियुक्त पती जग माहीं। नाम सोमपा वेद बताहीं॥
दूसर नाम अहै गन्धर्वा। तीसर अग्नी नाम सुघर्वा॥
अरु चतुर्थ मानुषजा मानहु। औरहु सब याही विधि जानहु॥
पुत्र हेत जग करहिं नियोगा। बाढ़ै यश पावे सुख भोगा॥
या विधि एकादश लों जाई। नारि पुरुष सन्तति उपजाई॥
दो०—है समुहे बोलत भयो, ज्योतिर्विद यहि भाँति।
दश सुत एकादश पती, मानहिं मानव जाति॥६६॥
कह्यो स्वामि तब यह मुसकाई। जो हम मानि लेहिं यह भाई॥
तौपुनिकहहु कहहिंकेहिदेवर। होयनियोगसोकेहि विधिसुन्दर॥
जो मन्वादिक ने है कहेऊ। सो सब झूठ कहा जग ठयऊ॥
पुनि यह कहहु हमैं समुझाई। पति जीवित नियुक्त पति आई॥
स्वामी कहत विप्र सुन लीजै। ऋगदश मंत्र सूक्त लखि लीजै॥
पुत्र जनन असमर्थ जो होई। सो निज नारि कहै जन सोई॥
करि नियोग संतति उपराजहु। जेहिकुलहोय सो कारज साधहु॥
जिमिअम्बे आम्बालिक नारी। जन्मि पांडु कुरु वंश सम्हारी॥

दो०—सुत हित दूसर पुरुष सों, करहिं नारि संयोग।
केवल गर्भ विधान हित, है जग योग्य नियोग॥६७॥

कथा पुरातन हैं बहुतेरी। जहँ नियोग की रीति घनेरी॥
पुरुष सदा यह चिन्तन करई। होय न नष्ट वीर्य्य जिय धरई॥
गर्भाधान बिना जो कोई। भोग बिलास करत नर जोई॥
वह व्यभिचारी जगत कहावे। वीर्य नसै सन्तति नहिं पावे॥
जो तनु होय वीर्य्य अधिकाई। तौ उत्तम सुत होत सदाई॥
हम तौ कहत सुनहु ऋषिराई। रीति विवाह महा दुखदाई॥
नारि पुरुष यक बन्धन होई। है वह जन दुख कारन सोई॥
याते केवल प्रेम पियारा। प्रेम जाय सब नसै विकारा॥

दो०—मूर्ख पतित द्विज जो जगत, पावत हैं बहु मान।
शूद्र जितेंद्री होहिं तो, करत न कोउ सनमान॥ ६८॥

यह है सब अज्ञान की बाता। समुझहु ताहि हृदय सों ताता॥
याते सुनहु सकल चित लाई। गृहस्थोधर्म की अति निपुणाई॥
जिमि नद नदी सुसागर मांहीं। चलिबहु पंथ बसहिं तहँ जाहीं॥
ता विधि सब आश्रम के प्रानी। आशा करहिं गृहस्थी जानी॥
जिमि सब जगके जंतु विकारा। लहहिं सदा सब वायु सहारा॥
तिमि ब्रह्मचारि यती सन्यासी। होहिं गृहस्थ मांहिं सब वासी॥
है गृहस्थ सुन्दर एक ठावां। भरमिदिवसनिशिसोवतजहँवां॥
याते प्रेम सहित नर नारी। बसहिं गृहस्थ मांहिं सुख सारी॥

दो०—निज मति हम बरनन कियो, जो गृहस्थ को धर्म।
हैं वह उत्तम पुरुष जग, करैं जो या विधिकर्म॥ ६९॥

शिष्य।

गुरुवर मोहिं संतोष भा, सुनि ऋषि-कथा प्रसंग।
एक मोहिं संदेह है, करहु गुरू सोइ भंग॥ ७०॥

जो कछु मोहिं सुनायहु साँई। धर्म गृहस्थ नियोग सुहाई॥
है अति नीक रीति यह भाई। यामहँ नाहिं अधर्म लखाई॥
पुनि याको जग करत न कोई। कहोस्वामि ने जेहिविधि सोई॥
अरु विवाह विधवा जो अहई। ऋषिवर ताहि निषिद्ध बताई॥
यह संदेह मोर मन होई। कहहु नाथ हित सोंविधि सोई॥
तब गुरु कहत सुनहु चितलाई। यह तो आपद धर्म दिखाई॥
याको मण्डन कतहुँ न होई। ताते ऋषि वर कह्यो न सोई॥
सब संकेत मात्र ऋषि कहेऊ। जोतुमकथा मांहिचित दयेऊ॥

दो०—नारि कुमारि कुमार सों, करैं नेम सों ब्याह।
विधवा विधवा वर तकैं, करैं प्रेम उत्साह॥ ७१॥
विधवा केर विवाह जग, है यह आपद धर्म।
समय समय संसार में, करैं जो मानव कर्म॥ ७२॥

सोइ जग श्रेष्ठ मनुज हितकारी। चलै जहाँ लगिसमय बिचारी॥
जो निज काम सकै नहिं रोकी। चलै न मारग धर्म विलोकी॥
ताकर ब्याह अवशि ही करिये। जग को गर्भपात दुख हरिये॥
यदि द्विजाति तिननारिन केरा। करहि न ब्याह जाति पुर हेरा॥

ते कुलटा हुइ निज कुल बोरैं। धर्म नशै अधरम बहु जोरैं॥
याते सुनहु शिष्य चितलाई। विधिविवाह इमिजगसुखदाई॥
वेश्यन वृद्धि होत यहि भाँती। जो न विचारत समयसुजाती॥
निश्चित समय न आपदकाला। धर्म नसै जग होत बेहाला॥

दो०–याते यहि अवसर विषे, है यह आपद धर्म।
जो विधवा हैं जगत में, जानहु तिनके मर्म॥ ७३॥

जो विवाह के योग सुहाई। करहु सकल जन प्रेम दृढ़ाई॥
यदि विवाह नहिं होवे भाई। तौ जग पशुता की अधिकाई॥
याविधिकथा सकल ऋषि केरी। कहिहौं सकल प्रेम रस हेरी॥
जोकोइप्रेमसहित निशिवासर। पढ़ै नेम सों होय उजागर॥
पावै यश शुभ मंगलदाता। लहैं मुक्ति पद जो सुखदाता॥
जो कछु भूल चूक मम होई। देखहिं कवि जन बुधवर सोई॥
प्रेम सहित मोहिंलिखिहैं जोनर। तोशिरधरि हममानब सादर॥
कथा पद्य मय परम सुहाई। "इष्ट" जगतहितलिख्योबनाई॥

इति श्रीमत्सत्यसागर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीवर्णित
गृहस्थधर्मविधिवर्णन वैद्य कविराज पं० गदाधरप्रसाद
वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरुशिष्य
सम्वाद चतुर्थ तरङ्गः।

(स० ४ स०)

अथ पञ्चम तरङ्ग (स० ५ स०)

वानप्रस्थ सन्यास

शिष्य

सो०—तृप्त भयो मुनि नाथ, गृहस्थाश्रम की कथा सुनि।
अब बरणहु सुखदात, औरहु आश्रम की कथा ॥१॥

गुरू

दो०—प्रेम सहित बोलत भये, दयानन्द ऋषिराज।
गृहस्थाश्रम के बाद ही, द्वै आश्रम सुखसाज ॥ १ ॥

सुनहु आश्रमन की विधि सोई। वर्णाश्रम को राखै जोई॥
पूरण ब्रह्मचर्य्य जब होई। तब गृह बसत गृही बनि सोई॥
अवधि गृहस्थ की बीतै जबई। ह्वै कर बनी बसै बन तबई॥
बनी कर्म जब पूरन होई। तौ संन्यास लेइ जन सोई॥
विधिवत गृहस्थ रहै घर माहीं। जीतिइन्द्रियन गृहसुखचाहीं॥
शिर के श्वेत केश जब होहीं। शिथिलशरीरविलोकहिज्योहीं॥

अरु पुनि पौत्र होय गृह माहीं । तबहिं त्यागि गृह नर बन जाहीं॥
त्यागहिं ग्राम अहार सदाई । औरहु जो गृह की प्रभुताई ॥

दो०—नारिहिं करि जिन पुत्र ढिग, या सँग जाइ लेवाय ।
ग्राम त्यागि बन में बसै, सोई बनी कहाय ॥ २ ॥

छं०—नित पठन पाठन में लगै अरु मित्र बनि सबके रहै ।
बिद्यादि दानसो देइ निशिदिन आत्मजित ह्वै सतकहै ॥
इन्द्रिय दमन करि शील धारै काहु सों कछु ना चहै ।
निज काज रक्षा करहि हित सों अरु दयाको पथ गहै १॥

अग्निहोत्र के साधन लेई । इन्द्रियजित ह्वै बास करेई ॥
बन के कन्द मूल फल खाई । तिन्हहींसों नित अतिथिजेंवाई ॥
संग जो नारि रहै जन केरे । काम हेत नर जाइ न नेरे ॥
भूमिशयन अरु तरुतर बासा । ममता त्यागहि अरु जनआसा ॥
जो चित शान्त अहै विद्वाना । श्रद्धा सहित करहिं तप नाना ॥
सत्य धर्म भिक्षा आचरना । बसहि बनी ह्वै बास सुपरना ॥
ते नर सूर्य द्वार ह्वै जाहीं । पावें सुख सुमोक्ष चित चाहीं ॥
करहिं होम अरु दीक्षित होई । ज्ञान बिचार करहि नर जोई ॥

दो०—दै शिक्षा निशि दिवस ही, शिष्य पढ़ावहिं आप ।
बनी कर्म के होत ही, रहै न कोउ संताप ॥ ३ ॥

यहि बिधि वानप्रस्थ नर होई । बसि बन संचय कर्म करोई ॥
पुनि इच्छा संन्यास की होई । त्यागहि नारि पुत्र ढिग सोई ॥
तीसर भाग रहै यहि भाँती । आयु विभाग करै मनु जाती ॥

भाग चतुर्थ लहै संन्यासी । त्यागहिसकलजगतकी फाँसी ॥
एक कहत ऋषि सों चितलाई । गृही बनी यदि होय न भाई ॥
अरु संन्यास लेइ नर कोई । तौ कह पाप लहै नर सोई ॥
तबहिं स्वामिइमिकह्योबखानो । जब वैराग्य होय मन बानी ॥
ताही समय होय संन्यासी । त्यागहि सदा मोह की फाँसी ॥

दो०—दुराचार से पृथक नहिं, अरु जिय शान्त न होय ।
योग आत्मा में नहीं, मन थिर जबै न कोय ॥४॥

तौ लगि जन संन्यास न लेई । प्राप्त न "इष्ट" होत जग तेई ॥
है संन्यासिन सहज सुभाऊ । करहि सुकर्म न हो उरदाहू ॥
संचित कर्म देखि जग केरे । जाय पुरुष वैराग्य के नेरे ॥
प्रेम सहित सद्गुरु पहँ जाई । करि बहु प्रश्न लहै दृढ़ताई ॥
भोग देखि सब कर्म अधीना । हिय धारै वैराग्य प्रवीना ॥
माया बिच नित रहत भुलाने । मानत पंडित आपु सयाने ॥
ते बनि मूढ़ नीच गति पावे । जिमि अन्धा,अन्धासँगधावे ॥
अबुध अविद्या में रत रहहीं । जानिप्रकटसुखआनँदलहहीं ॥

दो०—मोहित हो संसार में, मोक्ष न पावहि जान ।
जन्म मरन दुख सहैं नित, हिय राखत अभिमान ॥५॥
वेद अर्थ जे जानहीं, हिय राखहिं विज्ञान ।
जेहि पावन अन्तष्करन, संन्यासी सुख दान ॥६॥

पावे सुलभ मोक्ष-पद सोई । परमानन्द प्राप्त जब होई ॥
बिना मुक्ति दुख नाश न होई । जेहि दुखजायसोयतनकरोई ॥

देह धरे कर फल जग माहीं । दुखसुख पृथक होत हैं नाहीं ॥
सांसारिक दुख सुख नशिजाईं । जो नर पावे मुक्ति सुहाईं ॥
साधन मोक्ष सुनहु चितलाई ! है संन्यासिन मार्ग सोहाई ॥
धन सन्तति अरु जगत बड़ाई । त्यागहि मोह सहितप्रभुनाई ॥
पद निर्वान हेत दिन राती । करहिसोयत्नपरमसुख भाँती ॥
भिक्षाचरन करहि मन लाई । है संन्यास परम निपुणाई ॥

दो०—ईश प्राप्ति हित नेह सों, करहिं प्रेम युत याग ।
शिखा सूत्र तहँ त्यागई, जो गृहस्थ को भाग ॥ ७ ॥

प्राण समान उदान अपाना । व्यानसहितसबअग्निसमाना ॥
इनमें यज्ञ करै नर सोई । देकर अभयदान हित होई ॥
पुनि संन्यासिन धर्म सुनावहुँ । मुख्य जो नेम ताहि बतरावहुँ ॥
नैन निहारि चलै मग जोई । वस्त्र छानि पावे जल सोई ॥
सत्य बिचारि कहैं नित बयना । मनहि बिचारिकरहिंआचरना ॥
निन्दा क्रोध करै जन कोई । तासोंदुखितकबहुँ नहिं होई ॥
धर्म सहित समुझावें ताही । इन्द्रिन कर्म सकल बतलाई ॥
करहिं न झूठ कतहुँ व्यवहारू । ईश प्रेम अरु देश सुधारू ॥

दो०—इन्द्रिय दमन करैं सदा, राग द्वेष नहिं चाह ।
होयँ अहिंसक नेह सों, नर जीवित उत्साह ॥ ८ ॥

निन प्रति कर्म करैं सुख पाई । वस्त्र धारि नहिं करहिंहूँ माई ॥
इन्द्रिय विषय सकल तजि देई । धारै हिये मोक्ष सुख लेई ॥
धर्म अङ्ग दश मनु ने कहेऊ । तापर चलत सकल चितदयऊ ॥

"धृतिः" सदाधीरजजिय राखैं। "क्षम", दयालुता मुनिगनभाखैं॥
"दमन" सुअधरम से मन रोकै। हिय निज धर्म एक अवलोकै॥
चोरि त्याग "स्तेय" को कहई। "शौच" सदा पावन चितरहई॥
दुराचार से इन्द्रिन रोकैं। "इन्द्रियनिग्रह" सकल विलोकैं॥
नित प्रति बुद्धि बिचारे जोई। "धी" को धारिसकत नर सोई॥

सो०—जिमि शरीर रथ माहिं, इन्द्री अश्व बिलोकिये।
बुद्धि सारथी आहिं, मनलगामकीकठिनगति॥२॥

दो०—सोई रथ नशि जात है, जेहि सारथि अज्ञान।
ताते बुधि बल हिये धरि, करहु मुक्ति प्रस्थान॥ ६॥

जो कछु जगत बीच है पेखौ। ज्ञान पूरवक ताकहँ देखौ॥
"विद्या" ताहि प्रवीन बतावहिं। जानि पदारथ सुख उपजावहिं॥
है "अक्रोध" एक शुभ अंगा। याते होत सकल दुख भंगा॥
जो कछु देखहु सुनहु सदाई। ताको कहहु सुभय बिसराई॥
है सोइ "सत्य" जगत के माहीं। धारै प्रेम सहित चित लाई॥
ये दस लक्षण धर्म बताये। करहिं इनहिं संन्यासि सुहाये॥
जो संन्यास धर्म जग अहई। ऋषिवर कौन ताहि अवलहई॥
हैं ब्राह्मण याके अधिकारी। अथवा क्षत्रि आदि बलकारी॥

सो०—कहत स्वामि हर्षाय, सुनहु शास्त्र की रीति यह।
गुन अरु कर्म सुभाय, ब्राह्मण को तनु होतजब॥३॥

दो०—ब्राह्मण को अधिकार है, जो विद्वान प्रवीन।
धर्म सहित उपकार में, नित प्रति है लवलीन॥१०॥

है संन्यास कर्म सुखदाई। ताहि द्विजाति करहिं मन लाई॥
जिमि तनु बीच शीश एक लहई। तिमि आश्रमन बीच यह अहई॥
जग उपकार बनत याही में। जो स्वतंत्र पथ धारै जी में॥
गृह धन्धादिक काज घनेरे। और आश्रमन को है घेरे॥
जग संन्यासी बात बखानत। कर्म न कोई मोकहँ भावत॥
त्याग कर्म हमरो यह धर्मा। भोजन भजन पेट हित कर्मा।
पूछहु तिनहिं प्रेम सों बाता। त्यागहु कर्म कौन तुम ताता॥
भोजन छादन हूँ जग कर्मा। त्यागि देहिं तौ होय अकर्मा॥

दो०—जब यह छोटे कर्म जग, नहिं त्यागत है कोय।
कहहु सो उत्तम कर्म को, कैसे त्यागन होय॥११॥

हम यह कहत सुनहु चित लाई। पालहिं इनहिं गृहस्थ सदाई॥
जो गृहस्थहित कछु नहिं करहीं। ह्वै पापी नरकी बनि मरहीं॥
जाकर भोजन बसन सुप्रीती। करि हित लेहिं सदा यह नीती॥
पुनि ताकर हित जो नहिं करई। वह संन्यासि अयश लहि मरई॥
जो उपदेश करत सबकाई। जीव ब्रह्म प्रकृती विलगाई॥
हैं अल्पज्ञ जीव दर्शाई। ब्रह्म सदा सर्वज्ञ सुहाई॥
जीव प्रकृति वस दुख को सहई। जानत ब्रह्म परम पद लहई॥
योगाभ्यास करत दिन राती। वैदिक कर्म करै बहु भाँती॥

दो०—करहि सत्य उपदेश नित, परम गृहस्थन बीच।
ते संन्यासी जग विदित, हिय न लाभ मद नीच॥१२॥

सो०—हे प्रभु करुणासिंधु, परम पूज्य ऋषिराज तुम।
न्यास कर्म सुखसिंधु, कह्यो नाथ बहु दया करि॥४॥

नाथ सुनहु यक और ढिठाई। जो उपदेश देहि सब भाई॥
तौ संन्यासिन कहा प्रयोजन। जगसुखत्यागितपावहिनिजतन॥
कहत स्वामियहिविधिमुसकाई। है उपदेश सबन हित भाई॥
यह तो अमर बेलि है भाई। जो पीवे वह सद्गति पाई॥
जो उपदेश करत बहुतेरा। ते जग पावत मान घनेरा॥
पर यक बात सुनहु चित लाई। जो जेहि काज सो तासु सुहाई॥
संन्यासिन अवकाश घनेरा। तिन उर चिन्ता नाहिं बसेरा॥
संन्यासिन उपदेश प्रभावा। जो कछु कहैं करहि सोई भावा॥

दो०—बिना प्रयोजन के कतहुँ, रहैं न काहू ठाम।
विद्या बल उन्नति करैं, जाइ जाइ सब ग्राम॥१३॥

जनक आदि राजर्षि की भाँती। बनि विदेह बैठें सुख माँती॥
करहिं सदा उपदेश प्रबीना। धारहिं विविध विचार नवीना॥
जो यह कहत फिरतदिन राती। धन न देहु संन्यासिन जाती॥
अरु ब्रह्मचारिन पान को बीरा। चोरन कबहुँ न दीजै धीरा॥
जो जग ढोंग रचे बहु फिरहीं। वस्त्र कषाय जो तनु पर धरहीं॥
अन्तर तिनहिं पहाड़ समाना। उदरभरनहितफिरहिंदिवाना॥
तिनहिं द्रव्य कबहूं ना दीजै। आदर काहु भाँति न कीजै॥
परउपकारकरतजे निशि दिन। जानिसु "इष्ट" देहु पुष्कल धन॥

दो०—गुरुकुल विद्यालय अधिक, खुलहिं जगत के बीच ।
मूरखता जग की मिटै, रहै न कोऊ नीच ॥१४॥

औरहु बात सुनहु मन लाई । जासों हो कल्यान सदाई ॥
जीवित पिता कार्य शुभ कीजै । नाम हेत चाहे कछु दीजै ॥
ब्रह्मचर्य बनि बनहि गृहस्थी । पुनरपि होवैं बानप्रस्थी ॥
तब संन्यास लेइ जग माहीं । जासों उत्तम कर्म सुहाहीं ॥
साधु गोसाईं बहुतक आवहिं । बनि संन्यासी जगत पुजावहिं ॥
ते संन्यासि जगत में नाहीं । फिरत पेटहित रहत सदाहीं ॥
वेद विरुद्ध चलहिं दिन राती । उदर भरहिं जन नाना भाँती ॥
यह यक मार्ग राज सम जानो । है परिव्राज सकल पहिचानो ॥

दो०—या संन्यास प्रकरण का, वर्णि कह्यो ऋषिराज ।
सोई हम तुम सन कह्यो, सुदिन मुहूरत आज ॥१५॥

इति श्रीमत्सत्यसागरमहर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वतीवर्णित वानप्रस्थसंन्यासकर्म वैद्य कविराज पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थ उपदेशक द्वारा विरचित गुरुशिष्य-संवाद पञ्चम तरङ्ग ॥ ५ ॥

(स० ५ स०)

अथ षष्ठ तरङ्ग (स० ६ स०)

राजधर्म

शिष्य

सो०—गुरुवर मो हित जान, बहुरि सुनावहु ऋषि कथा ।
मोर होहि कल्यान, गुरुवर सोई कीजिये ॥ १ ॥

दो०—जो कछु पूर्व कथा कही, सुनि सुख भयो महान ।
वर्णाश्रम के धर्म को, जानि प्रबल सुखदान ॥ १ ॥

राजधर्म की रीति सुहाई । सो मोहि बरणि कहौ गुरुराई ॥
तब गुरु कहत सुनहु चितलाई । कहिहौं प्रेम सहित समुझाई ॥
कह्यो ऋषीश्वर राज बिधाना । सोइ सुनहु तुम हिय धरि ध्याना ॥
एक समय बैठे ऋषिराई । आये तहाँ शिष्य समुदाई ॥
कुशल प्रश्न ऋषि पूछन लागे । प्रेम सहित हिय सों अनुरागे ॥
एक कहत सुनिये मुनिराई । कहहु सो राजधर्म समुझाई ॥
राज प्रथा हम देखत जोई । नाना भाँतिन की है सोई ॥
ताते यह भ्रम मोर छोड़ावहु । सत्य जो राजधर्म बतरावहु ॥

दो०—स्वामि कहत समुझाइकै, राजधर्म की रीति ।
बेद शास्त्र में जो लिख्यो, और मनू की नीति ॥ २ ॥

जिमि ब्राह्मण विद्वान जग, सब विधि ज्ञान सुजान।
न्याय सहित निन्दारहित, जानहि राज्यविधान॥ ३ ॥

राजा प्रजा परस्पर मिलहीं। तीन सभा जग निर्मित करहीं॥
विद्या धर्म समाजन हेता। राज सभा नर श्रेष्ठ निकेता॥
राजधर्म सब पालहिं नीके। करहिं सुकर्म सकल जगतीके॥
सभ्य सभासद होवें जहवाँ। कोउ दुष्कर्म रहै नहिं तहवाँ॥
राजा और सभासद दोऊ। करै जो कर्म मेल करि सोऊ॥
परम स्वतंत्र न राजा होई। जो मन भाव करै नृप सोई॥
यहि प्रकार जहँ राजा अहई। तहँ न कतहुँ कोऊ सुख लहई॥
ताते द्वौ मिलि कारज करिये। राजा प्रजा प्रेम नित भरिये॥

दो०–विजय युक्ति जानहि महा, और बढ़ावे मान।
जो गुन कर्म स्वभाव से, आदरणी गुणवान॥ ४ ॥

सभापती ताकहँ सब मानहु। वेद प्रथा यह सब कोउ जानहु॥
पुरुष जो यहि प्रकार के होहीं। तिनहिं सभापति करिये जोहीं॥
पालहिं राज धर्म ते नीके। पालहिं प्रजा जो हों शक्ती के॥
वेद कहत यहिविधि समुझाई। सुनहु सकल जन चित्त लगाई॥
तोप भुशुण्डि धनुष करबाला। है त्रिशूल शक्ती अरु भाला॥
नाना विधि आयुध महिपाला। मल्हन हेत रचैं बहु शाला॥
ये सब होत विजय के साधक। रहै न कोउ तहँनीति विघातक॥
दुखद जो निन्दित कारजकरई। सोसुखत्यागि दुःखबिच परई॥

दो०—जो शुभ गुन विद्वान जग, नीति निपुण बलवान।
वह राजा सुख लहत है, पावे यश अरु मान ॥५॥

इन्द्र समान लहै कल्याना। रक्षक प्रान जो वायु समाना॥
जानन हार हृदय की बाता। सूर्य समान सुःख को दाता॥
देत सदा दुष्टन सन्तापा। जिमि अग्नी नाशै करि दापा॥
चन्द्र समान जो शीतलताई। धन रक्षा कुबेर सुखदाई॥
ये गुण सहित सभापति होई। पावे राजप्रजा सुख सोई॥
बरणाश्रम के धर्म सुरीती। और चलावत शासन नीती॥
राजदण्ड सोइ शासन कर्ता। रक्षक रहत प्रजा दुखहर्ता॥

दो०—याते बुध जन जगत में, कहत धर्म एक दंड।
ताहि तजे सब दुखित हों, अरु बनि जात उदंड॥ ६॥

शासन प्रजा दंड से होई। राजकर्म की पद्धति सोई॥
ताते सुबुध बिचारत नीके। धारहु दंड तजहु भय जीके॥
बरण सु दूषित हो बिन दंडा। त्यागहिं सब मर्याद उदंडा॥
दंड छोड़ावहि पापिन पापा। होय सु मोह लोभ अरु दापा॥
शासक दंड हाथ विद्वाना। रहै सत्य रत जो बुधिमाना॥
देखहि धर्म अर्थ अरु कामा। पंडित सोइ राज शुभ कामा॥
मूरख राजा दंड जो धारहि। लम्पट ईर्षा दाह सम्हारहि॥
बुद्धिहीन जो राजा होई। महिमा दंड न जानत सोई॥

दो०—धर्म रहित जहँ दंड है, जात तहाँ को राज।
दुख पावत तेहि राज्य बसि, जेतो मनुज समाज॥ ७॥

जो सत पुरुष नीति युत होई । शासन माँहि परम हित जोई ॥
यह अधिपति शासक अधिकारी । तेहि आधीन राज्य सुखकारी ॥
धर्मात्मा सभापति होई । जाहि प्रधान कहत सब कोई ॥
दश विद्वान सभा के अहहीं । अथवा तीन सुबुध हो जहँहीं ॥
शासन तिनकर मानन योगू । जो सुख चहत पराभव लोगू ॥
न्याय शास्त्र अरु चारो वेदा । पढ़ै निरुक्त धर्म तजि खेदा ॥
राज सभा ते होहिं सभासद । मानहु बात चहहु जो आनँद ॥
धर्म सहित जहँ कारज होई । राज्य सभा है उत्तम सोई ॥

दो०—ऋग यजु साम अथर्व को, जानन वारो होय ।
करे व्यवस्था जो कछू, मानत मानव सोय ॥८॥

जो संन्यासी वेदन ज्ञाता । सभा मध्य तेहि मानहु बाता ॥
कोटिन पुरुष कहैं कोउ बाता । अबुध जानि नहिं मानहु ताता ॥
मूरख कोटिन मिलहिं सदाई । ताहि सभा नहिं मानत भाई ॥
विद्या धर्म सभा द्वै आई । राजसभा की रीति सुहाई ॥
मूरख एको संग न दीजै । बुध जन धार्मिक हों सो लीजै ॥
तीनों सभा जहाँ नहिं होई । बढ़ै अधर्म न जन सुख कोई ॥
ताते राजन धर्म न जावे । करि बहु यतन इनहिं समुझावे ॥
सुपथ चलै नृप हृदय विचारी । करै प्रजा ताकी अनुहारी ॥

दो०—ज्ञाता चारों वेद को, सहित ज्ञान अरु कर्म ।
होहिं सभासद राज के, जानहिं सारे मर्म ॥९॥

न्याय दंड आतम त्रय नीती । करहिं जो ईश गुनन सों प्रीती ॥

विद्या ब्रह्म लोक कुल रीती। जानहिं राज काज की नीती ॥
राज सभा सोइ राजा होई। पालहिं प्रजा प्रेम युत जोई ॥
जिते सभासद और सभापति। इन्द्री जीति चलत अपनी गति ॥
करहिं धर्म नित प्रेम समेता। त्यागहिं अधरम रीति सचेता ॥
याते निशि बासर मन लाई। योगाभ्यास करहु सुखदाई ॥
निज तन की जो प्रजा सोहाई। मन अरु प्राण इन्द्रि समुदाई ॥
निज तन प्रजा वश्य जब करिहौ। शासन प्रजा तबै चित धरिहौ॥

दो०—जौ लगि इन्द्रिय नेम सों, करै न वश महिपाल।
तौ लगि है सोहत नहीं, राज चिह्न तेहि भाल ॥१०॥

दश गुन काम निकारहिं जियके। क्रोध अष्ट गुन दुष्ट व्यसनके ॥
जो फँसि जात व्यसन के माहीं। निसरनकठिनरीति जगआहीं॥
ताते सकल छोड़ावहु फंदन। छोड़त व्यसन होय तन कुंदन ॥
जो जग दुष्ट व्यसन दस अहहीं। उतपति काम होत जन लहहीं ॥
इनमें राज पुरुष जो फँसई। खोवे धन सम्पति दुख लहई ॥
तिनके नाम सुनहु चितलाई। काम ते उत्पति जे दर्शाई ॥
नित नव खेलन जात शिकारा। करत सदा मन द्यूत विचारा ॥
चौपड़ शतरँज और गँजीफ़ा। ताश रमल जो खेल जईफ़ा।

दो०—दिवस शयन अरु रति कथा, अधिक त्रियन को संग।
गाँजा, चरस, अफीम अरु, खाय तमाखू भंग ॥११॥

अरु प्रति क्षण जन निंदा करहीं। नाचत गावत जे नित रहहीं ॥
औरहु नाच जो देखहि कोई। इत-उत भरमतविर्था सोई ॥

क्रोध आठ गुन कहत बुझाई । नाश शरीर होत तेहिं भाई ॥
चुगलि करन अरु साहस द्रोहा । अर्थ, दोष, ईर्षा, मद, मोहा ॥
पारुषता अरु बाणि बिकारा । ये उत्पति हों क्रोधधिकारा ॥
काम क्रोध अरु लोभ सदाई । त्यागि देहु सब जन हर्षाई ॥
मद्य द्यूत पर नारि सुप्रेमा । अरु मृगया युत चारि अनेमा ॥

दो०—काम क्रोध के दोष यह, कठिन महा विख्यात ।
पड़ौ न कहुँ भ्रम जाल में, बचिए इनसों तात ॥१२॥

यह समुझहु निश्चय तुम भाई । मृत्युश्रेष्ठ व्यसनन ते आही ॥
बाढ़ै व्यसन पाप अधिकाई । दुष्ट कर्म सब होत सदाई ॥
राजा प्रजा उचित अस भाई । चलहिं सुधर्म अधर्म बिहाई ॥
राज सभा यक मंत्री होई । औरहु आठ चतुर नर जोई ॥
वेद प्रथा सब जानन हारे । शूर बीर बुध पंडित न्यारे ॥
राज काज मंत्री बिन नाहीं । जो साथी सुख दुख के माँहीं ॥
ताते उचित सभापति भाई । राज सभा संगठन बनाई ॥
कबहुँक संधि कबहुँ विग्रह हित । देखहिं स्थल काज यथोचित ॥
रक्षा राज्य करै दिन राती । करहि शत्रु हित नाना भाँती ॥

दो०—राज्य जो है अधिकार में, तहाँ शान्ति बहु होय ।
राजमंत्रि राजा सदा, हृदय विचारत सोय ॥१३॥

निज निज पृथक विचार बतावहिं । बहु सम्मति सों निर्णय पावहिं ॥
आलस रहित सुबल बुधिवाले । अनुचर करै प्रजा को पाले ॥
जो अति शूर वीर बलवाना । सहित सुप्रेम होयँ दरबाना ॥

जे निर्बल अति भीरु लखाहीं । तारहूँ काज देहु घर माँहीं ॥
जो उत्तम कुल चतुर सुहावा । चेष्टा देखि सो जानत भावा ॥
जानहिं होनहार की बाता । चतुर विशारद शास्त्रनज्ञाता ॥
राज कार्य में हो उत्साही । प्रीतिसहितनिष्कपटसदाही ॥
आत्म पवित्र समय को देखत । बात सुनी कबहूँ नहिं ठेलत ॥

दो०—रूपवान निर्भय सदा, वक्ता जानि महान ।
राज दूत वह होवहीं, नीति कर्म सुखदान ॥१४॥

छं०—शुभ राज्य दंड बनाइ सब मिलि न्याय को जियधारई ।
सोई सभासद औ सभापति दूत भेद जो लावई ॥
सब मिलि परस्पर प्रेम युत जन दुष्टता को नाशई ।
निजशत्रु राजन नीतिजानि सो यत्नतिन हित भावई॥१॥
वन बाग उपवन वाटिका बनवाइ सुख कीरति चहैं ।
अरु कठिन दुर्ग बनाइ विधि सों सैन्य चारों दिशिलहैं ॥
गिरि होय चारहु ओर गढ़ के नाहु जल सरिता बहै ।
बनवाइ चारों दिशि नगर के कोट जो कहुँ ना ढहैं॥२॥

दो०—एक पुरुष ही कोट से, करै सुशत सों युद्ध ।
शत सहस्र सौं भिरत हैं, कोट शिखर सन्नद्ध ॥१५॥

जो धन धान्य दुर्ग के माहीं । बाहन शस्त्र शास्त्र निपुणाई ॥
पाठक ब्राह्मण अरु उपदेशा । शिल्पकार अरु यंत्र विशेशा ॥
पशुन हेतु राखहु बहु चारा । जल सम्पन्न कोट बिस्तारा ॥
मध्य कोट वाटिका मनोहर । ऋतुअनुकूलकरहिसबआदर॥

श्वेत बरण गृह भवन रचावें । राजकाज अरु सब सुख पावें ॥
राजा एक नारि व्रत होई । कुल मर्याद बिचारहि सोई ॥
जाति अगम्य अन्य की नारी । माता पुत्रि समान निहारी ॥
करै कुदृष्टि न राजा सोई । राजा प्रजा परमहित होई ॥

दो०-पुरोहित ऋत्विज नेह सों, अग्निहोत्र के हेत ।
नित्य हवन यज्ञेष्टि सब, करि उपदेश जो देत॥१६॥
राजकाज में मगन नित, पालहिं प्रजा सप्रीति ।
राजद्रोह नहिं काहु सों, चलै धर्म की नीति ॥१७॥

राज चलावन के हित भाई । वार्षिक कर बाँधें सुखदाई ॥
नृपति सभापति वेदनुकूला । पितु समान ह्वै नाशहि शूला ॥
राज्य काज जो श्रेणी अहहीं । प्रति श्रेणी अध्यक्ष जो रहहीं ॥
देखहिं सबके काम सप्रीती । न्याय दंड की राखहिं नीती ॥
वेद प्रचार कोष जो भाई । अक्षयरूप सु राखहु ताही ॥
गुरुकुलबसिअस्नानकआवहिं। ते हितसोंधनसबविधिपावहिं॥
क्षत्रिय ह्वै रन पीठि न देई । ह्वै सन्मुख बहु युद्ध करेई ॥
युद्ध कर्म की नाना रीती । करत सुशत्रुन हित बहुनीती ॥

सो०-शत्रु पीठि ना देइ, समर भूमि जब जा डटे ।
गुप्त शत्रु से होइ, जब कोउ और उपाय नहिं ॥२॥

दो०-विना विचारे जो जरैं, क्रोध अग्नि के माहिं ।
जिमिअभिमानीसिंहजग,बिनविचारफँसिजाहिं॥१८॥

जो न होहि सनमुख रन आई । अहै नपुंसक सो नर भाई ॥

जोरहिं हाथ सामुहे आई। बाल खुले अरु बैठहिं धाई ॥
अरु यह कहहिं शरण मैं आयो। मुरछित सोवतनगन गनायो ॥
आयुध रहित शत्रु के साथी। शस्त्र विघात परे मनु जाती ॥
जो कोउ युद्ध भूमि को देखै। मारग सत् पुरुषन को पेखै ॥
इनसों युद्ध करै ना बुधवर। अबुध अबोध होय कोऊ नर ॥
त्यागि स्वामि शरणागत आवै। ताकहँ सब बिधिसों अपनावै ॥
अस विचार क्षत्रिन के माहीं। हिय धारहिं यह नेम सदाहीं ॥

दो०—राज्य वस्तु के प्राप्ति हित, करै यत्न बहु वार।
जन असमर्थ अनाथ की, रक्षा करै सम्हार ॥१९॥

नित पुरुषार्थ करै बहु भाँती। जासो धन बल बाढ़ै जाती ॥
छल न करै काहू सों भाई। ह्वै निष्कपट रहै सब ठाईं ॥
निज रक्षा हित करहि उपाई। शत्रु हेत छल बल निपुणाई ॥
शत्रु छिद्र निशि बासर देखै। करहिं प्रवेश न सो विधि पेखै ॥
राजनीति राखहिं यहि भाँती। कच्छप कीअवलोकिय जाती ॥
अर्थ हेत बक गति को देखै। शत्रुन हेत सिंह क्रम पेखै ॥
राज्य मध्य यदि डाकू चोरा। तिन कहँ दण्ड देइ बरजोरा ॥
जो प्रानी मन लोलुप धरहीं। नृपतितिनहिंनिजवशमेंकरहीं ॥

दो०—रक्षा राज्य करै सदा, दंड दुष्ट को देइ।
जिमि जगचावललेन हित, भूसो दूरि करेइ ॥२०॥

औरत रहत मोह अविचारा। सोई नृपति लहै दुख भारा ॥
नष्ट होत जीवन तेहि नृप को। ह्वै करभ्रष्टफिरहिजगभटको ॥

कृषत किये तनु सूखत प्राना । विधिसोइराजप्रजाहितमाना ॥
जो कोउ प्रजहिं देहि दुख भाई । सूखि जात मद मान नसाई ॥
यहिविधि यतन करै सोइ भाई । प्रजहिं दुःख होवे कछु नाँई ॥
यक यक ग्राम केर जो नेता । पहुँचावहिंदशपतिहिंनिकेता ॥
दशपति विंशपती के पासा । गुप्त चरित पहुँचावत दासा ॥
छन्द–शत ग्राम के बिच राज थापहि भृत्य योग्य सुराखई ।
अरु ग्राम ग्राम बनाय संघ प्रधान एक सुहावई ॥
यहि भाँति दस-दस ग्राम बिच यक राजपुरुषसुराजई ।
बहुराजकेन्द्र बनाइ बिधिसों नीति को उर धारई ॥३॥
दो०–पुनि सब प्रांतन की कथा, पहुँचै नृप के पास ।
सर्व देश की सभा करि, यत्न करै सुखबास ॥२१॥
विद्या सभा होहिं बहु ठामा । जासु प्रताप लहैं सुखधामा ॥
राज काज शुभ नीति विचारी । करहिंनृपतिजोसबहितकारी॥
धन जो गुप्त लेय अधिकारी । तेहि छीने सर्वस्व सम्हारी ॥
राज दण्ड देवै बहु भाँती । ताते पुनि कोउ होय न घाती ॥
पूरन ध्यान देय नृप भाई । अनुचर रक्षा करत सदाई ॥
सुखमय प्रजा होय जेहि भाँती । दोउ मिलिकर बाँधै सुखमाती ॥
जो सुख सहित प्रजा कर देई । ताकहँ नृप आदर सों लेई ॥
लखिनिजलाभ प्रजहिं दुखदेई । नष्ट होत नृप अपयश लेई ॥
दो०–नृपति सदा ही कार्य को, देखहि सुख के हेत ।
दुष्टन देवै दण्ड नित, सुजनन को सुख देत ॥२२॥

जासु राज्य बहु डाकू चोरा । नित प्रति कर्म करैं घर फोरा ॥
तहँ के शासक मृतक समाना । जीवित सहत रहत अपमाना ॥
याते धरम सहित निशि वासर । पालन प्रजा करै बहु आदर ॥
और करै नित नेह सप्रीती । वेद्विहित कुलधर्म सुनीती ॥
पाछिल पहर रात्रि के माहीं । उठि के शौच करै सुखदाहीं ॥
पुनि स्नान करै हितकारी । सन्ध्या करै प्रेम हिय धारी ॥
अग्निहोत्र सुखमूल सुहावा । करहि प्रेम सों जो हिय भावा ॥
तब पुनि राजसभा को जाई । प्रजहि मान दै करै बड़ाई ॥
सो०—पुनि एकांत में जाय, बैठहि मंत्रिन सहित नृप ।
करि बिचार सुखदाय, पावन परउपकार हित ॥ ३ ॥
मंत्रिन सहित बिचारहि नीती । राजप्रथा की है जो रीती ॥
नृपति राखि यह निज मन ध्याना । विग्रह[1] संधि[2] सुआसन[3] याना[4] ॥
द्वैध[5] सु संश्रय[6] यह पट कर्मा । जानि यथावत सबको मर्मा ॥
हैं इन कर्मन की द्वै भाँती । युद्ध माँहि नृप रीति सुहाती ॥
निबल शरीर क्षीण तनु होई । हित लखि मित्र जो रोकैं कोई ॥
सो नृप बैठ रहै मन मारी । विविध भाँति "आसन" उचारी ॥
प्राप्त होय कोउ काज यकायक । मित्र सहित जो जावे नायक ॥
है वह "यान" नीति के माहीं । करि विचार देखहु मन माहीं ॥

---

१ दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना । २ उनसे मेल कर लेना । ३ स्थिरता । ४ शत्रु से लड़ने के लिये जाना । ५ दो प्रकार की सेना करके सन्धि कर लेना । ६ निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का सहारा लेना ।

करिके मेल "सन्धि" नृप करई। अथवा विजय माँहि जिय धरई॥

दो०—अर्थ हेत निज हाथ सों, अथवा मित्र सुसंग।
"विग्रह" की विधि जानि कै, करहु राजदुख भंग २३॥

द्वै विधि भाग सेन कर करई। जीतब शत्रु बात उर धरई॥
"द्वैध" ताहि मानत जग नीके। संश्रय सुनहु प्रेम सों ही के॥
जो निज अर्थ शरण में जाई। महा पुरुष बलवान सुहाई॥
इनहिं समय विचारहि राजन। युद्धनीति को करिये साधन॥
नाना भाँति युद्ध नृप करहीं। जेहिविधि शत्रु मान मद हरहीं॥
देखहु मत शास्त्रन को भाई। युद्धक्रिया केहि भाँति बताई॥
नाना भाँतिन व्यूह बनाये। युद्ध हेत जे परम सुहाये।॥
सैनिक होहिं नृपति हितकारी। सेना-पति होवै बलकारी॥

दो०—शस्त्र जो नाना भाँति के, राखहि नृपति महान।
सन्मुख युद्ध करैं महा, सैनिक जेहि गुनवान॥२४॥

"दंड"[1] "वराह"[2] "शकट"[3] जे व्यूहा। "मकर"[4] सु "सूची"[5] व्यूह समूहा।

---

१ दण्ड व्यूह—दण्ड के समान सेना को बनावे।

२ वराह व्यूह—जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं, कभी कभी मिलकर एक झुंड हो जाते हैं।

३ शकट व्यूह—जैसे शकट अर्थात् गाड़ी के समान।

४ मकर व्यूह—जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे।

५ सूची व्यूह—जैसे सुई का अग्रभाग सूक्ष्म और पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है इसी उद्देश्य से सेना को बनावे।

"नीलकंठ"[1] अरु चक्र[2] बनावे। वज्र[3] व्यूह रचना देखरावे॥
समर मध्य की विधि सुखदानी। मनू शास्त्र ने कह्यो बखानी॥
भूमि अकाश और जल सेना। राखहु जो जेहि भाँति जुझेना॥
धर्म सहित सोइ यतन करीजै। दुष्टन हिये बुद्धि बल दीजै॥
जो यहि भाँति न समुझे भाई। को कहिये बहु प्रीति दृढ़ाई॥
ताही विधि जो मानत नाहीं। यथातथ्य कहिये तेहि ठांहीं॥
मित्र शत्रु गति जानहि जोई। दुख न लहै बहुविधि सुख होई॥

दो०-निज बल देखि सदा नृपति, करै शत्रु व्यवहार।
राज काज निज कर्म में, करै मित्र सो प्यार॥२५॥

नृपति प्रात जागै हर्षाई। वैदिक कर्म करै सुखदाई॥
संध्या आदि नित्य जो कर्मा। करहिं प्रेम सों है जो धर्मा॥
पुनि नृप मंत्रि सहित तहँ जाई। देखहिं कोष सैन्य समुदाई॥
नाना भाँतिन युद्ध की रीती। करहिं सकल अभ्यास सप्रीती॥

---

१ नीलकण्ठ व्यूह—ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर बढ़ावे। जिधर भय विदित हो उधर सेना को फैलावे।

२ चक्रव्यूह अर्थात् पद्म व्यूह—चारों ओर सेना रक्खे और आप बीच में रहे जिधर से विशेष भय हो उधर ही मुख रक्खे। बहुत नृप जो किसी प्रकार की शंका रखते हों वह चारों ओर रहें ताकि सिवा सामने के फाटक के और किसी ओर शत्रु न आ सके और आनें बाद दूसरा कोई रास्ता निकलने का न हो।

३ वज्रव्यूह—जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर काट करता है वैसे युद्ध करते जायँ और प्रविष्ट भी होते चलें।

पुनि गृह जाय करै आहारू। हविष अन्न सुन्दर सुख सारू ॥
मादक द्रव्य त्याग नृप करई। मांस मद्य बुधिनाशक अहई ॥
औरहु मादक हैं बहुतेरी। जाकहँ कहत सकल मुनि टेरी ॥
सो कहिहौं पुनरपि समुझाई। धर्म सहित जो नीति सुहाई ॥

दो०-यहि प्रकार कर बाँधई, प्रजा दुखित नहिं होय।
पिता पुत्र सम्बन्ध है, करि हित राखहि सोय ॥२६॥

राजनीति औरहु सुखदाई। देखहु मनुस्मृती को भाई ॥
अष्टम और नवम अध्यावा। तेहि अवलोकहु परम सुहावा ॥
राज काज अष्टादश अहही। जो अपराध मनू ऋषि कहही ॥
प्रथम एक 'ऋणदान' कहाई। लेन देन अपवाद जो गाई ॥
है 'निश्क्षेप' दूसरो भाई। वस्तु धरोहरि लेत दबाई ॥
विना स्वामि बेचे कोउ दूसर। है 'अस्वामि विक्रय' यह तीसर ॥
'हिलमिलकेअपराध'जोकरई। चातुर्थिक यह है जिय धरई ॥
पंचम 'देनहार ना देई'। जो कि धरोहर राखहिं तेई ॥

दो०-करहि चाकरी काहु की, तामें होय विवाद।
वेतन नाहीं देत है, देत तो न्यून देखात ॥२७॥

सत्य प्रतिज्ञा भङ्ग जो करई। कहै जो कुछ तेहि सम ना चलई॥
अष्टम क्रय विक्रय के माहीं। लेन देन बिच झगड़ा ठाहीं ॥
नवम पशू के स्वामी संगा। पालनवारो करत जु दङ्गा ॥
दशम विवाद सुसीमा केरा। करहि मेड़ हित लड़हि सुबीरा ॥
एकादश काहू को भाई। देहि कठोर दंड तन ताई ॥

द्वादश बचन कठिन जो बोलत । ह्वै अपराधी जग में डोलत ॥
असत बचन नितकर बकवादा । करहिसदासुजननअपवादा ॥

दो०—जे जन चोरी करत हैं, औ नित डाका डारि ।
तिनहि मिलहि अति दंड जग, तेरह के अनुसारि ॥२८॥

जो बलात् जग कारज करहीं । दंड चतुर्दश के सम भरहीं ॥
नरअरुनारिकरहिं व्यभिचारा । पंचादश अपराध उचारा ॥
धर्मविरुद्ध नारि नर करहीं । हियबिचउलटित्यागको धरहीं॥
षोड़श सोई न्याय की धारा । परम पुरुष मनु ने उचारा ॥
दशम सात नर नारि विभागा । दाय भाग नृप वर्णन लागा ॥
अष्टादश में द्यूत बखानत । दाँवजोचेतनकोधरि आवत ॥
ये अष्टादश हैं व्यवहारा । धर्मसहितनृपकरहिसम्हारा ॥
जासु सभा में धर्म न होई । मरे सभासद जानहु सोई ॥

दो०—धर्मवन्त जे नर जगत, सभा मध्य नहिं जाँय ।
जो जावहिं तो सत्यही, कहैं सुनैं समुझाय ॥२९॥

जासु सभा में सत्य की ठाईं । होय असत्य सकलमन भाई ॥
सबके देखत ही सो भाई । आनहु सकल मृत्यु नगिचाई ॥
तहँ पर धर्म रहै कछु नाहीं । अरु अधर्म फैले सब ठाहीं ॥
तेहि स्थल रक्षा नहिं होई । करै उपाय चहै जग कोई ॥
धर्महि ते रक्षा नर केरी । होत सदा मुनिगनकहटेरी ॥
ताते धर्म करौ मन लाई । आवे सुख सम्पति सब धाई ॥
नाशहि धर्म सो वृषल कहावे । सदा शूद्र की पदवी पावे ॥

धर्म लोप कबहूँ नहिं करिये। धर्महि संग जात अनुसरिये ॥

दो०—वस्तु जो है संसार में, छूटहि तन के साथ।
केवल धर्महि रहत है, सदा जीव के हाथ ॥३०॥

सो०—होत महा अन्याय, जासु नृपति के राज्य में।
चारि भाग ह्वै जायँ, अधरम के तेहि ठाम पर ॥४॥

'नृपति''सभासद''साक्षि'समेता। 'करता' केर कर्म है जेता ॥
भोगत चारो हैं तेहि भाई। धर्म प्रथा तहँ जात बिलाई ॥
जासु सभा यह नियम अनूपा। जो जस पुरुष तासु अनुरूपा ॥
जो स्तुति के लायक होई। ताकी स्तुति करत सँजोई ॥
जो नर निन्दा योग्य लखाई। ताकी होत न कबहुँ बड़ाई ॥
जो है मान करन के योगा। ताको मान करत सब लोगा ॥
जो है दण्ड केर अधिकारी। तिनहिं दण्ड देवे अति भारी ॥
तहँ पर नृपति सभासद जेते। रहित पाप पावन हों तेते ॥

दो०—कर्ता का ही पाप हो, नीति यहै मर्याद।
सुनहु सुसाक्षिन की प्रथा, कहत ऋषी सुखसाद ॥३१॥
धर्मवान बिद्वान नर, सब वर्णन के बीच।
लोभ रहित निष्कपट हों, होहि न दुष्ट न नीच ॥३२॥

सदा सत्यवादी जो होहीं। तिनहिं करैं साक्षी सब जोहीं ॥
जो चोरी व्यभिचार बलाता। बचन कठोरहु दण्ड निपाता ॥
साक्षी परख न इन महँ करई। बहुसम्मतितहँपर अनुसरई ॥
साक्षी द्वै प्रकार जग माहीं। देख्यो सुन्यो सत्य जो आहीं ॥

साक्षी बचन झूठ जो बोलहिं । ताकहँ दण्ड सभापति देवहिं ॥
असम्बद्ध जो बोलहि बचना । ताहिसभापतिकरहिनरचनो ॥
न्यायाधीश्वर[2] प्राडविवाका[3] । पूछहिं साक्षिन कर्मको खाका[4] ॥
जे जग कहहिं सत्य प्रिय भाई । पावहिं सद्‌गति ते सुखदाई ॥

दो०—सत्य व्रती जे पुरुष जग, ते सुख लहत महान ।
यश पावहिं संसार में, अन्त समय सुखदान ॥३३॥

लोभ मोह एकत्व के कारन । जो नर करत सत्य उचारन ॥
वह यह जानि लेहि मन माहीं । है प्रभु अन्तर्यामि असदाहीं ॥
पाप पुण्य सब देखनहारा । तेहिढिगनिसिबासर उजियारा॥
लोभ मोह भय मित्र के हेता । काम क्रोध अज्ञान अचेता ॥
इनकी साक्षि न मानहिं कोई । मिथ्या समुझि रहैं हिय गोई ॥
मिथ्या साक्षि देय नर जोई । तिन पर दंड कह्यो मनु सोई ॥
लोभ से झूँठ गवाही देई । पन्द्रह दश आना तेहि लेई ॥
कहैं असत्य मोह फँसि जोई । तापर दण्ड तीन छि होई ॥

दो०—स्मृति नशत है मोह सों, तेहि पुनि बुद्धि नशात ।
बुद्धि नशे नर नशत है, यह जग रीति लखात ॥३४॥

भय से असत सभा के माहीं । कहै कोउ जो बात बनाई ॥
तापर दण्ड सवा छे कीजै । मित्र हेत पर द्वादश लीजै ॥
कछुक विधी यहि स्थल भाई । दण्डविधान तुम्हें समुझाई ॥
राजदण्ड की बिधि बहु भाँती । देखहु मनु अध्याय की पाँती ॥

---

१ लिखाई । २ न्यायकर्ता । ३ वकील । ४ समाचार ।

सप्तम अष्टम नवम बिलोकहु । पुनिनवनीतिमाहिंअवलोकहु ॥
निजनिजसमयजोहोअधिकारी। करै समय अनुकूल विचारी ॥
यह संक्षेप रीति से भाई । राज धर्म पद्धति बतराई ॥
जेहिविधि पूर्व ऋषिन ने कहेऊ। हमहूँ दयानन्द सों सुनेऊ ॥
सो०-सोइ तुम्हारे हेत, कह्यो शिष्य समुझाय कै ।
जग उपदेश सुदेत, नशहि जाहि सों दुष्टपथ ॥ ५ ॥

शिष्य

दो०-गुरुवर अति सुख पायऊ, सुनि शुभ कथा प्रसंग ।
ऋषिवर की सुनि सुनि कथा, बाढ़तहियेउमंग ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्सत्यसागरमहर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वतीवर्णित
राजधर्मविषय वैद्य कविराज पं० गदाधरप्रसाद
वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित
गुरु शिष्य संवाद षष्ठ तरङ्ग
(स० ६ स०)

अथ सप्तम तरङ्ग (स० ७ स०)

ईश्वर और वेद

शिष्य

दो०—राजनियम को भेद सुनि, भयो तोष उर माहिं ।
ईशभक्ति के भेद को, नाथ कहहु समुझाहिं ॥१॥

गुरु

दो०—एक समय ऋषिराज ढिग, भये शिष्य आरूढ़ ।
पूछत परम स्नेह सों, प्रश्न करत अति गूढ़ ॥२॥

सोई कथा सुनहु चित लाई । कहिहौं प्रेम सहित समुझाई ॥
शिष्य एक अति चतुर सुहावा । पूछन चहत ईश को भावा ॥
देखि स्वामि रुख बोलन लागा । नाय माथ हिय अति अनुरागा ॥
बन्दि चरण गुरु ढिग सो जाई । हाथ जोड़ि पुनि माथ नवाई ॥
छमहु नाथ यक मोर ढिठाई । पूछहुँ ईशभक्ति निपुणाई ॥
निराकार निर्गुण सुख रूपा । है जग व्यापक परम अनूपा ॥
यहि प्रकार जग मानत कोऊ । मानत ईश न है जग सोऊ ॥
कोऊ कहत प्रभु नर दुख हेता । लेत मनुज तनु परम निकेता ॥

दो०—अरु कोउ कहत गुरू है, देव सीख महराज।
औरहु नाना भाँति सों, कहत रहत द्विजराज ॥ ३ ॥
सो०—याते दीनदयाल, मम ऊपर कीजै कृपा।
मैं न पड़ूँ भ्रमजाल, सोई बिधि प्रभु कीजिये ॥ १ ॥

जेहि प्रकाश गुण कर्म स्वभावा। विद्या वारिधि लोक प्रभावा ॥
व्यापक सोई जगत में जानो। परमेश्वर सुखरूप बखानो ॥
"इष्ट" ईश जो जानत नाहीं। नास्तिक सुबुध कहैं तेहि काहीं ॥
ते डूबत दुखसागर माहीं। पावत कतहूँ सुःख सो नाहीं ॥
कहहुस्वामि पुनिमोहिंसमुझाई। वेद कहा बहु ईश बताई ॥
कहत स्वामि अतिही हर्षाई। पूछेहु परम चरित्र सुहाई ॥
सोई प्रश्न अहैं जग नीके। नशहिं कुभाव सदा ही जी के ॥
ईशभक्ति दुर्लभ जग माहीं। बिन सत्संग न पावे ताहीं ॥

दो०—चारों वेदन के विषे, नहिं हैं ईश अनेक।
परम पुरुष जगदीश जग, है रक्षक वह एक ॥ ४ ॥

नाम अनेक देवतन केरे। लिखे वेद में हैं बहुतेरे ॥
सुनहु कान दै यह प्रभुताई। दिव्य सुखद गुण देव कहाई ॥
देव दिव्य गुण जानत रहहीं। महादेव प्रभु को सब कहहीं ॥
है सोई जग सिरजनहारा। निशिवासर सबका रखवारा ॥
ब्रह्म रात्रि जग परलय कर्ता। न्यायाधीश सकल दुख हर्ता ॥
यहि प्रकार वेदन के माहीं। ईश नाम गुण कर्म सुहाहीं ॥
यहि बिधि तेंतिस देव बखानत। शतपथ ब्राह्मण में यह भाषत ॥

तेंतिस कोटि देवतन केरी। सुनहु सुनावहुँ कथा घनेरी॥

दो०—'अग्नि''वायु''आकाश''जल,''अवनी''चन्द्र''नक्षत्र'
'सूर्य' सहित हैं आठ बसु, सृष्टि त्रिषय यह तंत्र ॥५॥

'प्राण''अपान''उदान''समाना'।'नाग''कूर्म''कृकल'अरु'व्याना'
'देवदत्त' औ 'धनंजय' जानहु।सहित 'जीव' यह रुद्र बखानहु॥
देखि वियोग रुदन बहु करहीं। ताते रुद्र इनहिं जग कहहीं॥
'द्वादश' मास जो संवत आई। है आदित्य सुनहु चितलाई॥
'विद्युत' (इन्द्र) बखानत वेदा। 'यज्ञ'(प्रजापति)है तजि खेदा॥
ये गुणवान् सु तेंतिस देवा। चौंतिस परमातम लखि लेवा॥
तेहि प्रभु की कीजे शुभ सेवा। "इष्ट" कर्म जो चाहत लेवा॥
वेद सदा यह भाषत नीके। भजहु ताहि भ्रम त्यागहु जी के॥

दो०—ईश वचन को प्रेम सों, सुनहु सुसज्जन वृन्द।
भक्ति करैं ता ईश की, छूटैं सब जग द्वन्द॥ ६ ॥

मम प्रकाश है सब जग माहीं। सूर्य समान बिलोकहु ताहीं॥
जो पथ वेद चलत दिन राती। ताकहँ दुख न होत कोउ भाँती॥
ईश करत सब जगकी रचना। पालन प्रलय करतजिमिसपना॥
ताते सुनहु सकल चितलाई। सदा ईश है जग सुखदाई॥
जग उपजाय करत रखवारो। एक स्वामिसब जगसुखकारी॥
तेहिप्रभु की स्तुति दिनराती। करहि सदा जग मानव जाती॥
यह ऋषिराज कहहु समुझाई। ईश सिद्धि केहि भाँति सुहाई॥
जग प्रत्यक्ष प्रमाण सुहाई। ज्ञान कर्म जो है निपुणाई॥

दो०—जग प्रत्यक्ष प्रमाण से, ईश्वर जानो जात।
बहुरि शिष्य वर्णत भयो, यह न न्याय मर्याद ॥ ७ ॥

तबऋषिकहतसरलमृदुबानी। गौतमऋषि की सुनहु कहानी ॥
इन्द्रिय मन सुख दुख समुदाई। हो उत्पन्न ज्ञान सुखदाई ॥
सोई है प्रत्यक्ष प्रमाना। गुन उत्पत्ति होत जग जाना ॥
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धा। ज्ञान, ब्रह्म तेहि छोरत फन्दा ॥
मन प्रत्यक्ष होत जेहि भाँती। ईस लखहु प्रत्यक्ष सुहाती ॥
जीव जबै इन्द्रिन ते छूटत। दिव्य ईश पदवी तेहि सूझत ॥
बहुरि कह्यो समुझावहु भाई। देश विशेष कि व्यापक साँई ॥
स्वामि कह्यो व्यापक जगराई। अन्तर्यामि रूप दर्शाई ॥

दो०—जगदीश्वर करुणायतन, दुखनाशक भगवन्त।
सत चित आनँदरूपप्रभु, नहिं पावत कोउ अंत ॥ ८ ॥

जो न होत व्यापक जगदीशा। तो सर्वत्र होत किमि ईशा ॥
निराकार अथवा साकारा। ईश्वर के गुन करहु उचारा ॥
तब स्वामी समुझाइ सुनीती। निराकार प्रभु की जो रीती ॥
जो ईश्वर मानहि साकारा। तौ व्यापक केहि भाँति उचारा ॥
जब व्यापक नहिं होवे साँई। तौ सर्वज्ञ कहा दर्शाई ॥
एक बात औरहु सुनि लीजै। जो है नाप[1] तौल लखि लीजै ॥
जो परिमित है जग में भाई। ताके गुन परिमित दर्शाई ॥

---

१ परिमाण।

दो०—ईश्वर स्तुति से सदा, निज गुन होत पवित्र।
सद् विचार की वासना, प्रकट होत सर्वत्र ॥ ९ ॥

कोउ अस कहत जगत के माहीं। प्रकटत निज इच्छा तनु माहीं॥
पहिले निराकार ही रहेऊ। ह्वै सकार पीछे को गयऊ॥
याते निश्चय करिये भाई। निराकार ईश्वर सुखदाई॥
शिष्य एक बोल्यो पुनि ताता। है कह शक्तिमान जग त्राता॥
कहेउ स्वामि सुनिये चितलाई। ईश्वर की गति परम सुहाई॥
ईश अनादि सकल गुणखानी। जसहम पाछिल कहेउ बखानी॥
पाप पुन्य फल देत सदाई। जेहि जीवन हो करहि उपाई॥
स्तुति तासु करहु चितलाई। सहित प्रेम भक्ती मन लाई॥

छं०—बलवान व्यापक शुद्ध अन्तर्यामि नायक ईश है।
सर्वज्ञ और अनन्त बुधवर स्वयं सिद्ध कवीश है॥
अरु है सनातन दिव्य निर्गुण काय रहित मुनीश है।
नहिं बिधत नारिन बीच निष्पापी सदा जगदीश है॥ १॥
जो अर्थ हमरो होय प्रभु तेहि तुरत तुम पूरन करौ।
निशि द्योस आठौ याम हमरे काज सब हिय में धरौ॥
मोहिं जानि निज अनुचर दयानिधि दुःखवेगि सबै हरौ।
बहु भाँति भक्ती प्रेमसों प्रभु विनय निशि वासरकरौ॥ २॥

दो०—स्वप्रकाश जगदीश प्रभु, ताहि भजत विद्वान।
बुद्धि हेत निशिवासरहु, हमहु भजे धरि ध्यान॥ १०॥

हे ऐश्वर्य-वान जग-राई। मोहिं ऐश्वर्य्य देहु सुखदाई॥

बलयुत नाथ बिलोकहुँ तोही । दीजे बल जेहिँ मम हित होई ॥
तुम समरत्थवान जग स्वामी । सो मोहिँ देहु जानि अनुगामी ॥
देत सदा दुष्टन को दण्डा । जासो कोउ नहिँ होत उदंडा ॥
सहन शक्ति प्रभु दीजै मोहीं । जेहि अपराध कतहुँ नहिँ होहीं ॥
जो मन जागत जावहि दूरी । तैसेहि सोवत जात जरूरी ॥
हे प्रकाश मय जीवननाथा । करहु दया मोहिँ जानि अनाथा ॥
नाथ कृपा अस मो पर कीजै । मो मन शुभ संकल्पहि दीजै ॥

दो०—जेहि प्रकाश विद्वान नर, करत रहत शुभ कर्म ।
सोई मो मन में बसै, शुभ संकल्प जो धर्म ॥११॥

नशहि सदा मन की अकुलाई । रहै शान्तमय परम सोहाई ॥
जो मन शुद्ध होय बहु भाँती । जासों भ्रमत रहत दिन राती ॥
जो है कठिन चेतावन हारा । तेहिवृतिकरत सकलउजियारा ॥
ताको शुभ संकल्प बतावहु । जेहि न फँसै सो यत्न सिखावहु ॥
यहिविधिप्रभुस्तुतिदिनराती । करहि सो पावे सुख बहुभाँती ॥
ऐसे प्रभुहि हिये बिच धरिये । बुधजन के पथ को अनुसरिये ॥
पुनि प्रार्थना करिये सोई । जेहिविधि धर्म अर्थ सुख होई ॥
हे प्रभु स्वप्रकाश जगदीशा । परमातम अति श्रेष्ठ मुनीशा ॥

दो०—मोहिँ सदा शुभ पंथ पर, चलन हेत बुधि देहु ।
कुटिल पाप आचार सब, नाथ वेगि हरि लेहु ॥१२॥

हे प्रभु रुद्र स्वरूप महन्ता । हौं न होहुँ काहू कर हन्ता ॥
अरु मोहिँ नाथ बताइ सुपंथा । चलहुँसदा जेहि जावहिँसन्ता ॥

अरु मोहिं सदा देहु बुधि नीकी । चिंता नशहि नाथ मम जी की ॥
हे प्रभु दीनदयाल कृपाला । छुटहि असद मारग जंजाला ॥
विद्याविद मोहिं कीजै सांई । शुभ सतमार्ग मिलै सुखदाई ॥
ईश्वर विनय करहु दिन राती । माँगहु जनहितसुख बहु भाँती ॥
पर अस ईस भरोस न कीजै । ह्वै आलसि पौरुष तजि दीजै ॥
जब नर करत रहत पुरुषारथ । देत सदा चित नित परमारथ ॥
तब ईश्वर तेहि नर अवलोकत । ईश दृष्टि जन सुख को भोगत ॥

दो०—कर्म करत जीवित रहै, जो शत वर्ष प्रमान ।
ताको कहुँ दुर्लभ नहीं, है जो जग सामान ॥ १३ ॥

जिमि पिपीलिका जग के माहीं । करत रहत पुरुषार्थ सदाहीं ॥
ग्रहन करै ताकी गति जो नर । अरुपुरुषारथ करहिनिरन्तर ॥
पुनिउपनिषद् कहेउयहि भाँती । सकल विचारहु मानव जाती ॥
मूरखता मल जेहि नशि गयऊ । योग समाधि करत जब भयऊ ॥
आतम परखि परम पद हेरत । निशिवासर पलपलप्रभु टेरत ॥
तेहि सुख योग मिलत है भाई । अन्तःकरण कुभाव नशाई ॥
पुनि अष्टाङ्ग योग अधिकारी । करै सदा भक्ती सुखकारी ॥
प्रभु हिय की गति जाननवारो । सर्वान्तरयामी उचारो ॥

दो०—यम अरु नियम सुआसन, प्राणायाम करेय ।
प्रत्याहार अरु धारणा, ध्यान समाधि धरेय ॥ १४ ॥

यम के लक्षण

काहुहि दुःख देइ नहिं कबई । सदा सत्य उर अंतर बसई ॥

करै न चोरि बने ब्रह्मचारी। करि संतोष बनै अविकारी॥
यथा लाभ आनन्द मनावै। अपरिग्रह चिन्ता नहिं आवै॥
यह यम सूक्ष्म तुम्हहिं बताये। योग पतंजलि जो मन भाये॥
जानन चहहु योग की रीती। देखहु योगशास्त्र करि प्रीती॥

नियम

रहहु पवित्र करहु सन्तोषा। अरु तप करहु तजहु सब दोषा॥
अरु सद्ग्रन्थ पढ़हु निशिबासर। करि स्वाध्याय बनहु जग आगर॥
ईश ध्यान करिये दिन-राती। है स्वई नियम परम सुखमाती॥
सदा हिये धारहु सब भाई। ओ३म् नाम ईश्वर सुखदाई॥
निज आतम परमेश्वर के हित। सौंपहु पुनि आज्ञा धारहु चित॥

आसन

दो०—प्रभु-उपासना चहहु चित, खोजहु ठौर यकन्त।
शुद्ध देश आसन परम, ईश्वर-ध्यान धरन्त॥१५॥

प्राणायाम

प्राणायाम करहु चितलाई। रोकि मनहिं यक ढिग ठहराई॥
कण्ठ नेत्र अरु शिखा सुहाई। पीठ मध्य जो अस्थि लखाई॥
काहू ठौर मनहि ठहरावहु। करिसंयमशुभआसन साजहु॥
नर यह यतन करत है जबई। अन्तःकरण शुद्ध हो तबई॥
धीर चित्त हो जो नर भाई। धारण करै ईश प्रभुताई॥
यक क्षण ध्यान धरै नर जोई। पावे सुख सम्पति बहु सोई॥
याते निशि वासर मन लाई। बन्दहु ईश परमसुखदाई॥
जो जग ईश्वर मानत नाहीं। ते कृतघ्नि मूरख जग माहीं॥

दो०—एक शिष्य पूछत भयो, कहहु नाथ समुझाय ।
बिना इन्द्रियन के कतहुँ, करत कर्म कोउ नाँय ॥१६॥
जिमि मानव संसार में, कर्म करत निज हेत ।
ताहि भाँति ईश्वर सदा, सब कर्मन कहँ देत ॥१७॥

तब ऋषिराज सुनावन लागे । सुनत नरन के औगुन भागे ॥
तुम उपनिषद् कथा नहिं जानत । ईश्वर के इन्द्री मुख मानत ॥
बिना नेत्र जग देखनहारा । निशि-दिन है ता कहँ उजियारा ॥
कानन बिन जन की जो बानी । सुनहिं प्रेम सों सब गुनखानी ॥
बिन हाथन जेहि जगत रचाया । व्यापक है बिन पद जगराया ॥
जानत है उर अन्तर केरी । अन्तःकरन बिना जग हेरी ॥
सोइ प्रभु पूरन श्रेष्ठ कहावै । भजहि ताहि इच्छित फल पावै ॥
जो तेहि निर्गुन निष्क्रिय माने । ते नर परम अबोध अयाने ॥
उपनिषदन प्रभु को यहि भाँती । भाख्यौ वेद विहित बहु भाँती ॥

दो०—कारन कारज नहिं अहै, तेहि ईश्वर के माँहि ।
शक्तिवान सम्पन्न जग, परमईश जग आहि ॥१८॥

प्रश्न

बिन प्रत्यक्ष प्रमाण के, किमि मानहिं हम ईश ।
जब प्रत्यक्ष प्रमाण नहिं, का प्रमाण जगदीश ॥१९॥

स्वामि कहत तेहि क्षण हर्षाई । कछु विचार कीजै मन भाई ॥
ईश्वर नहिं प्रत्यक्ष प्रमाना । कारण आदि जगत सब जाना ॥
अन्त आदि ईश्वर के माहीं । लखहुँ न कोउ जो मन सकुचाहीं ॥
क्लेश कर्म अरु इष्ट अनिष्टा । रहित वासना ईश विशिष्टा ॥

परम पुरुष जग व्यापक हेता। अरु शरीरबिच जीव निकेता॥
है निमित्त कारण जगदीशा। प्रकृती वश नहिं होत मनीषा॥
प्रकृतिसदाबदलत यहि भाँती। जासों जन्म लेत सब जाती॥
ईश्वर प्रकृति वश्य नहिं होई। याते जन्म न धारत सोई॥

प्रश्न

दो०—तौ पुनि गीता के बिषे, कह्यो कृष्ण केहि हेत।
नाश होत जब धर्म को, हौं अवतार सु लेत॥ २०॥

सो०—धर्म सु थापन हेत, युग युग हौं जन्मत रहत।
दुष्ट नरन दुख देत, शुभ सुजनन आनँद करत॥२॥

यह संदेह मोर मन आई। तेहिपुनि दूरिकरो ऋषिराई॥
चहुँदिशिदेखिस्वामिअसकहेऊ। देखतमोहसबन मन लयऊ॥
परमेश्वर अवतार न होई। धर्मवान जग जन्मत कोई॥
निज हित कृष्ण कह्यो जो बानी। तौ यामहँ कछु है नहिं हानी॥
परोपकार सत्पुरुषन को गुण। सुखदाई अपूर्व है लक्षण॥
जग चौबिस अवतार कहानी। कंस दशानन हेत बखानी॥
यह सतपुरुष परम गुन खानी। सत्य प्रतिज्ञक अरु बहुदानी॥
जब जग बढ़त पाप अधिकाई। बुधिविद्याबल सब नशिजाई॥

दो०—छिपतभानुजबमेघबिच, जग अँधियार लखात।
तिमि विद्या के लोप से, "इष्ट"सुधर्म बिलात॥२१॥

तब नर अधरम में रत होई। वेद विरुद्ध चलैं सब कोई॥
तब कोउपुरुष जगत के माहीं। प्रकृति आत्म शक्ती दर्शाहीं॥
तिनहिं कहत है जग अवतारा। देखि परम पौरुष उपकारा॥

पर यह बात सुनहु चितलाई। ईश जन्म नहिं परत लखाई ॥
वेदन में कहुँ नाहिं प्रमाना। जन्म लेत जो ईश महाना ॥
जन्मत सदा जीव जग आई। निज कर्तब सों सो तनुपाई ॥

दो०—गमनागमन न ईश में, नहिं है मानव कर्म ।
नहिं वह पाप छुड़ावई, नाशत नाहिं अधर्म ॥२२॥
गती होत प्रकृती विषे, कर्म हो इन्द्रिन साथ ।
ईश छुड़ावत पाप जो, न्याय धर्म नशि जात ॥२३॥
नृपति जबै अपराध को, क्षमा करहि जगमाहिं ।
तो अपराधी जगत में, प्रकट स्वतंत्र देखाहिं॥२४॥

पुनि पूछत एक चतुर सयाना। जीवस्वतंत्र कि परवशमाना ॥
ऋषी कहत सुनिये चितलाई। निज कर्तव्य स्वतंत्र सदाई ॥
ईश विषय परतंत्र अमाया। पाणिनिमुनितेहिकहिसमुझाया
नाथ सो युक्ति कहहु समुझाई। केहिंविधि जीवपरमगतिपाई ॥
इन्द्रिय अन्तःकरण शरीरा। है आतम आधीन समीरा ॥
है स्वतंत्र मानहु सब भाई। कर्म करै फल पावै धाई ॥
जीव जबै परबस ह्वै जाई। कर्म करै ताके अनुसाई ॥
जीव करम हित है स्वाधीना। फलभोगनहित ईश अधीना ॥

दो०—ईश रचत संसार को, अरु बहु देत समर्थ ।
परम पिता आदेश से, होत सिद्ध सब अर्थ ॥२५॥
ईश शक्ति बिन जगत में, करि न सकै कोउ काज ।
है किमि भोक्ता कर्म को, बहुरि कहहु महराज ॥२६॥

उत्पति जीव होत नहिं भाई । है अनादि आतम दर्शाई ॥
यहि विधि दयानन्द ऋषिराई । कहत सबन सों हैं समुझाई ॥
हम जो कर्म करत दिन राती । तेहि प्रभु देखत हैं सबभाँती ॥
कर्मनुकूल सदा फल पावे । ईश्वर में कछु दोष न आवे ॥
जिमिअसि[1]उपजिपरबतनमाहीं। देश विदेश सबै लै जाहीं ॥
कोऊ बनावत है करबाला[2] । अरुकोउरचतसुविधिसोंभाला ॥
लै करबाल हनै[3] कोउ धाई । दोष कहा असिपरबत भाई ॥
अरु यह कहै मोर नहिं दोषा । यह करबाल केर है रोषा ॥

दो०—नृपति दण्ड दे मनुज को, नहिं देवे करबाल ।
त्यहिविधि ईश्वर को लखहु, पड़हु न तुम भ्रमजाल२७

जो हम कर्म करें दिन राती । ताको फल पावहिं बहुभाँती ॥
ईश जीव के भेद सुनावहुँ । जेहिभ्रमजायसोयत्नसिखावहुँ ॥
इच्छा, द्वेष, प्रयत्न गँभीरा । सुख दुखज्ञानआतमबलवीरा ॥
ये षट लक्षण जीव विलोकहु । होहिं जहाँ तेहिआतमपेखहु ॥
प्रान, अपान, निमिष, उनमेषा । मन, गति, इन्द्रिय, कर्मविशेषा ॥
सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयतना । वैशेषिक आतम गुन बरना ॥
जौ लगि जीव बसत तनुमाहीं । तौलगि सुखसम्पति दर्साहीं ॥
जीव शरीर केर यह नाता । रथ आरूढ़ रथी जिमिताता ॥

दो०—जीव जबै तनु ते पृथक, होत कर्म अनुसार ।
सहित इन्द्रियन के लखहु, यह शरीर बेकार ॥२८॥

---

१ लोहा । २ तलवार । ३ मारै ।

है अल्पज्ञ जीव यह भाई। माया बस सब जात भुलाई॥
है सर्वज्ञ ईश जग स्वामी। नित्य अनादि जो अन्तर्यामी॥
जीव ईश गुन बिलग लखाई। परवश जीव कर्म के भाई।

प्रश्न

पुनि यह कहहु मोहिं समुझाई। ईश्वर सुख दुख देत कि नाई॥
है त्रिकालदर्शी जगराया। जानत भूत भविष्य अमाया॥
तौ पुनि दोष जीव किमि होई। जानि भविष्य करावत सोई।
कहतस्वामिहँसितुम्हरीजानी। ईश्वर हू है अल्प ज्ञानी॥
तीन काल को जाननवारो। ता प्रभु को यहि भाँति उचारो॥
दो०—ईश्वर को यहि भाँति जो, मानत मानव जाति।
महा अज्ञ ते मनुज हैं, पावत नहिं केहु भाँति॥२९॥
जो उत्पति ह्वै नशहि सदाई। ताकहँ भूतकाल सब गाई॥
बहुरि होत आगे को भाई। जानहु ताहि भविष्य सदाई॥
ईश्वर काल भेद है नाहीं। है सर्वज्ञ सदा सुखदाई॥
ईश्वर पर कोउ दोष न आवत। जीव करत सोई है पावत॥
व्यापक ईश विलोकहु सब जन। व्याप्य जीवको जानहुनिजमन॥
जो तुम यक रस दोनों जानो। जीव ब्रह्म सम गुनकरि मानो॥
तो यह कथनसकलअँधियारा। मानहिनहिंकोउ जहँउजियारा॥
ईश्वर सेव्य सु सेवक जीवा। स्वामि भृत्य सुतपितुहितसीवा॥
दो०—जिमि पितु देखत सुनत को, सदा चलन व्यवहार।
तिमि सारे संसार को, लेत सु ईश निहार॥३०॥
सुनहुस्वामिहमसुनिसुनि हारे। मैं हों ब्रह्म अधिक उचारे॥

अरु यह कहत वेद के वचना। कहहु कहा वेदन यह बरना ॥
वेद वचन नहिं यह ऋषि कहेऊ। स्वार्थिन पन्थ हेत गढ़ि लयऊ॥
जीव ब्रह्म द्वौ बिलग उपाधी। जिमि मैं अरु वह है जनवाधी॥
ह्वै समाधि चित ईशहिं देखै। प्रभु गुन कर्म स्वभावहिं पेखै॥
ईश मगन मन डिगै न कबई। वह सहधर्म ब्रह्मवत गिनई॥
वेद अर्थ नहिं समुझत भाई। जानत नाहिं ईश निपुणाई॥

दो०—छान्दोग्य उपनिषद को, जो तुम द्वैत प्रमान।
ब्रह्म शब्द तहुँ पै नहीं, है अद्वैत महान ॥३१॥

अति सूक्षम प्रभु जानन योगा। योवन मूल जनत सुख भोगा॥
ईश्वर व्यापक है सब ठाहीं। जीव तासु को जानत नाहीं॥
योगी जब समाधि चित धारै। तबहिं ईशमय जगत निहारै॥
जो वेदांति नवीन समय के। आतम ब्रह्म कहत हिय ठनि के॥
नहिं जानत वेदांत को सारा। कह्यो व्यास मुनि जो विस्तारा॥
याज्ञवल्क ऋषि सहज सुभाऊ। मैत्रेयी सों कह सतभाऊ॥
अन्तर जीव बसत अविनाशी। पृथक आत्मा से सुखराशी॥
मूढ़ जीव जेहि जानत नाहीं। व्यापक जीव ईश के माहीं॥

दो०—तिमि शरीरबिच आत्मा, बसत रहत निशि द्योस।
तिमि आतम बिच ईश है, व्यापि रह्यो ब्रह्म कोस॥३२॥

देखत जीव शुभाशुभ कर्मा। दै फल राखत नियमित धर्मा॥
सो प्रभु अन्तरयामि विनाशी। व्यापक जगत सो घट घट वासी॥
जब नर योग समाधि सम्हारे। बैठि यकान्त सो आसन मारे॥

तब कहि सकत ब्रह्म यह सोई । व्यापि रह्यो जग बिच है जोई ॥
तब दण्डी यक बोलत भयऊ । तैत्तिरीय के वचन जो कहेऊ ॥
ईश कहत रचिके मैं जग को । पुनि प्रकटों प्रानिन के तन को ॥
व्यापक जीव रूप ह्वै करके । बसहु शरीरन में यह ठनिके ॥

दो०—व्याख्या नाम रूप की, करूँ जगत के हेत ।
ईश रचाया जगत सब, बसि अन्तर फल देत ॥३३॥

कहत स्वामि सुनिये महराजा । और विचारहु सकल समाजा ॥
जो कुछ शब्द अर्थ तुम जानत । तौ काहे अस अनरथ भाषत ॥
यक प्रवेश यक अनुप्रवेशा । द्वै संज्ञा है पृथक सुरेशा ॥
जीव प्रविष्ट होत तनु माहीं । ईश्वर अनुप्रविष्ट दर्शाहीं ॥
ईश जीव सँग व्यापक भाई । पर नहिं जीव ब्रह्म ह्वै जाई ॥
अनू शब्द का अर्थ विचारहु । निज शंका को पुनि निर्वारहु ॥
बोलत बहुरि सु दण्डी सांई । हम देख्यो जो कहत सुनाई ॥

सो०—ग्रीषम ऋतु के माहिं, जेहि देख्यो वाराणसी ।
जब प्राविट ऋतु आइ, तेहिमथुरा निरखत भयउ॥३॥

दो०—काल प्रथा को त्यागि के, लखिये पुरुष विशेष ।
भाग त्याग लक्षण लखहु, ईश परीक्षा देश ॥३४॥

काल उपाधि अविद्या त्यागहि । चेतन मात्र लक्ष को मानहि ॥
यहि विधि जीवब्रह्म हम कहहीं । जो है सत्य ताहि को लहहीं ॥
पूछत स्वामि बतावहु भाई । नित्य अनित्य जीव प्रभुताई ॥
अरु ईश्वर को केहि विधि जानहु । नित्य अनित्य कहो जो मानहु ॥

तब दण्डी इमि कहत सयाने । जनित उपाधि अनित्य बखाने ॥
स्वामी बहुरि उपाधि के हेता । पूछत नित्य अनित्य निकेता ॥
तब वेदान्त कारिका दण्डी । निज मत बहुरि बताइ अखंडी ॥
षट पदार्थ वेदान्त के मानत । जो संक्षेप रूप हम जानत ॥

दो०—प्रथम 'जीव' को कहत हैं, दूजो 'ईश' महान ।
अहै तीसरो 'ब्रह्म' जग, देखैं सुःख महान ॥ ३५ ॥

जीव ईश में भेद विशेषा । जानहु ताहि चतुर्थ 'निशेषा' ॥
पंचम है 'अज्ञान' अविद्या । षष्ठ सु चेतन योग 'अविद्या' ॥
मानत इनहिं अनादि अनन्ता । एक ब्रह्म अरु पाँचौ सान्ता ॥
जौ लगि जन अज्ञानी रहई । तौ लगि जगत पापमय अहई ॥
पुनि जब ज्ञान प्रकट ह्वै जाई । तब यह पाँचौ नशत देखाई ॥
आदि न जान परत पाँचों की । मानि अनादि फिरत हैं अटकी ॥
सान्त कहत इन नाश के हेता । ज्ञान होत वह ब्रह्म निकेता ॥
कहत स्वामि सुनिये वेदान्ती । हौ तुम केहिप्रकार सिद्धान्ती ॥

दो०—यह श्लोक तुम्हार द्वौ, हैं अशुद्ध बहु भाँति ।
बिना अविद्या योग के, ईश न सिद्ध देखाति ॥ ३६ ॥

माया जीव केर बिन योगा । सिद्ध न होत जगत सुखभोगा ॥
षष्ठ पदारथ कहेउ जो भाई । यह पछिले में जात समाई ॥
बिन माया विद्या के योगा । सिद्ध न ब्रह्म लखत जगलोगा ॥
यह तुम्हार मत के अनुसारा । ईश अविद्या से नहिं न्यारा ॥
याते प्रकट पदारथ दोई । ब्रह्म अविद्या मानत जोई ॥

षष्ठ पदारथ सिद्ध न होई। मानत ईश भाव तुम जोई॥
याते सुनहु हमारी बाता। जानहु भेद ईश कर ताता॥
नित्य शुद्ध जो मुक्त स्वभावा। व्यापक बुद्धि अनन्त कहावा॥

दो०—ईश माहिं अज्ञान को, देत सु आश्रय जोय।
तो यहि दोष प्रभाव से, ईश शुद्ध नहिं होय॥३७॥

अन्तःकरन उपाधि घनेरी। ब्रह्म उपाधि हीन कह टेरी॥
ब्रह्म अखण्ड एक रस भाई। व्यापक ब्रह्म अनादि लखाई॥
यदि कोउ पूछै दण्डिन जाई। अन्तःकरन चलत कै नाई॥
तब दण्डी इमि कहत बखानी। चलत सु अन्तःकरन सज्ञानी॥
पूछत स्वामि चलत का भाई। अन्तःकरन सङ्ग ब्रह्म धाई॥
स्थिर ब्रह्म सु दण्डी कहेऊ। तब महर्षि समुझावत भयऊ॥
अन्तःकरन जो त्यागत देशा। तहँ अज्ञान रहत नहिं लेशा॥
त्यागि देश वह जावे धाई। तहँ को ब्रह्म अज्ञान लखाई॥

दो०—यहि प्रकार की बात को, जो नर लेवै मानि।
तो क्षणक्षण में ब्रह्महू, ज्ञानी हो अज्ञानि॥३८॥

मोक्ष बन्ध क्षण भंगुर होवे। सकल स्मृती को नर खोवे॥
जो तुम कहौ ब्रह्म है एका। कहहु सो किमि सर्वज्ञ न नेका॥
जो यह कहेउ सवन समुझाई। अन्तःकरन भिन्न बतराई॥
होत ब्रह्म यहि भाँति विभिन्ना। लखि चेतन जड़ मन हो खिन्ना॥
जो इन दोहुन ज्ञान न होई। ज्ञान सो चिदाभास को होई॥
तो सिद्धान्त हमार बलिष्ठा। रहत जगत चेतन है श्रेष्ठा॥

अन्तःकरण और चित भाषा। यह हैं नश्य करै जनि आशा॥
या विधि मोक्ष दूरि ह्वै जाई। रहत कबहु ब्रह्म स्थिरताई॥

दो०—तब दंडी इमि कहत भे, कहौ स्वामि समुझाइ।
होत सिद्ध अद्वैत किमि, जीव ब्रह्म बिलगाइ॥३९॥

कहत स्वामिडरपहु किमि भाई। विद्या ज्ञान करहु सुखदाई॥
और विशेष्य विशेषण जानहु। ईश्वर जीव पृथक करि मानहु॥
जीवद्वैत विशेषण जहवाँ। जिमिजगकहत कहावततहवाँ॥
बसत ग्राम बिच इक अतिधीरा। है नहिं दूसर तेहि सम बीरा॥
अरु यक धनी देखि नर कहहीं। यहिसमदूसर धनिक न अहहीं॥
तौ कह सिद्ध होत यह बाता। इनसे बली न कोइ है ताता॥
तो यह अवशि मानिबे लायक। हैं नहिं न्यून बली धनदायक॥
या प्रकार जग बहुत कहानी। मानत ताहि सु पंडित ज्ञानी॥

दो०—ब्रह्म सदा है एक रस, प्रकृती जीव अनेक।
ब्रह्म निरूपण के लिये, हैं अद्वैत विवेक॥४०॥
द्वैत और अद्वैत की, सिद्ध न बाधक होइ।
ब्रह्म जीव अरु प्रकृति जग, हैं अनादि त्रय सोइ॥४१॥

तुम किमिशोच करहुअधिकाई। हिये बिचारहु कछु प्रभुताई॥
ब्रह्म सु सत चित आनँद पेखहु। जीव अस्ति नहिं नास्ती रेखहु॥
है प्रिय रूप एकता दोऊ। पुनि किमिबिलग बतावहु सोऊ॥
यह संदेह होत मन मेरे। कहत सुदंडी वचन घनेरे॥
तब ऋषि कहन लगे मुसकाई। सुनहु भ्रात कछु चित्त लगाई॥

होत सधर्म कछुक हैं एका। जिमि जड़ पृथ्वी अग्निअनेका॥
अवनि माहिं बहु गुण दिखराई। तेहिविधि अग्नि केर निपुणाई॥
आंखिन देखत जीव सदाई। मुख से अशन करत अधिकाई॥
सुनै कान सों निशि दिन बाता। चलत सदा पग सों सबताता॥

सो०—है अलपज्ञ सुजीव, ब्रह्म सदा सर्वज्ञ है।
पावत सुःख अतीव, जीव जो ईश्वर भजत है॥ ४॥

तब यक प्रश्न करन अस लागा। देखि स्वामि अतिही अनुरागा॥
कबहुँक जीव ब्रह्म यक होई। अथवा रहत बिलग ही सोई॥
कहत स्वामि हम पूरब कहेऊ। अबहु सुनहु जो कछुभ्रमरहेऊ॥
ईश ब्रह्म साधर्म को भावा। तबहिं एकता को फल पावा॥
जिमि आकाश द्रव्य बहुतेरी। होत न पृथक रहत है घेरी॥
धरम विरुद्ध मेल नहिं होई। करहि उपाय चहै जो कोई॥
बहुतक प्रश्न करत दिन राती। ईश सगुन वा निर्गुन जाती॥
तिनके हेत कथन अस भाई। निर्गुन सगुन दुऔ विधि साँई॥

दो०—पूछि उठेउ तेहि काल यक, होवे यह केहि भाँति।
एक म्यान तलवार द्वै, कबहूँ नाँहि समाति॥४२॥

एक सगुन यक निर्गुन दोऊ। केहि विधि रहत एक में सोऊ॥
तबहिं स्वामि यहकहसमुझाई। स्वाभाविक की रीति लखाई॥
रूप आदि गुन जड़के माहीं। चेतन ज्ञान सबै दर्शाहीं॥
जड़ में ज्ञान न देखत भाई। नहिं चेतन जड़ता दिखराई॥
कहा सगुन जामहँ गुन होई। गुनके नशत हो निर्गुण सोई॥

तिमि अनन्त बलज्ञान विशाला। ईश्वर सगुन होत तेहि काला॥
जड़ गुन रूप आदि तहँ नाहीं। स्वइ परमेश्वर निर्गुण आहीं॥
पूछत बहुरि कहत स्वइ बाता। जस जग कहत सो सुनिये ताता॥

दो०-निराकार निर्गुण सदा, सगुन अहै साकार।
निराकार ही सगुन हो, लेत जबै अवतार॥ ४३॥

यह कल्पना जगत की झूठी। कहत स्वामि विद्या तेहि रूठी॥
असम्बन्ध वह कहत सदाई। जिमि ज्वर पीड़ित नर बड़राई॥
कहन लगत कोउ प्रभु को रागी। अरु कोउ ताहि बताइ बिरागी॥
राग विराग ईश में नाहीं। इनकी युक्ति सुनहु मनलाई॥
इच्छा ईश माँहि नहिं होई। कह्यो सो गूढ़ रहस ऋषि गोई॥
बिनकर सकलजगतउपजावत। वेदन माहिं तासु यश भावत॥
सुनहु सुनावहुँ राग विभूती। है विराग की जो करतूती॥

छंद-अपने से जो कोउ अलग होवे, शुभ पदारथ भावई।
तहँ अर्थ ताके होत प्रीती, ताहि रागी मानई॥
जो प्राप्त होवे ताहि त्यागे, सो विरक्त कहावई।
है ईश से कोउ अलग नाहीं, नाहिं प्राप्त लखावई॥ ३॥

जो वस्तु जेहि ढिग होत नहिं, तेहि प्राप्त हित इच्छा करैं।
नहिं ईश से है पृथक कोई, ताहि कोउ त्यागन करैं॥
है नाहिं कोऊ बस्तु जग में, ईश है जामें नहीं।
यह समुझि निशि वासर भजहु, बुध ईश व्यापक मानहीं ४॥

सो०—केतिक हैं जग वेद, केहि ऊपर प्रगटत भयो ।
नाथ बतावहु भेद, वेद केरि उत्पत्ति कब ॥ ५ ॥

चारि ऋषी जग उत्पति भयऊ । वेद सुचारिहु तिन उर ठयऊ ॥
जग ऋग वेद अग्नि के द्वारा । यजुर्वेद वायू उच्चारा ॥
पुनि आदित्य साम प्रकटायो । और अंगिरा ऋषि मन भायो ॥
एक शिष्य स्वामी सों भाखत । है प्रमान उपनिषद बतावत ॥
ब्रह्मा के उर वेद प्रकाश्यो । पुनि ब्रह्मात्रय ऋषि सों भाख्यो॥
कहत स्वामि मनु के कछु बचना । अग्नि वायु रवि से है रचना ॥
यज्ञ हेत प्रगटेउ प्रभु वेदा । ऋग यजु साम जो हैं बिनखेदा ॥
पुनि यह भेद कहौ समुझाई । इनसे इतर कह्यो किमि नाई ॥

सो०—ये पवित्र जग माँहि, विद्या बुद्धि प्रकाश में ।
प्रकर्‌यो वेद सराहिं, नहिं इनते कोउ श्रेष्ठ जग ॥ ६ ॥

दो०—भाषा देश विशेष में, नहिं प्रकटायो वेद ।
पक्ष त्यागि के रचत भे, संस्कृत बिन खेद ॥ ४४ ॥

तबहिं शिष्य पूछत घबराई । ईश्वर वेद रच्यो का भाई ॥
या दूसर केहुँ वेद बनाये । जिमि बहु ग्रन्थ मुनिन हैं गाये ॥
यह प्राकृत भाषा जग रूरी । श्रम समान में होवे पूरी ॥
जो तुम कहौ वेद किमि भयऊ । जीवज्ञान बढ़िनिजहित ठयऊ ॥
तौ यह सुनिये चित्त लगाई । ईश सहस गुन कर्म सुहाई ॥
सृष्टि विरुद्ध न हो जहँ कर्मा । आदि सृष्टि से जानहि मर्मा ॥
वेदन में इतिहास न होई । है वह पूरन ज्ञान लखोई ॥

जब न वेद विद्या कस होई। प्रकटत वेदन विद्या सोई ॥
बिन विद्या नर ज्ञान न होई। चहै विचारि लेइ नर कोई ॥

सो०—ऋग यजु साम अथर्व, चारि बेद यह जग प्रकट।
मानत याकहँ सर्व, मंत्रसंहिता मात्र ही ॥ ७ ॥

सप्त विंश अरु सहस एकादश। शाखा वेद सुजानहि मानुष ॥
नित्य वेद सँग ईश्वर माना। ईश स्वभाव कर्म गुन जाना ॥
बिन बुद्धी कहुँ ज्ञान न होवै। ज्ञान बिना सुख मोक्ष न जोवै ॥
शौनक गोभिलीय अश्वलायन। है प्रसिद्ध शाखा शुभदायन ॥
वृक्ष मूल जानहु तुम वेदा। मानहु शाखा मत बिन खेदा ॥
वेद विषय जो देखन चहऊ। तौ मम लिखित भूमि का लहऊ ॥
मातपिता जिमि कर सुत प्रीती। तिमि ईश्वर की है नित रीती ॥
जेहिबिधि जगत होय बुधिवाला। छुटै तिमिरअरुसबभ्रमजाला ॥

दो०—सोई यतन करै सदा, निशि बासर बहु भाँति।
सद सत्संग विवेकको, धारहि मानव जाति ॥४५॥
है ईश्वर की रीति यह, देत सबन फल भोग।
जो जस कर्म करै सदा, तेहि अनुकूल सुभोग ॥४६॥

तब यक कहत कहहु ऋषिराई। वेद अनित्य नित्य समुझाई ॥
पुस्तक वेद नित्य का भाई। नित्य अनित्य कहहु बिलगाई ॥
ईश्वर वेद नित्य सब ठांई। ईश कर्म गुन नित्य सदाई ॥
पुस्तक वेद नित्य है नाहीं। कागज असी अनित्य सदाई ॥
या महँ शब्द अर्थसम्बन्धा। सोसब नित्य लखउ तजिधन्धा ॥

तौ पुनि इन ऋषियन के माहीं । देकर ज्ञान वेद प्रकटाहीं ॥
तबहिं स्वामि बहु कह समुझाई । वेद केर जो धर्म सुहाई ॥
ज्ञानविभेद स्वामि समुझावत । सोइ मानहु जो सब जियभावत ॥

दो०—ज्ञानहोत नहिं ज्ञेय बिन, सुनहु शिष्य धरि ध्यान ।
स्वर अरु छन्द विचारि कै, वेद पढ़ौ यह जान ॥४७॥

नाना भाँतिन वेदन रीती । ऋषी मुनिन ने जो कहि नीती ॥
याते सकल बिचारहु भाई । दूसर ज्ञान और है नाई ॥
वैदिक पथ जग परम पुनीता । चलहु सकल शुभमारग नीता ॥
है मत वेद हमारो जानहु । आर्य समाज सोई पहिचानहु ॥
वेद माँहि जो वर्णित भाई । सोई है मम धर्म सुहाई ॥
ईश्वर वेद कथा हम गाई । अति संक्षेप रूप दर्शाई ॥
नित प्रति वेद पढ़हु मन लाई । त्यागि आधुनिक ग्रंथ सदाई ॥
जब जग चलै वेद अनुकूला । तब नहिं होहिं धर्म प्रतिकूला ॥

दो०—अब संध्या को समय है, ईश भजहु सब कोय ।
नित्यकर्म यहि जानि के, कबहु न त्यागन होय ॥४८॥

सो०—शिष्य कहत इमिबैन, गुरुवर मो हित जो कह्यो ।
ऋषी कथा सुख दैन, सुनत न तृप्ती होत मन ॥ ८ ॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामी दयानन्दसरस्वती वर्णित ईश्वर वेदविषय वैद्यकविराज पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरुशिष्य-सम्बाद सप्तमतरङ्ग ॥७॥ (स० ७ स०)

अथ अष्टम तरङ्ग (स० ८ स०)

सृष्टि-उत्पत्ति

शिष्य

सो०—नाथ मोर हित जान, जो कुछ प्रभु बरनन कियो ।
गयो हृदय अज्ञान, सुनि ऋषि कथा सुहावनी ॥ १ ॥

ईश वेद को भेद, नाथ कह्यो समुझाय मोहिं ।
बहुरि कहहु बिन खेद, जासों रहै न हृदय भ्रम ॥ २ ॥

दो०—मोहिं भ्रम बहुत लखात जग, उपज सृष्टि के माहिं ।
करहु कृपा ताते अवशि, जेहि हमार भ्रम जाहिं ॥ १ ॥

कोउ अस कहत सुनहु गुरुराई । वृषभ-शृङ्ग पर धरनि सोहाई ॥
अरु कोउ कहत वारि उतराई । मानत याहि अधिक समुदाई ॥
उत्पति मनुज विचित्र बतावहिं । सुनत बात हियबोध न आवहिं ॥
अब मोहिं नाथ कहहु समुझाई । करहु उपाय मोर भ्रम जाई ॥
सृष्टि-नेम हित जो ऋषि कहेऊ । सोइ कहहु जो तव हिय ठहेऊ ॥
जौलगि प्रकृति जीव अरु ईशा । सृष्टि-नेम जो कहेउ मुनीशा ॥

जानत नहिं नर हृदय विचारी। तौ लगि दुःख सहत अतिभारी॥
जौलगि त्रिबिधतापनहिंछूटत। ममताजाल जगत नहिं भूलत॥

दो०—तौ लगि नर पावत नहीं, परम मोक्ष को धाम।
जौ लगि हिय धारै नहीं, कर्म सदा निष्काम॥ २॥

गुरु

छं०—हे तात हम तुम सन कहैं, ऋषि की कथा सुखदायिनी।
जो मनुष-जीवन को सुधारत, सुधारस सो है सनी॥
जाके सुने नर होत पावन, आर्य पुरुष कहावई।
औगुन नशैं भ्रम जायँ मनके सत्य पथ नर पावई॥ १॥

सो०—एक समय ऋषिराज, शोभित सुन्दर मंच पर।
आयो मनुज समाज, सुनन हेत ऋषि की कथा॥ ३॥

दो०—उत्पति स्थिति सृष्टि की, अरु बिनाश केहि भाँति।
कहत स्वामि अति नेह सों, सुनत सकल मनुजाति॥ ३॥

जो हम सुन्यो ऋषी सो भाई। सोई हम सब तुमहिं सुनाई॥
व्यापक ईश ओ३म् प्रभुजानहु। कर्ता सृष्टि ताहि को मानहु॥
करि उत्पति पुनि पालनकरता। सोई प्रभु है जग-संहरता॥
सृष्टि प्रथम यह जग अँधियारा। रात्रि न तेहिकोउ करतउचारा॥
गगन समान सूक्ष्म दर्शाई। मानहु ईश केरि परिछाई॥
तब प्रभु निज समरथ सों भाई। कारण-कारज देत बनाई॥
भानु प्रकाश जगत जो देखत। यह ईश्वर-गति जग अवरेखत॥
भूमि अकाश लखत जोई प्रभु। चन्द्र सूर्य में है जा कहँ विभु॥

दो०—जो अनादि पूरन पुरुष, जग कारण भगवन्त ।
त्रिकालज्ञ परमात्मा, भजत ताहि हैं सन्त ॥ ४ ॥
है वह तीनों काल का, रक्षक एक अनीश ।
ब्रह्म सनातन है वही, परमेश्वर जगदीश ॥ ५ ॥

जासों जन्म होत जग केरा । पालन करत रहत सब बेरा ॥
पुनि जग प्रलय करत है सोई । तासों ब्रह्म कहत सब कोई ॥
तब पूछत यक शिष्य सयाना । जग-उत्पत्ति ईश कै आना ॥
तबऋषि शिष्यहि कहतबुझाई । कारन निमित ईश उपजाई ॥
उपादान कारन प्रकृती से । प्रकृति कहा नहिं होत ईश से ॥
है अनादि तब ऋषि इमि कहेऊ । पुनि पूछत अनादि का ठयेऊ ॥
ईश जीव अरु प्रकृति अनादी । कारन जगत सुनावत बादी ॥
कौन प्रमान मोहिं बतलावहु । कहेउ वेद जो मोहिं सुनावहु ॥

सो०—ऋग के मंडल एक, सूक्त सुचौंसठ एक शत ।
मंत्र बीस अवरेख, बरनन या विधि करत हैं ॥ ४ ॥

चेतन जीव ब्रह्म द्वौ अहहीं । व्याप्य सुव्यापक प्रकटतरहहीं ॥
सखा अनादि सनातन दोऊ । चेतन गुणयुत जानहु सोऊ ॥
प्रकृती वृक्ष अनादि अनूपा । पाप पुन्य फल के अनुरूपा ॥
प्रति क्षण फल भोगत है जीवा । देखत बिन भोगे बलसीवा ॥
प्रकृति-जीव अरु ईश्वर भाई । है अनादि सब ठौर लखाई ॥
है उपनिषद् केर यह बचना । ईश जीव प्रकृती जो रचना ॥
यह अनादि तीनो हैं भाई । है यह कारण जगत सदाई ॥

कारण नहिं इनकर कोउ अहई। जीव अनादि प्रकृतिरत रहई ॥

दो०—ईश कतहुँ नहिं फँसत है, अरु फल भोगत नाय।
जासु कथा पाछिल कह्यो, सुनहु सकल तुम भाय ॥ ६ ॥
लक्षण प्रकृती के सुनहु, जो अनादि है भाय।
सत-रज-तम सम हैं जहाँ, प्रकृती सोय लखाय ॥ ७ ॥
महत सुप्रकृती सों भयो, भयो अहै महदात।
पंच भूत तासों ठयो, मात्रा पंच देखात ॥ ८ ॥

पुनि दश इन्द्रिय उपज लखाई। अरु मन चलत जीवसँग धाई ॥
है अविकारिणि प्रकृति सुहाई। अरु कछु कार्य रूप दर्शाई ॥
महत् तत्त्व अरु सूक्ष्म भूता। अहंकारयुत कार्य सँजूता ॥
इन्द्रिय मन जो प्रकट देखाई। अरु स्थूल जगत जो आई ॥
कारण भूत यही को मानो। पुरुष न कारण काहुक जानो ॥
करत प्रश्न याविधि यक पंडित। कहत वाक्य उपनिषद् नमंडित ॥
सृष्टि पूर्व जग सत दरशाई। असत आत्मा ब्रह्म लखाई ॥
ब्रह्म सोई अपनी इच्छा सों। प्रकटत रूप बहुत निर्भय सों ॥

दो०—और लिख्यो उपनिषद्में, जो सुनिये ऋषिराज।
ब्रह्म रूप संसार हैं, नहिं कोऊ सिरताज ॥ ९ ॥

कहत स्वामि हे पंडित ज्ञानी। अर्थ का अनरथ करत अमानी ॥
पढ़ि छान्दोग्य उपनिषद् देखहु। लिख्यो कहा है सो अवरेखहु ॥
कारज पृथ्वी अन्न सरूपा। कारन मूल अहै जल रूपा ॥
जल कारज से तेज सरूपा। होत तेज से है सद्रूपा ॥

स्वइ सद्रूप प्रकृति नित लहई । सोइ है मूल प्रकृति सत अहई ॥
यह जगप्रथम असत्सम रहेऊ । जीव ब्रह्म प्रकृती में ठयऊ ॥
कतहुँ अभाव भयो है नाहीं । प्रकृति जीव ब्रह्म रहत सदाहीं ॥
यहिविधिबनहुउपासकसुनिके । ब्रह्म एक पूरन यह गुनिके ॥

दो०—ब्रह्म जगत उत्पति करत, पुनि पालै अति प्रेम ।
प्रलय काल सब नाश करि, रहत सदा सुख क्षेम ॥ १० ॥

तब यक प्रश्न करन अस लागे । कारन जग कितने हैं आगे ॥
तब स्वामी कह सुनिये भाई । कारन तीन जगत दर्शाई ॥
एक निमित्त कहत सब कोई । दूसर उपादान है सोई ॥
तीसर साधारण को मानहु । है यह तीनहुँ कारण जानहु ॥
बनहि बनाये से जाके ही । जो न बनावत बनहि न केही ॥
स्वतः बने नहिं और बनावे । सोइ निमित्त कारण कहलावे ॥
जेहिबिन कछु न बनै जग माँहीं । पाइ समय हो रूप सदाहीं ॥
बिगड़तबनत स्वतः सोइजानो । उपादान कारन तेहि मानो ॥

दो०—है साधन निर्माण में, साधारण नीमित्त ।
तेहि साधारण कहत हैं, कारन जगत निमित्त ॥ ११ ॥

कारन निमित लखहु दुइभाँती । मुख्य निमित्त एक सब भाँती ॥
है वह ब्रह्म सकल जग स्रष्टा । पालन करै करै पुनि नष्टा ॥
अरु वह देखरेख सब राखै । मुख्य निमित्तहि कारन भाखै ॥
ईश पदारथ लै जग माहीं । सकल बनावे काम सदाही ॥
तेहि निमित्त साधारण कहहीं । जो हैं जीव जगत हित लहहीं ॥

उपादान कारन प्रकृती है। अरु परमाणु रचन शक्ती है॥
सृष्टि नियम जो प्रभु रचि राखा। होय वहै जो वेदन भाखा॥
रचत जगत कारन कारज सों। विगड़त बनत जो काज निमित सों॥

सो०—कुम्भकार जग माँहि, है निमित्त कारन लखहु।
मृतिका ठीक लखाहि, उपादान कारन यहाँ॥ ५॥
दंड चक्र आभास, है सामान्य विलोकिये।
दिशा काल आकास, याही विधि अवरेखिये॥ ६॥

हे प्रभु है हमार भ्रम पक्का। मेटहु ताहि होय अविवेका॥
नव वेदान्ति कहत यहि भाँती। कारन जगत ईश की जाती॥
अरु मुंडक को देत प्रमाना। औरो विधी कहत है नाना॥
जिमि मकरी निज तनु ते भाई। काढ़न तन्तु महाअधिकाई॥
बाह्य वस्तु की आश न करई। गृहनिर्मित करि तामहँ फिरई॥
तेहि विधि ब्रह्म जगत की रचना। निज इच्छा बनाइ जग अपना॥
अरु माँडूक कारिका कहहीं। भाखत रहत सदा इमि अहहीं॥
एक ब्रह्म जग पूरब रहई। वर्तमान सोई ब्रह्म अहई॥

दो०—अन्त समय स्वइ ब्रह्म ही, रहत एक ही शेष।
याही सों है जगत का, कारण ब्रह्म विशेष॥ १२॥

स्वामि कहत यह युक्ति तुम्हारी। मानहिं नहिं बुधिवर अधिकारी॥
जो जग मानि लेहिं तव बाता। ब्रह्म विकारवान हुइ जाता॥
उपादान में जो गुन रहई। स्वइ स्वभाव कारज नित अहई॥
वैशेषिक इमि करत बखाना। उपादान गुन कार्य्य समाना॥

ब्रह्म सच्चिदानन्द सरूपा। ब्रह्म अखंड अदृश्य अरूपा॥
जगत त्रिलोकहु दृश्य सदाई। खंड स्वरूप और जड़ताई॥
जड़ चेतन द्वै पृथक उपाधी। एक न होहिं सदा ये बाधी॥
उपादान चेतन जो मानहिं। तो कस जड़ जग कारन जानहिं॥

दो०—जो जग कारण ब्रह्म को, हम मानहिं यहि भाँति।
तो जड़ताई ईश की, होत ईश की जाति॥ १३॥

जो तुम मकरी रीति सुनाई। सो तुम्हार सिद्धान्त न भाई॥
अद्भुत ब्रह्म प्रभाव सदाई। व्यापक ईश रह्यो सब ठाईं॥
जाननहार ईश सब हाला। आदि जगत अरु अन्तिम काला॥
यहजगप्रथमलखतअँधियारा। प्रलय अन्त कहुँनहिं उजियारा॥
तब कोउजानि सकै कछु नाईं। जानन योग सो पूरन भाईं॥
तबही प्रश्न करन एक लागे। विद्यान्वित बहु शास्त्रन पागे॥
जग निर्माण करत किमि ईशा। या महँ लाभ कहा जगदीशा॥
कहतस्वामितुमहानिवतावहु। जगत रचै नहिं तो कह पावहु॥

उत्तर

दो०—ईश रहै आनन्दमय, जीव न भोगै दुःख।
यहि प्रकार सब सृष्टि में, होत सुःख ही सुःख॥ १४॥

कहतस्वामिआलसिनस्वभाऊ। दारिद पुरुष केर यह भाऊ॥
जो जग है पुरुषार्थ प्रवीना। भावत तिन कहँ कार्य नवीना॥
प्रलयकाल कहुँसुखनलखाई। जो जग सृष्टि बीच दर्शाई॥
जो हम तुलना करैं बिचारी। तो है जगत बीच सुख भारी॥

साधनसकल मोक्षके मिलहीं। मुक्ति हेत नर यतनन करहीं ॥
प्रलय समय सुषुप्ति समाना। सोवत रहत काज नहिं आना ॥
रचना जगत ईश के काजा। जो है सकल जगत को राजा ॥
ईश स्वभाव जगत की रचना। परोपकार ताको गुन अपना ॥

दो०—पूछत तरुवर बीज में, कहहु प्रथम को आहि।
कहत स्वामि एक बीज ही, हेतु निदान लखाहि ॥१५॥

बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई। है जब शक्तिमान जगराई ॥
तौ वह जीव स्वतः उपराजै। कारन हेतु कछू जो साजै ॥
यह सामर्थ न ईश्वर माहीं। तौ वह शक्तिमान है नाहीं ॥
स्वामिकहत इमिबैन सप्रीती। शक्तिमान प्रभु की यह रीती ॥
जो अनहोनी होनी करई। कोउन शक्तिमान उर धरई ॥
जो प्रसंग पाछिल तुम देखहु। शक्तिमान को अर्थ बिलोकहु ॥
कहहु हमहि समुझाइ सु ताता। बिन स्वभाव होवै कोऊ बाता ॥
याते मन बिचारि यह लीजै। सर्वशक्ति मन ईश करीजै ॥

दो०—कारज बिना सहाय सब, करत ईश दिन रात।
सर्वशक्ति सम्पन्न जग, सोई ईश लखात ॥ १६ ॥

यक पूछत ऋषि सों करजोरी। सुनहु नाथ यक विनती मोरी ॥
ईश्वर निराकार हम मानहिं। अथवा तेहि साकार बखानहिं ॥
जो हम निराकार प्रभु जानहिं। तो जगरचना केहिबिधिमानहिं ॥
जब तेहि हाथ न पाँव लखाई। तोपुनिकेहिविधि जगत बनाई ॥
मानहिं ईश्वर जो साकारा। होत सिद्ध मम हृदय विचारा ॥

कहत स्वामि सुनिये चित लाई। ईश्वर निराकार सब ठाँई॥
जो आकार शरीर समेता। वह नहिं ईश्वर होत सचेता॥
परिमित शक्ति सहित जो होई। क्षुधा तृषा पीड़ायुत जोई॥

दो०—यह लक्षण सब जीव[1] में, गुन न ईश दर्शात।
जीव पृथक ईश्वर पृथक, गुनहू पृथक लखात॥१७॥

जिमि शरीर युत हम तुम दोऊ। करि न सकत वश में अणु कोऊ॥
तेहि बिधि ईश शरीर समेता। सूक्ष्म तत्त्व किमि रचै निकेता॥
सुनहु ईश के हाथ न पाँवा। शक्ति विशेष प्रभू जग भावा॥
स्वामि मोहिं यक है संदेहा। दूरि करहु प्रभु जो है नेहा॥
जिमि पितु मातु लखहु जग माहीं। तेहि समान सुत होत सदाहीं॥
तेहि विधि निराकार जो ईशा। निराकार सुत होय अनीशा॥
सुनहु ध्यान धरि कह ऋषिराई। शिशु सम प्रश्न तुम्हार लखाई॥
हम पूरब कहि तुमहिं सुनावा। है निमित्त कारन प्रभु भावा॥

दो०—उपादान कारण नहीं, ईश जगत को भाय।
जो प्रकृती स्थूलयुत, उपादान सब ठाँय॥१८॥

अरु विचारि देखहु जग जानू। नहिं स्थूल सकल परमानू॥
अवशि ईश से है स्थूला। जग रचना हित सूक्ष्म मूला॥
पूछत बहुरि कौन जग धरई। ईश न कारन बिन कछु करई॥
कहत स्वामि समुझाय सप्रीती। होय अभावन भाव प्रतीती॥

१—जीवात्मा।

जिमि कोउ कहै बाँझसुत ब्याहा। पुष्प आकाश माल हिय चाहा॥
मृगतृष्णा जल करि स्नाना। मनुष शृङ्ग धनु धारि सुहाना॥
मेघ बिना वर्षा नित होई। उपजत अन्न भूमि बिन सोई॥
तैसेहि बिन कारण कछु नाहीं। कारज होत न नेक लखाहीं॥
जगत असम्भव जो कछु भाई। सम्भव सो नहिं कतहुँ लखाई॥

दो०—जो जग कारन रूप है, तेहि कारज नहिं होत।
मूल मूल से होत नहिं, जग उत्पत्ति उदोत॥ १९॥

सुनहु स्वामि यक बात हमारी। नास्तिक मानत शून्य अगारी॥
नहिं कछु पूर्व न अन्त लखाई। शून्य सदा सब ठौर सदाई॥
तबहिं स्वामि इमि बयन उचारी। शून्य अकाश बिन्दु सम भारी॥
शून्य वस्तु जड़ सब कोइ मानहिं। रहत छिपे सब तामहँ जानहिं॥
एक बिन्दु जग रचत अनोखा। जानहिं शून्य शून्य नहिं जोखा॥
दूसर दै प्रमान कह साँई। भाव अभावहि से दर्शाई॥
जिमि जग बीज नष्ट हुइ जाई। तबहिं बीज अंकुर जमि जाई॥
यदि हम बीज खंड करि देखें। अंकुर तामहँ कहुँ नहिं पेखें॥

सो०—इमि अभाव से भाव, प्रकटत है संसार में।
पूछहुँ सहज स्वभाव, मोहिं बतावहु दया करि॥ ७॥

दो०—जो उपजावत बीज को, अहै बीज के माहिं।
कहत स्वामि यह शक्ति ही, उत्पति रूप लखाहिं॥ २०॥

पुनि तीसर यहि भाँति बखानत। पुरुष कर्मफल सहजहि पावत॥
बिन कछु काज किये जग माँहीं। फल पावत है वह छण माहीं॥

देखियत बहुत कर्म फलहीना। याते कर्म ईश आधीना॥
चाहत ईश देत फल तेही। नहिं चाहत तेहि देत न केही॥
स्वामि कहत प्रिय वचन प्रवीना। जो फल कर्म ईश आधीना॥
तौ बिन किये देत किमि नाहीं। कर्म किये फल देत सदाहीं॥
यह तौ बात सबै जग मानत। गतो कर्म की जो कोउ जानत॥
अस बिचारि देखहु मन माहीं। करहु सु उत्तम कर्म सदाहीं॥

दो०—जो जस कर्म करै सदा, फल पावत तेहि भाँति।
देखि कर्म फल देतप्रभु, जानहि मानव जाति॥२१॥

कहत चतुर्थ सुनहु ऋषिराई। बिन निमित्त उत्पति सब ठाँई॥
जिमि बबूर कंटक अवलोकहु। तीक्ष्ण सहज नुकीले देखहु॥
याते जानि परत यह बाता। बिननिमित्त तनु उपजत ताता॥
तब हँसिस्वामिकहतअसलागे। नीतिनिपुण अतिशय अनुरागे॥
जो पदार्थ जेहि उपजत भयऊ। सोइ निमित्त ताही कहँ ठयऊ॥
वृक्ष कंटकी कंटक जायो। अन्य न कंटक तरु दर्शायो॥
पंचम बोलि उठ्यो तेहि काला। नाशमान उत्पत्ति विशाला॥
जो कछु वस्तु जगत के माहीं। है अनित्य यहि भाँति सदाहीं॥

दो०—ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत, यहै वेद की रीति।
औरहु शास्त्रन को मतो, और गुरू की नीति॥२२॥

बहुरि स्वामि इमि बोलत बैना। नित्य न होय अनित्य कबैना॥
जग नित्यता अनित्य बतावहु। अग्निकाष्ठ की रीति देखावहु॥
यह हमहूँ जानत सब भाँती। जारिकाष्ठ अपनहु नशिजाती॥

पर यह बात सुनहु मन लाई। सहजस्वभाव जो प्राप्त लखाई॥
सन्मुख सूक्ष्म अनित्य न होई। कारण परम स्वतंत्र न कोई॥
वेदान्ती जग उतपति मानत। भयो ब्रह्म से यह सब भाषत॥
ब्रह्म सत्य हम मानि जो लेहीं। होहिं असत कारज नहिं तेहीं॥
यह नहिं कल्पित स्वप्नसमाना। रज्जु सर्पवत् भ्रम जो नाना॥

दो०—तौ कोउ उक्ती नहिं बनत, कल्पित गुन अवरेख।
पृथक् नहीं गुन द्रव्य है, गुन से द्रव्य न देख॥२३॥

करत कल्पना जो बहु भाँती। मानत करत नित्य सब जाती॥
जो कल्पना नित्य ही होई। मनु अनित्य मानहिं सब कोई॥
बिन देखे कहुँ स्वप्न न होई। जागृत वर्तमान लखु जोई॥
जागृत ज्ञान आत्महिं होई। काल सुनिद्रा देखहि सोई॥
अरु सुषुप्ति भूलहि सब बाता। बाह्य पदारथ होहि न ज्ञाता॥
नतु जग विद्यमान ही रहई। भूलत जीव सुषुप्ती लहई॥
तेहि बिधि प्रलय काल को जानहु। नष्ट होत सब जगत बखानहु॥

दो०—कारन द्रव्य तबै रहत, प्रलय काल के माहिं।
संस्कार बिन स्वप्न को, देखत हैं जग नाहिं॥२४॥

पूछत बहुरि स्वामि सों नीती। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति की रीती॥
जागृत वस्तु स्वप्न में देखै। दुओ अनित्य सुषुप्ति विलोकै॥
तौ पुनि जागृत स्वप्न समाना। कुछ नहिं भेद रहत है आना॥
स्वामि कहत यह कतहुँ न होई। स्वप्न सुषुप्ति नेम लखु जोई॥
बाह्य पदारथ हो अज्ञाना। होत अभाव न कोई आना॥

जिमि पाछिलदिशि दीठि न जाई। बस्तु कोई नहिं परत लखाई॥
तिनहिं अभाव न कोऊ मानै। यहि विधि स्वप्न सुषुप्ती जानै॥
जीव ब्रह्म जग कारन भाई। नित्य अनादि सो तीनों ठाँई॥

दो०—षष्ठम नास्तिक कहत भो, मोहिं कहहु समुझाइ।
पञ्चभूत के नित्य से, जग सब लिप्त लखाइ॥२५॥

स्वामि कहत यह सत्य न भाई। कारन उत्पति नाश लखाई॥
कारन उत्पति और विनाशा। जेहिपदार्थ बिच रहत सुआशा॥
यहि स्थूल जगत के माहीं। घट पटादि जो वस्तु लखाहीं॥
ते सब होत विनष्ट सदाई। मानहिंनित्य कहहु किमिभाई॥
सप्तम नास्तिक कहत विचारी। हैं सब पृथक्-पृथक् गुनकारी॥
एक पदारथ कोउ न आहीं। जेहि देखत हम दूसर नाहीं॥
ऋषिवर बोलत वचन सप्रीती। सहजस्वभावऋषिनकीरीती॥
वचन सप्रेम भरे गम्भीरा। सुनतहि होत हृदय अतिभीरा॥

दो०—हैं समूह सब एक ही, जाति पृथक् सब काल।
अरु प्रकाश परमात्मा, वर्तमान को काल॥२६॥

पृथक् पदारथ और न कोई। रूपसे पृथक् लखत सबकोई॥
पृथक् पृथक् हम जाहि निहारें। तौ हम एकहि वस्तु उचारें॥
अष्टम युक्ति मनोहर बरनी। होतअभाव सिद्धहित करनी॥
त्रिलग अभाव बिलोकहु भाई। अश्व नहीं गो बनि दिखराई॥
और गऊ नहिं अश्व लखाई। यह अभाव विधि जानहु भाई॥
स्वामिकहत यह युक्ति तुम्हारी। होत न सिद्ध जगत उपकारी॥

सकल पदारथ में सुनि लीजै। बिलगअभावहिको लखिलीजै॥
पर है अश्व अश्व में भावा। गऊ गऊ में भाव सुहावा॥

दो०-है अभाव कतहूँ नहीं, जानि लेहु यह बात।
वस्तु भाव नहिं होवई, तौ अभाव कह तात ॥२७॥

नवम नास्तिक यहिविधि कहई। उत्पति जगत स्वभावसे अहई॥
जिमि मिलि अन्न वारि सड़िजाई। जगत स्वभाव कीट उपजाई॥
भूमि बीज मिलि नाना भाँती। उपजत तरु पल्लव बहु जाती॥
वायु समुद्र वेग जब मिलई। फेन समुद्र होत नर लखई॥
औरहुवस्तु जगत बिच अहहीं। मिलतस्वभावअन्यरँगलहहीं॥
तत्त्व स्वभाव जगत की रचना। बनत स्वतःयहिकोगुन अपना॥
बहुरि स्वामि इमिउत्तरदयऊ। यदि स्वभावहीते जग भयऊ॥
तौ विनाश कतहूँ नहिं होई। रीति स्वभाव विधीलखुजोई॥

दो०-यदि बिनाशहू होवई, तौ उत्पति नहिं होय।
दोनों मानहु एक सँग, तौ न काम हो कोय ॥२८॥

उत्पतिनाश निमित से मानहु। तौपुनिपृथकनिमित्तबखानहु॥
उत्पति नाश स्वभाव से जोई। समयबीच सम्भव नहिं होई॥
यदि स्वभाव से उत्पतिमानहु। तौ दूसर भूगोल बतावहु॥
किमि नहिं अन्यबनततारागन। होत नकिमिस्वभावसेसबगुन॥
बीज फूल तरु पल्लव नाना। प्रकटतईश कृपा नहिं आना॥
जब द्वै वस्तु परस्पर मिलहीं। बिलगस्वरूपसोप्रगटत रहहीं॥
यह विचारि देखहु मन माहीं। स्वतःमिलतयाआन मिलाहीं॥

ताहू पर यक युक्ति अनोखी। मिलत न न्यूनाधिक अवरेखी॥

दो०–तिमि प्रभु ज्ञान सु युक्तिसों, लै प्रकृती परमानु।
जग रचना को करतहैं, नित्यशुद्ध भगवानु॥२९॥

पंडित बोलि उठ्यो तेहिकाला। जग करता नहिं तीनो काला॥
रहत अनादि काल यहि भाँती। होत न उत्पतिनाश स्वजाती॥
तव स्वामीयहिविधिसमुझाई। मानहु बात हमारी भाई॥
बिनकरता कछुकबहु न बनई। क्रिया सदा करता बसरहई॥
जो संयोग रूप तुम देखत। तेहि अनादिकतहूँनहिंपेखत॥
बनहि जो जगसंयोग सहारा। ताकहँ पूर्व न कछु अविकारा॥
जो तुम नहिं मानत ममबाता। खनिज फोरिकरि देखहुताता॥
पुनितेहिभस्मछार करिदेखहु। कणकणमें परमाणु बिलोकहु॥
पुनि बहु प्रश्न करन इमिलागे। ईश्वर नहिं अनादि है आगे॥
योग द्वार जो मिलत सदाहीं। अष्टसिद्धि नवनिधि के माहीं॥

दो०–प्राप्त करत ऐश्वर्य को, ज्ञानवान जो होत।
गुणातीत वह होत है, सोई ईश उदोत॥३०॥

तव स्वामी पुनि कहत बुझाई। है अनादि ईश्वर जगराई॥
जगत रचयिता कोऊ न होई। तौ कहुँ सिद्धिलहतजगकोई॥
यह अद्भुत शरीर की रचना। बनिनसकतलैकरगुणअपना॥
करि न सकत साधन नरकोई। बिन साधन कोउसिद्ध न होई॥
है उत्कृष्ट योग जग माहीं। पावत अर्थ काम अधिकाहीं॥
जगत क्रियानहिंबदलनहारा। योगी कोउ होवे सविचारा॥

ईश्वर शक्ति विदित सबठाँई । जीव हुइ सकत ईश्वर नाँई ॥
जिमिजगसृष्टि प्रथमउपजावा । तेही विधि पुनि जगत रचावा ॥

दो०—सूर्य्य चन्द्र आकाश सब, रचत पूर्व की भाँति ।
अन्तरिक्ष अरु भूमिजल, जोप्रकृतीकी जाति ॥३१॥

सो०—वेद शास्त्र के माहिं, सृष्टिविषय अविरोध है ।
बरणत हौ तुम ताहि, जो हम आगे कहत हैं ॥८॥

छं०—ईश्वर औ प्रकृती दुहुन ते आकाश की उत्पति भई ।
पुनि बायु उपजत गगनते अरु बायु पावक प्रकटई ॥
अरु बारि प्रकटत अग्नि सों जल भूमि को उपजावई ।
पुनि भूमि औषधि द्रव्य प्रकटत अन्न औषधि लावई ॥२॥
अरु अन्न सों जग बीज उपजत बीज पुरुषन को रचै ।
अस लिख्यौ शाखा तैत्तरी में जानि यह हिय में खचै ॥
सो तात मानहुँ बात हमरी यहि विरोध न कोउ कहै ।
जेहि आदि दै प्रभु रचत पृथ्वी आदि में वह ही लहै ॥३॥

तबयक्ष कहतसुनहुऋषिराई । शास्त्रन मध्य विरोध लखाई ॥
कर्म मीमांसा बरणत भयऊ । वैशेषिक सुकाल को कहेऊ ॥
अरु परमाणु न्याय में पेखौ । पुरुषारथ सुयोग महँ देखौ ॥
सांख्य प्रकृतिकोकहतबखानी । कह वेदान्त ब्रह्म सुखदानी ॥
कहहु स्वामि हम काको मानें । केहिविधिसृष्टिकीउत्पतिजानें॥
स्वामि कहतहँसि हमरे जानी । यहि में नहिं कोउ झूठ अमानी ॥
जोनहिंसमुझतप्रकृतिविकारा । होत हृदय बिच तासुविचारा ॥

प्रभुनिमित्तकारण जग जानहु । उपादान प्रकृती को मानहु ॥

दो०—महाप्रलय[1] जब होत है, नशत पूर्व की भाँति ।
ईश नाम पहिले कहै, हिरण्य गर्भ सुखदाति ॥३२॥

जो तुम शास्त्रन भेद सुनायहु । अरुविरोध तामहँ समुझायहु ॥
स्वामि कहा विरोध है सोई । जहँ यक कार्य विषय यक होई ॥
सुनहु शास्त्र की विधि है जोई । सब अविरोध विचारहु सोई ॥
कर्म बिना जग कछु नहि होई । मीमांसा में कह ऋषि सोई ॥
कर्म न होत समय बिन कोई । तेहि वैशेषिक कहत सँजोई ॥
कारण उपादान नहिं होई । बनै न जगत वस्तु कहुँ कोई ॥
याको कह्यो न्याय के माँहीं । ज्ञान विचार योग दर्शाहीं ॥
जो लगि तत्त्वभेद नहिं जानत । तौलगिकछुजगकाज न मानत॥

दो०—कह्यो याहि है सांख्य में, जो हम वर्णन कीन्ह ।
बिना बनाये नहिं बनत, सो वेदान्त कहिदीन्ह ॥३३॥

कहहु विरोध कहाँ है भाई । हमहिं सबन को मेल लखाई ॥
जिमि जग फूसछानि के माहीं । सब मिलि ताहिउठावतधाहीं ॥
तिमिषटऋषिमिलिकेबहुभाँती । निजनिजशास्त्रबतायसुहाती ॥
जगरचनाविधिसबकहिदीन्हा। भ्रम न रहै जेहि पूरन कीन्हा ॥

१—महाप्रलय–आकाशादि क्रम, अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादिका होता है तब अग्न्यादि क्रम से जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस २ प्रलय में जहाँ २ तक प्रलय होता है वहाँ २ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।

जग अज्ञानस्वरूप लखावै । मनुज अनारि न कछुसुख पावै ॥
जिमिकोउअंधनहस्तिदेखावा । परखनहित जो हाथ लगावा ॥
परसेउ कान सो कहत सुनाई । सूप समान हस्ति है भाई ॥
केवल चरण गह्यो जो आना । कहत सो हाथी खम्भसमाना ॥

दो०—याही विधि सब कहत भे, निजनिज ज्ञान समान ।
ताहि भाँति संसार को, कहत अबुध अज्ञान ॥३४॥

यहि मानत बुद्धिमान न भाई । अंध अंध पाछे ही जाई ॥
बुधवर चलत पंथ को देखी । चलत न स्वारथलोलुप पेखी ॥
बोलत बहुरि एक तेहि काला । सुनहुस्वामितुमबुद्धिविशाला॥
कारण बिन जब काज न होई । कारण कारण तौ किन होई ॥
सरल सु सीधे भ्रात विचारहु । कहतस्वामियहउरमहँधारहु॥
युग्म पदारथ है जग माहीं । कारण कार्य और कछु नाहीं ॥
जौ लगि पुरुष न समुझत तेही । तौ लगि ज्ञान न होवे केही॥
सत रज तम गुन समता जानहु । नित्य अनादि स्वरूप बखानहु ॥

दो०— याही को प्रकृती कहत, सबै शास्त्र यक साथ ।
प्रकृती से उत्पति भये, तत्त्व विकार लखात ॥३५॥

पुनि परमाणु तत्त्वमिलि जाहीं । है सँयोग सब भाँति सदाहीं ॥
जो संयोग आदि है भाई । अरु वियोग को अन्त लखाई ॥
अथवा इमि जानहु सबठाँई । होत विभाग न तेहिकर भाई ॥
तेहि कहँ कारन जानहु नीके । साधन याही है सबही के ॥
आँख से आँख होत कहुँ नाहीं । नतरु दीप सों दीप लखाहीं॥

याते यह विचारि अब लीजै। कार्य्य कारण में चित दीजै॥
जासों जो प्रकटत जग माहीं। तेहि कहँ कारन कहत सदाहीं॥
प्रकटमान जग कार्य्य कहावे। कार्य्य रूप करता दर्शावे॥

दो०—असत भाव नहिं होवई, सत अभाव नहिं होय।
जो देखत इन दुहुन को, तत्त्वदर्शि है सोय ॥३६॥

तत्त्वदर्शि जानहिं जग कारज। दूसर नहिं जानत कोउ आरज॥
जो न करत सत्संग विचारा। तो भ्रम जाल पड़त संसारा॥
धन्य सो नर विद्यावित जोई। करहिं महापुरुषार्थ सँजोई॥
जो जग को बिन कारण मानत। यह मानहु वह कछु नहिं जानत॥
आवत सृष्टि समय जब भाई। तबहि ईश यक करत उपाई॥
जो परमाणु प्रकृति बिच आहीं। करि यक ठौर सुजगत बनाहीं॥
प्रथम जगत स्थूल बनावा। महत् तत्त्व ताकहँ कहि गावा॥
ताहू ते गुरुतम जो होई। अहंकार तेहि कह सब कोई॥

दो०—पंचभूत ताते भये, इन्द्रिसमूह निदान।
मनअरु ओषधि वृन्दसब, अन्न वीर्य वपु आन ॥३७॥
आदि अमैथुन जग भयो, ईशकृपा अति कीन्ह।
तेहि पीछे मैथुन जगत, अति अद्भुत रचि दीन्ह ॥३८॥

सवैया

अंतर अस्थिन जोड़ दियोपुनि नाड़िन बंधन सों तेहि बाँध्यो।
मांस को लेप लगाय यथा विधि चर्म के ढकन से तेहि ढाँक्यो॥

फेफड़ यकृत प्लीह कलायुत व्यञ्जन चोखो सु तामहँ राख्यो।
लोम नखादिक राखि सु देहमें चत्तु समेत जो मानव भाख्यो॥४॥
ताबिच जीव विराजत है निज इन्द्रिन सों रस चाखै सुहाती।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति समय करि भोगन में मन को दिन राती॥
मानुष देह अनोखी बनाइ रची यह सृष्टि भली सब भाँती।
सोकिकहोबिन ईशबने किमि नानास्वरूप अनेकनजाती॥५॥

रचना जगत बिलोकत कोई। होत भान तेहि ईश्वर सोई॥
जिमि नर भूषण बन में पावै। तेहि सुन्दरता हिय में भावै॥
तेहि क्षण मन में होत विचारा। यहिं कर कौन बनावन हारा॥
याही विधि तुम जानहु ताता। ईश निरन्तर सब जग जाता॥
तब पूछत यक चतुर नरेशा। कहहु मोहिं समुझाइ ऋषेशा॥
मानव सृष्टि प्रथम ऋषिराई। अथवा पृथिवी आदि लखाई॥
आदि भूमि कहि स्वामि बखानी। भूमि बिना नर सुख नहिं जानी॥
जो न आदि पृथिवी जग होई। तौ नहिं जीवन पालन होई॥

दो०—पुनि पूछत जग के प्रथम, बहुत भये वा एक।
कहत स्वामि बहुतक भये, बलबुधि सहित विवेक॥३६॥

पूछत प्रथम कहहु का भावा। वाल युवा अरु वृद्ध सुहावा॥
इनमें प्रथम कवन जग आवा। अथवा तीनों भये सुहावा॥
कहत स्वामि जग की है रचना। योवन वय सत गुन लै अपना॥
यदि जग होत वृद्ध अरु बालक। होत कौन इनकर प्रतिपालक॥
तब कह आदि बतावहु स्वामी। हौं तुम्हार अनुचर अनुगामी॥

स्वामिकहतदिनरातिकीभाँती। है प्रवाह सृष्टी सब जाती ॥
प्रथम सृष्टि पुनि प्रलय सोहाई। प्रथम प्रलय जग अन्तिम भाई ॥
देखहु है अनादि यहि भाँती। राति दिवसकी रीति सुहाती ॥

दो०—ईश जीव प्रकृती यथा, है अनादि नहिं वादि।
तिमि उत्पत्तिस्थितिप्रलय, जगत प्रवाह अनादि ॥४०॥

काहुहि ईश मनुज उपजावा। धर्मसिन्धु शुभ गुन को भावा ॥
काहुहि सिंह स्वरूप बनावा। हिंसक क्रूर दुखद गुन पावा ॥
कहहु कहा यह पक्ष न साँई। कहत स्वामि यह पक्ष न भाई ॥
जीव कर्म वश पावत देहा। योनिन भ्रमत कर्म के नेहा ॥
कहहु स्वामि केहि स्थल माँही। उत्पति सृष्टि भई केहि ठाँही ॥
उपजत एक जाति जग आई। अथवा जाति अनेक लखाई ॥
सृष्टी रचना स्वामि बतावत। आदिसृष्टि तिब्बत ठहरावत ॥
मनुष जाति यक उपजी ताता। आर्य धर्म वैदिक विख्याता ॥

दो०—आर्य दस्यु द्वै नाम मे, मनुज जाति के माहिं।
आर्य श्रेष्ठ विद्वान् जग, दस्यू चोर लखाहिं ॥४१॥

सुनहु कवै यहि स्थल माँई। आयं आर्य पुरुष सुखदाई ॥
आर्य दस्यु सुर असुर कहाहीं। भिन्न स्वभाव भिन्न गुन जाहीं ॥
विग्रह होत रह्यो निशि वासर। शूद्र स्वभाव अनीतन आगर ॥
तबहिं आर्य जन हृदय विचारी। बस्यो आय यहि ठौर मँझारी ॥
आर्यवर्त तब से यहि नामा। भयोप्रगटजगविदितललामा ॥
उत्तरदिशिहिमिगिरिअतिसोहा। दक्षिण विन्ध्याचल मनमोहा ॥
सरस्वति पश्चिम ओर सोहाई। अटक नदी पूरब दर्शाई ॥

ब्रह्म पुत्र रेखा बिच माहीं। मध्य सुआर्य्यावर्त्त लखाहीं।

दो०—प्रथम कवन या देश में, बसत रह्यो महराज।
नाम जाति सब कहहु प्रभु, जानि सुमोहित आज॥४२॥
स्वामिकहत यहि देश को, पूर्व नाम कछु नाहिं।
नहिं कोउ बसत रह्यो यहाँ, आदि सृष्टि के माहिं॥४३॥

कछुक दिवस तिब्बत में रहेऊ। तेहि पीछे यहि स्थल बसेऊ।
कोउ अस कहत सुनहु ऋषिराई। आये यह इरान से भाई।
तेहि ते पर्यो आर्य है नामा। कहत देवता सकल अकामा।
देव दनुज संग्राम जो भयऊ। सोसब आर्य जातिबिचठयऊ।
स्वामि कहत यह झूठ सदाई। आर्यन महिमा वेदन गाई।
धर्म सहित विद्यावित जोई। जानहु ताहि आर्य सब कोई।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुजाती। कहत वेद यह आर्य्य द्विजाती॥
विद्या रहित अधर्मी जो नर। दस्यू ताकहं कहत सबै नर॥

दो०—आर्य्यावर्त्त से भिन्न जो, देश जगत के बीच।
दस्यू तिनहिं बखानहीं, म्लेच्छ भेप गुन नीच॥४४॥
महाराज इक्ष्वाकु से, कुरु पांडव लौं टेक।
आर्य राज्य यहँ पै रह्यौ, बलयुत बुद्धि विवेक॥४५॥

सुत विराट ब्रह्मा उपजायो। अरु विराट से मनु जग आयो॥
मनु के दश सुत भये प्रवीना। मरीच्यादि गुणवान नवीना॥
तिनके सुत इक्ष्वाकु जु भयऊ। प्रथम नृपतियहि देशके ठयऊ॥
अब हम उत्पति भये अभागे। आलस और विरोधन पागे॥

अन्य भये शासक मम ऊपर । हमरो देखि विरोध परस्पर ॥
राज्य सुदेश सुखद है जेतो । नहिं विदेश सुखदाई तेतो ॥
याते वेद शास्त्र जो रीती । बरनन करन सो मानहुँ नीती ॥

प्रश्न

दो०—कितो समय उत्पति जगत, कहहु नाथ समुझाय ।
बीत्यो है यहिसमय लगि, कितोकाल अधिकाय ॥४६॥

स्वामि कहत गणना इमि भाई । संख्या एक अरब दर्शाई ॥
कोटि छान्नवे लत्तहु केतिक । बहुतक सहस काल है जेतिक ॥
और अधिक देखन जो चहहू । तौ मम लिखित भूमिका गहहू ॥
वेदन में जेहि भाँति बखाना । तेहिप्रकार तहँलिख्यो सुजाना ॥
ऋग यजु साम अथर्व के माहीं । जोजसकह्यो लिख्योतेहिठाहीं ॥
पुनि पूँछत यह बात बतावहु । धारन होतजगत किमिमानहु ॥
एक कहत यह शेष पै राजति । दूसर वृषभ शृंग बतरावति ॥
सकल पुराणिक शेष बनावहिं । यवन वृषभ युक्ती ठहरावहिं ॥

दो०—निराधार तीसर कहत, पवन चतुर्थ बखान ।
रवि आकर्षित भूमि है, पंचम को अनुमान ॥४७॥

षष्ठम कहत भूमि है भारी । तासों घूमत गगन मँझारी ॥
स्वामि कहत यह बात न कोई । पूछहु इन पर बात सँजोई ॥
जो यह जगत शेष फन अहई । अथवा वृषभ शृंग पर लहई ॥
तौ यह मोहिं बतावहु भाई । रहत मात पितु हैं केहि ठाँई ॥
पूछहु बैल सर्प केहि ऊपर । ते जन मौन होत तेहि औसर ॥
जिनको दृढ़ सिद्धान्त प्रवीना । शेष शक्ति पृथ्वी सुख दीना ॥

ते यह कहत कूर्म पर अहिहै । जलपर कूर्म रहत इमि कहिहै ॥
जल अग्नी ऊपर दर्शाई । अग्नि वायु पर प्रकट लखाई ॥

दो०—वायु सदा आकाश पै, ठहरत है दिन रात ।
पुनि पूछत कापै सबै, कहत ईश सतरात ॥४८॥

पुनि इन सों जब पूछहु जाई । वृषभ कूर्म सुत काके भाई ॥
कश्यप को सुत सर्प बतावहिं । बैल गाय को पूत लखावहिं ॥
कह मरीचि सों कश्यप ठयऊ । मनुमरीचि उपजावत भयऊ ॥
अरु विराट ते मनु जग आयो । ब्रह्मा पुत्र विराट कहायो ॥
ब्रह्मा आदि सृष्टि में भयऊ । तबकहुं शेष जन्म नहिं ठयऊ ॥
अरु कश्यप से ब्रह्मा ताईं । मोहिं पाँच पीढ़ी दर्शाई ॥
तब यह कहहु भूमि केहि ऊपर । जब नहिं उपजे शेष दिवाकर ॥
तब वे चुप ह्वै करत बितंडा । बात न मानि प्रहारैं दंडा ॥

दो०—सत्य कथा यहि भाँति है, सुनहु सकल दै कान ।
प्रलय अन्त जो बचि रहै, ताहि शेष परिमान ॥४९॥

असत कल्पना इन करिलीन्हीं । शेषहिं सर्प मानि मन लीन्हीं ॥
सत्य अधार जगत यह भाई । वेदन में यहि विधि दर्शाई ॥
उक्षाधार अवनि आकाशा । वेद मध्य यह पाठ प्रकाशा ॥
करि कल्पना बैल की ठानी । उक्ष शब्द को अर्थ न जानी ॥
बहुतक शब्द वेद के माहीं । लौकिक अर्थ अनर्थ लखाहीं ॥
उक्षा अर्थ सूर्य को जानहु । सींचत है जग मेघन मानहु ॥
निज आकर्ष जगत ठहरावा । ईश सहारा सूर्य सुहावा ॥

कहहु स्वामि जग एतो भारी । याकहँ ईश कौन विधि धारी ॥

दो०—स्वामिकहत समुझाइ के, नेक लखहु आकाश ।
अरु समुद्र अवलोकिये, तेहि कर रूप प्रकाश ॥५०॥

तेहि अनन्त प्रभु सन्मुख भाई । लोक एक परमाणु लखाई ॥
वह व्यापक विभु सेवक माहीं । यह जग धारण करत सदाहीं॥
आकर्षण सों ठहरत लोका । सकलजगत विभु धारिअशोका ॥
कहहु स्वामि मोहिं यह समुझाई । घूमत लोक कि थिर दर्शाई ॥
कहत स्वामि घूमत सब लोका । पुनि पूँछत यह हम कहँ धोका॥
कोउ अस कहत सूर्य है घूमत । थिर है भूमिकतहुँ नहिं घूमत॥
कोउ कह केवल भूमि भ्रमत है । सूर्य सदा स्थिरहि रहत है ॥
इन दोहुन में को सत सांई । मोहिं समुझाइ कहहु गुरुराई ॥

दो०—स्वामि कहत इन दुहुन को, झूठ पक्ष है अर्ध ।
वारि सहित भूगोल सब, घूमत रवि के गिर्द ॥५१॥

सूर्य सदा आकर्षण गुण सों । देत सुःख लोकन को जल सों ॥
निज परिधी पर घूमत सोऊ । भूमि और रवि लखिये दोऊ ॥
सूर्य एक ब्रह्मांड बिराजत । लोक सकल लोकांत प्रकाशत ॥
जिमिजगचन्द्र प्रकाशत भानू । भूमि आदि लोकन को जानू ॥
दिवस राति सब ठौर सुहाई । सन्मुख सूर्य सोदिवस लखाई ॥
रवि से पृष्ठ भाग जो होई । रजनी ताकहँ जानहु सोई ॥
उदय अस्त द्वौ काल सुहावत । सोई संध्याकाल कहावत ॥
मध्य दिवस मध्याह्न कहावै । मध्य रात्रि निशि माहिं सुनावै ॥

दो०—कालचक्र यहि भाँति सों, सकल लोक के बीच।
वर्तमान सब ठौर में, रवि प्रकाश जग सींच॥५२॥
आर्य्यवर्त जब दिवस लखाई। राति पताल विलोकहु भाई॥
अमरीका अब ताको नामा। पाद तले जो बसत ललामा॥
घूमत सूर्य कहैं जे भाई। थिर है पृथिवी कहत सुनाई॥
तिनहिं अज्ञ बुध कहत सदाहीं। जानहिं सूर्यगती ते नाहीं॥
इन महँ बसत मनुज सब ठाहीं। हैं तहँ वृक्ष पहाड़ सदाहीं॥
शतपथ को प्रमाण दै स्वामी। वसु स्वरूप बतलाइ अनामी॥
तहँ पर बसत सकल जन नीके। करत कृत्य निज कर्मन ही के॥
दो०—नरन केर आकार में, कछुक भेद दर्शात।
जिमि यहँ प्रान्तिक भेद से, रूप विभिन्न लखात॥५३॥
जेहि विधि सृष्टि यहाँ पर भाई। ताही विधि सब ठौर लखाई॥
रचत सदा प्रभु पूर्व समाना। नाना भाँतिन सृष्टि विधाना॥
तेहि महँ भेद कछू नहिं होई। नियम एक निर्धारित जोई॥
कहहु कहा सब ठौरन वेदा। लोकन में मानत तजि खेदा॥
कहत स्वामि सब लोकन माहीं। एकहि वेद दियो सब काहीं॥
पुनि पूछत यह मोहिं समुझावहु। जब तुम जीव अनादि बतावहु॥
तौ अधिकार ईश केहि भाँती। परवस जीव रहत दिनराती॥
उपमा राज प्रजा की दीनी। पराधीन स्वाधीन प्रवीनी॥
पुनि सब एक पुरुष आधीना। जग रक्षा है ईश प्रवीना॥
दो०—जेहि विधि यहि संसार में, प्रजा राज्य आधीन।
ताही विधि सब जीव में, परमेश्वर आसीन॥५४॥

रचत ईश जब जीव को, कर्म करन के हेत ।
ताही विधि भोगत सबै, प्रभु सब कहँ फल देत ॥५५॥
सृष्टि रचै पालन करै, सर्व शक्तिमन ईश ।
अरु सँहार हू करत है, बारबार जगदीश ॥५६॥

शिष्य

भयो गुरू संतोष मोहिं, सुनि ऋषि कथा प्रसंग ।
मोह महातम अज्ञता, नष्ट किये सत्संग ॥५७॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामी दयानन्दसरस्वतीवर्णित सृष्टिक्रमविषय वैद्य कविराज पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरु-शिष्य संवाद अष्टम तरङ्ग (स० ८ स०)

अथ नवम तरङ्ग (स० ९ स०)

विद्याऽविद्या बंध-मोक्ष

शिष्य

सो०—जानि सुसेवक नाथ, कथा कहहु ऋषिराजकी।
गुरुवर भयो सनाथ, सत्यकथानिशिदिवससुनि॥ १॥
दो०—कथासलोनी गुन भरी, सुनि सुनि कान सिहात।
छूटिजात अभिमान सब, केहुविधि नाहिं भुलात॥ १ ॥
सृष्टिविषय जो प्रभु कह्यो, सुनि मन भयो हुलास ।
अब पुनि विद्यामोक्ष को, कहिये युक्ति विलास ॥ २ ॥

गुरु

सो०—सुनहु शिष्य मम बात, प्रेम सहितकहिहौंसदा।
कथा परम सुख दात, धर्म अर्थ फलदायनी ॥२॥
सुनहु शिष्य तुम बहुत प्रवीना। पूछत निशिदिन कथा नवीना॥
अब हम कहत सुनहु दै काना। कह्यो जोऋषिवरमोक्षविधाना॥
विद्या और अविद्या दोऊ। जानत एक संग नर जोऊ॥
कर्म उपासन योग अविद्या। ज्ञान यथारथ जानहु विद्या॥
जीतब मृत्यु अविद्या से ही। विद्या मोक्ष पराभव लेही॥
जेहि विद्या वर्णत ऋषिराई। और अविद्या कहत सुनाई॥

योग पतंजलि दर्शन माहीं । कह्यो जगत हित परमसुहाहीं ॥
स्वामि अविद्या चिह्न बतावत । हमहूँ तुमको सोइ सुनावत ॥
सो०—जो अनित्यको नित्य, अशुचि बतावत शुचि सदा ।
दुखमानत सुख नित्त, बिनआतम आतमलखहिं ॥२॥
दो०—ताहि अविद्या कहत हैं, फँसत जो नर यहि बीच ।
विद्या तेहि विपरीत है, धरहु हृदय बिच खीच ॥३॥
जासों होय पदारथ बोधा । विद्या ताकहँ कहत सुबोधा ॥
जानि न परत जासु सों रूपा । अन्य में अन्य बुद्धि अनुरूपा ॥
ताहि अविद्या कहत पुकारी । भेद सुनहु तेहि कर नर नारी ॥
केहि विधि कहत अविद्याकोही । कर्म उपासन ही जग जोही ॥
भीतर बाहर क्रिया विशेषा । ज्ञान न होत न हो निश्शेषा ॥
यहि विधि बिना कर्म शुभ कीने । पार न होत मृत्यु दुख हीने ॥
पावन कर्म उपासन पावन । पावन ज्ञान मुक्ति को साधन ॥
झूठ कर्म पाषाण की पूजा । मिथ्या ज्ञान बन्ध युत दूजा ॥
दो०—होत कर्म से कोउ जन, यक क्षण अलग न भाय ।
तौ शुभ कर्म करै सदा, सत्य मार्ग को पाय ॥ ४ ॥
सत्य वचन पुनि धर्मयुत, कर्म करै सतरात ।
अरु अधर्म त्यागन करे, मुक्ती मार्ग लखात ॥ ५ ॥
पूछत एक स्वामि सों आई । पावत मुक्ति न कौन गोसाँई ॥
स्वामि कहत जो बद्ध लखाई । बद्ध कौन है कहिये साँई ॥
कहत स्वामि जो है अज्ञाना । करत रहत अधरम है नाना ॥
सोइ जीव जग बद्ध कहावे । मुक्ति पंथ वह नहिं नियरावे ॥

पूछत स्वामि कहौ समुझाई। बन्ध अरु मोक्ष स्वभाव लखाई॥
अथवा होत निमित सो साँई। मोहिं समुझाइ कहौ गुरुराई॥
है निमित्त यह स्वामि बतावत। कारण एक प्रवल दर्शावत॥
बद्ध अरु मुक्त स्वभाव से होई। तो वृति कतहुँ नाश नहिं होई॥

दो०—एक कहत ऋपिराज सों, जीव न बन्ध न मुक्त।
मांडूक उपनिषद् पर, गौड़ कारिका उक्त॥ ६॥

जन्म न लेत बन्ध नहिं आवत। नहिं साधक नहिं कर्तृ कहावत॥
तबहिं स्वामि कह यह उर धारहु। नव वेदान्ति कथा उचारहु॥
यह नहिं सत्य होय केहु काला। है अलपज्ञ जीव तिहुँ काला॥
जन्म लेत निज कर्म न भोगत। करत भोग पुनि कर्मन जोवत॥
साधन करत मुक्ति के हेता। प्राप्त होत तब ईश निकेता॥
तब वह कहत सुनहु ऋषिराई। अन्तःकरण धर्म यह भाई॥
जीव धर्म यह होय न साँई। देह धर्म यह प्रकट दिखाई॥
पाप पुण्य से रहित सुजीवा। साक्षी-मान परम बलसीवा॥

दो०—स्वामि कहत यह देह जड़, सहत उष्ण अरु शीत।
अरु जड़ अन्तःकरन हैं, होत प्राप्त जो मीत॥ ७॥

भोग न होत देह के माहीं। भोगत चेतन है क्षण माहीं॥
भूख न प्यास प्राण के माहीं। क्षुधा तृषा सब भाँति सताहीं॥
तैसेहि जड़ मन हर्ष न शोका। भोगत सुखदुख जीव अशोका॥
मन में होत सदा संकलपा। भोगत जीव जो होत विकलपा॥
जिमि करवाल चलावन वारो। पावत दंड महादुख भारो॥
दंडनीय करवाल न होई। तिमि अन्तष्कृ को जानहिं गोई॥

साक्षी जीव कर्म को नाँहीं । कर्ता भोक्ता है सब ठाँहीं ॥
भोगत जीव कर्म जग माहीं । साक्षी ईश्वर जानहु ताहीं ॥

दो०—कहत एक प्रतिबिम्ब है, ब्रह्म जीव के रूप ।
दर्पण अन्तःकरण है, जीव ब्रह्म अनुरूप ॥ ८ ॥

दर्पन टूटत है जब भाई । तो प्रतिबिम्बहु जात नशाई ॥
तेहि विधि जीवहृदय बिच अहई । हृदय नशे ब्रह्म आनँद लहई ॥
यहि विधि मुक्त जीव सब बेरा । नहिं भोगत नहिं करत बसेरा ॥
कहत स्वामि यह बालकताई । उपमा घटत ब्रह्म बिच नाँई ॥
सदा होत प्रतिबिम्ब अकारा । निराकार नहिं होत विकारा ॥
दर्पन है साकार सुहावा । अरु सकार मुख उज्ज्वलभावा ॥
अरु सब पृथक पृथक दर्शाहीं । पृथक सुदर्पन मुख सब ठाँहीं ॥
ब्रह्म सुव्यापक सब के माँहीं । निराकार ईश्वर सब ठाँहीं ॥

दो०—हुइ न सकत केहि भाँति सों, ताको जग प्रतिबिम्ब ।
जगदीश्वर करुनायतन, परमेश्वर जगदम्ब ॥ ९ ॥

पुनि कह स्वामि सुनहु मम बाता । गगन अभास होत जल जाता ॥
निराकार आकाश बताई । ताको तबहिं अभास लखाई ॥
तेहि विधि ब्रह्म हृदय के माँहीं । होत अभास जीव तनु माँहीं ॥
चिदाभास ताकहँ बुध कहहीं । जाने ताहि परम पद लहहीं ॥
स्वामि कहत यह झूठ अलापा । बाल बुद्धिवत् करत प्रलापा ॥
काहुहि गगन देखात न भाई । तेहि महँ रूप न रेख लखाई ॥
नयनन सों किमि परै लखाई । गगन माँहि गुन रूप न भाई ॥
यह जो नील बरन दिखराई । है नहिं कछु यह शून्य सोहाई ॥

दो०—भूमि वारि अरु अग्नि के, अणु अणु पृथक् लखात ।
सो जल बिच प्रतिबिम्ब है, नाहिं अकाश देखात॥१०॥

घटाकाश अरु मेघ अकाशा । कहत जो जन यह महदाकाशा॥
ते जन फँसत अविद्या माहीं । ईश भेद कछु जानत नाहीं॥
कोउ कह चिदाकाश के माहीं । घूमत जीव रहत सब ठाहीं॥
जिमि वारिध बिच जीवअनेका । उड़त गगन बिच जे धरि टेका॥
जीव ब्रह्म द्वौ प्रबल उपाधी । जीवहि होवै ब्रह्म अनादी॥
तिन को मत यह सत्य न होई । भरमत रहत सदा सब कोई॥
सर्वव्यापक एक ब्रह्म को । मानि लेहिं जो जीव जगत को॥
सर्वज्ञता प्रभू की जाई । ब्रह्म न होत अखंड सदाई॥

दो०—जीव पृथक ईश्वर पृथक, यह वेदन की रीति ।
ताते निशि-दिन प्रेम सों, गहहु वेद की नीति॥११॥

अध्यारोप स्वामि सुनि लीजै । अन्य में अन्य वस्तु लखिलीजै॥
निश्चय ब्रह्म लखहु सब ठाहीं । बोध हेत यह युक्ति सोहाहीं॥
स्वामिकहत यहहमहिंबतावहु । रोपक कौन ताहि समुझावहु॥
तब वह कहत जीव है एका । कौनजीव करि कहहु विवेका॥
अस कह अन्तःकरन के माँहीं । चेतन एक विराजत आहीं॥
तब कह स्वामि ब्रह्म चेतन सोइ । या दूसर है तहँ चेतन कोइ॥
उत्तर देत ब्रह्म सोई आई । कहत स्वामि समुझावहु भाई॥
तो कह ब्रह्म सो अपनेहिं माँहीं । करत कल्पना जग दर्शाहीं॥

दो०—हम मानत यहि भाँति सों, तौ कह हानि लखात ।
स्वामिकहतकल्पितअसत, सोकिमिसत्यसोहात॥१२॥

मन वाणी जेहि कल्पित करई । ताकहँ झूठ सदा उर धरई ॥
तब कह स्वामि कहौ किमि भाई । ब्रह्म असत होवे यहि ठाँई ॥
मिथ्या मन वाणी से जोई । कल्पित करैं असत हैं सोई ॥
होय ब्रह्म अस तौ कह हानी । हमरी जान 'इष्ट' मनमानी ॥
कहा स्वामि तेहि बुद्धि सराही । धनि तुम्हार वेदान्त सोहाही ॥
सत्य काम पुनि सत्य स्वरूपा । शुभ संकल्प ब्रह्म यक रूपा ॥
ताकहँ मिथ्याचार बतावहु । निजबुधि देखिनतनिकलजावहु ॥
कौन वेद उपनिषदन माँहीं । कल्पित असत ब्रह्म केहि ठाँहीं ॥

सो०—जो तुम्हार है दोष, ताहि ब्रह्मकल्पित करहु ।
ब्रह्म अहै निर्दोष, सत्य नित्य आनंद प्रभु ॥ ४ ॥

दो०—जो व्यापक जगदीश है, बन्धन परत न सोय ।
जीव एक अलपज्ञ है, दुख-सुख भोगत सोय ॥१३॥

यक पूछत प्रभु मोहिं बतावहु । बन्ध मुक्ति कर भेद सुनावहु ॥
स्वामि कहत सुनिये चितलाई । मुक्ति स्वतंत्र परम सुखदाई ॥
जासों दुख छूटत नर केरे । प्राप्त होत सुख ब्रह्म के नेरे ॥
है सोइ मुक्ति जगत के माँहीं । जो न लहत वह अबुध लखाहीं ॥
पुनि पूछत यह मोहिं बतावहु । मुक्ति बन्ध कारण जतलावहु ॥
आज्ञा ईश्वर पालन वारो । पावत मुक्ति ऋषो उच्चारो ॥
सदा कुसंग अविद्या त्यागै । अधरम व्यसन न जा कहँ लागै ॥
बोलै सदा सत्य प्रिय बानी । परोपकार रत विद्या दानी ॥
पक्ष रहित धर्मी नित होई । स्तुति ईश करत नित सोई ॥
उन्नति ज्ञान करै निशि-वासर । साधन करै धर्म युत आगर

दो०—वह पावत मुक्ती अवशि, करत ज्ञान युत कर्म ।
है स्वतंत्र विचरत सदा, जानि ब्रह्म को मर्म ॥१४॥
चलै ज्ञान विपरीत जो, करै अवज्ञा ईश ।
वह नर बन्धन परत है, दुख भोगत तजि ईश ॥१५॥

पुनि कहु स्वामि बतावहु मोहीं । मुक्ति माहिं लय जीव की होई ॥
अथवा रहत जगत के माहीं । वा दूसर कोउ ठौर लखाहीं ॥
कहत त्रिकाल जीव ब्रह्म माहीं । विद्यमान बहु रहत सदाही ॥
अरु कहु ब्रह्म रहत केहि ठौरा । कहहु जीव गति को सब ब्योरा ॥
निज इच्छा भरमत सब धाई । अथवा रहत एक हीं ठाईं ॥
स्वामि कहत तेहि रोक न टोकू । आनँद सहित स्वतंत्र विवेकू ॥
पूरण ब्रह्म लखहु सब ठाहीं । मुक्ति जीवहू रहत तहाँहीं ॥
जो तुम पूछत जीव सुधीरा । मुक्ति मध्य किमि कहत शरीरा ॥

दो०—सो सुख आनँद भोगई, जीव तहाँ बिन अंग ।
गुण समस्त सबहीं रहत, रहत न भौतिक संग॥१६॥

मोक्ष माँहि वह अधम शरीरा । भौतिकरूप इन्द्रि बलवीरा ॥
सो न रहत तेहि स्थल माहीं । वपु संकल्प मात्र तेहि ठाहीं ॥
निज स्वभाव इन्द्रिन गुन रहहीं । निजइच्छा आतम सुखलहहीं ॥
श्रोत्र आदि मन बुद्धि सदाहीं । अहंकार तहँ रहत सोहाहीं ॥
शक्ती जीव अनूपम जानहु । मुक्तिबीच यह रहतसो मानहु ॥
चौबिस शक्ति जीव के माहीं । रहतसदा निशिदिवसतहाँहीं ॥
एकहि शक्ति मुख्य तुम जानहु । नाम सु औरन केर सुनावहु ॥

सुबल, पराक्रम, अरु आकर्षण, । प्रेरण-गती, विवेचन, भीषण, ॥
दो०—निश्चय, इच्छा, प्रेमयुत, क्रिया और उत्साह ।
द्वेष, सँयोग, विभागयुत, कहत स्मरण सराह ॥१७॥
घ्राण, संयोज, विभाजक, दर्शन, स्वाद, स्पर्श ।
गंध ग्रहन, चौबीस हैं, शक्ति जीव आदर्श ॥१८॥
जीव जो ब्रह्म माँहि लय होई । तौ पुनि सुख भोगत कहुँ कोई ॥
नाश जीव मुक्ती को जानहिं । ते नर मूढ़ अयान प्रमानहिं ॥
मुक्ति समय सब दुख नशि जाहीं । रहत अनन्द सदा तेहि ठाहीं ॥
जीव समर्थ मुक्ति के माँहीं । दुख अज्ञात पाप नशि जाँहीं ॥
मृत्यु शोक वृद्धापन नाशत । क्षुधा तृषा अरु पाप विनाशत ॥
है वह सत्य सच्चिदानन्दा । परमातम शुभ आनँद कन्दा ॥
नर नित करै यत्न तेहि हेता । साधन मोक्ष परम सुख लेता ॥
करि मन शुद्ध नेत्र शुध करई । प्रतिक्षण प्रभुहिं हृदय बिच धरई ॥
दो०—वह मुक्ती सुख भोगई, पुनि न परत भ्रमजाल ।
धर्म अर्थ कामादि सब, मिलत ताहि सब काल ॥१९॥
ज्ञानेन्द्रिय अरु शुद्ध मन, रहत जीव के साथ ।
थिर बुद्धी तेहि होत है, मोक्ष परम सुख दात ॥२०॥
यक पूछत ऋषि सों कर जोरी । सुनहु नाथ यक विनती मोरी ॥
जन्म मृत्यु जो दुख जग माँहीं । मुक्त जीव पावत की नाहीं ॥
हम देख्यो बहु स्थल माँहीं । मुक्त जीव पुनि आवत नाहीं ॥
कहत स्वामि यह ठीक न भाई । वेद निषेध करत अधिकाई ॥
तब पूछत पुनि मोहिं समझावहु । को जग जन्म देत बतरावहु ॥

पुनि कह स्वामि ईश वह एका। धारण करत जगत धरि टेका॥
दुःख निवृत्ति मुक्ति तुम जानहु। आवत बहुरि इहां परमानहु॥
कल्प अन्त मुक्ती सुख त्यागत। संख्या कल्पतुमहिं बतलावत॥
दो०—सहस बीस तैंतालिस, लक्ष वर्ष को योग।
चतुर्युगी परिमाण यह, जानि लेहिं सब लोग॥२१॥
युग्म सहस्र चतुर्युगि होई। अहोरात्रि तेहि कहत सँजोई॥
यहि विधितीसदिवसअरुराती। होत मास तेहि काल सुहाती॥
द्वादश मास वर्ष लखि लीजै। एक शत काल परान्त करीजै॥
एतो समय मुक्त सुख पावत। बीते समय बहुरि जग आवत॥
पुनि कह हम जानत इमि साईं। मुक्ति जीव पुनि आवत नाईं॥
हमरी जानि सुग्रन्थन माँहीं। लिख्यो मुक्तिको भाव सोहाहीं॥
जन्म-मरण बन्धन जग केरे। आवत जीव न ताके नेरे॥
कहत स्वामि यह बात न होई। देखहु जीव समर्थ सँजोई॥
दो०—नहिं अनंत है जासु वपु, फल अनंत किमि होय।
तेहि अनंत सुख भोग हित, जीव समर्थ न सोय॥२२॥
साधन जीव अनित्य सदाई। तेहि फल नित्य होय नहिं भाई॥
जो न मुक्ति ते आवै कोई। तो निश्शेष जीव जग होई॥
जो यह कहहु ईश उपराजहि। तौ कस जीवनित्य जग राजहि॥
जाहि सकल मुक्ती के माँहीं। तहँ पर होय भीड़ अधिकाहीं॥
आयअधिकव्ययकछुनहिंहोई। कहहु कौन गति ताकी होई॥
दुख न होय तौ सुखकिमिजानै। जिमि कटु चखे मधुर पहिचानै॥
जीव सदा अलपज्ञ सहाई। है सर्वज्ञ ईश जग राई॥

जीव स्वतंत्र मुक्ति में रहई । इन्द्रिन बिन सब स्वाद न लहई ॥
दो०—नित्य मुक्ति जग ईश है, नाथ हमहिं दर्शाइ ।
मुक्ति काल वह रहत है, जीव ईश गुन पाइ ॥२३॥
है अनन्त गुन कर्म स्वभावा । ईश समर्थ विलोकहु भावा ॥
ता महँ बन्धन दुःख अविद्या । शुद्ध स्वरूप ईश बिच विद्या ॥
कहतस्वामिसों थक अकुलाई । जन्म मृत्यु सम मुक्ति लखाई ॥
स्वामि कहत यह बात न कोई । मुक्ति न जन्म मरण सम होई ॥
छत्तिस सहस बार के माहीं । उत्पति प्रलय सृष्टि दर्शाहीं ॥
एतो समय मुक्तिको जानहु । आनँद लहत जीव तहँ मानहु ॥
इतने समय दुःख नहिं होई । कहहु कहा यह लाभ न सोई ॥
क्षुधा-तृषा नित करत उपाई । जो क्षण-क्षण पर आवत धाई ॥
दो०—हम देखत नित मृत्यु को, जन्म-मरण के बीच ।
पुनि जीवन हित अहर्निश, करत यत्न बल खींच ॥२४॥
तौ पुनि मुक्ति हेत किमि नाईं । करहिं उपाय परम सुखदाई ॥
तो तुम साधन मुक्ती पूछत । सुनहु मिलहि तेहि जेहि हिय सूझत ॥
कछु साधन हम प्रथम बताये । ऋषिन केर मत तुमहिं सुनाये ॥
झूठ, पाप, दुख, त्यागन करई । सत्य धर्म सुख हियमहँ धरई ॥
करत सदा सत्संग प्रवीना । अरु विवेक बुद्धी मन चीन्हा ॥
पंच कोष वपु बिच दर्शाई । जानहु तिनहिं सकलमन लाई ॥
कोष अन्न मय परम पुनीता । त्वचा अस्थि लौं जो शुभ नीता ॥
गमनागमन करै दिन राती । कोष प्राणमय दूसर जाती ॥
तिन महँ प्राण अपान उदाना । व्यान समान वायु परिमाना ॥

दो०–कोष मनोमय है तहाँ, मन विकार जेहि माहिं।
ज्ञान कर्म इन्द्रिन सहित, नर अकार दर्शाहिं ॥२५॥
इन महँ जीव करत व्यवहारा। ज्ञान कर्म भोगत सुख सारा॥
हर्ष प्रीति आनंद सदाई। रहत न कछु अथवा अधिकाई॥
आनँदमय सोइ कोष बिराजत। इनसोंजीवजगतविचराजत॥
जाग्रत स्वप्नसुषुप्ति अवस्था। सतरज तमप्रकृतीगुनअस्था॥
यह शरीर स्थूल देखाई। दूसर सूक्ष्म शरीर सुहाई॥
ज्ञान इन्द्रि अरु सूक्षम भूता। पंच प्राण मन बुद्धि सँयूता॥
सत्रह तत्त्व रहत हैं तहँवाँ। सूक्ष्मशरीर विराजत जहँवाँ॥
कारणशरीर तीसरा जानहु। चतुर्थ तुरीय इष्ट पहिचानहु॥
यह शरीर मुक्ती के माहीं। रहत सदा बिनदुख सुखचाहीं॥
दो०–जो समुझत यहि भेद को, साधन मुक्ति विवेक।
यह दूसर साधन लखहु, करहु ताहि धरि टेक ॥२६॥
शम, दम, उपरति और तितीक्षा। श्रद्धा, समाधान की दीक्षा॥
निज आतम अरु अन्तर भावा। तेहि अधरम सों रहत हटावा॥
धर्म चरित में रमत सदाई। सो "शम" साधन जानहु भाई॥
दुराचार सों इन्द्रिन रोकै। इन्द्रीजित कर्मन अवलोकै॥
अरु कुवासना मनहि न लावै। करि शुभ कर्म सदा सुख पावै॥
है साधन "दम" जगत प्रवीना। जासों होत शरीर नवीना॥
जो जग दुष्ट कर्म नित करहीं। तिनसों पृथक् सदा नर रहहीं॥
यह साधन "उपरति" है भाई। सो न लहत दुख की परिछाई॥

दो०—केतिक निन्दा होवई, करै बड़ाई कोय।
होय हानि अरु लाभ तो, हर्ष शोक नहिं होय ॥२७॥

साधन युक्ति निमग्न सदाई। ताहि 'तितिक्षा" जानहु भाई॥
वेद आदि सद शास्त्र जो अहहीं। अरु ऋषि वचनन मेंरत रहहीं॥
"श्रद्धा" साधन परम सुहाई। प्रेम सहित पावत निपुणाई॥
चित्त एकाग्र परम विधि सोई।"समाधान"साधन यक होई॥
ए षट साधन परम पुनीता। पावैं मोक्ष करै कुल नीता॥
युक्ति चतुर्थ सुनहु मन लाई। मोक्ष हेत नर करहिं उपाई॥
जिमि नर क्षुधा तृषा के काजा। करत यत्न मन होत न लाजा॥
तिमि निशिदिवसमुक्तिरत रहई। और न कछु ताके मन बसई॥

दो०—मुमुक्षत्व ताको कहत, साधन परम पुनीत।
प्रेम प्रीति सों जो करत, परमारथ सुख नीत॥२८॥

साधन मुक्ति प्रेम सों करई। इनते विलग न कछु चितधरई॥
पुनि अनुबन्धचतुष्टय[1] जानहु। श्रवणचतुष्टय बहुरि बखानहु॥

१—अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं— (१) अनुबन्ध इन चार साधनों से युक्त पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी होता है। (२) सम्बन्ध ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि-शास्त्र प्रतिपाद्य को यथाविधि समझकर अन्वित करना (३) 'विषयो' सब शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषयवाले पुरुष का नाम विषयी। (४) 'प्रयोजन' सब दुःखों की निवृत्ति और (परमानन्द) प्राप्त होकर मुक्तिसुख का होना ये अनुबन्ध कहाते हैं।

शान्त चित्त सुजननकीबानी । सुनहु प्रेमयुत श्रवणन आनी ॥
पुनि तेहि मनन करै चित लाई । मौन भाव एकान्त सुहाई ॥
हो निदिध्यासन सों दृढ़ताई । तब तेहि देखन करत उपाई ॥
नितप्रति आप्त विचार सोहाई । त्यागहि आलस क्रोधसदाई ॥
तम गुन आदि रजोगुन नाना । ईर्षा द्वेष काम अभिमाना ॥
त्यागहि इनहिं परम हित जानी । धारहि सत्व शान्तसुखदानी॥
दो०—विद्या शौच विचारगुन, हिय धारय नर सोय ।
सुखी जनों से मित्रता, "मैत्रि" एक गुन जोय॥२९॥
जो जन दुखी अहै जग भाई । तिन पर दया करहु मन लाई ॥
ताकहँ बुध जन'करुणा'कहहीं। ईश दया यह गुन जन लहहीं ॥
पुन्यात्मा जगत में जोई । तिनहिं देखि जो हर्षित होई ॥
"मुदिता" परमरम्य यह नीती । धारण करहि नेह की रीती ॥
जो जग दुष्टात्मा लखाहीं । तिन सों सदा बिलग हो जाहीं ॥
तिनहितवैरप्रीतिनहिं करई । परम "उपेक्षा" को हिय धरई ॥
नितप्रति ध्यान करै मन लाई । घटिका पञ्च अवशि थिरताई ॥
जासों अन्तःकरन बिचारा । मन प्रत्यक्ष होय सुख सारा ॥
योगाभ्यास करै दिन राती । क्लेश छुटै सुख हो बहु भाँती ॥
ब्रह्मानन्द प्राप्त सो करई । साधन मुक्ति हिये बिच धरई ॥
दो०—अविद्यादि के रूप को, कह्यो पूर्व बहु भाँति ।
प्रेम सहित अभ्यास करि, त्यागहु इनकी जाति॥३०॥
सो०—तब पूछत यक बात, कहहु ऋषीसमुझाइमोहिं ।
मानत मुक्ति जो तात, तव समान कोऊ नहीं॥ ५ ॥

दो०--मोक्षशिला सुन्दर सुखद, है शिवपुर के बीच ।
बैठत तेहि पर मौन है, कहत जैन बल खींच ॥३१॥
अरु मानत यहि भाँति इसाई । चौथा आसमान दिखराई ॥
तहँपर आनँदसहितबिराजत । निकटखुदाकेसबकोउराजत ॥
ऐसेहि मुसल्मान हू मानत । आसमान सप्तम ते भाषत ॥
अरु सब सुःख इन्द्रियन केरे । होत बहिश्त माँहिं बहुतेरे ॥
वाममार्गि शिवपुर को कहहीं । कहत शैव कैलाश शिखरहीं ॥
अरु वैकुंठहिं वैष्णव मानहिं । अरुगोसाँइगोकुलअनुमानहिं ॥
ईश लोक में मुक्त जो वसहीं । तेहि "सालोक्य" पुरानिककहहीं ॥
लघु भ्राता सम ईश समीपा । रहततांहि "सानुज" अनुरूपा ॥
होय उपास्य देव जेहि भाँती । धारत मुक्त देह बहु भाँती ॥
दो०—कहत ताहि 'सारूप्य' है, अरु 'सामीप्य' को भेद ।
ईश निकट ही रहत है, सेवक सम विन खेद ॥३२॥
अरु 'सायुज्य' ईश सम होई । मानत यहि कहँ हैं कोइ कोई ॥
कहत स्वामि सुनिये मन लाई । है तहँ कौन बात अधिकाई ॥
आगे मतन केर सब हाला । कहिहौंजोकछुचरितविशाला ॥
वाममार्गि शिवपुर के माँहीं । मानत मद्य नारि रँग राईं ॥
कहहु कहा यहि स्थल नाहीं । जाके हित मुक्ती लौ जाँहीं ॥
वैसेहि श्री विष्णू समताई । शंकर पारवती निपुणाई ॥
धनी पुरुष इत आनँद भोगहिं । कौनविशेष बात तहँ होवहिं ॥
यह तब युक्ति कलपना झूँठी । राग भोग सँग पर्म अनूठी ॥
जीव सकल तुम्हरे अनुकूला । बसत मुक्तिमय प्रेम समूला ॥

दो०—ईश लोक जब जगत है, यहि महँ भेद न भाव।
बिन प्रयास सालोक्य को, पावत जीव स्वभाव ॥३३॥
व्यापक ईश रहत सब ठाईं। तासों सदा समीप रहाईं ॥
पुनि सामीप्य कहा हम करहीं। तेहिहितयत्न वृथाकोउधरहीं ॥
है लघु जीव ईश से भाई। चेतन बन्धु सदा दर्शाई ॥
तब सायुज्य कहाँ केहि माँहीं। स्वतःसिद्धि सायुज्य सोहाहीं ॥
तत्त्व जबै तत्त्वन मिलि जाहीं। मानि मुक्ति तेहि जैन सिहाहीं ॥
सो कूकुर गर्दभ सब पावत। सुनिसुनिबातहँसीमोहिंआवत ॥
भ्रम मय जगत मुक्ति पथ पेखत। लोकन में मुक्ती अवरेखत ॥
लोक माँहि जस बन्धन अहई। मुक्ति समय सो कतहुँ न रहई ॥
दो०—निज इच्छा भरमत रहत, मुक्त जीव सब ठाँव।
भय शंका दुख लेश नहिं, बसत नाहिं केहु गाँव॥३४॥
कहत एक सुनिये ऋषिराई। जन्म अनेक कि एक लखाई ॥
स्वामि कहत हैं जन्म अनेका। पुनि पूछत यक है धरि टेका ॥
तौ स्मरण होत किमि नाई। दूसर जन्म केरि करताई ॥
पुनि कह स्वामि जीव अल्पज्ञा। त्रिकालज्ञ ईश्वर सर्वज्ञा ॥
याते भूलत जीव सदाई। देखहु निज हिय बुद्धि दृढ़ाई ॥
दूसर जन्म कहाँ किमि ताता। भूलत याहि जन्म की बाता ॥
अल्प ज्ञान आतम चित्त रहई। सोकिमि ईश्वर समतालहई ॥
पुनि पूछत किमि जीव सुधारू। जीव न जानत निज व्यवहारू ॥
दो०—जीवहि ज्ञान न पूर्व का, देत ईश है दण्ड।
किमि सुधार हम मानहीं, ईश्वर न्याय अखण्ड ॥३५॥

कहत स्वामि सुनिये चित लाई । ज्ञान विधान आठ दर्शाई ॥
धन बुधि विद्या दारिद पेखी । मूरखता सुख दुख अवरेखी ॥
पूर्व जन्म जो नाहिं विचारहु । बिनकारजकारणकिमिजानहु॥
कारन रोग रोगिहू जानत । वैद्य निदान देखि बतलावत ॥
घटै बढ़ै सुख दुख जग माँहीं । पूर्व जन्म की रीति सुहाहीं ॥
यदि हम पूर्व जन्म नहिं मानहिं । तौ ईश्वर द्वेषी ठहरावहिं ॥
पूर्व कर्म सों राजा होई । दुखदारिद पावत कोइ कोई ॥
यह सब पूर्व कर्म फल मानहु । कोउधनपतिकोउदारिद जानहु॥
दो०—पूरब संचित कर्म जो, है प्रारब्धि सरूप ।
प्रकटत यहि जग के बिषे, भोगत रंक अरु भूप ॥३६॥
जो तुम कहहु प्रथम दै राख्यो । जोकछुतेहिनिमित्तप्रभुभाख्यो॥
तौ बिन करम न देवै ईशा । कर्मनिरखि फल दे जगदीशा ॥
चहत सदा सुख सब क्षण माँहीं । मिलत दुःख कोऊनसिहाँहीं ॥
पर यह बात लखहु जग माँहीं । चाहत सुख सब वय के माँहीं ॥
जन्म दुखी जग एकहि जानहु । तबकर्मनफलको पहिचानहु ॥
जन्मत एक होत सुख सारा । नाना भाँतिन बजत नकारा ॥
दासी दास अधिक तेहि ठाँई । करतप्रबन्ध परमहितसाँई ॥
अरु कोउ जन्मत बन के माहीं । साधन तहँ कछु नहि दर्शाहीं॥
दो०—याते यह जानहु सबै, फल दाता जगदीश ।
कर्म हमारे देखि कै, देत सदा फल ईश ॥३७॥
पूछत एक कहहु ऋषिराई । एकहि जीव सदा सब ठाँई ॥
मानुष के तनु में स्वइ जीवा । सोइपशु योनि पराभवसींवा ॥

सत्य तुम्हार बात यह भाई। जीव भ्रमत सब योनिन जाई॥
जब नर पुण्य सकल नशि जाई। तब निश्चय पावै पशुताई॥
उत्तम मध्यम अधम शरीरा। पशु पक्षी आदिक तरु कीरा॥
भोगत निज कर्मन अनुकूला। होत न कछु प्रकृती प्रतिकूला॥
जीव शरीर बिलग जब होई। तेहि कहँ मृत्यु कहत सब कोई॥
जन्म सँयोग सकल बुध मानत। गुन अरु कर्म स्वभाव बिराजत॥
दो०—वायु नाम यम को लिख्यो, है वेदन के माँहि।
जीव भ्रमावत गगन में, जब शरीर नशि जाँहि॥३८॥
जो जस कर्म करै संसारा। फल पावे ताके अनुसारा॥
पावत नर तनु ज्ञान प्रकाशा। साधन धाम मुक्ति पथ आशा॥
नर तनु पाइ मोक्ष पथ साधन। जो न करहि फँसि जग के बाधन॥
तेहि सम अधम न कोउ जग माँहीं। पारस पाइ मिटै दुख नाँहीं॥
पूछत एक ऋषी सों भाई। होत मुक्ति बहु जन्मन आई॥
अथवा एक जन्म के माँहीं। मुक्ति प्राप्त होवै केहि ठाँहीं॥
स्वामि बतावत जन्म अनेका। मुक्ति हेत नर करत विवेका॥
जौ लगि हृदय अविद्या रहई। तौ लगि किमि आतम सुख लहई॥
दो०—विद्या ज्ञान प्रकाश जब, होत आत्मा बीच।
तबहिं ईश अवलोकिये, आत्मतत्त्व हिय खींच॥३९॥
व्यापि रह्यो ब्रह्मांड में, अजर अमर अखिलेश।
जीव पृथक ईश्वर पृथक, प्रलय काल अवशेष॥४०॥
ईश जीव यदि कहुँ मिलि जाहीं। कहहु तु लहै को मुक्ती काहीं॥
जब यह जीव वेद पथ चलई। ईश्वर आज्ञा पालन करई॥

करहि सुकर्म और सत्संगा। साधन मुक्ति योग के अंगा॥
जो हम पूरब तुम्हहिं बताये। करहु सकल जो तव मन भाये॥
तौ पावत मुक्ती नर धाई। यहि महँ कछु संदेह न भाई॥
निज आतम प्रति क्षण प्रभु हेरत। ओ३म्‌नाम कहिताकहँ टेरत॥
ईश धारणा ओ३म् प्रमानहु। साधन योग मुख्य यह जानहु॥
ताकहँ निशि दिन आठो यामा। जपहु निरंतर ओ३म् सुनामा॥
दो०—तहँ अनन्त विद्या सहित, जीव ब्रह्म के साथ।
सुख आनँद सब भोगई, बिन शरीर, अवदात॥४१॥
सुख विशेष मुक्ती के माँही। निर्मल ज्ञान होत तेहि ठाँही॥
सुखसुविशेष स्वर्ग को मानहु। नरक विषय तृष्णा परमानहु॥
चाहत सुख सुंदर सब कोई। कोउ न चहत दुखतनि कोहोई॥
पर जौ लगि नर पापन त्यागत। छुटहिंनदुखसुखनिकटनआवत॥
विना मूल पल्लव किमि नाशै। तातें प्रथमहि मूल विनाशै॥
तरु नशि जात मूल के काटे। तिमि दुख नशत पाप के छाँटे॥
जस जस कर्म करै जग आई। गति पावे ताके अनुसाई॥
हैं गति तीन कर्म की भाई। श्रेष्ठ मध्य अरु अधम लखाई॥
दो०—मन वाणी वपु सों सदा, करत जीव जो धर्म।
ताही सम फल लहत हैं, जो जाको है कर्म॥४२॥
मन सो पाप करत जग कोई। मन सों भोगत है फल सोई॥
वाचा कर्म सुवाणी भोगत। कर्म शरीर शरीरहिं होवत॥
करै चोरि सुजनन दुख देवै। रमि परनारि माहिं सुख लेवै॥
थावर योनि वृक्ष की पावत। जो शरीर के कर्मन धावत॥

पशु पत्ती आदिक तनु पावहिं । पाप जो वाणीके बिच लावहिं॥
मन सों पाप करै नर कोई । चांडालादिक तनु लह सोई ॥
जो गुन अधिक होय जेहि माँहीं । तेहिस्वभावअधिकैहुइजाहीं॥
जब हो ज्ञान तो सत पहिचानहु । अरुअज्ञानसोतमगुनजानहु॥
दो०--राग द्वेष द्वौ रहत जहँ, रजगुन तहँ परिमान ।
गुन तीनौं प्रकृती बिषे, रहत सदा सुखदान ॥४३॥
मन प्रसन्नता शांति विराजहि । तेहिलगसतगुनबुधपहिचानहि॥
मन आतम दुख संयुत होई । भटकै विषय वासना सोई ॥
तब रज गुन तेहि होत विशेषा । सत अरु तम तहँ होत अशेषा॥
फँसे मोह बिच ज्ञान विहीना । विषयासक्त तर्क सों हीना ॥
तब निश्चय समुझहु चितलाई । है यह तम गुनकी अधिकाई ॥
अब इन गुनन केर फल जानहु। उत्तम मध्यम अधम बखानहु॥
वेद अभ्यास धर्म रत रहई । ज्ञान वृद्धि शुचिताअतिलहई॥
इन्द्रिन रोकि सत्य नित कहई । सतगुन लच्छन जानहु तँहई ॥
दो०—असत कर्म को करत नित, त्यागत धैर्य स्वभाव ।
नितप्रति विषयन में रमत, तम गुन को यह भाव ॥४४॥
होत तमोगुन जेहि तनु माँहीं । अरुसत रज नहिं परतलखाहीं॥
तेहि अति लोभ पाप अधिकाई । आलस नींद अधैर्य लखाई ॥
नास्तिक भाव क्रूरता होई । वेद ईश श्रद्धा सब खोई ॥
व्यसननफँसत रहत दिनराती । अन्तःकरण कुभाव सुहाती ॥
तम गुन के लच्छण यह जानहु । फँसतजेजनतेहिअबुधप्रमानहु॥
करत कर्म भय शंका होई । तेहि छण लाज हिये बिचगोई ॥

तब यह जानि लेहु मन माहीं। है तमगुन निश्चय यहिठाहीं ॥
चहत बड़ाई जो जग माहीं। करत धर्म नित नेम निबाहीं ॥
तेहि रजगुन अवलोकहु नीके। राग द्वेष सब जावैं जीके ॥
दो०—तेहि रजगुन अवलोकिये, परम प्रीति सुखदैन।
सत गुन धर्म प्रमानिये, अर्थ रजोगुन ऐन ॥४५॥
जासों प्रबल आत्मा होई। कर्म किये शुभ लाज न होई ॥
काम तमोगुन को फल भाई। मानहु यहि प्रकार सब ठाँई ॥
तम से श्रेष्ठ रजोगुन जानहु। रजसे सतगुन प्रबल बखानहु ॥
अब जेहिगुन सों जो गतिहोई। कहिहौं ताहिसुनहु सब कोई॥
जो नर सात्त्विक परम पुनीता। वह विद्वान देवगुन नीता ॥
जे रज गुन में नित लय रहहीं। मध्यम तिनकहँ बुधजन कहहीं॥
अरु तम गुन रत नर जो होई। गति निकृष्ट पावत है सोई ॥
जिनमहँ तम गुण अधिकलखाई। थावर तरु उपजत ते जाई ॥
मगर मत्स्य कृमि कच्छप योनी। पावतमृग आदिक जो योनी॥
दो०—उत्तम मध्यम अधम है, तमगुन तीनि विधान।
याही विधि सबकीगती, कहिहौं परम सुजान ॥४६॥
जिन महँ तम गुन मध्य सुहाई। उपजत हस्ति अश्व ते जाई ॥
शूद्र मलेच्छ अकर्मन कर्ता। सिंह बराह होत जग हर्ता ॥
जिन महँ उत्तम तम गुन होई। चारण भाट धरत तनु सोई ॥
निज प्रभुता अपने मुख कहहीं। दम्भिकराक्षसहिंसकअहहीं॥
अनाचार युत रहत सदाई। करत अहार मद्य नित भाई ॥
रहत मलिन पिशाच सम देखहु। यहतमगुनके फलअवरेखहु॥

अधम रजो गुन में रत रहई । भल्ला ह्वै करवालहि गहई ॥
लै कुदार भूमी को खोदत । ह्वै मल्लाह नाव बिच डोलत ॥
बाँस चढ़ै बहु खेल दिखावै । सो जग में नट नाम कहावै ॥
दो०—मध्यम रज गुन सों नृपति, क्षत्रि वंश उपराज ।
सैनिक ह्वै रन में लड़हि, होत पुरोहित राज ॥४७॥
उत्तम रजगुन से भयो, यक्ष और गन्धर्व ।
रूप और गुन शीलयुत, पावहिं जन्म सगर्व ॥४८॥
अधम सतो गुन तपसी होई । यति संन्यासिज्योतिषीसोई ॥
होय बिमान चलावन वारो । सत गुन के फल बुध उच्चारो ॥
मध्यम सत गुन कर्मन कीन्हे । हों याज्ञिक विद्वान प्रवीने ॥
विद्युत जानहिं हो अध्यापक । पावहि जन्म सुकर्म विधायक ॥
जो उत्तम सत गुनयुत होई । होत वेदविद ब्राह्मण सोई ॥
पावहिं जन्म सुकुल महँ जाई । ब्रह्मज्ञान जहँ हो अधिकाई ॥
इन्द्रिन वश ह्वै विषयन धारैं । धर्म त्यागि अधरमअनुहारैं ॥
ते जन दुख मय योनिन पावत । यहिविधिसतरजतमगुनभाषत
दो०—जाको जैसो कर्म है, तैसो ही फल हेय ।
बोवै बीज बबूर को, मारग कंटक धेय ॥४९॥
ताते साधन मुक्ति को, करहु सकल चितलाय ।
परम सुखद आनंदमय, पावै सहज स्वभाय ॥५०॥
चित वृति रोकि करै दृढ़ताई । साधन योग करै मन लाई ॥
निज स्वरूप सोइजानहिगुनिके । करैयोगविधि मनमहँठनिके ॥
तीनहु दुख जबहीं नशि जाहीं । तब पुरुषारथ परम सुहाहीं ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । नशहिंनजो लगियह परितापा ॥
तौ लगि जीवन मुक्त न होई । करै उपाय जो केतिक कोई ॥
मुक्ति पंथ है अगम महाना । पावत सो नर जेहिअति ज्ञाना ॥
ताते जो कछु तुम्हहिं सुनावा । निजमतिअरुशास्त्रनकरभावा ॥
ताकहँ करहु सबै चित लाई । पावहु मुक्ति परम निपुणाई ॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वतीवर्णित
विद्या-अविद्या बन्ध-मोक्ष व्याख्या वैद्य कविराज पं०
गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित
गुरु-शिष्य संवाद नवम तरङ्गः ॥ ९ ॥
(स० ९ स०)

अथ दशम तरङ्ग (स० १० स०)

भक्ष्याभक्ष्य आचार-अनाचार

शिष्य

सो०—हे गुरु परम पुनीत, करहु कृपा निज दास पर।
हैं तुम्हारि शुभनीति, सुनिसुनि हिय आनँदभयो ॥ १ ॥
दो०—अनाचार आचार विधि, भक्षाभक्षकि रीति।
नाथ कहौ केहि भाँति की, दयानन्द की नीति ॥ १ ॥

गुरु छन्द

हम कहत ऋषिवर की कथा अब सुनहु तुम चित लाइकै।
मानुष सदा यह ध्यान राखहिं विषय चित्त बिलगाइकै ॥
है आतमा कर्तव्य जाननहार नित अपनाइकै।
तातें सदा जन राग त्यागहिं "इष्ट" नित गुन गाइकै ॥ १ ॥
अति कामना और निष्कामा। श्रेष्ठ न हैं जग बीच ललामा ॥
जो वेदोक्त कर्म जग माँहीं। होत कामना सों सब ठाँहीं ॥
जो जग कोउ अस साहस करई। निष्कामता हृदय बिच धरई ॥
चंचल मन है इन्द्रिन प्रेरक। इच्छा बिन कछु जग नहिं हेरक ॥
वेद स्मृती ऋषी अस भाषत। करत सोइ जो आतम भावत ॥
कार्य्य करत हिय लाज न आवे। आतम हर्ष सदाहीं पावे ॥
देखहु जग यह विदित सुभाऊ। करत कुकर्म होत उर दाहू ॥
आतम विरुद्ध काज नहिं करई। हो अनुकूल तहाँ पग धरई ॥

दो०—यहिबिधि निशिवासर सदा, देखहु हृदय बिचारि ।
मानत जो नहिं वेद को, ते नास्तिक नरनारि ॥ २ ॥
जेहि महँ लोभरु काम विकारा । फँस्योविषयबिचसकलप्रकारा॥
तिनके धर्म निकट नहिं आवत । करत यत्न मन बहु समुझावत ॥
बिलग रहत इन सों जो कोई । सो धर्मी बुध पंडित होई ॥
यहिते वेद चारि जो भाख्यो । वरणविभागप्रथमरचिराख्यो ॥
कहत मनू ताकहँ यहि भाँती । जो है शान्त रीति सुखमाती ॥
विप्र सुषोड़श वय के माँहीं । द्वाविंशति क्षत्री मनुसाँहीं ॥
वैश्य चतुर्विंशति वय बीते । वह केशान्त करहिं सुखरीते ।
देश रीति यह परम सुहाई । करहु सकल जन हो निपुणाई ॥
दो०—शिखा मात्र को राखिकै, क्षौर केश सब होय ।
संस्कार केशान्त की, रीति कहत ऋषि सोय ॥ ३ ॥
कोउ केहु स्थल केश न राखत । कोउशिरकेशन कतहुँबनावत॥
जहँ पर शीत अधिकतर होई । राखहिं केश शीश सब कोई ॥
उष्ण देश सब केश मुड़ावें । रहैं पवित्र धर्म अपनावें ॥
नरन केर आचार प्रवीना । इन्द्रिन वश हितयत्न नवीना ॥
स्वारथि वस्यकरत जिमिबाजी । तेहिविधिइन्द्रिनरोकहुसाजी ॥
विषय माँहिं इन्द्रिन लपिटावे । ह्वै असक्त अधरम पथ धावे ॥
निश्चय सो नर दोषी होई । लहत महा दुख बुधि को खोई ॥
इन्द्रिन जीति धर्मरत होई । 'इष्ट' सिद्धि नर पावत सोई ॥
दो०—अग्नि प्रबल जब होवई, घृत ईंधन के योग ।
काम योग कामी बनै, बढ़त सकल तेहि भोग ॥ ४ ॥

यहिते विषयन में नहिं फँसई । जो कुवासना हिय में लसई ॥
जो अजितेन्द्रिय पुरुष अनारी । तेहिकहँ विद्या दुष्ट पुकारी ॥
तेहि हिय यज्ञादिक नहिं बसई । सदा अधर्महृदय बिच लसई ॥
दश इन्द्रिन द्वै भाग विलोकहु । ज्ञान कर्म दोऊ अवरेखहु ॥
अरु मन साथ एकादश धरई । इन कहँ नर अपने वश करई ॥
तब वह योग कर्म अनुसारा । पुष्ट शरीर करै निशिबारा ॥
निज स्तुति सुनि हर्ष न करई । निन्दा सुनत शोक नहिं भरई ॥
समता सुख-दुख हार-विहारा । ताहिजितेन्द्रियपरमउचारा ॥
दो०—बिन पूछे कबहूँ कतहुँ, कहै न कोऊ बात ।
ते बुधवर हैं जगत में, परम चतुर सुखदात ॥ ५ ॥
लहत बड़ाई जो जग माँहीं । ताकी पाँच रीति दर्शाहीं ॥
पहिले जेहि धन प्रभुता होई । दूजे कुटुम्ब प्रबल जेहि होई ॥
तीसर आयुवान जग राजत । उत्तम कर्म चतुर्थ विराजत ॥
पंचम विद्यावान विवेका । क्रम से श्रेष्ठ एक से एका ॥
बालक बुधवर है विद्वाना । नहिं सम शतवर्षी अज्ञाना ॥
श्वेत केश धनपति नर होई । बहुकुलवान कुटुम्बयुतसोई ॥
ज्ञान बिना वह बूढ़ न होई । ज्ञानी बालक वृद्ध लखोई ॥
विप्र ज्ञान सों लहै बड़ाई । क्षत्री बल सों हो अधिकाई ॥
दो०—वैश्य सुधन सम्पत्ति सों, शूद्र जन्म अधिकाय ।
जो नर क्रिया हीन जग, वह मूरख सब ठाँय ॥ ६ ॥
मूरख नर जग में इमि डोलत । काष्ठहस्तिमृग समसोमोहत ॥
नित प्रति करै शौच की रीती । अन्न वस्त्र स्नान की नीती ॥

प्रथम धर्म आचार प्रवीना । बोलहिंसत्य वेदपथ चीन्हा॥
मात पिता अतिथी की सेवा । निजआतम प्रियहै सुखदेवा॥
जासु कर्म जग होय भलाई । करहुसोताहिसकलमनलाई ॥
जासों होय जगत की हानो । त्यागहुतिनहिं अकर्म बखानी॥
नास्तिक लम्पट मिथ्यावादी । स्वार्थी कपटी बहु बकबादी ॥
अरु विश्वासघात कुविचारा । छली दुष्ट सँग करहु किनारा॥
दो०—तब ऋषिसों पूछत भये, शिष्य परम गुनवान ।
अन्य देश यात्रा करहिं, धर्मनशत सुखदान ॥ ७ ॥
होत अचार नष्ट यहि भाँती । त्यागि देत तिनकहँ निज जाती॥
सब ऋषि कहत सुनहु चितलाई। मिथ्या बात तुम्हार सदाई ॥
अन्तश जासु पवित्र विराजत । तेहि न कतहुँ आचार नशावत॥
वह भरमै सब देशन जाई । धर्म भ्रष्ट तेहि होत न भाई ॥
शांति-पर्व महाभारत देखहु । मोक्ष धर्म अध्याय विलोकहु ॥
शुक अरु व्यास केर सम्बादा । बैठि पताल करत मर्य्यादा ॥
तेहि पताल अमरीका कहहीं । मुनिवर व्यास तहाँपर रहहीं॥
यकदिन शुक पूछत यहि भाँती । विद्या आतम मोहि सुहाती ॥
दो०—ताहि बतावहु दया करि, है एती ही बात ।
अथवा अधिकविकाशतेहि, कहहुपरम सुखदात ॥ ८ ॥
तबहिंव्यास मुनि हृदय विचारा। अरु कछु उत्तर नाहिं उचारा॥
कहा जाहु मिथिला पुर माहीं । तहँपर जनक राजयकआहीं॥
उतर तुम्हार जनक जी देहैं । भ्रम शंका तुम्हरी हरि लेहैं ॥
तब शुक मिथिलापुर की ओरा। पितु पद बंदि चले करजोरा॥

उत्तर पूरब दिशि सो जाई। जहाँ हिमालय परम सुहाई॥
अरु उत्तर पश्चिम जो देशा। कहत ताहि हरि वर्ष सुवेशा॥
संस्कीरत हरि बानर गाई। लाल बरन मुख नेत्र भुराई॥
अब सो यूरप देश कहाई। रहेउ सो तब हरिवर्ष सुहाई॥
दो०—शुक्राचार्य्य विचारतहँ, गये यहूदी देश।
चीन जाय हिमगिरि गये, पहुँचे मिथिला देश॥ ९॥
केतिक हैं यहि भाँति कहानी। गये विदेश सुअवसर जानी॥
श्रीकृष्ण अर्जुन द्वौ बीरा। गये पताल देशमति धीरा॥
अग्नि यान चढ़ि के सो गयऊ। उद्यालक ऋषिवर जहँ ठयऊ॥
उद्यालक ऋषि को लै आये। धर्मराज जहँ यज्ञ रचाये॥
गान्धारी धृतराष्ट्र की नारी। जो कन्धार देश गान्धारी॥
महाराज ईरान की कन्या। नाममाद्रि अतिरूप सुधन्या॥
सो श्री पांडुराज को ब्याही। सुतसहदेव नकुल भये जाही॥
अरु अर्जुन अमरीका जाई। राजसुता जहँ निपुण सुहाई॥
दो०—नाम उलोपी विदितजग, वर्यो धनंजय वीर।
यहि विधि सब देशन विषे, भ्रमण करत रणधीर॥ १०॥
जो न जात इन देशन माँई। तौ सम्बन्ध होत किमि भाई॥
पूर्व काल से प्रचलित रीती। जात विदेश परम यह नीती॥
यज्ञ हेत भीमादिक वीरा। गये विदेशन चतुर गँभीरा॥
ताते देश विदेशन जाई। करहु समागम प्रेम बढ़ाई॥
सुन्दर सुगम स्वच्छ जो रीती। धारन करहु परम यह नीती॥
जाँहि सकल देशन में भाई। भ्रष्ट अचार न कतहुँ लखाई॥

मन शुचि जासु धर्म में प्रीती। तेहिढिगआवत नाँहि कुरीती॥
सो जनदुख कबहूँ नहिंभोगत। आनँद सहित सदा वहसोवत॥
दो०—जासु देश वा पुरुष में, देखहु शुभ गुन जोय।
ताहि ग्रहण कीजै अवशि, परम चतुरता सोय॥११॥
जेहि दिन ते गई बुद्धि भुलाई। तेहि दिन ते भई भूमि पराई॥
झूठ अन्याय दोष जे नाना। त्यागितिनहिं नरपावत माना॥
परोपकार निर्वैर सप्रीती। सज्जनता हिय धारहु नीती॥
यह आचार परम शुभ अहई। सहित अचारकहहुकोउरहई॥
जात रहत सब द्वीपन माहीं। भ्रमन करै निज धर्म सराहीं॥
जो लगि तुम न विदेशन जाई। करि व्यापार परम निपुणाई॥
तौ लगि देश धनी नहिं होई। दारिद दुःखकतहुँ नहिं खोई॥
जे अनपढ़ हैं मूर्ख अनारी। निजवश राखतसब नर-नारी॥
दो०—मानहु तिनकीबातनहिं, लखहु सकल व्यवहार।
देश विदेशन भूमि के, करहु अधिक व्यापार॥१२॥
भोजन छादन की यह रीती। भखहु न मद्य मांस है नीती॥
जैसो जब जहँ अवसर आवैं। त्यागि अभक्ष प्रेम सों खावै॥
युद्ध समय चौका कस लागे। तहँ पर "इष्ट"युद्ध अनुरागे॥
झूठबिरोध कीन्ह निशि वासर। गयो राज्य धन विद्या आदर॥
हिय राखहि यह परम विचारा। भोजन समय केर आचारा॥
बनहि सुभोजन जेहिथल माहीं। तेहिकहँराखहुस्वच्छसदाहीं॥
वह फूहड़-पन हमहिं लखाई। करत जो यवन और ईसाई॥
कबहुँ न स्वच्छ रसोई राखत। जेहि स्थल महँ भोज बनावत॥

दो०—मिलत न पानी अरब में, केहि विधि शुचिता होय ।
रीति अरब भूलत नहीं, कहै जो केतिक कोय ॥१३॥
भ्रष्ट पाकशाला को राखत । मुसलमान ईसाई राजत ॥
तुम्हरे हिय यह रहै विचारा । पाकभवनशुचिजाहिनिहारा ॥
भोजन तहाँ प्रेम सो कीजै । यथा समय आचार करीजै ॥
औरहु एक बात नित करहीं । सखरी निखरी विधिउचरहीं ॥
घृत के सहित जो वस्तु बनावैं । ताकहँ निखरी कहि गोहरावैं ॥
जो केवल जल माँहि बनाई । तेहि सखरी सोकहत बुझाई ॥
कोउ पक्की कच्चो कहि टेरत । निशिवासर तेहिमाला फेरत ॥
पेटार्थिन यह रीति चलाई । घृत मिष्टान्न खाहिं अधिकाई ॥
दो०—नाथ कहहु समुझाइ मोहिं, द्विजन रसोई भेद ।
निज कर भोग बनाइ कै, भखत रहत बिन खेद॥१४॥
अथवा शूद्रन हाथ बनाया । द्विजनितकरहिंभोजसुखदाया॥
कहत स्वामि इमि बैन उचारी । मूर्ख नारि नर शूद्र अनारी ॥
शूद्रन हाथ बनाई खावै । द्विजनिज कर्मन में चित लावै ॥
जो द्विज नित्त रसोई करहीं । विद्या कौन समय महँ पढ़हीं ॥
अरु जो छत्रि करै पकवाना । राज्य प्रबन्ध करै को आना ॥
यदि यहि काज वैश्य चित देई । तो व्यापार काज को लेई ॥
यहिते जो कोउ मूर्ख लखाई । तिन सों काम लेहु यह भाई ॥
दो०—शूद्रन के गृह पात्र में, द्विज न करहिं आहार ।
कछु आपत्ती होय जब, तब नहिं करहिं विचार ॥१५॥
आपस्तम्ब सूत्र के माँहीं । देखि विचार करहु मन माँहीं ॥

आर्य्य पुरुषन के परिवारा । करहिं रसोई शूद्र गँवारा ॥
मूर्ख नारि वा पुरुष जो होहीं । तिनहि देहु सेवा विधि जोहीं ॥
औरहु एक सुनहु चित लाई । जब आर्य्यन गृह भोज बनाई ॥
तब मुख बाँधि लेहि यहि भाँती । निसरहिनाहिंनरत्राँसविजाती ॥
अरु अष्टम दिन क्षौर करावहिं । नखआदिकसबहीकटवावहिं ॥
पुनि स्नान करहिं चित लाई । जाहिं पाकशाला शुभ ठाईं ॥
सुनहु स्वामि मोहिं यक संदेहा । ताकहँ दूरि करहु करि नेहा ॥
दो०—शूद्र गेह को अन्न जब, भखे दोष अति होय ।
खाहिं बनाये हाथ को, केहि विधि दोष न कोय ॥१६॥
दो०—स्वामि कहत समुझाइकै, यह कल्पित है बात ।
इनके हाथन कर कहहु, कौन जगत नहिं खात ॥१७॥
जे जग दूध पिसान मिठाई । चीनी शाक मूल फल खाई ॥
जानहु तिन सबके कर खावा । खायहु अति उच्छिष्ट सुहावा ॥
देखहु जे जन काटत ऊखा । तोड़त खात लगावत भूखा ॥
बनत जहाँ चीनी बहु भाँती । तहँ पर कौन श्रेष्ठ है जाती ॥
जेहिकरनितशौचादिककरहीं । सोइ कर ते सब वस्तु पकरहीं ॥
तहहीं रोटी लेत पकाई । खात जात सो नहिं शरमाई ॥
निजगृह कोजलदूध मिलावत । सकलद्विजातिनताहिपिलावत ॥
कहत एक फल मूल न दोषू । विन देखे कछु होत न रोषू ॥
दो०—स्वामि कहत यहिभाँतिसो, सुनहु ताहि मन लाय ।
जो अदृश्य में दोष नहिं, तौ कस रीति लखाय ॥१८॥
हम पूछत तुमसे यक बाता । सोसमुझाइकहहुमोहिंताता ॥

दृष्टि ओट यदि स्वपच चमारा। ठीक बनावहिं विविध अहारा॥
कहहु कहा तुम भोजन करहू। जानि अदृश्य दोष किमि धरहू॥
सुनहु बात इक यह है भाई। हैं जो मुसलमान ईसाई॥
जे जग मद्य मांस आहारी। निन्दित कर्म करहिं दुखकारी॥
इनके हाथ न करहिं अहारा। लागहि दोष सकल परिवारा॥
मद्य मांस को परै स्वभाऊ। हो आचार नष्ट सति भाऊ॥
आर्य्य पुरुष को भोजन एका। दोष देखात हमहिं नहिं नेका॥
दो०—जौ लगि होय न एक मत, एक लाभ अरु हानि।
सुखदुख समता होय नहिं, होय न उन्नति जानि॥१९॥
जो एक खान पान कर देई। होय सुधार न तिनको तेई॥
जबलगि दुराचार नहिं त्यागत। अरु सद्चरित मन नहिं नहिं आवत।
तौ लगि वृद्धि न परत लखाई। नित नव अवनति ही दर्शाई॥
देश विदेशिन के वश भयऊ। तब से कुमति फूट द्वौ बसेऊ॥
ब्रह्मचर्य्य पथ गयो नशाई। बाल विवाह भयो अधिकाई॥
विषयासक्त झूठ व्यवहारू। वेद विरुद्ध सकल आचारू॥
अरु कुकर्म नाना हिय धरहीं। बहु विश्वासघात जन करहीं॥
भ्रातृ दोष नित नूतन बढ़ई। मारग वेद न कोऊ चलई॥
दो०—भई दशा यह देश की, कैसे निबहै धर्म्म।
पेट हेत निसि द्योस सब, करत रहत हैं कर्म॥२०॥
यह एक रीति सदा चलि आई। जब द्वौ भ्रातन होत लड़ाई॥
तब तीसर बनि आवत न्याई। दोहुन घुड़कि करत प्रभुताई॥
का भारत की कथा भुलानी। रारि कौरवन ने जब ठानी॥

पाँच सहस्र वर्ष हैं बीते। धर्मराज अरु कृष्ण सप्रीते॥
करत रहे भोजन रन माँहीं। ते नहिं भ्रष्ट भये तेहि ठाहीं॥
यक सँग भोजन करत सप्रीती। लड़त बहुरि क्षत्रिन जो रीती॥
कौरव पांडव वंश नशानो। आर्य्य धर्म पथ वेद हेरानो॥
जब से देश लगी यह छूती। तब से नशी सकल करतूती॥
दो०—नहिं जानै कबहूँ बहुरि, ईश निहारैं मोहिं।
राज रोग जब नाशई, सुखसम्पतितबहोहिं॥२१॥
दुर्योधन निज देश विनाशक। कौरव वंश भयो कुल घालक॥
तेहिमग चलत दुःख बहु भोगत। आर्यपुरुषसुखसम्पतिखोवत॥
अब पुनिसुनहु अहार की रीती। भक्षाभक्ष्य सुद्वैविधि नीती॥
वैद्यक शास्त्र कहत यक रीती। दूसर धर्म शास्त्र परतीती॥
मनु अध्याय पाँच अवलोकहु। विधि जो खान-पान की देखहु॥
चारों वर्णों के हित भाई। कह्यो मनू निज शास्त्र सोहाई॥
विष्ठा मूत्र आदि संसर्गा। उपजत मूल कन्द फल वर्गा॥
भाँग अफीम मद्य अरु गाँजा। नाशहिंबुधिमदकारि विराँजा॥
दो०—वैद्यक शास्त्रन ने कह्यो, बहु स्थल के बीच।
बुद्धि नशै जेहि वस्तु सो, है अहार वह नीच॥२२॥
जासु स्वभाव मांस आहारी। मादक द्रव्य केर अधिकारी॥
ताके हाथ न भोजन कीजै। हिंसक हिंसा दूरि करीजै॥
देखहु एक गाय जो भाई। देतदूध घृत बैलन जाई॥
पीढ़ी एक विचारहु ताकी। करहु गणितसुन्दर सुखमाकी॥
पौने पाँच लाख गनि लीजै। आगे छै सौ और धरीजै॥

एते जन सुख पावहिं नीको। नाश भये दुख होत सभीको॥
अस उपकारी जीव जे मारत। ते जग सदा बुद्धि से हारत॥
भैंस आदि जे जीव दुधारू। तिन महँ गाय अधिक उपकारू॥
दो०--पशू न बधिबे योग हैं, का बकरी का भैंस।
मृत्यु समय सब मरहिंगे, बीते अपनी बैस॥ २३॥
गाय दूध अति बुद्धिप्रदाता। है वह मानव को सुखदाता॥
कृषी प्रधान जु भारत देशा। वृषभ बिना वह लहत कलेशा॥
बकरी भेड़ दूध सों भाई। लाखन पुरुष जियन ह्वै जाई॥
गोरक्षा विधि देखन चहहू। तौ मम गोकरुणानिधि गहहू॥
नाना भाँतिन लिख्यो बनाई। देखहु जो तुम चित्त लगाई॥
जो मारत जग पशु को धाई। तिन कहँ सब कोइ कहत कसाई॥
आर्य्य राज्य जब यहि स्थल रहेऊ। तब उपकारि जीव सुख लहेऊ॥
द्वीप जितेक जगत के माहीं। आर्यवर्त सम है कोउ नाहीं॥
दो०-तहँ घृत दूध विशेष हो, जहाँ न हों पशु घात।
बल पौरुष सब बाढ़ई, सुख आनँद अवदात॥ २४॥
जब से हिंसक मद्य अहारी। भयो देश राजा अधिकारी॥
तब से आर्य्यजनन दुख पावा। नित नव मिलहिं विविध दुख दावा॥
मूल कटे फल होत न भाई। तेहि तरु की गति जात नसाई॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। होहिं अहिंसक जो सब भाई॥
तौ जग व्याघ्र अधिक दुख देवे। तब कछु नहिं पुरुषारथ होवे॥
स्वामि कहत यह नृप के काजा। रक्षा करि सुख देहि समाजा॥
जो पशु दुखद जगत के माँहीं। तिनहिं मारि पुरुषार्थ सराहीं॥

तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । मारहिं जब तिन कहँ वै धाई ॥
कहहु कहाँ तेहि फेंकहिं माँसू । भखहिं ताहि अरुरहैं सुपासू ॥
दो०—कहत स्वामि है मांस नहिं, मानुष को आहार ।
राक्षस ताहि बखानहीं, करतजोअसभ्यबहार ॥२५॥
दुखदाई हिंसक पशु जेई । मारहिं नृपति प्रजा हित लेई ॥
स्वान आदि जे मांसअहारी । तिनहिं खवाइ देहु हितकारी ॥
यदि वह मांस खाइ जन कोई । तौ भारत को हानि न होई ॥
पर स्वभाव हो मांस अहारी । छल अरु कपटसदा उरधारी ॥
तिनके हिय कछु दया न रहई । अरु विश्वासघात नित लहई ॥
यह अभक्ष्य दुर्बुद्धि बढ़ावहिं । अरुसुजननिशिद्योससतावहिं
हिंसा रहित धर्म सो जोई । प्राप्त अभक्ष वस्तु जो होई ॥
रोग नशै जेहि स्वास्थ्य बढ़ावैं । बल बुधि आयू अधिक दढ़ावैं ॥
दो०—चावल गेहूँ दूध घृत, सकल मूल फल कन्द ।
यथा समय रुचि के सदृश, भोग करहिं आनन्द ॥२६॥
प्रकृति विरुद्ध विकार करैया । त्यागन सदा करै दुख दैया ॥
मानव हित जोविहितपदारथ । ढूँढ़हुतिनहिंसोकरिपुरुषारथ ॥
यक सँग भोजन करहिजोकोई । तौ गुरु कहौ दोष का होई ॥
कहतस्वामियक संग जो खावे । तेहि स्वभाव दूसर को आवे ॥
यह यक दोष अहै जग माहीं । प्रकृतिविरुद्धजोयकसँगखाँहीं ॥
कुष्ट रोग जाके तनु होई । रक्त विकार लहत है सोई ॥
ताते यक सँग भोजन माँहीं । होत सुधार कतहुँकोउनाहीं ॥
निज उच्छिष्ट देहु नहिं काहू । नहिं दूसर कर जूठन खाहू ॥

दो०—अधिक न भोजन करे कोउ, जूठे ना कहुँ जाय ।
लहत अजीरन दुःखनित, बुधिबलजातनसाय ॥२७॥
गुरु उच्छिष्ट पाठ अवलोकी । खात जूठ लज्जा हिय रोकी ॥
ताको अर्थ कतहुँ यह नाहीं । गुरु पीछे शिशु खात सदाहीं ॥
तब यक पूछत यह मुसुकाई । शहत सदा उच्छिष्ट देखाई ॥
हम नित पियत दूध हैं जूठा । बछियन प्याय सुबाँधत खूँटा ॥
ग्रास खाइ आगे सब जूठा । का यह भोजन रहेउ अनूठा ॥
कह तबस्वामि सहत नहिंजूठा। पुष्पन सार अरोग्य अनूठा ॥
बाहा बाछड़ा पियत सदाई । सो उच्छिष्ट होत नहिं भाई ॥
दो०—थन को जल सों धोइ कै, शुद्ध पात्र के बीच ।
दूध निकारहिं प्रेम सों, निज बाहूबल खींच ॥२८॥
निज उच्छिष्ट विकारन करई । नहिं स्वभाव दूसर अनुसरई ॥
बात स्वभाव सिद्ध यह भाई । काहु कि जूठन कोउ न खाई ॥
जिमि निज मलसोंघृणा न होई। तिमि दूसरमलचहत न कोई ॥
यह व्यवहार सृष्टि क्रम भाई । नहिं तनिकौ विपरीतिलखाई।।
याते मानव उचित सदाई । खाहु न तुम उच्छिष्ट कदाई ॥
कहहु स्वामि नर नारि न खाँहीं । तबकहस्वामिनीतियहनाहीं ॥
विलग स्वभाव नारि नर केरे । ताते मन समझहु हिय हेरे ॥
तौ कह दोष बतावहु साँई । खाइ जो मानुष हाथ बनाई ॥
दो०—ब्राह्मण स्वपच शरीरयक, हाड़मांससबमाहिं ।
दोष कहा तेहि हाथ में, कहौ नाथ समुझाहिं ॥२९॥
तब कह स्वामि दोष बहुतेरे । जो जानत सो जात न नेरे ॥

श्रेष्ठ पदारथ भोजन पाना । होहिं बिप्र तनु शुभ गुन नाना ॥
दोषरहित रज वीर्य सोहावा । उत्पति होत सतोगुन भावा ॥
तस चण्डाल शरीर न होई । नित दुर्गन्ध बसत हिय सोई ॥
श्वपच्च किरातन केर शरीरा । दुर्गन्धित परमाणु गँभीरा ॥
ब्राह्मणादि जो वरण कुलीना । भोजन तिनके हाथ न लीना ॥
भंगि चमार नीच चण्डालू । तिनके हाथ न करहू ब्यालू ॥
तिनसौंकहहुजोतुमसनबूझहिं । चर्म शरीर सकल के सूझहिं ॥

दो०—पुत्री माता भगिनि हूँ, पुत्र वधू अरु सासु ।
नारि संग व्यवहार जस, करहुकहातुमआसु ॥३०॥

छं०—तब मौन वृत्ती धरैं हिय कछु बात बनि आवे नहीं ।
जस अन्न पावन खाहु मुख से गंधि तस खावैं नहीं ॥
अस भयो कोऊ नाहिं हमरी जानि जो अस खावई ।
तौ आर्य पुरुष पुनीत पावन कौन भाँति भुलावई ॥२॥

जो गोबर उपमा तुम देहू । बात हमारि बहुरि सुनि लेहू ॥
अस दुर्गन्ध, सुगोबर अहई । लेपन किये सुखद ही लहई ॥
गोवर लेपन छूत बतावहु । चूल्हे के बिच ताहि जलावहु ॥
मृतिका गोबर देत मिलाई । जेहि दिवार महँ देत लगाई ॥
पुष्ट सुरम्य होत है सोई । पाकस्थान सुपावन होई ॥
जो गोबर सों लीपत नाहीं । तिन भवनन देखहु शुचिताई ॥
जूठ अनूठसकलदिशिमाहीं । घर बिच कोयला परत देखाहीं ॥
देखत घृणालगति जिय माहीं । केहिविधि तहँ पर भोजनखाहीं ॥

दो०—स्वच्छसो सुन्दर थान जहँ, तहाँ खाहु सुखपाय ।
युद्ध आदि स्थान में, है कोऊ विधि नाय ॥३१॥

जो आर्य्य परिवार में, बनै रसोई शुद्ध ।
तहँ सब भोजन पावहीं, जहँ है पाक विशुद्ध ॥१४१॥

यह तुम शोचि लेहु मन माँई । विद्या ध्यान करै जो भाई ॥
वह नित चौका चूल्हा फूँकै । पढ़ै कहा वह निशि दिन सूखै ॥
पूर्व काल की रीति सुहाई । करत रहे भोजन समुदाई ॥
जब से मुसलमान ईसाई । भारत देश बसे हैं आई ॥
तब से मांस मद्य आहारा । भयो अधिक या देश प्रचारा ॥
वैर विरोध बढ़्यो अधिकाई । नाना भाँतिन पन्थ चलाई ॥
देखहु कतहुँ समय अस रहेऊ । सुताविदेशिन की तिन लयऊ ॥
गान्धारी अरु माद्रि उलोपी । यह विवाहि आई प्रण रोपी ॥

दो०—शकुनी और सुपाण्डव, खात रहे यक संग ।
नहिं विरोध हिय राखहीं, करत नीति नहिं भंग ॥१४२॥

सब भूगोल वेद मत राजै । कबहू कोउ पाखंड विराजै ॥
हानि लाभ दुख सुख सबही में । रहत समग्न परस्पर जी में ॥
यहि ते ईश बुद्धि शुभ देई । मनन केर अंकुर हरि लेई ॥
शुद्ध विचार होहिं सब केरे । चलहिं वेद पथ चतुर घनेरे ॥
छोड़ि विरोध भाव सब लोगू । लहहिं सदा जगआनँद भोगू ॥
यह कछु हम आचार विचारा । भक्ष्याभक्ष्य सकल व्यवहारा ॥
कहेहु तुमहिं समुझाइ सुप्रीती । हिय धारहु जो हमरी रीती ॥
तौ मन इच्छित को फल पाई । धर्म अर्थ कामादि बढ़ाई ॥

इति श्रीसत्यसागरमहर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वतीवर्णितआचार अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य वैद्य कविराज पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरु-शिष्यसंवाद दशम तरङ्ग (स० १० स०)

श्रीसत्य-सागर उत्तरार्द्ध प्रारम्भ

अथ एकादश तरङ्ग (स० ११ स०)

वेदविरुद्ध मतमतान्तर विषय

दो०—ब्रह्म सच्चिदानंद घन, अनघ अगोचर ईश ।
हृदयाकाश बिलोकहीं, ब्रह्मानन्द मुनीश ॥ १ ॥
अकथ अलौकिक "इष्ट" प्रभु, गुणातीत भगवंत ।
योग युक्ति पावत रहत, ब्रह्मनिष्ठ जे संत ॥ २ ॥
ईश्वर अनुभव होव जेहि, कहि न सकत वह भाव ।
जानहि ज्ञान विचार सों, गुनअरु कर्मस्वभाव ॥ ३ ॥

शिष्य

दो०—नाथ भयो संतोष मोहिं, सुनि ऋषि कथा प्रसंग ।
होत न पूरित कर्ण घट, नित नव परम उमंग ॥४॥

ईश्वर के शत नाम सुनायहु । श्रुतिनकी व्याख्यासमुझायहु ॥
जो कछुशिक्षाविधि ऋषि केरी । दुसरे महँ समुझाइ घनेरी ॥
तीसर ब्रह्मचर्य्य उपदेशा । गृहस्थ चतुर्थ बताय ऋषेशा ॥
पंचम बनी और संन्यासी । कह्यो कटै जेहि मोह की फाँसी ॥
षष्ठम राजधर्म कहि भावा । सप्तम ईश्वर भेद सुहावा ॥

अष्टम सृष्ट्युत्पत्ति बताई। नवम मोक्ष-विद्या दर्शाई॥
भक्ष अभक्ष दशम के माहीं। अनाचार आचार सुहाहीं॥
या विधि समुझायो मोहिं साईं। भयो बोध संशय कछु नाईं॥
दो०—अब कछु धर्मन को मतो, नाथ कहहु समुझाय।
आर्य्यवर्त के देश में, कवन धर्म सुखदाय॥ ५॥

गुरु

सो०—सुनहु शिष्य मम बात, कहिहौं धर्मन को मतो।
कह्यो जो ऋषि सुखदात, सोई हम तुम सन कहब॥ १॥
दो०—यक दिन सुंदर मंच पर, सोहत वैदिक हंस।
दयानंद आनंद घन, वृजानंद अवतंस॥ ६॥
तहँ राजत बुधमंडली, सुखद सुरम्य वितान।
देखत ऋषिकी ओरसब, श्रवण जात अकुलान॥ ७॥
सो०—कहत सबन समुझाय, प्रथमऋषीयहिभाँतिसों।
वेद धर्म दिखराय, पाँच सहस के पूर्व लौं॥२॥
गयो वेद को धर्म, कारन महभारथ भयो।
कियो अविद्या कर्म, विद्या जग त्यागन करी॥ ३॥
छं०—मन जासु आयो जौन मत परचार तेहिं तैसेहि कियो।
जैनी किरानी औ पुरानी अरु कुरानी मत लियो॥
यक सहस साखा भई ता महँ वेद धर्म विरुद्ध जो।
तेहि सत्य को निर्णय करनहित सुनहु मेरी बात जो॥ १॥
सत को ग्रहन करि असत त्यागहि मूलतत्त्व विचारिकै।

अरु पक्षपात न करहि कबहूँ, धर्म को हिय धारिकै ॥
कहिहौं पुरानन की कथा, बहु भये जासों भेद हैं ।
संक्षेप से हम कहहिंगे, जे सुनहिं चित्त अखेद हैं ॥ २ ॥
जो खोज करि हम कहत हैं, सत असत निर्णय के लिये ।
मानहुँ नहीं उपकार हमरो, तौ विरोध न कीजिये ॥
याते सकल जन "इष्ट" के हित न्याय दृष्टी हिय धरैं ।
यह मनुषचोलापाइनर नित सत असतनिर्णय करैं ॥ ३ ॥
मत मतान्तर को विवाद जो होइ जग सब सों घनो ।
तौ जाल छूटहिं जगत के अनरीति में है जो सनो ॥
हम सकल जन तजि ईर्षा मिलि एक ठौर विचारहीं ।
है कोउ बात असाध्य नाहीं जासु नाहिं सुधारहीं ॥ ४ ॥
जब से भये विद्या विरोधी जाल तिनके सब फँसे ।
पायो न फल कबहूँ कछू अज्ञान कीचड़ में धँसे ॥
ताते सकल जन एकमत ह्वै युक्ति मम हिय बिच धरैं ।
पड़िहैं न कबहूँ फंद में जो "इष्ट" पुरुषारथकरैं ॥ ५ ॥
पुनिऋषिकहतसुनहुसबलोगू । जो यहँ बसत करत सबभोगू ॥
आर्य्यवर्त बिच बहु मत अहहीं । तिनकी कथा सुनहु हमकहहीं ॥
या सम देश और कोउ नाहीं । स्वर्ण भूमि सम सकल बताहीं ॥
उपजत रत्न यहाँ अधिकाई । देशन माँहि बड़ाई पाई ॥
याते आदि सृष्टि के माहीं । आइ बसे सब आर्य्य सराहीं ॥
श्रेष्ठ पुरुष जग आर्य्य कहावें । इनते भिन्न दस्यु गुहरावें ॥

जेते देश जगत के माँहीं। आर्य्यवर्त को सकल सराँहीं॥
पारस की महिमा सब गावत। लोहा छुअत सुवर्ण सुहावत॥
दो०—हम जानत यह देश ही, पारस रूप लखात।
छुअत विदेशी निर्धनी, सब धनाढ्य ह्वै जात॥ ८॥
आर्यवर्त के देश से, सीख्यौ सकल जहान।
निज निज शिक्षा चरित सब, पायो मनुज महान॥ ९॥
पाँच सहस्र वर्ष हैं बीते। तौ लगि आरज राज्य सहीते॥
चक्रवर्ति सब भूतल केरे। राजा रहे एक पथ हेरे॥
प्रति मंडलहू नृपति विराजत। आर्यवर्त आधीन सोराजत॥
कुरु पांडव लौं शासन नीती। रही सकलविधि वेदन रीती॥
आदि सृष्टि से मनु की नीती। प्रचलित भई करतसबरीती॥
उत्पति ब्राह्मण भये कुलीना। क्षत्री वैश्य शूद्र सुख दीना॥
दस्यु मलेच्छ आदि जे वर्णा। निजनिज चरितकरतआचर्णा॥
महभारत लगि कछु कछु नीती। रही जहाँ तहँ वेदन रीती॥
दो०—धर्मराज के यज्ञ में, आये नृपति प्रवीन।
राजवचन सब पालहीं, सबै रहे आधीन॥१०॥
जो भगदत्त चीन को बासी। प्रबल शल्य ईरान निवासी॥
अमरीका का बभ्रूवाहन। बिड़ालाक्ष यूरूप सोहावन॥
औरहु वहुतक नृपवरआये। शासन मानि अनी संग लाये॥
जब महराज रघू यहँ रहेऊ। तब रावण यहँ के बस भयऊ॥
जब वह विमुख भयो सब भाँती। जाइ तहाँ तेहि राम निपाती॥

तबहि विभीषन राजा कीन्हा । थापिधरमअधरमहरिलीन्हा ॥
स्वायंभुव मनु से कुरु ताँई । वैदिक राज्य रह्यो सुखदाई ॥
चक्रवर्ति शासन तिन लहेऊ । होत विरोध सबै नशि गयऊ ॥

दो०–ईश सृष्टि को नेम यह, करत सदा नहिं राज ।
अन्याई अभिमान युत, अबुध जो हैं महराज ॥११॥

अरुयहप्रकृतिस्वभावनिराला । जब नर होत बहुत धनवाला ॥
तब तेहि बढ़त ईर्षा द्वेषा । करत परस्पर है बहु रोषा ॥
बढ़ै प्रमाद नशै सब सीक्षा । चलै न तहाँ काहु की दीक्षा ॥
दुर्गुण बढ़ै कर्म नशि जाहीं । श्रेष्ठ स्वभाव रहत कहुँ नाहीं ॥
बाल बिवाहअरुमांस अहारा । पिएँ मद्य हो दुष्ट विचारा ॥
तब कोउ उपजत है बलवाना । अरु नाशत है तिनकर माना ॥
बीर शिवा अरु गोविन्द राना । यवनन जीत बजायनिशाना ॥
बहुतक उदाहरण यहिभाँती । तिनपथचलतरहतसबजाती ॥

दो०–भूरिद्युम्न सुद्युम्न नृप, इन्द्रद्युम्न कुबल्याश्व ।
अश्वपती आदिक नृपति, शशविन्दूयोवनाश्व ॥१२॥

ऋषि सों एक पुरुष असकहई । अग्नि अस्त्र विद्या जो अहई ॥
जो यह सत्य ताहि समझावहु । अथवा असतवेगि बतलावहु ॥
अरु तेहि समय भुसुंडी रहहीं । अथवा कौन शस्त्र तह ठहहीं ॥
कहत स्वामि यह सत्य कहानी । अस्त्र शस्त्र सब रहे अमानी ॥
जो पदार्थ विद्या सों भावत । ताकहँबुध जन सम्भवमानत ॥
मंत्र शब्द सों कछु नहिं होई । मंत्र विचार कहतबुध गोई ॥

जो मानहु यह मंत्र प्रतापा। निसरत अग्नि अस्त्रसों तापा॥
तौ प्रथमहिं मुखकिमिनहिंजारत। जो यह मंत्रप्रभाव उचारत॥
दो०—तिनहि मंत्र मानत सुबुध, जो विचार जग माहिं।
अग्नि वरुण मोहनास्त्रसब, जानत युक्ति सिहाहिं॥१३॥
भरत पदारथ अस्त्रन माँही। उपजत धुँआँ वारिबनिजाहीं॥
रगड़े प्रकटत अग्नि लखोई। धूम से मोहित हो सबकोई॥
याविधि हैं जग अस्त्र घनेरे। धनुर वेद जानत बहुतेरे॥
यह उपदेश यजुर में भाई। ता महँ विद्युत क्रियासुहाई॥
तोप बन्दूक आदि जे नामा। भाषा इतरमाँहि अभिरामा॥
तोप शतघ्नी को बुध कहहीं। अरु भुसुंडि बन्दूक सोहाहीं॥
संस्किरत को जो नहिं जानत। ते बहुतक याहीं विधि मानत॥
कछुक बोध मोक्षमूलर भयऊ। तिनअज्ञानअधिकनशिगयऊ॥
दो०—देश सु यूरप के विषे, मोक्षमुलर विख्यात।
संस्किरत अरु वेद किय, निज भाषा अनुवाद॥१४॥
आर्यवर्त सम सो बुध नाहीं। कहत विदेशी ताहि सराहीं॥
तेहितुमसमुझिलेहुयहिभाँती। तरुन जहाँतहँ अंडर्कीख्याती॥
वेद अर्थ बहु अनरथ कीन्हें। सायण भिन्न अर्थ लिख दीन्हें॥
जो मम भाष्य भूमिका देखहु। वेद अर्थक्रम ता महँ पेखहु॥
तब तुम्हार सन्देह नशाई। अर्थ अनर्थ भयो किमि भाई॥
विद्या जेतिक जग के माहीं। गई यहाँ से तहँ की नाहीं॥
देखहु पैरिस के जो वासी। कहत सु जैकालयँट सुपासी॥

१—एक पुरुष का नाम है।

आर्यवर्त से वह जग माहीं । विद्या फैलि गई सब ठाहीं ॥

दो०—दारा ने यहि भाँति सों, लिख्यो स्वपुस्तक माहिं ।
विद्या जेतिक जगत में, संसकिरत सम नाहिं ॥१५॥

मैंसाहित्य बहुत विधि देख्यों । मन चीन्हा आनँद नहिं पेख्यों ॥
जब व्याकरन पढ़्योधरिध्याना । तब यथार्थसुखहृदयसमाना ॥
पर यह देश शिरोमणि रहेऊ । महभारत अहि या कहँ डसेऊ ॥
जब यक भ्रात, भ्रात हनिडारै । पुनिजग में सुख शान्ति विचारै ॥
मंत्रकला जो पूरब केरी । देखहु जाइ बनारस हेरी ॥
मंदिर मान विलोकहु जाई । यंत्रचक्र बहु परत लखाई ॥
तहँ शिशुमार चक्र अवलोकहु । गृहनक्षत्रगति सबकोउ देखहु ॥
अब कछु नष्टभ्रष्ट ह्वै गयऊ । तदपिबहुतकछुतेहिथलठयऊ ॥
भारत भयो यहाँ पर जबते । नित प्रति दुसह सहत हैं तबते ॥

दो०—आवत समय विनाश को, बुद्धि होत विपरीत ।
या विधि बुध बरनन करत, है चाणक्यकी नीत ॥१६॥

कोउ सिखावत नीक स्वभाऊ । समुझत सदा सो उलटे भाऊ ॥
ऋषिमुनि बुधवर अरु महराजा । भारतयुद्ध मरे सब राजा ॥
तब से वैदिक धरम नशान्यो । मातृभाव कुल भेष भुलान्यो ॥
ईर्षा द्वैष बढ़्यो अभिमाना । तेहि क्षण भये उपद्रव नाना ॥
जो बलवान भयो तेहि काला । जीत्यो खंड खंड महिपाला ॥
राज नियम सब खंडित भयऊ । वर्णाश्रम पथ तब नसि गयऊ ॥
मूरख विप्र भये बहुभाँती । किमि बरनैं हम नाना जाती ॥

वेद शास्त्र सब पढ़त सदाहीं । कर्म करत वैदिक सब ठाहीं ॥

दो०—तहाँ नष्ट सब होत है, जहँ विद्या नशि जात ।
पाठ मात्र विधि कहुँरहत, अर्थ न काहु सोहात ॥१७॥

जो विद्वान जगत उपकारी । कहत विप्र तिनकहँसुखकारी ॥
जब यजमान सु संस्कृत रहेऊ । तब कछु ढोंग यहाँनहिंठयऊ ॥
ब्राह्मण ढोंग करन बहु लागे । अपने पाश माँहिं सब पागे ॥
या विधि तिनजगको भरमायो । बनिईश्वर नितजगत पुजायो ॥
विद्या विमुख अधिक धनवाले । देत इनहिं धन जो मतवाले ॥
मूर्खन धन जबहीं मिलिजाही । उन्मतहू नाशत हैं ताही ॥
विषयानन्द करहिं बहुभाँती । त्यागहिं वैदिक धर्म सुहाती ॥

दो०—गुन अरु कर्म स्वभाव को, नष्ट कियो बहु भाँति ।
केवल जनमहिं मानि कै, लेत दान सब जाति ॥१८॥

हम भूदेव कहन अस लागे । मम सेवा सब औगुन भागे ॥
बिन पूछे कछु काज न कीजै । प्रति छणहीं मोकहँ कछु दीजै ॥
विप्रद्रोह नहिं कबहूँ कीजै । मेरे वचन सदा उर लीजै ॥
तब तुम इन सों पूछहु बाता । कहँ परजाइ बसहु तुमताता ॥
कर्म तुम्हार नरकहित जानहु । हुइहौ कीट पतंग प्रमानहु ॥
तबहिं कहत हम दीहैं शापा । सहिनसकहु हमारपरितापा ॥
द्रोही विप्र टिकत है नाहीं । सहितकुटुम्बसकलनशिजाहीं ॥
हाँ यह बात प्रकट जग माहीं । जो ब्राह्मण धर्मी केहु ठाहीं ॥

दो०—है विरोध तिनको अवशि, सदात्यागिवे योग ।
जो उपकारी विप्रवर, पावहिं ते सुखभोग ॥१९॥

यह विचार लीजै मन माँही । कर्म विहीन न विप्र लखाहीं ॥
ते जग में नहिं सेवा लायक । अरुनहिंब्राह्मणनाम विधायक ॥
तब यक पंडित पूछन लागे । हम हैं कौन कहहु प्रभु आगे ॥
तब ऋषि पोप बतायहु तेहीं । पूछत पोप कहत हैं केही ॥
स्वामी तेहि समुझायहु नीती । रोमन भाषा पोप सहीती ॥
तहँ पर पोप पिता सम मानहिं । अबतो कपटीछलीप्रमानहिं ॥
तब पंडित इमि बैन उचारी । विप्र हमार पिता महतारी ॥
हम हैं अमुक साधु के चेले । ताते हम ब्राह्मण गर्वीले ॥

दो०—स्वामि कहत चित दै सुनहु, जो हमारि है बात ।
मात पिता ब्राह्मण भये, पुत्र न विप्र लखात ॥२०॥

जामहँ गुण अरु कर्म सुभावा । जाकहँपरोपकारअति भावा ॥
सोइ जगविप्र परम सुखदाता । करहिंकर्म सुख सम्मति दाता ॥
पोपनकी विधि नितनव करई । अरु निज मुख ब्राह्मण उच्चरई ॥
रोमन देश पोप जो अहहीं । निज चेलन समुझावत रहहीं ॥
जो जग मम सेवा नहिं करई । स्वर्ग न कबहूँ सो पग धरई ॥
यदि मम सन्मुख अपने पापा । कहहुतोक्षमहिंसकलपरितापा ॥
मम आज्ञा बिन कछु नहिं होई । कोटिन यत्न करहि जो कोई ॥
मम समीप धरिहौनिजथाती । पावहु जाइ स्वर्ग बहु भाँती ॥

दो०—यह बातें सुनिकै जबै, नैन अन्ध धनवान ।
स्वर्ग प्राप्तहित जात तब, पोप समीप निदान ॥२१॥

तबहि पोप ईसा ढिग जाई । स्वर्ग खर्च सब देत बनाई ॥
कछु धन में गृह निर्मित कीजै । कछु रथतुरंगन खर्च करीजै ॥
कछु भोजन मिस इनके राखैं । या विधि पोप तहाँ पर भाखैं ॥
अरु यक हुंडी लिखत बनाई । निज हस्ताक्षर करत सुहाई ॥
अरु दै देत शिष्य कहँ सोई । कहत सुराखहु याहि सँजोई ॥
जब ये मरैं तबै अस कीजै । दफ़नभयेसिरढिग रखिदीजै ॥
हुंडी सहित तहाँ लै जावें । निकटखुदा सबन्यायचुकावें ॥
सुनियहविधिमोहिंआवतहाँसी । पोपकर्म अन्याय की फाँसी ॥

दो०—ताही विधि या देश में, कियो जाल विस्तार ।
मानहु श्रीयुत पोपजी, लीन्ह आइ अवतार ॥२२॥

राजा प्रजा न बुधवर होई । अरु सतसंगी होइ न कोई ॥
स्वार्थ कपट अरु लोलुपताई । करहि ठगी जग बहुसमुझाई ॥
यहि प्रकार नर पोप कहावें । साधुविप्र ह्वै जग भरमावें ॥
कर्म सुधारत ब्राह्मण साधू । जेहि न रहहिं कोउ पुरुष असाधू ॥
यदि ब्राह्मणजग कोउ न होता । कहहु कौन जग वेद उवर्ता ॥
केहि विधि वेद कथा जगहोती । को करि अर्थ देखावत ज्योती ॥
जैनी यवन ईसाइ सतावत । इनके जालन कवन बचावत ॥
कवन प्रीत की रीति चलावत । छुटे भ्रातगन कवन मिलावत ॥

१—इनमें जब कोई मरता है तो गाड़ दिया जाता है ।

विप्र, साधु बिन दूसर नाहीं। विषहु पियत जो अमृत सराहीं॥

दो०—मूर्ख भये यजमान सब, विप्रन किय अभिमान।
कछु पूजा कछु पाठ करि, गुरु बनि बैठि निदान॥२३॥

करि सम्मति यह भाषन लागे। हैं अदंड ब्राह्मण गुन पागे॥
साधु बिप्र नहिं मारन योगू। इमि कहि वचन करत सब भोगू॥
शब्द जो साधु बिप्रहित रहेऊ। वह यहि समय पोपहित भयेऊ॥
नाना भाँतिन ग्रन्थ रचाये। ऋषिन नाम धरि जग भर्माये॥
अरु बहु कठिन नियम तिन बाँधे। विन आज्ञा कोउ कार्य्य न साधे॥
गमनागमन औ́र असनाना। खानपान आदिक विधि नाना॥
निज आज्ञावश सब कछु राख्यो। हैं अदंड साधू अस भाख्यो॥

दो०—महभारत के युद्ध से, वर्ष सहस ही पूर्व।
देश दशा बिगड़न लगी, बिगड़ी आज अपूर्व॥२४॥

सत उपदेश रह्यो कहुँ नाहीं। मूरखता फैली सब ठाहीं॥
जब कोउ रहत न समुझनवारो। तब उपदेश लगत है भारो॥
तब कछु सिद्धा नाहिं लखाई। केतिक कोउ उपदेश सुनाई॥
होत जबै उत्तम उपदेशक। धर्म अर्थ कामादि विधायक॥
नाना भाँतिन सिद्धी होई। अन्धाधुन्ध जात सब खोई॥
इन उपदेश न मानत जोई। सहत महादुख सुख को खोई॥
निशदिन पाप पुजावत चरना। निजवश करि प्रताप गुन अपना॥
बनि निर्द्वन्द्व विषयरत होवहिं। विद्या बुधि बल सब कछु खोवहिं॥
शुभगुन नष्ट भये यहि भाँती। मद्य मांस सब काहु सोहाती॥

दो०—शिवौवाच कहिके कोऊ, कोउ पार्वत्योवाच।
भैरव देवी आदि लै, वाक्य कहे जनु साँच ॥२५॥

तन्त्र नाम धरि लीला कीन्ही। रचिनिजग्रन्थकुदीक्षादीन्ही॥
मुक्ती मानत पंच मकारा। कालि[1] तंत्रकहितहिउचारा॥
भैरवि चक्र सबै जब राजत। तहँपरकोउनहिंजातिविचारत॥
तेहिनिवृत्त हो निजनिज जाती। तंत्रकुलार्णव[2] जगत सुहाती॥
जौलगि भुँइ न गिरैं अकुलाई। तौलगि मद्य पियैं समुदाई॥
बहुरि उठैं पुनिपियहिं शराबा। तंत्र महानिर्माण[3] सुहावा॥
मातु विना जेती जग नारी। रमन करहिं तिनसँगसुखकारी॥
वेदशास्त्र अरु सकल पुराना। हैं समान गणिका हम जाना॥
याहि सम्भवी मुद्रा जानहु। तदा ज्ञान संकलनी[4] मानहु॥
औरहु बात सुनहु इन केरी। कहन योगनहिं कहिहौं फेरी॥

१—मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च। एते पंच मकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे। (कालीतंत्र)।

२—प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः। निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्। (कुलार्णवतंत्र)

३—पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते। (महानिर्वाणतंत्र)

४—मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव॥
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव (ज्ञानसंकलनीतंत्र)

दो०—ऋतू[1] कालके समय को, नहिं त्यागत यह लोग।
तीरथ सम फल मानहीं, अरु मानहि बड़भोग ॥२६॥
रजस्वला तिय करहिं सँग, तीरथ पुष्कर मानि।
चांडाली काशी लखहिं, भोग करहिं सुखदानि ॥२७॥
याही विधि बहु भाँति सों, मुद्रा पंच बनाय।
मारग उलटे जो चलैं, बाम मार्गि सो भाय ॥२८॥

तीरथ मद्यहिं कहत बुझाई। कहत शुद्धि मांसहिं निपुणाई॥
पुष्प मच्छिका कहत बखानी। खाहिंसकल जलतुम्बिक जानी॥
मुद्रन नाम धरे यहि भाँती। जेहि भ्रमजाल फँसै सब जाती॥
आद्रवीर शम्भव अरु कौला। धरि निजनाम सुबाँध्यौ डौला॥
इनते विमुख रहे जो कोई। कंटक ताहि उचारत सोई॥
बिमुखहि शुष्कपशू ते जानहिं। करतकर्म जियलाज न मानहिं॥
चक्र भैरवी को जब लहहीं। तहँ सब वरण द्विजाती रहहीं॥
पूजाविधिहम तुमहिंसुनावहिं। वाममार्गि गुरु जो करवावहिं॥

१—रजस्वला पुष्करी तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी।
चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता॥
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता। (रुद्रयामलः तंत्र)

रजस्वला के भग को पुष्कर तीर्थ और चांडाली काशी, चर्मकारी प्रयाग, रजकी मथुरा, कंजरी को अयोध्या मानते हैं।

दो०—बिन्दु त्रिकोण बनावहीं, भूमि पटा के बीच ।
मदिरा घट तापै धरहिं, पूजन करहि सहीच ॥२९॥

पुनि यह मंत्र[1] पढ़हिंचितलाई। मद्य हरहु मम शाप सदाई ॥
गुप्त रहत स्थल एक ठाहीं। जहँ पर कोऊ और न जाहीं ॥
जुरत तहाँ पर नर अरु नारी। पूजत नग्न नारि नर झारी ॥
पुनिमद्पियहि होहिंमतवाले। भोगहिं नर नारिन भयत्यागे ॥
तहँ परज्ञान रहत यह नाहीं। माता भगिनी नारि को आहीं ॥
जो जेहि पाव रमण तब करहीं। सुता नारि हियभेद न धरहीं ॥
पुनि यक थाल मांस भरिलावें। सहित मद्य तहँपर धरि जावें ॥

दो०—पुनि बोलत आचार्य्य इमि, हम भैरव शिव देव।
पियत सकल मिलि पात्र में, जूठ अनूठ न भेव ॥३०॥

गणिका, नारि नग्न यककरहीं। सुनहुतासुकरमहँअसि[2]धरहीं ॥
तासु नाम देवी कहि टेरहिं। नर को महादेव कहि हेरहिं ॥
इन्द्री गुप्त सु पूजन करहीं। करहिं कुकर्म मत्त ह्वै गिरहीं ॥
मुष्ट प्रहार परस्पर करहीं। केश पकड़ि उनमत ह्वै लरहीं ॥
काहुहि वमन होहि तेहि ठामा। खाइ ताहि सो अधिक ललामा ॥
सोई सिद्ध महा है पंडित। सिद्ध अघोर सुकरम अखंडित ॥
मदिरापान करत अधिकाई। कौलव चक्र[3] कहत तेहि गाई ॥

१—ब्रह्मशापविमोचन। २—तलवार।

३—हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।
विराजते कौलवचक्रवर्ती ॥

जो निर्लज्ज महा बटमारी । करहिं न कानि सदाऽव्यभिचारी ॥
दो०—लोक लाज कुल लाज में, फँसे रहैं स्वइ जीव ।
है निलज्ज कारज करहिं, सोई शिव बलसीव ॥३१॥
सुनहु तंत्र उड्डीस कहानी । लिख्यो प्रयोग परम मनमानी ॥
एक भवन में चारों ओरा । धरहु मद्य आलेन महँ जोरा ॥
पियहि एक पुनि दूसर पीवैं । तीसर चौथ सकल दिशिपीवैं ॥
भूमि गिरैं पुनि उठि सोधाई । पियहि शराब तहाँ सो जाई ॥
ताकहँ पुनरजन्म नहिं होई । आवै जो यहि मारग कोई ॥
विद्यामहा तहाँ दश जानहिं । यक मातंगी श्रिद्या मानहिं ॥
ते मातंगी मात न त्यागत । जपत मंत्र नितप्रति सुखचाहत ॥
इन सम मूर्ख कवन जगमाहीं । झूठ हेत जन सत्य छिपाहीं ॥
दो०—अरु बोलत एक संग सब, महा असम्भव बात ।
वेद शास्त्र सामान्य सब, गणिका इव हैं तात ॥३२॥
पंथ चलायहु वेद विरुद्धा । तब न रहो सुजनन की श्रद्धा ॥
वेद नामधरि लीला कीन्ही । वाम मार्गिन जो गढ़ि[1] लीन्हीं ॥
पियहि सोमरस यज के माहीं । सौत्रामणि जहँ यज्ञ लखाहीं ॥
ताकहँ मानि लीन्ह यहि भाँती । मदिरा यज्ञ पिइहिं सब जाती ॥
अरु कह दोष न यज के माहीं । खाइ मांस परसाद बनाई ॥

१—सौत्रामण्यां सुरां पिबेत् । प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं । वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

वैदिक हिंसा हिंसा नाहीं। वाममार्ग की रीति सुहाई॥
पूछहु इन धूर्तन सों कोई। या विधि हिंसा जो नहिं होई॥
तौ सब कुटुँब तुम्हार समेता। होमहिं अग्नि माँहि सुखहेता॥
तौ तुम का सुख मनिहहु भाई। ह्वै आरूढ़ कहहु हर्षाई॥

दो०—अहै छछोरापन यहाँ, जो यह मानत लोग।
मद्य मांस परनारि सँग, जे चाहत सुखभोग॥३३॥

मिलहि न मांस जीव बिन मारे। होत अधर्म जीव हनि डारे॥
मद्यपान वर्जित सब ठाईं। काहू ग्रन्थ न पड़ै लखाई॥
वाम मार्ग के ग्रन्थन माहीं। केवल लिखित मिल्यो तेहिठाहीं॥
इनहीं के संसर्ग से भाई। मनुआदिक ग्रन्थन में जाई॥
अद्‌भुत बात एक दर्शाई। वेदन में हिंसा दिखराई॥
अरु सबको समुझावन लागे। अश्वमेध गोमेध बखाने॥
तब यक ऋषिसों पूछत भयऊ। गो अरु अश्वमेध का ठयऊ॥
स्वामि कहत बिन अर्थ न जाने। घोर अविद्या माहिं भुलाने॥

दो०—गौ घोड़ा को मारिबो, लिख्यो न केहु थल माहिं।
वेद अर्थ जानत नहीं, अनरथ करत सदाहिं॥३४॥

कहुँ कहुँ शास्त्रन परत लखाई। जानहु वाममार्ग निपुणाई॥
पालन प्रजा धर्मयुत करई। विद्यादान माँहि चित धरई॥
यज्ञ करहि लै जन समुदाई। अश्वमेध[1] सो जगत कहाई॥

१—राष्ट्रं वा अश्वमेधः॥ शतपथ० १३।१।६।३॥ अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः

प्राण यज्ञ इन्द्रिय मल हरई। करि बहु यज्ञ किरण शुचकरई ॥
तेहि गोमेध[1] कहत जन टेरी। देखहु प्रेम सहित हिय हेरी ॥
पुनि यक कहत सुनहु ऋषिराई।जो तुम मोसन कहत सुनाई ॥
यज्ञ पशू अरु वह यजमाना। पावत स्वर्ग माहिं सुख नाना ॥
कहत पशू पुनि जीवित सोई। कहा स्वामि यह सत्य न होई॥

दो०—काहू त्राण यह सत्य नहिं, सुनहु हमारी बात।
अरु निजको सिद्धान्त यह, तिनहि सुनावहु तात॥३५॥

जो पशु स्वर्ग जात यजहोमे। तौ किन निजपरिवारहि होमे ॥
होमे पशु जिमि जीवित करई। ताविधिनिजकुटुम्बअनुसरई ॥
पुनि कह यज्ञमें मन्त्रनपढ़हीं। वेदनरीति जानि हिय धरहीं ॥
कहऋषि मंत्र चहै कोउ पढ़ई। शब्दस्वरूप जगत बिच अहई ॥
मंत्र अर्थ हवि यज में डारै। वायु शुद्ध हो रोग निवारै ॥
पर इन मूढ़न अर्थ न जानी। कार्य करे अपनं मनमानी ॥
मृतक श्राद्धइनसबनकराये। पहुँचहिपितुढिगकहिसमुझाये ॥

दो०—पोपन लीला बहुकरी, गोरखपुर के बीच।
नृप नारी अरु अश्वसों, संग करायहु नीच ॥३६॥

रानी मरत नृपति हियमाहीं। श्रद्धा घटी जाल खुलि जाहीं ॥
राजछोड़ि नृप बनहिसिधाये। पोपनजाल अधिक देखराये ॥
चारवाक आभाणक दोऊ। तिनकी साख रही है सोऊ ॥
तब सबको समझावन लागे। पोपन जाल छुड़ावन पागे ॥

१—अन्नंऌ हि गौः ॥ शतपथ० ४।३।१।२५।

छन्द–जो स्वर्ग पशु होमे मिलहि, तो किमि न याजक होमही।
ते किमि न पहुँचावत सदा, निज मातु पितु अपने सही॥
यदि श्राद्ध कीन्हे मृतक तृप्ती, होत है निश्चय सही।
तौ पथिक जन किमिसहैं दुख, तिन श्राद्ध सों पहुँचै सही६

पहुँचत जब मृतकनहैभाई। किमिनपथिकजनमिलहिसुहाई॥
जियतनरनयदिपहुँचतनाहीं। तोकिमिभोगत मृतकसराहीं॥
जैन धरम इमिबाढ़न लाग्यो। चन्द्रकला जिमि पूरन पाग्यो॥
जब न गली कछु दालिगलाये। तब जैनी बनि प्रीति बढ़ाये॥
जैनिन में बहुतक है लीला। सो आगे कहिहौं सुखशीला॥

दो०–जैनधर्म सब देशभो, छुट्यो वेद को पाठ।
कछु स्थल तब रहि गये, ठाठि आपनो ठाठ॥३७॥

वैदिक चिह्न जनेऊ आदिक। त्यागन लगे बने सब नायक॥
जहँ कहुँ पावत वेदन पोथी। देत जलाइ बतावहिं थोथी॥
आर्य्यजननपर शासनकीन्हों। अरुसबभाँतिनतिनदुखदीन्हों॥
तिनहिरही कछु शंका नाहीं। ह्वै उनमत जगद्वन्द मचाहीं॥
आप रहैं सुखमय आसीना। फूले फिरत मनहु जल मीना॥
तीर्थंकरन की मूर्ति बनाई। तिन पूजा अरु जगत पुजाई॥
आदिवृषभ महावीर सुअन्ता। भये तीर्थंकर जैन महन्ता॥
ढाई सहस बरष हैं बीते। लुप्त भयो वेदार्थ सप्रीते॥

दो०–वर्ष सुबाइस शत भयो, प्रकटे शंकर देव।
द्रविडदेश उत्पन्न भे, कीन्ह वेदमत सेव॥ ३८ ॥

पढ़ि व्याकरण बने ब्रह्मचारी । ब्राह्मणआस्तिकअरुआचारी ॥
देख्यो तहाँ वेद मत हानी । झूठ असत मत जैनअमानी ॥
शंकर देखि भयो दुख भारी । तब निजमनयकबातविचारी ॥
गये उज्जैन देश आचारी । तहँशास्त्रार्थकीरीतिसम्हारी ॥
तहाँ सुधन्वा राजा रहेऊ । जैन-धर्म ताके हिय ठयऊ ॥
रह्यो नृपति विद्वान सोहावन । जनसत्कारकरहि हियपावन ॥
नृप समीप तब शंकर जाई । कह शास्त्रार्थ करावहु राई ॥

दो०—जैनधर्म अरु वेद मत, कवन सत्य ठहरात ।
ताहीपर हम तुम चलहिं, जो होवे सुखदात ॥ ३९ ॥

करहि प्रतिज्ञा यहि थलआई । जो जीतै तेहि मत हुइ जाई ॥
यदपि सुधन्वा जैन महाना । तदपि सुग्रन्थन देख्योनाना ॥
तेहि मन विद्या केर प्रकाशा । तामहँ पशुता की नहिंआशा ॥
यह जग रीति सदा चलि आई । जेहिबुधिहोतसोसत अपनाई ॥
अबलौं राजहि मिल्यो न कोई । सत्य असत्य बतावत जोई ॥
शंकर की सुनि के यह बानी । शास्त्र विवाद करावन ठानी ॥
जैनी पंडित अधिक बोलाई । दूरि निकट जे चतुर सोहाई ॥
शंकरपक्ष वेदमत साँचा । वेदविरुद्ध जैनमत ढाँचा ॥

दो०—उभयपक्ष बहु दिवस लगि, कीन्हों अधिक विवाद ।
करता ईश विचारहीं, युक्ति प्रबल द्वौ बाद ॥४०॥

करता सृष्टि न ईश अनादी । जगत जीव द्वौ रहतअनादी ॥
इनकर नाश कतहुँ नहि होई । जैन वाद पथ जानहु सोई ॥

जग कर्ता यक ईश अनादी। जीव जगत द्वौ झूठ उपाधी॥
यह जग ईश्वर निर्मित करई। करिपालनसँहार हियधरई॥
बहुतक दिवस रह्यो यहवादा। रही सुशंकर की मर्य्यादा॥
वैदिकधरम सदा शुचिसाँचा। सोई रह्यो जेहि शंकर ऊँचा॥
भये पराजित जैनी पंडित। करत रहे जो राज अखंडित॥
जैनधर्म तिन त्यागन कीन्हो। बुधमंडलीसहितनृपचीन्हो॥
दो०—शंकर के अनुकूल तब, करन लगे जप याग।
नृपति सुधन्वा कुल सहित, तिन पायो बड़भाग॥४१॥
शंकर को दिग्विजय करायो। आप संग लै सैन्य सिधायो॥
किय उपनयन सकल बरजोरी। बढ़्योसुवैदिक धरम बहोरी॥
यहि प्रकार दश बरषबिताने। आर्यवर्त से जैन हेराने॥
भयो युद्ध बहु स्थल माहीं। नष्ट भई मूर्ती बहु ठाहीं॥
जैन पूर्व कछु शैव देखाने। खंडन कीन्ह वेद सनमाने॥
तेहि अवसर धनवंतमहाजन। निर्मितकीन्हसुमंदिरसाजन॥
मंदिर बृहत नाहिं तोड़वाये। गुरुकुल हेत तिनहिं रखवाये॥
तब द्वै जैनी कपट स्वरूपा। प्रगट वेद मत राक्षस रूपा॥
दो०—पाइ सुअवसर दीन्ह विष, कपट कुचाली कूर।
क्षुधामन्द ऋषि की भई, भयो अंग सब चूर॥४२॥
छन्द—षट मास के बिच देह त्याग्यो, चतुर शंकर बीर।
उत्साह तब सबको गयो ह्वै गये सकल अधीर॥
विद्यादि धर्म प्रचार हित जो कार्य्य शंकर कीन्ह।
वह काज कछु होने न पायो, त्यागि जग चलिदीन्ह॥७॥

जैन के प्रतिवाद हित जो युक्ति तिन निर्मितकरी ।
है जगत मिथ्या ब्रह्म सत ब्रह्म जीव की यकताकरी ॥
पुनि शिष्य सब मठबाँधि बैठे जीव ब्रह्म उचारहीं ।
सब वेदमार्ग सुनष्ट ह्वै गयो कौन जगत सुधारहीं॥८॥

दो०—शृंगेरी दक्षिण दिशा, गोवर्धन दिशि पूर्व ।
उत्तर जोशी मठ थप्यो, बैठत भये सगर्व ॥ ४३ ॥

बहु प्रभुता धन सम्पति पाई । करन अनन्द लगे अधिकाई ॥
अब यह बात बिचारन योगू । शंकर युक्ति परम तपभोगू ॥
यहि अवसर शंकर समुदाई । करि प्रचार चाहै निपुणाई ॥
कहौ कहा शंकर को यहमत । चलतशिष्ययहिअवसरजोपथ॥
हम समुझत याको यहिभाँती । शंकरदेव सुपरम सुहाती ॥
पक्ष सिद्धहित लिय यकअंगा । अरु जीत्योसबभाँतिअभंगा ॥
अरु जो मत यह शंकर केरा । जीव ब्रह्म एकहिं सब येरा ॥
तौ यह बात बनत है नाहीं । ब्रह्म जीव नहिं होत कदाई ॥
केवल जैन विवादहि लागी । बने नवीन वेदान्ति विरागी ॥

दो०—तब ऋषि सों पूछत भयो, एक पुरुष यह बात ।
जगत रज्जुभ्रम सर्पवत, मृगतृष्णा जल जात ॥४४॥
चाँदी सीप देखात जिमि, इन्द्र जाल की भाँति ।
यह झूठा संसार है, सत्त ब्रह्म यक जाति ॥४५॥

स्वामि कहा जेहिस्थितिनाहीं । सोकि कहहुकिमिप्रगटलखाहीं ॥
कहहु कवन को झूठ लखाई । अरु अप्रकट प्रकट हुइ जाई ॥

अध्यारोप[1] कहत हम ताही। जेहि निश्चय तुम मानहु भाई॥
स्वामिकहत सुनिये चितलाई। मानत रज्जु वस्तु सब ठाँई॥
सर्प अवस्तु तुम्हारी जानी। पड़ि भ्रमजाल सो मती भुलानी॥
तब स्वामी समुझावन लागे। परम चतुर बहु विद्यन पागे॥
रसरी प्रकट तुम्हारी जानी। सर्प अवस्तु हिये बिच ठानी॥
जबरसरीमहँ अहिभ्रम करई। सर्प भावना हिये बिच धरई॥

दो०—सर्प भावना हृदय बिच, रहत रही प्रतियाम।
तब केहि विधि भ्रम होवई, जीव ब्रह्म सुख धाम॥४६॥

सो०—बिना मूल नहिं सोउ, स्वप्न भावना होत जा।
प्रथम रहत है सोउ, संस्कार आतम विषे॥ ४॥

कहतएकहमसपना दीखत। कोउ बिनशीशकोउकोउखीझत॥
जो कतहूँ देख्यो है नाहीं। स्वामि कहौ किमि प्रकटलखाहीं॥
जो देखात कतहूँ है नाहीं। वह प्रतच्छ केहिभाँति लखाहीं॥
तबकहस्वामिसुनहु चितलाई। बात तुम्हारि बनत इमिनाहीं॥
संस्कार बिन स्मृति नाहीं। बिनस्मृति अनुभव कछुनाहीं॥
जबकहुँ सुनेहुकट्यो नरशीशा। रोवत देख्यो जात अनीशा॥
सोई स्वप्न आतम बिच आई। रोवत आपुहि शीश कटाई॥
इमि न वस्तु बिन होत अवस्तू। पुनि आरोप बतावहु वस्तू॥

१—पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यारोप कहाता है।

दो०—सुनहु चित्रकारी करत, देखि अकर्ता मित्र ।
नैन मूँदि तेहि लिखत सब, और बनावत चित्र ॥४७॥

सोई कतहुँ स्वप्न बिच देखहु । जाग्रतसम नहिं सपना पेखहु ॥
अंधहि रूप स्वप्न नहिं होई । जन्म ज्योति जाको गइ खोई ॥
याते तव मिथ्या अध्यासा । मिथ्या अहै अरोपित आसा ॥
वेदान्तिन उपमा यह झूँठी । सर्प रज्जु भ्रम मान अनूठी ॥
बहुरिकहत ऋषिवचन प्रवीना । जेहि मत है वेदान्त नवीना ॥
अधिष्ठान बिन नहिं अध्यासा । होय प्रतीत करौ नहिं आसा ॥
बिन रसरी अहि भान न होई । यह निश्चय जानहु सब कोई ॥
केहु छण सर्प न रसरी माहीं । जबतम बढ़ततोप्रकट देखाहीं ॥
दीपक सों जब देखत ताही । तबभ्रम तुरतसकलनशिजाही ॥

दो०—ब्रह्म बीच तिमि जगत की, होत प्रतीती झूट ।
जब जानत बहु ब्रह्म को, जात तबै भ्रम छूट ॥४८॥

जैसेहि रज्जू प्रकट देखाई । सर्प केर भ्रम जात नसाई ॥
कहतस्वामिकछुमोहिंसमुझावहु । केहिजान्योसोमोहिंसुनावहु ॥
ब्रह्मबिच जगत जीव ने जान्यो । पंडितकहियहिभाँतिबखान्यो ॥
जीव भयो किमिकहऋषिराई । बालत यह अज्ञान से आई ॥
बहुरिकहतऋषिकिमिअज्ञाना । भयो कहाँ से कहहु विधाना ॥
रहत कहहु केहि स्थल माहीं । कह्यो ब्रह्मबिच रहतसदाहीं ॥
कह ऋषि वहअज्ञानब्रह्मकेरा । अथवा अन्य काहु को हेरा ॥

अरु केहि भयो महा अज्ञाना। कहु भो चिदाभासकोभाना॥
पुनि पूछत ऋषिरूप बतावहु। चिदाभास कह है दर्शावहु॥

दो०—चिदाभास ही ब्रह्म है, ब्रह्महि ब्रह्म अज्ञान।
निज स्वरूप सो भूलई, है यक युक्ति महान॥४९॥

तबऋषिकहतनिमित्तबतावहु। पंडित कह्योअविद्या जानहु॥
बोलत ऋषी सरलमृदु बानी। कहहुअविद्यागुन केहि मानी॥
कहहु अविद्या गुण सर्वज्ञा। अथवा यह जानहि अल्पज्ञा॥
यह गुन जो अल्पज्ञ लखायहु। तौतुम्हारमननहिंबनिपायहु॥
अब चेतन यक है जग माहीं। दूसर कोउ चेतन है नाहीं॥
तब अल्पज्ञ कहाँ ते आयो। ब्रह्ममाहिं अल्पज्ञ न पायो॥
ब्रह्म ते पृथक जो मानहु भाई। तो मत ठीक तुम्हार लखाई॥
जो हो ब्रह्म बीच अज्ञाना। तौ तम बढ़ै महा अभिमाना॥

दो०—पंडित कहत उपाधि को, धर्म जगत विख्यात।
ब्रह्मकेर यह भाव नहिं, सत्य असत यह बात॥५०॥

सो०—यह तुम्हारि यक बात, कहत सुनत लागत हँसी।
कहहु अविद्या तात, जड़ सत चेतन असत नहिं॥५१॥

जिमि द्वै धातु मिलावे एका। परखै पारखि सहितविवेका॥
द्वौ मिलि एक कतहुँ नहिं होई। प्रकट दिखात दुऔगुनसोई॥
पंडित कहत सुनहु ऋषिराई। जिमि घटमठ आकाश लखाई॥
मेघ अकाश आदि आकाशा। है यह जानहु महदाकाशा॥

प्रकट सुघटमठ पृथक लखाहीं । नतुसब एकहि रूप सुहाहीं ॥
याविधि माया व्यष्टि समष्टी । अन्तःकरन अविद्या इष्टी ॥
जाकहँ ब्रह्म बोध है नाहीं । तेहिउपाधि ये पृथकलखाहीं ॥
जाविधिअग्निसकलदिशिजारै । भाँति-भाँति के काठ सँहारै ॥

दो०–होत तहाँ तद्रूप है, औ पुनि पृथक लखात ।
तिमिपरमातमकोलखहु, अन्तःकरन समात ॥५१॥

पर है पृथक सदा सब ठाईं । अन्तःकरन ईश बिलगाईं ॥
यह मत व्यर्थ तुम्हारलखाई । तब ऋषि कहयहमानहुभाई ॥
घट मठ मेघ पृथक जबमानहु । तौ किमि जीवईशअपनावहु ॥
जगत जो कारनकार्य्यसरूपा । जीव ब्रह्म द्वौ भिन्न अनूपा ॥
तब पंडित कह सुनहुगोसाईं । व्यापक ईश रमै सब ठाईं ॥
जिमि अग्नी प्रबिशै सबमाँहीं । तदाकार बनि रहत तहाँहीं ॥
तिमि परमातमजड़अरुजीवा । ह्वै व्यापक धरि रूप अतीवा ॥
अज्ञानिन हित प्रकट लखाई । नतु ईश्वर जड़ जीव सदाई ॥

दो०–जिमि सहस्रजलकुंडमें, देखहु भानु प्रकाश ।
कुंड नशे जल के नशे, होत बिम्बनहिंनाश ॥५२॥

याविधि अन्तःकरनके माहीं । जीव ब्रह्म प्रतिबिम्ब लखाहीं ॥
जबहि ज्ञान होवे अधिकाई । अन्तःकरन बिकार नशाई ॥
तब यह जीव ब्रह्म ह्वै जावै । अरु जगबन्धन से छुटिजावे ॥
तबऋषिकहतसुनहुचितलाई । हैसिद्धान्त व्यर्थ यह भाई ॥
जेते हैं दृष्टान्त तुम्हारे । ते साकार सबै उचारे ॥

वारि-पात्र साकार सुहाई । अरु सविता साकार लखाई ॥
तौ प्रतिबिम्ब होत सवठाँई । निराकार प्रतिबिम्बन भाई ॥
तौ किमि ब्रह्महोतप्रतिबिम्बा । व्यापक निराकारजगअम्बा ॥
ब्रह्म अभास कहहु किमिहोई । बिन अकारप्रकटतनहिंसोई ॥

दो०—अन्तःकरन उपाधि से, जीवहि मानत ब्रह्म ।
नष्ट भये अन्तःकरन, जात कहाँ सो ब्रह्म ॥५३॥

यह लरिकाई सम है बाता । ब्रह्म अखंड अचल है ताता ॥
जीव ब्रह्म जो पृथक न मानहु । तौ हमको यह बात बतावहु ॥
अन्तःकरन जहाँ तहँ जाई । हो अज्ञानि तहाँ ब्रह्म भाई ॥
जेहिते पृथक होत जेहिकाला । सो तब होत महाबुधिवाला ॥
जिमि छतरी की छाया धाई । जात जहाँ सो तहँ चलि जाई ॥
यामें दोष ब्रह्म को लागै । जीव दोषमय ब्रह्महु पागै ॥
चेतन ब्रह्म एकरस अरई । तामहँ दुख अज्ञान न रहई ॥
जो हम मानहिं तुम्हरी वाता । लागत दोष ब्रह्म बिच ताता ॥

दो०—शुद्ध बुद्ध अरु नित्य प्रभु, हैं तेहि मुक्त स्वभाव ।
ताप्रभु के यहि भाँति तुम, मानत हो सब भाव ॥५४॥
प्रभु अखंड निर्दोष है, होत खंड तेहि नाहिं ।
बिना रूप आभास नहिं, होत न केहू ठाहिं ॥५५॥

जो न कतहु केहि भाँति लखाई । सो किमि दर्पन देत देखाई ॥
है यह प्रकट जगत की रीती । प्रकट अकार लखात सुनोती ॥
निराकार कोउ कतहुँ न पेखे । कहहु अकाश तबै केहि लेखे ॥

कहहु स्वामि यह कहा देखाई। नील वरन आकाश सुहाई॥
स्वामि कहत सुनिये यक बाता। जो यह नीलअकाश सुहाता॥
भूमि अग्नि जल रेणु जो अहहीं। चलि सो गगन बीचमें रहहीं॥
यह बितान सम दीखत जोई। वर्षा गोलक लखिये सोई॥
जिमि कोहिरा घन सम दर्शाई। तिमि जल गगन बीचठहराई॥

दो०—तब पण्डित कहसुनहु ऋषि, हम जो कह्यो सब झूँठ।
रज्जु सर्प स्वप्नादि सब, जो दृष्टान्त अनूँठ॥५६॥

कहऋषि समुझ तुम्हारी झूँठी। युक्ति कही सब पूर्व अनूठी॥
एक बात तुम हमहिं बतावहु। केहिअज्ञान प्रथम समुझावहु॥
बोलत ब्रह्महि प्रथमअज्ञाना। भयो सोतामहँसकलसमाना॥
कह ऋषि कहहु ब्रह्म अल्पज्ञा। अथवा जानि परत सर्वज्ञा॥
तब नवीन पण्डितइमिबोलत। निजबुधिकेरकपाटहिखोलत॥
सुनहु ब्रह्म नहिं है सर्वज्ञा। अरु न होहि कबहूँ अल्पज्ञा॥
सर्वज्ञता केर गुन जोई। अल्पज्ञता रहत तहँ सोई॥
सहित उपाधि जो हैं जगमाँहीं। ताही में यह गुन दर्शाहीं॥
कहऋषि सहितउपाधि बतावहु। कवन वस्तु ताकहँ समुझावहु॥

दो०—ब्रह्महिं सहित उपाधि है, कह पंडित यहि भाँति।
कहत भये ऋषिराज यह, बात न हमहिं सुहाति॥५७॥

जब है ब्रह्म सदा सर्वज्ञा। अरु सोई नित है अल्पज्ञा॥
तौ तुम किमि पहिले यह कहेऊ। ब्रह्मबीच यह कछु ना ठहेऊ॥
असत उपाधी मानहु जोई। कल्पित करि सब साधन होई॥

तौ यह कहहु कवन वह भाई । करत कल्पना जो सवठाँई ॥
पुनि यक ऋषि सों पूछन लागे । कहहु सो जीवब्रह्म ही आगे ॥
अथवा अन्यकहहुसमुझाई । तबऋषि तेहिक्षण कहत बुझाई ॥
जीव से ब्रह्म अल्प है भाई । तामहँ कल्पित वस्तु न आई ॥
होय कल्पना मिथ्या जोई । कर्ता तासु सत्य किमि होई ॥
तुम सत असत झूठ द्वौ मानत । मिथ्या वाणि विकारपुकारत ॥

दो०—कहत ऋषी हे विप्रवर, जब मानत तुम झूँठ ।
तब तुमहूँ झूठे सदा, किमि न होहु भय ठूँठ ॥५८॥

हे ऋषिसतअरु असतहमारे । कल्पित करि ताकहँ हियधारे ॥
हम दोहुन के साक्षि सरूपा । अधिष्ठान जानत जगरूपा ॥
कहऋषितुमहिंदोहुँन आधारा । चोर साहसम तुमहिंपुकारा ॥
तेहि प्रमान मानत संसारा । जेहि सब काल सत्य उरधारा ॥
बात तुम्हारि असत सब भाँती । ताते काहुहिं नाहिं सुहाती ॥
माया तुम मानत यहि भाँती । होय न वस्तु अभास सुहाती ॥
सो यह वह मानहि जग माँहीं । जाके हिये आँख है नाहीं ॥
देखहु हिय विचारि दिनराती । जगत अवस्तु भासकेहि भाँती ॥

दो०—बन्ध्या सुत प्रतिबिम्ब किमि, होय जगत के बीच ।
"इष्ट" असम्भव कतहुँ नहिं, होत न सम्भव खीच ॥५९॥

एक कहत सुनिये ऋषिराई । बहुतक भये श्रेष्ठ मुनिराई ॥
मुनि वशिष्ठ शंकर आचारी । निश्चलदास महा तपधारी ॥
तुमसे अधिक सो पंडित रहेऊ । धर्ममार्ग बहुतक कहि गयेऊ ॥

तव समान ते नहिं विद्वाना । तदपि कछुक राखत है ज्ञाना ॥
कह ऋषि पक्ष तुम्हार बलिष्ठा । शंकर निश्चल दास वसिष्ठा ॥
तौ मम सन्मुख राखहु जोई । खंडन करहिं पक्ष हम सोई ॥
युक्ति प्रबल तुम्हरी जो भाई । कहहु न काहेन सन्मुख आई ॥
हम अनुमान करत यहि भाँती । "इष्ट 'सुशंकर युक्तिसोहाती ॥

दो०—मत जैनिन खंडन कियो, श्रीशंकर विद्वान ।
सम्भव यह मत हिय धर्यो, एक पक्ष बलवान ॥६०॥

यह जग रीति विदित सब ठाँई । पक्ष बनाइ लेत मनु साँई ॥
देखत देश काल की रीती । निज मत थापि बनावत नीती ॥
बहुतक जग स्वार्थी विद्वाना । आतम विरुद्ध बनावत बाना ॥
कहत न जीव ब्रह्म यकताई । जग व्यवहार असत बतराई ॥
तौ न कोउसचमानततेहिछन । बातकहीतेहिअवसरमुनिगन ॥
निश्चल दास केरि पँडिताई । देखहु जीव ब्रह्म यकताई ॥
यकअनुमानमात्र लिख दीन्हो । चेतन जानि जीव ब्रह्मचीन्हों ॥
यह अबोध पुरुषन समबाता । केवल एक धर्म जहँ ताता ॥

दो०—एक धर्मही मात्र से, होत न दूजो एक ।
पृथ्वी जल साधर्मता, करिये जानि विवेक ॥६१॥

जिमि यह बात सत्य नहिंहोई । तिमिनिश्चलबुधि जानहुसोई ॥
जीव सदा मायावश होई । है अल्पज्ञ बिचारहु जोई ॥
तब यक कहहु सुनहु ऋषिराई । व्याससूत्र वेदान्त लखाई ॥
देखहु तिनके अर्थ बिचारा । ब्रह्म जीव एकहि परिवारा ॥

जो है ब्रह्म एक अबिनाशी । व्यापक है सब घट घट बासी ॥
जीव रूप सोइ प्रकटत आई । जानहु ब्रह्म केर निपुणाई ॥
यह मत व्यास[1] केर लखि लीजै । आगे जैमिनि[2] को सुन लीजै ॥
हेतु जौन ऐश्वर्य बिधायक । ब्रह्मरूप ते जीव सहायक ॥
औडुलोमि[3] पुनि या बिधि कहेऊ । जो वेदान्त माहिं है ठयेऊ ॥
आत्मरूप सोइ चेतन हेतू । रहत मुक्त वह सुःख समेतू ॥
औरहु व्यास[4] कह्यो यहि भाँती । जीव जबै ऐश्वर्य सोहाती ॥
तबहिं होत सो ब्रह्म सरूपा । मुक्त समय सो रहत अनूपा ॥

दो०–कहत स्वामि चित दै सुनहु, है न अर्थ यह भाय ।
तानि बिचार हिय राखिकै, सुनिये कान लगाय ॥६२॥

जो वेदान्त सूत्र तुम गाये । अरु करि अर्थ मोहिं समुझाये ॥
सत्य अर्थ इन सूत्रन केरा । जो हम कहत रहत सब बेरा ॥
निज कृत शुद्ध स्वरूपहि पावे । जबहि जीव सबमल नशि जावे ॥
होत पवित्र न जौलगि सोई । जौ लगि योगयुक्त नहिं होई ॥
योग ऐश्वर्य्य केर बिन पाये । जीव न ब्रह्मानन्द समाये ॥

१—सम्पाद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥
२—ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥
३—चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ४—एवं मप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥
अतएव चानन्याधिपत्तिः । वेदान्तदर्शन अ० ४ पाद ४ सू० १।५।७।९ ॥

मुक्ती सुख स्वइ भोगत जीवा। ब्रह्मानन्द मिलन बलसीवा ॥
पाप रहित याही विधि होई। योग ऐश्वर्ययुक्त हो सोई ॥
जबहि अविद्या छूटत दोषा। काम क्रोध आदिक मद रोषा ॥
सुस्थिर होत तहाँ पर जीवा। लखत ब्रह्म जहँ पै सुखसीवा ॥

दो०—होत तबै सम्बन्ध है, जीव ब्रह्म के साथ।
तदात्मकत्व तेहि जानहू, कर्म आपने हाथ ॥६३॥

अब वह ब्रह्मकेर सँग धाई। पावत शुध विज्ञान सुहाई ॥
तब वह जीवनमुक्त कहावे। निर्मल रूप पाइ सुख पावे ॥
योगी सत संकल्पी होई। ईश प्राप्त मुक्ती सुख जोई ॥
मुक्ती सदा एक रस रहई। तहँ बड़ छोट कछू ना अहई ॥
ब्रह्म बिना दूसर कोउ नाहीं। कर्ता सृष्टि जो परत लखाहीं ॥
अल्प समर्थवान है जीवा। रचतसो केहिविधिसृष्टि अजीवा ॥
जीव ब्रह्म द्वौ पृथक लखाहीं। लखहु ताहि उपनिषदन माहीं ॥
ब्रह्मानन्द रूप रस एका। पाइ जीव सोइ होत अलीका ॥

दो०—पाते हैं नहिं एक द्वौ, जीव ब्रह्म जग माँहिं।
ब्रह्म जीव के पृथक गुन, जानि लेहु सब ठाँहिं ॥६४॥

छंद

अज व्यापक शुद्ध अमूर्त प्रभो, है बाहर भीतर दिव्य विभो।
नहिं भोगत जन्म अरु मृत्यु कदा, वपुधारि न आवत जगतमुदा ॥
मन केर विकार न हों तेहि में, नहिं श्वास समीर बहै उर में।
है एक प्रकाश सरूप महा, परमातम अक्षर वेद कहा ॥६॥

प्रकृती से परे यह जीव अरे, है जीव से सूक्षम ब्रह्म परे।
यह तीनहु भिन्न अनादि लखौ, रस आनँद "इष्ट" सुजानि चखौ॥
रमि ब्रह्म तजै प्रकृती दलको, करि योग नशै मन के बल को।
प्रकृती से परे हो जीव जबै, रस पावत आनँद ब्रह्म तबै॥१०॥
दो०—सर्व व्यापक ब्रह्म में, होत जीव को योग।
जीव माहिं ब्रह्म योग करि, लहहु महा सुख भोग॥६५॥
जग यह रीति सदा चलि आई। योग करत जो भिन्न लखाई॥
अन्तरयामि धर्म ब्रह्म केरा। व्यापक रहत सदा सब बेरा॥
जीव सुव्याप्य विलोकत ताही। व्यापक ईश रहत सब ठांही॥
है सम्बन्ध परसपर दोऊ। व्याप्य सुव्यापक जानहु सोऊ॥
उपनिषद्न बहु भाँति बतावा। जीव ब्रह्म को भेद दृढ़ावा॥
वपु धरि जीव ब्रह्म नहिं आवत। भेद सरूप सिद्ध सब गावत॥
वेदांतिन को जो मत आऊ। घटत न है केहु भाँतिन सोऊ॥
दो०—जगत ब्रह्म ही से भयो, प्रलय भयो तेहि मांहिं।
अब विचार कीजै तनिक, होत भाव ब्रह्म मांहिं॥६६॥
उत्पति नाश रहित ब्रह्म मानत। वेद सदा याही विधि भाषत॥
ब्रह्म विकार रहित सब ठाहीं। शुद्ध सनातन चेतन आहीं॥
आगे कथा सुनहु यहि भाँती। कहत स्वामि हित हो मनुजाती॥
या विधि बीति गयो बहु काला। चलत रहे द्वौ धर्म विशाला॥
द्वौ गुरु शिष्य करत निजकाजा। जैन पंथ शंकर महराजा॥
खंडन मंडन द्वौ दल माँहीं। कतहुँ होत शास्त्रार्थ सुहाँहीं॥

वर्ष तीन शत शंकर पाछे। भये विक्रमादित्य सु आछे॥
जहँ उज्जैन नगर विख्याता। करत राज्य तहँ प्रजा सुहाता॥

दो०-राज्य विरोध मिटाइकै, शान्ति दई तहँ थापि।
भये भर्थहरि भ्राततिन, काव्यकला कुशलापि॥६७॥

वर्ष पाँच शत विक्रम बीते। भये भोज विद्या गुन रीते॥
भोज कीन्ह विद्या परकाशा। काव्यव्याकरनरही जो आशा॥
तिनके राज्य भये विद्वाना। कालिदास सम मूर्ख अयाना॥
जो कोउ एक काव्य रचिलावे। मन इच्छित सोऊ धन पावे॥
ता पीछे जो नर श्रीमाना। करन लगे अति ही अभिमाना॥
त्यागि दीन विद्या को पढ़ना। जड़ मति भई गयो आचरना॥
शंकर को मान्यो यहि भाँती। शिवअवतार कहत सबजाती॥
बढ्यो शैव मत तेहि क्षण माँई। वाममार्ग को दीन्ह सहाई॥

दो०-भस्म और रुद्राक्ष सब, लीन्ह अंग में धार।
जासु अंग रुद्राक्ष नहिं, देत ताहि धिक्कार॥ ६८॥
बहुप्रकारश्लोक तिन, किय निर्मित तेहि काल।
चांडाल सम त्यागिये, भस्म न जाके भाल॥६९॥
बत्तिस बाँधै कंठ में, शिर में चालिस धारि।
कर्ण माँहि छैछै धरै, षोड़श बाहु सम्हारि॥७०॥

द्वादश बाँधै करके माहीं। मध्य शिखा धरि एक सराहीं॥
यकशत अष्ट हृदय बिचधारहिं। तेहि शिव साक्षात उचारहिं॥
मिलि शिव वाममार्गि द्वौ पन्था। थाप्यो लिंगयोनिलिखिग्रन्था॥

शैववाममार्गी दोऊ मिलि । पूज्यहु थापिलिङ्गभगहिलिमिलि ॥
लिङ्ग जलाधारी तेहि कहहीं । करत सुपूजन सकल सराहीं ॥
लाज हीन तजि लाज न आई । स्वार्थिन दोष न परत लखाई ॥
धर्म अर्थ कामादिक मोक्षा । मिलिहैं सबन देत यह दीक्षा ॥
घर घर मंदिर दीन्ह बनाई । पूजा करत नारि नर धाई ॥

सो०—मंदिर जैन जो जाइ, ताहि बतावें सकल मिलि ।
प्रान बचत जो धाइ, मंदिर जैन न जाइये ॥६॥

दो०—भाषा यवन न बोलिये, प्राण कंठ गत एह ।
गज घेरे चापै चरन, बचिये जैन न गेह ॥७१॥

या विधि सबसन कहत बुझाई । कहत पुरान बिलोकहु भाई ॥
पूर्व जो ऋषी व्यास जग ठयेऊ । तिनके नाम पुरानन रचेऊ ॥
भोजहिं मिली सूचना जवई । बन्द कियो यह दूषण तबई ॥
बहुतन केरे हाथ कटाये । बहुतक तुरत विदेश पठाये ॥
अरु यह कह्यो सबन समुझाई । भोजराज नीतिज्ञ सुहाई ॥
लिखहु ग्रन्थ बहु चित्त लगाई । नाम आपने करहु बड़ाई ॥
ऋषी व्यास के नाम जो धारी । लिखिहैं ग्रन्थ जगत अनुसारी ॥
ता कहँ दंड होइ तेहि काला । नीति भोजकी परम विशाला ॥

दो०—नाम सँजीवनि ग्रन्थ यक, लिख्यो भोज करिध्यान ।
भिंड माँहिं वह ग्रन्थ है, राज्य ग्वालियरजान ॥७२॥

ता महँ लिख्यो सुनहु चितलाई । व्यास लिख्यो जेतो दर्शाई ॥
चारि सहस्र चारिशत जानहु । महाभारत श्लोक प्रमानहु ॥

विक्रमादित्य समय जब आयो। बीस सहस तेहि औसर गायो॥
कहत भोज मम पितुके काला। पचिससहस रह भारतहाला॥
अर्धभाग मम आयु के माहीं। तीससहस यह परत लखाहीं॥
याविधि सों जो बाढ़न लागे। तौ यह ग्रन्थ जाइ कहँ आगे॥
ऋषिन नाम धरि निर्मित करिहैं। तौ भ्रमजालअधिकहीबढ़िहैं॥
जानि परत तेहि औसर माहीं। वेद भाव कछु परत लखाई॥

दो०—एक व्यजन यक अश्वकल, भोज काल के माहिं।
भे निर्मित यह जग विदित,सुनतआजदुचिताहिं॥७३॥

अश्वयंत्र इक घटिका माहीं। ग्यारह कोस जात सब ठाहीं॥
भूमि चलत आकाशहु जाई। याविधि काष्ठ अश्व मड़राई॥
बिन मानुष सो चलै निरन्तर। व्यजनमनोहरथा अतिसुन्दर॥
दोनों यंत्र होत यहि काला। तो यूरुप जन होत बेहाला॥
पोपन रची जगत यक माया। जैन मूर्ति दर्शन छुड़वाया॥
अरु यह सोचि बनावन लागे। मन्दिर मूरति में अनुरागे॥
चौबिस तीरथ अरु अवतारा। कथि पुरान चौबिस विस्तारा॥
भोज डेढ़ शत बीत्यो वर्षा। वैष्णव पन्थ भयो सह हर्षा॥
यक शठ कोप सुकंजर जाती। प्रकट्यो पन्थ जानि सुखमाती॥
पुनि भो यवन तहाँ आचारी। ता पाछे ब्राह्मण गुनकारी॥

दो०—रामानुज तेहि नाम है, परम चतुर विख्यात।
पन्थ बढ़ायोऽनेकविधि, करि बहु यतन सुहात॥७४॥

शैव शाक्त पुनि औरहु भयेऊ। निज वृद्धीहित ग्रन्थ रचायेऊ॥

शिव पुरान तब शैव बनायो । देवि भागवत शाक्त रचायो ॥
वैष्णव विष्णु पुरान बनावा । रचि के ग्रन्थ जगत भरमावा ॥
व्यास नाम धरि ग्रन्थ रचाये । निज अनुकूल सबन समुझाये ॥
देवि भागवत में यहि भाँती । सृष्टि नेम इमि लिख्यो सुहाती ॥
मानत श्री देवी यक अहई । जगनिर्मित ताके वश रहई ॥
इच्छा भई जबै हिय बाला । वाम हाथ यक निकस्यो छाला ॥
ताते ब्रह्मा को उपजायो । पुनि देवी यह बैन सुनायो ॥

सो०—करहु व्याह मम साथ, उतर ताहि ब्रह्मा दियो ।
हौं तुम्हार सुत मात, कहा कहति भावे नहीं ॥७४॥

दो०—तब क्रोधित देवी भई, भस्म कियो निज लाल ।
बहुरि हाथ घिसिके कियो, दूसरसुत तेहि काल॥७५॥

नाम विष्णु सुन्दरतेहिधार्‌यो । ताहू सों पुनि वचन उचार्‌यो ॥
भोग करहु मम सँग हरषाई । पति समान तुम रहहु सदाई ॥
तब वाहू ने मानि न बाता । तेहिकरिभस्म सो निष्ठरमाता॥
ताही विधि तीसर उपजावा । महादेव तेहि नाम सुहावा ॥
निज विवाह हित तेहि सों कहेऊ । महादेव इमि बोलत भयऊ ॥
हौं न करहुँ यहि तनु सों भोगू । धारहु तनु दूसर सुख योगू॥
दुइ स्थल यह भस्म सुहाई । कहहु कहा यह वस्तु लखाई ॥
तब कह देवि सुनहु चितलाई । यह द्वौ भ्रात तुम्हार लखाई ॥

दो०—मम आज्ञा मानी नहीं, भस्म भये तत्काल ।
अब तुम्हारि आशा रही, करहु सो पूरित लाल ॥७६॥

तब कह महादेव दुचिताई । मैं अकेल क्या करिहौं माई ॥
भ्रात जिलाइ देहु यहि ठाईं । और रचहु द्वै नारि सुहाईं ॥
बहुरि धरहु तनु आपन दूसर । होहिविवाहतबहिंसुखमागर ॥
सुनहु रीति यह परम अनोखी । त्यागि मातु भगनी गहिचोखी॥
तीनि नारि इन्द्रादिक देवा । रचिके ब्याहि दीन त्रयदेवा ॥
पालकि केर उठावन हारे । भे कहार चारों बुधवारे ॥
याविधिलिख्योअसम्भवबाता । मानन योग न हैं वह ताता ॥
इन सों पूछहु प्रेम दृढ़ाई । कहाँ रहत देवी सुखदाई ॥

दो०—या विधि देवी भागवत, लिख्यो व्यास के नाम ।
जगत रचैता ताहि को, मान्यो है सुख धाम ॥७७॥

ता विधि विष्णुपुराण सुहाई । आदि सृष्टि विष्णू से आई ॥
शिवपुराण में शिव अगुआई । जासु पुराण सोई निपुणाई ॥
निन्दा एक सु दूसर करहीं । निजसम और नाहिं उरधरहीं ॥
मुक्ति हेत रुद्राक्षहि धारी । भस्म लगावहि अंग मझारी ॥
अश्रुपात जब रुद्र के भयऊ । प्रकट्यो वृक्ष मानि अस लयऊ ॥
तेहि रुद्राक्ष कहत हैं सबकोउ । हिय धारै सुख चाहै जो कोउ ॥
या विधि कथा कही बहुतेरी । ध्यान न आवत युक्ति घनेरी ॥
भस्म लगाइ जो हो बुधिवाला । तो पशु धूरि रमै सब काला ॥

दो०—बीज माल सब धारहीं, कोल्ह भील दिन रात ।
होत न बुधवर कोउ हैं, पंथ मुक्ति नहिं जात ॥७८॥

तब पंडित यक कहत बुझाई । सुनहु ऋषीश्वर कान लगाई ॥

काल अग्नि उपनिषद् सुहाई । भस्म लगाव न विधि दर्शाई ॥
अरु है यजुर्वेद को वचना । मंत्रे ऽयायुषं है जमदग्ना ॥
तब कह स्वामि सुनहुममबाता । वेद भाग उपनिषद न ताता ॥
काहू भस्म लगावन वारो । लिखि उपनिषद्‌नाम उच्चारो॥
बहुतक लेख ग्रन्थ के माहीं । लिखे असम्भवहूँ सबठाहीं ॥
मंत्र माहिं नहिं भस्म प्रकारा । देखहु शतपथ अर्थ उचारा ॥
चक्षु अर्थ जमदग्नी जानहु । ज्योतिप्रकाशक अर्थ प्रमानहु॥

दो०—ज्योति बढ़ै मम नेत्र की, करैं विनय दिन रात ।
श्रोत्र नेत्र मस्तिष्क सब, होयँप्रबल सुखदात ॥७६॥

जो तुम पहिले बात सुनाई । तामहँ कछु न सार दर्शाई ॥
यह सब काज बनचरन केरे । सजहिं अंग बनमाल घनेरे ॥
मत शैवादिक जो फैलाये । ते सब वेद विरुद्ध सुहाये ॥
एक कहत है वेद प्रमाना । रुद्र विष्णु गणपति जगजाना ॥
तबतुमकेहिविधिदोषलगावहु । यहसबतुरतमोहिंसमुझावहु ॥
कहतस्वामि इमि सिद्धि न होई । अर्थकरत जेहिविधि तुमसोई ॥
यह सब नाम ईश के जानहु । गुणातीत प्रभु को पहिचानहु ॥
प्रथम कथाविच जो हम कहेऊ । तामहँ ईश नाम सब रहेऊ ॥
बहुरि ताहि तुम लेहु विचारी । जानहु नाम ईश गुनकारी ॥

१—ऽयायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य ऽयायुषं । यद्देवेषु ऽयायुषं । तन्नो-
अस्तु ऽयायुषम् ॥ य० अ० ४ मं० ६२ ॥

सो०—सुनहु कहानी एक, सोइ तुम्हारि है आजु गति ।
राखत हिय में टेक, तनिक बिचार न करत कोउ ॥८॥

यक बैरागि बसत यक ठामा । सरल स्वभाव महा गुणधामा ॥
दुइ सेवक ताकी सेवकाई । करत रहत निशिदिन हर्षाई ॥
बाँटि लीन्ह यक यक तेहि अंगा । चापत रहत सो निजनिज अंगा ॥
यक दिन यक चेला कहुँ गयऊ । दूसर सेवा में चित दयऊ ॥
चरन सु निज चापत हर्षाई । पर्‍यो चरन दूसर तहँ आई ॥
शिष्य विचार तुरत मन भावा । दूसरपगकिमिममढिगआवा ॥
हन्यो दंड यक तेहि क्षण धाई । गुरु दूसर पग ढिग जो आई ॥
सेवक आइ गयो तेहि काला । देखि भयो तब क्रोध बिसाला ॥

दो०—तब दूसर पग में हन्यो, दंड एक तेहि काल ।
सेव्य दूसरो मानिके, करत युद्ध विकराल ॥ ८० ॥

जब कछु वृद्ध पुरुष तहँ आये । तिनतब तुरतै गुरुहिं छोड़ाये ॥
अरु उपदेश कीन्ह बहु भाँती । कछुविचारहियधरहुसोहाती॥
यह दोनों पग गुरु के भाई । सेवा हेत लिये अपनाई ॥
यक चापत सुख दोहुन होई । समुझि लेहु ताकहँ सबकोई ॥
या विधि करी ईश की लीला । निजमतथापि लीन्हयकहीला ॥
अरु निशिवासर करत विरोधा । लावतनहिं मनतनिकौ बोधा ॥
हे जगदीश्वर सर्व नियन्ता । अद्वितीय शिव विष्णु कहन्ता॥
भला कहहु यह किमि सुखपावें । जब ईश्वर को इमि बिलगावें ॥

दो०—देखहु बैष्णव पन्थ में, चक्रांकित यक अंग ।
मानत हैं यह पाँच ही, संस्कार सुख संग ॥ ८१ ॥
ताप, पुण्ड्र अरु नाम को, माला, मंत्र बखानि ।
संस्कार यह पाँच हैं, व्याख्या तिन की जानि ॥८२॥

शंख चक्र अरु गदा अकारा । पद्म सहित यह चारि प्रकारा ॥
इनहिं तपाइ दंड भुज माहीं । चिह्न बनावत हैं अँग माहीं ॥
देखि डरैं जेहि यमके दूता । है चपरास समान सँजूता ॥
तिलक छाप माला सों डरहीं । कालू कहत अभय उरधरहीं ॥
त्रिशूलसमान त्रिपुण्ड्रलगावहिं । तिलकभालबिचअतिदर्शावहिं ॥
कमल गटा आदिक तुलसीसो । मालाधारि बनहिं सब तपसी ॥
निज अनुरूप मंत्र गढि दीन्हों । पंथ चलाइ देश ठगि लीन्हों ॥
मंत्रे प्रमाण देत हैं जोई । जो ऋगवेद माँहिं है सोई ॥

---

(१) पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्समाशत ॥
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे ॥ २ ॥ ऋ० म० ९ सू० ८३ मंत्र १ । २

(अर्थ) हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करनेवाले प्रभु, सर्व-सामर्थ्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है । उसे आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उसको ब्रह्मचर्य्य, सत्य भाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध है वह ही तप *

दो०—करत विचार न अर्थ को, सिद्ध करत निज बात।
ना जाने केहिभाँति सों, तप मानत यह तात ॥८३॥
सत्य सदा तप वेदन गायो। दमअरु शान्तसोतपठहरायो॥
अरु स्वाध्यायकरतदिनराती। वेद उपनिषद को सबभाँती॥
सो तप श्रेष्ठ जगत के माँहीं। अथवा दहन शरीर लखाहीं॥
यह अति भ्रष्ट महा कुविचारी। चक्र तपाइ लगावत झारी॥
दुग्धमाहिं पुनि ताहि बुझावैं। पियें आप अरु सबन पियावैं॥
कहहु कहा यह उत्तम रीती। मनुषमांसरसपियहिं सप्रीती॥
यह मानत हम बहुत पुराने। परम्परा निज मतको माने॥
किय शठकोप प्रथम गुरुआई। कंजर जाति अनूप सोहाई॥

दो०—भक्तमाल के ग्रन्थ को, नाभा डूम बनाय।
अरु चक्रांकित ग्रन्थ में, या विधि लिखो देखाय ॥८४॥
सूप बनाइ बेचि धन लेई। जीवनवृत्ति यहै चित देई॥
यह शठकोप केरि प्रभुताई। योगी कहत सकल समुदाई॥
जब वाके मन इच्छा आई। बिप्रन से पढ़िये मन लाई॥

से आचरण करते हुए उस तेरे शुद्ध स्वरूप को अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वेही परमात्मा को प्राप्त होने योग्य होते हैं ॥ २ ॥ तो अब आप विचार करें कि रामानुजादि इन मंत्रों से चक्राङ्कित कैसे सिद्ध करते हैं। भला कहिये विद्वान् थे या अविद्वान्। केवल अतप्ततनू शब्द है उसी से मान बैठे हैं, इसका अर्थ नख से शिखा पर्यन्त है।

हौं जानत सो उनहिं सिखाऊँ। कर्म बढ़ै अस करहुँ उपाऊँ॥
जब विप्रन मिलि कीन्ह बिरोधा। तब शठकोपहि आयो क्रोधा॥
तबही से यक पन्थ चलायो। मनमानी तामहँ ठहरायो॥
तेहि चेला मुनिबाहन भयऊ। वंश सुचाण्डाल में रहेऊ॥
अरु पुनि यवनाचार्य सुहाई। भयो यवन कुल में सो आई॥

दो०—ता पीछे भये विप्रकुल, रामानुज सिरताज।
चक्रांकित आदर दियो, पढ़ि विद्या सुखदात॥८५॥
कछुक संस्कृत जानिकै, ग्रंथ किये निर्मान।
समुझाये उलटे अरथ, उलटेहि देत प्रमान॥८६॥
शंकरसे अतिही अधिक, वेदविरुद्ध यह पन्थ।
देखिविचारहुसकलजन, चक्रांकित के ग्रंथ॥८७॥

मूर्ति-पूजा

एक कहत सुनिये ऋषिराई। मूरति पूजा कहँ ते आई॥
कहत स्वामि जैनिन दर्शाई। मूरति पूजा प्रथा चलाई॥
होय ध्यान यह कहत सुनाई। देखि मूर्ति सुन्दर निपुणाई॥
चेतन जीव मूर्ति जड़ताई। किमिहोध्यानकहहुसमुझाई॥
जैनिन मत आगे पुनि कहिहौं। तिन पाखंडरीति दर्शैहौं॥
जैनिन ने जस मूर्ति बनाई। कहहु न शाक्त शैव तसभाई॥
तब कहस्वामि ठीक यहबाता। समता होत न जैन सुताता॥
यह तो हैं जैनिन विपरीता। करहिं सिंगारअधिक नवनीता॥

दो०—जैन मूर्ति नंगी रहत, इन सिंगारयुत कीन्ह ।
तिनसमान ही ग्रंथरचि, पोप जाल भरिदीन्ह ॥८८॥

नानाभाँतिन पूजा करहीं । रचिके मूर्ति भेष बहु धरहीं ॥
खोह तड़ाग वृत्त में धाई । धरि आवत कहुँ मूर्तिछिपाई ॥
अरुपुनिकहतस्वप्नमोहिदीन्हो । पूजाकरहुसकलकहिदीन्हो ॥
तबहिं पोप सब सों गोहराई । कहत चलहु सब लोगलुगाई ॥
पुनि ताकहँ अपने घर लावहिं । करि स्थापन भवन बनावहिं ॥
अरु ताके वह होत पुजारी । भोग लगावत निजअनुसारी ॥
याविधिलीलानितप्रति करहीं । करिबहु युक्तिसबनधनहरहीं ॥
तब पंडित यक बोलत बैना । कहहु ध्यान किमिआवतनैना ॥
जब तुम निराकार प्रभुकहहू । बिनमूर्तीकिमि ताकहँ लहहू ॥

दो०—निराकार व्यापक प्रभू, मूर्ति न ताकी भाय ।
जन्म न ताको होत है, कहतस्वामिसमुझाय ॥८९॥

जो तुम कहत मूर्ति कहँ देखे । ईश ध्यान होवे तेहि पेखे ॥
अरु स्मरण होत है ईशा । पाप छुटततेहिदरश मुनीशा ॥
कह ऋषिबात सत्ययहनाहीं । मूरति ईश्वर नाहिं लखाहीं ॥
जो हम यह मानहिं जियलाई । ईश्वर है यक ठौर सुहाई ॥
तो हमरे जिय में यह आवे । बिन मंदिर नहिं ईश सुहावे ॥
जब से भई मूर्ति मठ पूजा । मानत ईश नाहिं कोउ दूजा ॥
तब से बढ़यो पाप अधिकाई । करत कुकर्म सकलदिशिजाई ॥
है व्यापक ईश्वर सब ठाईं । देखत कर्म हमार सदाईं ॥

दो०–निशिवासर क्षणएकमें, द्रष्टा मानहिं ईश ।
तेहि डरसों नहिं पापहो, जानिसबलजगदीश ॥६०॥
नामरटै निशिदिवसही, लाभ कबहुँ ना कोय ।
जिमि मिसरी मिसरीकहे, मुख नहिं मीठो होय ॥६१॥

तब यक बोलत ऋषिसों बचना । झूठ नितान्त नामको जपना ॥
रीति तुम्हारि न ठीक लखाई । कहतऋषीश्वरतबसमुझाई ॥
तुम्हरी रीती वेद विरुद्धा । करतरहत नितजो करिश्रद्धा॥
ईश नाम या विधि उच्चारै । प्रेम सहित हिय संयम धारै ॥
नाम न्यायकारी जग जानत । न्यायकरन में पक्ष न राखत ॥
सो व्यवहार "इष्ट" नित करहीं । हियअन्यायकतहुनहिंधरहीं ॥
एक कहत हम जानत साईं । निराकार ईश्वर सब ठाईं ॥

दो०–शिव विष्णू सूर्यादि सब, राम कृष्ण अवतार ।
तिनकी मूर्ति बनाइकै, पूजत हौं बहु बार ॥६२॥

कहहु कहा यह झूँठ कहानी । जोसब करतरहतहितजानी ॥
अवशि झूठयहऋषितबकहेऊ । जन्ममरन ईश्वर नहिं सहेऊ ॥
है अज एकपाद वह ईशा । कहत अकामयसकलऋषीशा॥
वेद कहत प्रभु वपु ना धारै । व्यापक और अनन्त उचारै ॥
सुख दुख रहित ईशकहँ कहई । सो शरीर केहि कारन लहई ॥
जेहि बिन यक परमाणु न भाई । सो अवतार लेत किमि आई ॥
जो हम मानत तेहि अवतारा । मानहु भो बन्ध्या परिवारा ॥
एक कहत ऋषिसों समुझाई । जब ईश्वर व्यापक सब ठाँईं ॥

दो०—तव हम काहू वस्तु में, करहिं ईश को भाव।
करि पूजा निजभाव में, ध्यावहिं सहज स्वभाव॥९३॥
काठ माहिं नहिं ईश है, नहिं पत्थर के वीच।
ईश मृत्तिका नहिं रहत, भाव ईश कहँ खींच॥९४॥

भावहि से प्रगटत जगदीशा। विना भाव कहुँ मिलत न ईशा॥
स्वामिकहत सुनिये चितलाई। जब ईश्वर व्यापक सबठांई॥
तो यकवस्तुभावकिमिलसई। त्यागिराज जिमि कुटियाबसई॥
यह अपमान तनिक का भाई। ईश्वर की जड़ मूर्ति बनाई॥
ईश्वर को जब व्यापक मानत। तौकिमि अक्षतपुष्पचढ़ावत॥
चन्दनघिसिबहुभाँतिलगावहु। धूप दीप नैवेद्य चढ़ावहु॥
घंट और घड़ियाल बजावहु। झांझ बजाय जोस्तुतिगावहु॥
हाथ शीशजबईशविराजत। जोड़िहाथकिमिशिरहिझुकावत॥

दो०—सकलवस्तु व्यापक प्रभू, रमै सो मूरतिमाहिं।
यह कैसी पूजा भई, सोचहु चित्तलगाहि॥९५॥

जो तुम व्यापक पूजा करहू। तो पखान किमि आगे धरहू॥
अरु ताकहँ स्नान करावहु। घिसिबहुचन्दनतासुलगावहु॥
अरु जो करहु व्याप्यकी पूजा। तौ किमिकहहुकरतप्रभुपूजा॥
कहहु सदा हम पूजहिं पाथर। बोलिझूठ बनते किमि कादर॥
अब यह कहहु भाव है साँचा। अथवा झूठ मनहि जो राँचा॥
भाव अधीन होय जो ईशा। तो हुइ बद्ध जाय जगदीशा॥
यदि जग भाव श्रेष्ठ है भाई। तौ काहेन असकरत उपाई॥

मैदा भाव धूलि मँह मानहु । बालुहि शक्करसमानप्रमानहु ॥
वैसेहि स्वाद कहहु तेहिमाहीं । खाहु प्रेम सों भाव सराहीं ॥
दो०—सकलकरत सुखभावना, दुख की करत न कोय ।
पुनि दुख काहे होत है, हिये विचारहु सोय ॥९६॥
अन्धा नेत्र भावना करई । कहहु सो नैनशक्ति का धरई ॥
मृत्यु भावना कोउ न करई । आये समय सकल जन मरई ॥
तुम्हरी झूठ भावना सारी । करत भाव दुख भोगत भारी॥
तब यक कहतसुनहुऋषिराई । वेदमंत्र की बात जनाई ॥
पढ़ि यक मंत्र अवाहन करहीं । आइ जात सोई तेहि त्तणहीं ॥
जबै विसर्जन बोलहि मंत्रा । जात तहाँ सो ईश स्वतंत्रा ॥
कहत स्वामि मानहि जो बाता । हो केहिविधि जड़चेतनताता ॥
अरु यह कहहु कहाँसे आवत । जात कहाँ जो सबन बतावत ॥
दो०—यह आवाहन की प्रथा, और विसर्जन दोय ।
हैं असत्य दोनों सदा, मानि लेहु सबकोय ॥९७॥
मंत्र प्रयोग ईश जो आवत । स्वर्गगयेपितुकिमिनबोलावत ॥
वैरी तनु ते जीव बोलावहु । मंत्र बिसरजन ताहिनशावहु ॥
सुनहु भ्रात तुम हो अतिभोले । तुमहिठगतहित आपन खोले ॥
वेदन में कहुँ नाहिं प्रमाना । गमनागमन न ईश बखाना ॥
कल्पित वाक्य कहौ जो भाई । वाममार्गिन लिखे बनाई ॥
वेद वचन सो कतहुँ न होई । तंत्र मंत्र जानहु हिय गोई ॥
तंत्र झूँठ हैं मानहु ताता । अरु पाहनविच जीवन जाता ॥

पूजा विधि जो देत देखाई। फूल पात नैवेद्य चढ़ाई॥

दो०—है निषेध बहु वेद में, विधी कहूँ है नाहिं।
याते ईश्वर की जगह, वस्तु कोई है नाहिं॥ ६८॥

सुनहु निषेध सकल मनलाई। वेद माँहिं बहु मंत्र लखाई॥
ब्रह्म स्थान प्रकृति जो पूजत। अन्धकार दुखसागर डूबत॥
पाथर भूत, वृक्ष, आदरहीं। त्यागि ब्रह्म स्तुति नितकरहीं॥
घोर नरक पड़िदुखसोभोगत। पड़तमहातम सबसुखखोवत॥
निराकार व्यापक जो ईशा। प्रतिमारहित अमूर्त्त मुनीशा॥
ईश विषय अस है नहिं भाई। दै जल कहहु लेहु यह साँई॥
नैनन सों नहिं ब्रह्म लखाई। इन्द्रिन विषय न है यह भाई॥
है प्रकाश मय जगत रचैता। अणु अणु है सोइ ब्रह्म रमैता॥

दो०—और बहुत परमान हैं, कहिहौं अवसर पाइ।
जड़प्रकृती जानहुसदा, चेतन पुरुष लखाइ॥ ६६॥

एक कहत यदि पुण्य न होई। तौ पापहु नहिं पूजे कोई॥
कहत स्वामि दुइविधि हैं कर्मा। विहिताविहित जगत जोधर्मा॥
विहित सदा कर्तव्य हमारो। अविहितहै नितत्यागनवारो॥
मूरति पूजा वेद निषिद्धा। ताते हियबिच करहु अश्रद्धा॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। वेद अनादि ज्ञान मयसाँई॥
तेहि अवसर मूरति का कामू। होत प्रतक्ष देव सुख धामू॥
समरथ न्यून भयो जा दिन ते। प्रकटत देव न हैं ता दिन ते॥

प्रश्न

दो०—अज्ञानिन हित मूर्ति है, लखहु नसेनी[1] याहि ।
मूरति पूजा प्रथम पथ, जानि करहिं हम ताहि॥१००॥

जब मम हृदय ज्ञान बहु होई । अंतःकरन हो पावन सोई ॥
तब हीं ध्यान ईश में लागे । गुण गहि हृदय ताहि में पागे॥
जिमि भेदक यक लक्ष बनावत । तिमि मूरति पूजा ठहरावत ॥
सूक्षम ब्रह्म लखहि केहि भाँती । जौ लगि कोउ न लक्ष सुहाती॥
जिमि जग खेलत बाल खिलौना । रचति ब्याह मनचाहत गौना॥
जब तेहि होत ब्याह की बाता । जानत सबै चतुरता ताता ॥
पूर्व खेल विधि पतिहि विलोकी । करत सदा सुख हित अवलोकी ॥

उत्तर

अब तनि हिये विचारहु बाता । मूरतिपूजा अस नहिं ताता ॥

दो०—वेद विहित जब धर्म है, है विपरीत अधर्म ।
तब मूरति पूजन सदा, है नहिं मानव कर्म॥१०१॥

मानत वेद मार्ग जो नाहीं । नास्तिक सकल कहत हैं ताहीं॥
वेद विरुद्ध पंथ जग जेते । निर्मित किये कुमार्गिन तेते ॥
जग सरिता में देत डुबाई । दुखदायक सोइ कर्म सदाई ॥
प्रकटत ग्रन्थ जो वेद विरुद्धा । रहत कछुक दिन होत न श्रद्धा॥
नशत शीघ्र सो निष्फल जानी । बुध न कोउ ताकहँ सनमानी ॥
ब्रह्मा से जैमिनि तक जे मत । धारहु हिय विचारि जोहैं व्रत ॥

---

१ ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ी ।

वेद विहित है मानन योगू । वेद विरुद्ध तजत बुध लोगू ॥
जानि अवैदिक मूरति पूजा । जड़मति होत करे जड़ पूजा ॥
दो०—ज्ञान बुद्धि नशि जात सब, जड़ पूजत जो कोइ ।
ईश न आवत ध्यान बिच, निश्चय जानहु सोइ॥१०२॥
मूरति पूजा नाहिं नसेनी । किन्तु अहै खाईं दुख देनी ॥
गिरे तासु उबरै नहिं कोई । नष्ट होत तब जीवन सोई ॥
बुधन केर सतसंग नसेनी । हाँ यह कहौ तो है सुखदेनी ॥
सतविद्या सतकर्म सुहाई । पावहिं संग करे सुखदाई ॥
मूरति पूजा लच न होई । ना है बाल खेल यह कोई ॥
जग विद्या वित कर्मन करई । ईश प्राप्त हित हिय अनुसरई ॥
बहुरिकहतऋषिवरसमुझावहु । दोष कौन है मोहिं बतावहु ॥
जो हम नित प्रति पूजा करहीं । मूरतिसनमुखप्रभुचितधरहीं॥
दो०—मन थिर होत सकार में, हम जानत ऋषिराज ।
निराकार आधार नहिं, महा कठिन सुखसाज॥१०३॥
सो०—कबहुँ न मन थिर होय, अवलोकत साकार के ।
अँग अँग उपमा जोय, भ्रमत रहत मन कहत ऋषि ॥६॥

पन्द्रह दोष

निराकार प्रभु में मन धावे । दौड़त अन्त कतहुँ ना पावे ॥
प्रभु स्वभाव नित सोचत रहई । मन थिर होत तबै सुख लहई ॥
या जग में नर धन सुत लागी । स्त्री मित्र आदि सुख पागी ॥
ताही में निशि वासर भरमें । कहहु कहाँ मन स्थित परमें ॥

निराकार मन स्थिर होई। अवयवे[1] रहित बसत है सोई ॥
दूसर यह समझहु जिय लाई। मन्दिर में बहु द्रव्य नशाई ॥
तीसर बाढ़त बहु व्यभिचारा। मेला होत जबै संसारा ॥
चौथे साधन मुक्ती मानत। तजिपुरुषारथ जन्म गँवावत ॥
पंचम फूट बढ़ावन वारी। नाना भाँतिन मूर्ति प्रचारी ॥

दो०—सकल पुजारिन के विषे, एका नाहिं लखाइ।
नाम रूप सिंगार सब, पृथकहि पृथक बनाइ ॥१०४॥

षष्ठम करि भरोस तेहि केरा। तेहिसन विजयचहत सबवेरा॥
या भ्रम सों बहु दुख को भोगत। शत्रुन के डर सों नहिं सोवत ॥
सप्तम दोष होय यहि भाँती। जो जड़ पूजत मानव जाती ॥
जब कोइ कहत काहु सन धाई। धरहु नाम ढिग पाथर लाई ॥
तेहि क्षण सो जन मारन धावे। नाना भाँतिन वचन सुनावे ॥
ता विधि तुम निज हियके माहीं। जड़ मूर्ती धारहु तेहि ठाहीं ॥
जेहि थल ध्याने[2] ईश को होई। जीव ब्रह्म जहँ मिलत सँजोई ॥
अष्टम भ्रमत सकल दिशि माई। दुख भोगत धन देत गँवाई ॥
नवम पुजारिन को धन देवैं। लै धन ते वेश्या घर सोवैं ॥
मद्य मांस ते करत अहारा। धनसों करतरहतव्यभिचारा॥

दो०—दशम मातु पितु त्यागि कै, करत मूर्ति सनमान।
होत कृतघ्नी हैं सदा, खोइ देत अभिमान ॥१०५॥

१—टुकड़े। २—'ध्यानं निर्विषयंमनः' अर्थात् मन का निर्विषय हो जाना ही ध्यान है।

एकादश यह दोष लखाई । जब कोइ मूरति लेत चोराई ॥
अथवा ताहि तोड़ि कोउ डारैं । तब सब हाहाकार उचारैं ॥
द्वादश भय परनारिन संगा । नारि पुरुष जहँ रहत असंगा ॥
सेवक स्वामि विरोध सदाई । आज्ञा पालन होय न भाई ॥
दोष चतुर्दश जड़ जो ध्यावे । तेहिआतम बुधि जड़ हुइ जावे ॥
अरु जग रोग निवारण हेता । बाग लगावत सकल सचेता ॥
नाना भाँतिन पुष्प लगावें । जेहि सुगन्धसों सुख सब पावें ॥
सो वह पुष्प तोड़ि लै जाहीं । मूरति ऊपर ताहि चढ़ाहीं ॥
पंद्रहवाँ यह दोष बतावा । जड़ मूरति पूजा को भावा ॥
पुष्पादिक सड़ि वायु बिगारैं । परैं कीट बहु रोग सँचारैं ॥

दो०-जो मूरत पूजत सदा, अवशि दोष यह होय ।
बचै न काहू भाँति सों, यत्न करै वरु कोय ॥१०६॥
मूरति पूजा काहु विधि, है न कतहुँ कर्तव्य ।
पंचदेव पूजा कहा, ऋषिवर मोहिं ज्ञातव्य ॥१०७॥

हौं जानत शिव विष्णु गनेशा । सूर्य सरस्वति देव विशेशा ॥
एही पंचदेव जग धाई । पूजत है सो मूर्ति बनाई ॥
कहहु कहा यह पूजा नाहीं । पंचायतविधिकरिसुखचाहीं ॥
स्वामिकहत केहु विधिसों नाहीं । मूरति पूजन धर्म लखाहीं ॥
मूरति पूजा करहु न ताता । जानिसदा जड़ता दुखदाता ॥
यह पूजा सत कर्म कहाई । मूर्तिमान जो पितु समुदाई ॥
पंचायत यह शब्द अनोखा । पंच देव हित जो तुम जोखा ॥

सो हम पूर्व बहुत कहि आये । शिव आदिक के अर्थ बताये ॥
पंच देव यहि भाँति कहानी । वेदन[1] ने बहु भाँति बखानी ॥

दो०—मातु देव है प्रथम यक, दूजो पितु है देव ।
अरु तीसर आचार्य है, अतिथिचतुर्थोदेव ॥ १०८ ॥

नारि हेत पंचम पति जानौ । पूजनीय सब भाँति बखानौ ॥
कपट त्यागि करिये बहु सेवा । तन मन धन सुख पावहिं देवा ॥
यह है पंचायत की पूजा । मूर्तिमान यक यह नहिं दूजा ॥
इनते सद शिक्षा नित मिलई । ईश्वर साधन विधि अनुसरई ॥
इन देवन की सेवा त्यागत । मूर्ति पखान नित्य अपनावत ॥
तब ऋषि सों यक पूछन लागा । सुनिसद्वचन परमअनुरागा ॥
हम नित करहिं मातु पितु सेवा । अरु नित पूजहिं मूरति देवा ॥
तौ कह दोष होत है स्वामी । मोहिं समुझाइ कहौअनुगामी ॥

सो०—कहत स्वामि हरषाय, धरहु हमारी बात हिय ।
पूजन मूर्ति बनाय, सदा त्यागिवे योग है ॥ १० ॥

दो०—माथ झुकावे मूर्ति को, यह अनर्थ की बात ।
त्यागत हैं प्रत्यक्ष जो, मातादिक सुख दात ॥ १०९ ॥

जो कछु वस्तु सामने लावें । मात पिता सब सन्मुख खावें ॥
मूर्ति पखान न कछु ही खावे । मूर्ति देखाइ स्वतः भखि जावे ॥
जिमियकवस्तुधरत केहु आगे । अरु अँगुठा देखाइ लै भागे ॥
सोइ कर्तव्य पुजारिन केरा । शंख बजावत भोग की बेरा ॥

1—मूल सत्यार्थ प्रकाश में प्रमाण देखो ।

पूजा जग सतकार कहाई । करहु जासु तुम मानत भाई ॥
याविधिछलकरिजगतभुलावा । लूटि खसोटि माल सब खावा ॥
होत नृपति धर्मी यदि कोई । देत तुरत इनकी बिधि खोई ॥
एक कहत ऋषि सों यहिभाँती । जिमि देखतजग नारिसुहाती ॥
तो उपजत नर काम विकारा । होतमगन चित नाहिं सम्हारा॥

दो०—जब विराग सुख शान्तिमय, मूर्ति विलोकत जोय ।
तौ कह शान्ति न होवई, मन विकार नर कोय ॥११०॥

स्वामि कहत यह झूठ विचारा । जड़ बिचु जो चैतन्य निहारा ॥
बिन विवेक वैराग न होई । बिन वैराग ज्ञान नहिं सोई ॥
विना ज्ञान कहुँ शान्ति न रहई । सँग उपदेश हृदय बिच लहई ॥
अब इतिहास विलोकै जोई । गुन गहि होत विवेकी सोई ॥
मूढ़ आलसी भये पुजारी । तिन मूरखता जग विस्तारी ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । चमत्कार यह सुनेहु न साँई ॥
जब औरंगजेब वहँ आयो । काशी जाय तोप बरसायो ॥
तब भैरवजी ने दर्शायो । भँवर छोड़ि सब यवन भगायो॥
कह ऋषि यह भैरव करतूती । जो पाषाण केरि है मूर्ती ॥
क्रूर भ्रमर छत्ता तहँ होई । लागत शस्त्र भगे तहँ सोई ॥
तुम भैरव करनी गोहराई । निज लीला करि सबन भुलाई॥

दो०—माधव कीन्हों विप्र गृह, लिंग कूप में डारि ।
और सुनायो सबन कहँ, यवन न देख्योभारि॥१११॥

सुनि लीला मोहिं हाँसी आवत। जहँ पर भैरव लाट सोहावत ॥
तहँ की मूरति गजनी जाई। कर्यो निरादर तेहि समुदाई ॥
लिख्यो पुरानन में यहि भाँती। शंकर त्रिपुरासुर संघाती ॥
तहाँ यवन दल कछु समुदाई। विजय कियो काशी हर्षाई ॥
तब कछु मूरति काम न आई। विश्वनाथ भैरव समुदाई ॥
जहँ यमदूत न आवहिं नेरे। ता कहँ म्लेच्छ पड़ो है घेरे ॥
बस न चल्यो काहू को तबहीं। लै गये लूट मार धन सबहीं ॥
मूरति तोड़ी मन्दिर ढाये। तहँ पर निज मस्जिद बनवाये ॥

दो०—पोप जाल यह मानहू, फँस्यो देश तेहि माँहि ।
तब से धन पौरुष गयो, लेश रह्यो सुख नाहिं ॥११२॥

अब तुम कहत गया की बाता। पाप छुटत पितु श्राद्ध सुहाता ॥
पिंड लेत पितु सन्मुख आई। मानत सत्य सकल समुदाई ॥
यह अति झूठ सकल है भाई। जो महिमा यह कहत बनाई ॥
सन्मुख पिंड न कोऊ लेवे। पिंड न पहुँचत है पितु देवे ॥
इन कपटिन पाखंड रचायो। मूरख जानि सबै बहकायो ॥
नाना भाँतिन झूठ कहानी। रचो स्वार्थिन है मनमानी ॥
बैजनाथ गोकरन कहानी। लै आयो रावण अभिमानी ॥
एक कहत जग काली माई। है पूजत तेहि बहु समुदाई ॥

दो०—कामाक्षा की तहाँ पर, बहुत बड़ाई होय ।
चमत्कार दिखरावई, कलकत्ते में जोय ॥११३॥

कहत स्वामि अन्धा जग होई। मानत है याकहँ जो कोई ॥

चलत भेंड़ सम सो तेहि ठाँई । गिरत अंध बनि आगे धाई ॥
जगन्नाथ महिमा कहि गावत । रथ यात्रा की बात बतावत ॥
जावे बदल कलेवर तबहीं । अद्भुतचरित देखावतजबहीं ॥
हाँडी सात धरहिं यकजाई । पकै उपर्लो यह प्रभुताई ॥
जो न लेइ ताकी परसादी । कुष्ठो होत बनत जो वादी ॥
पापिहि दर्शन कबहुँ न होई । प्रभुता है देखरावत सोई ॥
मूर्ति कलेवर बदलत जबहीं । तीन पुरुष सँग जावहिं तबहीं ॥

दो०–यक बढ़ई, पण्डा महा, और नृपति तेहि ठाँय ।
मरत कलेवर के समय, ईश संग लै जाँय ॥११४॥

याकी कथा बहुत हम जानत । मोहिंमिल्यो है यक अभ्यागत ॥
द्वादशवर्ष सो तहँ पर रहेऊ । है विरक्त मथुरा सो गयऊ ॥
तेहि सब कही पुरी की बाता । महाँ झूठ कर्तब विख्याता ॥
सो हम तुम सन कहत सुनाई । सुनहु सकल जन चित्त लगाई ॥
आवत जबै कलेवर बेरा । चन्दन काटि सिन्धु में गेरा ॥
तेहि गढ़ि पोल बनावत मूरति । करतश्रृंगार एकांत विसूरति ॥
बनत रसोई जहँ पर वादिन । कोउनहिंजातवहाँपरतादिन ॥
चूल्हे छै अरु सात बनावैं । चक्राकार तांहि दर्शावैं ॥

दो०–सात आठ नौ पात्रको, यक यक चूल्हे माँहिं ।
तले उपर राखत सबै, चतुराई दिखराहिं ॥११५॥

नीचे कच्चे चावल राखत । उपर पके यह सबै सुनावत ॥
यात्रिन को देखराइ बिभूती । ठगहिं खूब समुझाइ कुनीती ॥

पूरन द्रव्य देत जो कोई। ताकी पूरी हाँडी होई॥
अरु जाके ढिग कछु ना होई। मिलत ताहि जूठन ही सोई॥
मन्दिर माँहि रहत अँधियारा। दीपक जरत सदा निशिवारा॥
तहँ पर रचत पोप यक लीला। वस्त्र कोट राखत सुख शीला॥
दरश हेत यात्री जब आवत। वस्त्र ओट वह मूर्ति छिपावत॥
वह जब देत पुजारिन को धन। तब देखरावत मूरति को तन॥

दो०—बहुतक कुष्ठी तहाँ पर, रहत पड़े दिन रात।
जूठ खात हरि भजत हैं, कुष्ठ न तिनकर जात॥११६॥

बहुतक निजकर भोगबनावहिं। शुचितासहिततहाँपरखावहिं॥
पर न होत कुष्ठी कोउ देख्यो। शुचि आचार सुनहु तन पेख्यो॥
यह तो वाममार्ग की लीला। बलदाऊ की बहिन सुशीला॥
दोनों भ्रातन बीच बिठाई। नारि समान तहाँ दर्शाई॥
रथ में कीली एक लगाई। खैंचत उलटि तहाँ रुकिजाई॥
तहँ पर पोप पुजारी बोलत। दान देहु तब रथ पुनि डोलत॥
या बिधि करि बहुयतन महाना। ठगत सदा धन बुद्धिनिदाना॥

दो०—इन्द्रदमन यक नृपति तब, रहत रहेउ तेहि देश।
धनी विपुल रह शाक्तमत, सो बलवान नरेश॥११७॥

बहुतक धन तिन दीन्ह लगाई। दिय विशाल मन्दिर बनवाई॥
शिलपिन की देखहु चतुराई। उपमा केहु न आज लग पाई॥
पोप पुजारिन बहुबिधि कीन्हीं। करिलीला माया रचिदीन्हीं॥
लै धन जात गाँठ के पूरे। तिनहिं देत धन बुधि के रूरे॥

सो धन आजु खात वेश्या जन । ताहि कमायो है जो कृषकन ॥
भोग विलास रमै दिन राती । धनखोवत जो दिय बहुजाती॥
लघु वय बालक लेत भुलाई । कहि चेला ते करत बुराई ॥
जहँ तहँ मन्दिर लेत बनाई । धन माँगत बहु कहि प्रभुताई ॥

दो०—तब यक पूछत स्वामि सों, प्रेम सहित शिरनाय ।
स्वामि बतावहु कृपाकरि, भ्रमहमार मिटजाय ॥११८॥
रामेश्वर स्थापना, रामचन्द्र ने कीन्ह ।
यशकीरतिबाढ़योबहुत, ऋषिमुनिमनसुखदीन्ह ॥११६॥

सो०—आइ चढ़ावत कोय, गंगोतरि जल लाइकै ।
झूठ कहा है सोय, बढ़ै लिंग विख्यात यह ॥१॥

स्वामि कहत यह झूठ कहानी । जोजेहि चह्यो कह्यो मनमानी ॥
होत प्रकाश न मन्दिर माहीं । विनदीपक कछु दीखत नाहीं॥
जलधारा कोउ छोड़त जाई । तब दीपक प्रतिबिम्ब लखाई ॥
चमकदेखि सब मनहिं सिहाहीं । बढ़त लिंग अस मूरख कहहीं ॥
जग पाषाण घटत नहिं बाढ़त । यह पदार्थ विद्या उच्चारत ॥
त्रेता राम जन्म जब भयऊ । तब न तहाँ पर मंदिर रहेऊ ॥
दक्षिण देश बसत यक राजा । राम नाम विख्यात समाजा ॥
जेहि राजा मन्दिर बनवायो । रामेश्वर तेहि नाम धरायो ॥

दो०—सीता को लै रामजी, आये जब तेहि ठाम ।
कहा राम सुनिये प्रिया, कियो जो है हम काम ॥१२०॥

तब वियोग व्याकुल बहुतेरा । घूमत फिरेउँ सकल बन हेरा ॥

चातुर्मास यहाँ पर बीत्यो । ईश ध्यान में मम चित रीत्यो ॥
देवन को जो देव सदाई । महादेव शंकर सुखदाई ॥
व्यापक विभु परमातम जानहु । तासु कृपा यहप्रिय पहिचानहु॥
सेतु बाँधि लंका में जाई । हन्यो महाबलि रावण धाई ॥
तब प्रिय तुम्हहिं यहाँ लै आये । सेतुबन्ध स्थान दिखाये ॥
बाल्मीक ऋषि ने यहि भाँती । लिखी यहाँ पर पंक्ति सुहाती ॥

दो०—कहतएक ऋषिवरसुनहु, पियतचिलम यकमूर्ति ।
चमत्कार अस देखिकै, बुधजन होत अमूर्ति ॥१२१॥

दक्षिण दिशा कालिया कन्ता । तासु बड़ाई करत महन्ता ॥
और सुनहु डाकौर कहानी । मूरत चली भगत को मानी ॥
सवा रती सुबरन सौं भाई । मूरति तुलत तहाँ पर आई ॥
सोमनाथ पृथिवी से ऊपर । रहत सदा मध्याह्न जगह पर ॥
निराधार सो सबहि लखाई । चमत्कार कैतिक दर्शाई ॥
नली लगावत पाछिल भागा । धरत चिलम अतिही अनुरागा॥
पियत तमाल पुजारी जबहीं । निकसत धुवाँ मूर्तिसे तबहीं ॥
कहहु कहा यह झूठ कहानी । ऋषिबरकहत सुनहुसुखदानी॥
महा झूठ यह पोपन लीला । नित देख्यो नाटक असलीला॥

दो०—चोरी करि डाकौर को, भक्त गयो लै भाग ।
सवारती तुलना करी, गप्प दई बहु हाँक ॥१२२॥

सो०—लग्यो सुमंदिर माँहि, चुम्बक चारों ओर से ।
गिरत काहु दिशि नाहिं, बीच मूर्ति लटकी रहत ॥१२॥

जब गज़नी ने मन्दिर तोड़्यो । सैन्यसहसदससौमुखजोड़्यो॥
स्तुति पोप पुजारिन कीन्हा । शंकर हनहु म्लेच्छ दुखदीन्हा ॥
अरुराजन यह कहि समुझावहिं । वीरभद्र अबहीं यहँ आवहिं ॥
हनुमत दुर्गा दीन्हो सपना । म्लेछन मारि करहुँ हित अपना ॥
केहुसन कहहिं मुहूरत नाहीं । योगिनि सनमुख परत दिखाहीं॥
अष्टम चन्द्र काहु बतराहीं । कहहिं बृहस्पति तव हित नाहीं ॥
या विधिकहिक्षत्रिनबलरोक्यो । धनसम्पतियवननमुखझोक्यो ॥
जब कछु चली कोइ नहिं बाता । मंदिर यवनन जाइ निपाता ॥

दो०—तबै पुजारिन यह कह्यो, जोड़ि हाथ तेहि ठाँव ।
तीन कोटि लेद्रव्य को, जाहु आपने गाँव ॥१२३॥

यवनन उत्तर तेहि क्षण दीन्हा । बुतपरस्त का हमकहँ चीन्हा॥
हम बुत शिकन महा बलधारी । तोड़हिंगे मन्दिर सब झारी ॥
तेहि अवसर यदि पोपपुजारी । करत न निज माया बिस्तारी ॥
तौ काहू विधि यवन न जातत । क्षत्रिन रक्ष यवन दल भागत ॥
यह परिणाम भयो तेहि काला । चले तेग़ बल्लम अरु भाला ॥
मंदिर तोड़ेउ मूर्ति गिराई । कोटि अष्टदश निधि तहँ पाई ॥
मूर्ति माँहि यह रतन छिपाई । राखे पोप पुजारिन भाई ॥
बहुतक मार पड़ी जब ऊपर । कोष बताइ दीन्ह था जहँ पर॥

दो०—तब मूरति टूटीं तहाँ, यवन लियो सब छीनि ।
मनहुँ उन्हीं के हेतइन, गाड़िधर्‍यो धनबीनि ॥१२४॥

लै धन अपने देश सिधारे । मनुष गुलाम बनाये न्यारे ॥

बहुतन सों विष्ठा उठवाई। अरु बहुतनसों घास खुदाई॥
केवल चना खान को दीन्हे। लीन्ह बेगारि बनाइ नवीने॥
यदि कछु काम बुद्धिसों लेते। तौ काहे धन सम्पति देते॥
वीरन को सत्कार न कीन्हां। पाथर पूजन में चित दीन्हों॥
शूरन यदि न पुजारि भुलावत। तौ वह म्लेछन मारि गिरावत॥
विजय होत क्षत्रिन तेहिकाला। टूटत मन्दिर नाहिं विशाला॥
शूरन की यदि पूजा होती। तौ काहे यह सम्पति खोती॥

दो०—भक्ति पुजारिन कीन्ह बहु, पै कछु सरेउ न काम।
लूटि ले गये शत्रु सब, और कियो निज धाम॥१२५॥

तब यक पूछत ऋषि सों आई। है रण छोड़ द्वारिका भाई॥
नरसी की हुंडी जिन पारी। भक्त हेत सब कीन्ह मुरारी॥
प्रकट देवि ज्वाला मुखि माई। राखि प्रसाद भाग निज खाई॥
का यह है सब झूठ कहानी। जो कोन्हीं अपनी मनमानी॥
कहत स्वामि यह झूठ सदाई। पोप पुजारिन सकल बनाई॥
कृष्ण नाम धरि कोउ तेहि बेरा। ले धन नरसी को निर्वेरा॥
और उड़ाइ दीन्ह यहि भाँती। कृष्णनामधरि करदी ख्याती॥
जब औरंगजेब यहँ आई। तोड़ि मूर्ति धन लैग्यो भाई॥
तब काहु विधि मूर्ति न जागी। म्लेच्छ सैन्य कैसेहु ना भागी॥

दो०—होत कृष्ण सम कोउ जो, तौ अस अधरम होत।
मारि गिरावत सबन कहँ, करत सुयश उद्योत॥१२६॥

ज्वालामुखि देवी नहिं होई। यह प्रकृती की विधि है सोई॥

जो यह कहहु शेष वह छोड़हि । देखहु घर घर यह नित होवहि ॥
जब कोउ वस्तु बघारन हेता । घृत डारत चम्मच में जेता ॥
अग्नि ज्वाल बढ़ि घृतहि जलावे । अर्ध भाग ज्वाला लै जावे ॥
देवी मानि बनायहु मन्दिर । छलन लगे धूर्तन कहँ सुन्दर ॥
गिरिमहँ निकसत जहँ तहँ ज्वाला । सो न होय देवी तिहुँ काला ॥
योनि यन्त्र आदिक जो माया । रचि पोपन यह जगत भुलाया ॥
याही विधि बहु झूठ कहानी । लिखी सकल हैं तहँ मनमानी ॥

दो०—अमृतसर तालाब की, बात कहत जो आप ।
काहु समय तेहि सर विषे, रह्यो न कोऊ ताप ॥१२७॥
अमरनाथ में लिंग सब, बनत कौन आश्चर्य्य ।
नितप्रति परवत कटत है, वारि प्रकृति को कार्य्य ॥१२८॥

महिमा हरिद्वार की जानहु । हरि की पैड़ी जहाँ बखानहु ॥
और तपोवन में जो रहई । सोई जग में तपसी अहई ॥
गंगोत्री अरु उत्तर काशी । दर्शन करहिं गुप्त जो काशी ॥
त्रियुगी नारायन को जाई । बद्री और केदार सुहाई ॥
शंकर मुख नैपाल में राजै । अरु नितम्ब केदार बिराजै ॥
जंघा तुङ्गनाथ में सोहै । अमरनाथ को लखि जग मोहै ॥
यदि कोउ चहै स्वर्ग को जाना । तौ किदार बद्री प्रस्थाना ॥

दो०—हरिद्वार स्थान यक, गिरि यात्रा के अर्थ ।
कहत स्वामि तपथान है, तहँ पर करत अनर्थ ॥१२९॥

हरि पैड़ी बिसरात सुहाई । तहँ पर यात्री जाइ नहाई ॥

हौं जानत हरि पैड़ी नाहीं। पैड़ी हाड़ तहाँ दर्शाहीं॥
मृतकन की अस्थी लै आवत। डारि तहाँ पर पुण्य बतावत॥
अरु यह कहत सबै समुझाई। जो अस्थी यहँ डारत आई॥
सबही पाप छुटैं प्रानी के। छुटहि कुकर्म भोग दानी के॥
काहू समय तपोवन अहई। अब भित्तुक बन प्रकट लखाई॥
बिन्ध्येश्वरी के दर्शन पाये। तीरथराज में मूड़ मुड़ाये॥
यह साधन युक्ता कोउ नाहीं। करत जो तीर्थन जाइ सदाहीं॥

दो०—मूर्ति सनातन जो कहत, सो असत्य सब भाँति।
तीरथ नाम महात्म सब, पाप न छुटत लखाति॥१३०॥
सो०—बहु बनाइ श्लोक, जगत भुलायो ढोंग करि।
महाशोक पुनि शोक, मनुपजन्म लहि बुद्धि नहिं॥१३॥

गंगा नाम नित्य जो ध्यावै। कहहु स्वामि का मोत्त न पावै॥
नामहि से सब छूटहिं पापा। केतिक होय चहै परितापा॥
हरि दो अत्तर नाम जो लेई। कबहुँ न पाप होत है तेई॥
प्रातकाल शिव देखै कोई। पाप तासु निशि छूटत सोई॥
कहहु कहाँ यह झूठ कहानी। महिमा दर्शन कहत बखानी॥
तब ऋषि कहत बात सब झूठी। कछु न होय संशय बिधि रूठी॥
गंगा शिव दुर्गा को नामा। रटहु निरन्तर तजि सब कामा॥
छुटहि न पाप कहत ऋषिराई। छुटत पाप दुख होत न भाई॥

दो०—होत पाप संसार में, केहु बिधि छूटत नाहिं।
तीर्थनाम के आड़ से, करि बहु पाप सिहाहिं॥१३१॥

जिनकहँ तुम सब तीर्थ बतावहु । सत्यनाम कहि सबन सुनावहु॥
नित प्रति वेदशास्त्र जो पढ़ई । विद्या ध्यान सदा चितधरई ॥
धार्मिक बुधवर कोहै संगा । परोपकार निर्वैर असंगा ॥
ब्रह्मचर्य व्रत अतिथी पूजा । सेवा मातु पिता नहिं दूजा ॥
ईश्वर की स्तुति नित कीजै । अरु उपासना चित में दीजै ॥
कर्म जो करत सदा ही पावन । ताकहँ होवे दुःख नशावन ॥
इन्द्रिय जीति करै पुरुषारथ । धर्म शील विज्ञान निस्वारथ ॥
यह तीरथ दुख नाशन तारे । जलथल कबहुँ न मनुज निवारे॥
समय पाइ नर डूबि जो मरहीं । तब नाहीं कछु तीरथ करहीं ॥

दो०—जगतारन यदि तीर्थ हैं, तौ नौका को मान ।
पार करै सो सिन्धु से, तारक जगत महान ॥१३२॥

विद्या पढ़ि ब्रह्मचारी बनई । तेहि तीरथ सेवी बुध गनई ॥
मानहु इनहिं तीर्थ सुखदाई । भवसागर हित नाव सुहाई ॥
ब्रह्मचारी अरु एक आचारी । पढ़हिं शास्त्र एक संग विचारी॥
विमल होइ बुधि पावहिं ज्ञाना । तीरथ शास्त्र विचार महाना ॥
ज्ञान नाव चढ़ि होवहिं पारा । परे जो भवसागर मझधारा ॥
गुरु गृह जाइ करै तप भाई । ब्रह्मचर्य ब्रत धरहिं सदाई ॥
विद्याव्रत स्नातक होई । अथवा ब्रती रहत है जोई ॥
रुद्र वसू आदित्य सरूपा । सो स्नातक बनहि अनूपा ॥

दो०—वेदशास्त्र अरु धर्मयुत, सतवादी जो होय ।
तीर्थ मानि तेहि दीजिये, अन्न पदारथ जोय ॥१३३॥

धर्मयुक्त यश देवन बारो। परमेश्वर तेहि नाम उचारो॥
या विधि पहिले नाम बताये। ईश्वर के गुन कर्म सुहाये॥
गौणिक नाम अहैं बहुतेरे। किये नाम गुन गान घनेरे॥
जानि ईश गुन कर्म स्वभाऊ। सकल बनावहु आपन भाऊ॥
तब यक ऋषि सों कहत बुझाई। महिमा सकल गुरू की गाई॥
सब देवन से गुरु यक देवा। शिवबिरंचि आदिकमहदेवा॥
यह माहात्म सत्य का नाहीं। पैरधोइ हमपियहिं सदाहीं॥
गुरु आज्ञा का हिय में धारी। बनै सदा गुरु आज्ञाकारी॥

दो०—यदि लोभी गुरुदेव हों, तो बावन सम जान।
क्रोध होय अँग में अधिक, तौ नरसिंह प्रमान॥१३४॥

यदि गुरु मोह माँहि चित देहीं। तो हम जानि राम कहँ लेहीं॥
कामी गुरू कृष्ण सम मानहिं। गुरुको कतहुँ निंद्य ना जानहिं॥
कैसेहु पाप होय गुरु माहीं। करिदर्शन हम जात सिहाहीं॥
अश्वमेध फल होवे ताहीं। जो गुरु दर्शन करत सदाहीं॥
कहऋषिबुधितुम्हारिनहिंठीका। जो देवतन लगावहु टीका॥
ईश नाम ब्रह्मादिक अहहीं। ताको गुरु समता नहिं लहहीं॥
गुरु गीतादिक पोप कहानी। रची धूर्तन हैं मनमानी॥

दो०—मातपिता आचार्य्य गुरु, सेवहु अतिथि समान।
गुनग्राही बनि लहहु गुन, करहु सत्यसनमान॥१३५॥
बुधवर विद्यावान जो, करहु सदा तिनमान।
जो गुरुआई करि ठगहिं, देहु न कबहूँ दान॥१३६॥

वेद मंत्र ते कतहुँ न जानत । नाना भाँतिन मंत्र बतावत ॥
कण्ठी तिलक सबन सिखलावहिं । तेनहोहिंगुरुजगभरमावहिं ॥
भेड़न की गति हिन्दुन केरी । एक जाइ तहँ जात घनेरी ॥
लोभी गुरू लालची चेला । करत रहत नित ठेलमठेला ॥
तरन हेत भवसागर माईं । पाथर नाव चढ़त दोउ धाईं ॥
पोपपुजारिन जस छल कीन्हो । वैसेहि गुरुलोगन रचिदीन्हो ॥
गुरु महातम गुरु गीताआदी । रचिपुस्तक तेहिकहत अनादी॥

दो०—ऋषिवरसों तेहिकालमें, करत प्रश्न यक आय ।
करता सकल पुरान को, सत्यवतीसुत भाय ॥१३७॥

हैं पुरान यक पंचम वेदा । मानत हैं तेहि सब तजि खेदा ॥
बहुतक हैं प्रमाण यहि भाँती । मन्वादिक लिखिदीनसुहाती ॥
मूरति पूजा तीर्थ विधाना । लिख्यो जहाँतहँकरियेध्याना ॥
याबिधिहमकहँमिलतबिधाना । तबकिमिखण्डनकरहु महाना॥
तबऋषिकहतसुनहुधरिध्याना । व्यास महायोगी बुधिवाना ॥
यदिऋषि व्यासपुरानबनावत । तौ अस झूठ जाल फैलावत ॥
जिन शारीरिक सूत्र बनाये । योग भाष्य करिसबन बताये ॥
सतबादी योगी विद्वाना । धार्मिक व्यासदेव भगवाना ॥

दो०—स्वार्थी मूरख जे जगत, महा लोभ तन माहिं ।
व्यास नाम धरि तब लिखे, ग्रन्थपुरानजेआहिं ॥१३८॥

सो०—है इतिहास पुरान, गाथा कल्प बखानहीं ।
नाराशंसी जान, पाँच नाम इतिहास के ॥१४॥

जग इतिहास मनोहर ताई। याज्ञवल्क प्रति जनक सुहाई ॥
आदि जगत उत्पति जहँहोई। ताहि पुरान कहत बुध जोई ॥
वेद शब्द जहँ होवे अर्था। कहत कल्प है ताहि समर्था ॥
अरु दृष्टान्त कथा जो अहई। तेहि गाथा सब मुनिबर कहई॥
मानव को जो चरितबखानत।अनुचितउचितहृदयजोराखत॥
तेहि नाराशंसी जग कहहीं। इनहिं सुने जग आदर लहहीं ॥

दो०—व्यास जन्म ते पूर्वही, सुनत रहे बहु भाँति ।
ब्राह्मण ग्रन्थ पुरान हैं, पढ़ै सकल मनु जाति॥१३६॥

शिव पुरान आदिक जे ग्रन्था। पढ़ै सुनै सो जाइ कुपन्था ॥
वेदव्यास कहत सब कोई। वेद पढ़्यो अरु अर्थ करोई ॥
शुक अरु जैमिनिशिष्य पढ़ाये। कृष्ण द्वैपायन नाम कहाये ॥
कोउ अस कहतजगतकेमाहीं। व्यास कियो वेदन इकठाहीं ॥
सो यह सबकी झूठ कहानी। कही स्वार्थहितजेहिमनमानी॥
व्यासपिताप्रपितामहँआदिक। पाराशर वसिष्ठ ब्रह्मादिक ॥
व्यास पूर्वजे ऋषी सुहाये। पढ़े वेद करि अर्थ लखाये ॥
एक कहत पुनि मोहिं बतावहु। है जो सत्य सोइ समुझावहु ॥

दो०—प्रश्न करत ऋषिराज सों, एक शिष्य यहि भाँति ।
सत्य कोऊ अस्थल नहीं, असतपुरान देखाति॥१४०॥

स्वामि कहतबहुअसतकहानी। कछुकसत्य अवलोकत ज्ञानी ॥
जो कछु है तहँ सत्य कहानी। सो सब वेद शास्त्र से आनी ॥
झूँठ बहुत निज स्वारथ हेता। अधिक पुरान बनाइ सचेता ॥

पारस्परिक विरोध लखाई । यह लेखक की है निपुणाई ॥
निज प्राचीनविधी सबमानत । सृष्ट्युत्पत्ति सकल दर्शावत ॥
शिव पुरान शिव ईश्वरमानत । विष्णु पुरान विष्णुउच्चारत ॥
देवि भागवत देवी मानहिं । आदिसृष्टिउत्पतितेहिजानहिं॥
हैं जेते पुरान जग माहीं । तेती विधि सृष्टी दर्शाहीं ॥

दो०—अहैं परस्पर भेद जग, उपजसृष्टि के माहिं ।
महा असम्भव रीति तिन, प्रकटत परम सिहाहिं ॥१४१॥

शैव[1]सदा या बिधि उरधरहीं । रचतकथातनिकौनहिं डरहीं ॥
प्रथम एक नारायण अहई । जल सौं सो उत्पति करिरहई ॥
तेहि निजनाभि कमलउपजावा । कमल माहिं ब्रह्मा प्रगटावा ॥
जब देख्यो तेहि वारिअसीमा । इकअंजुलिजलउलचि अनीमा ॥
तब बुदबुदउठि प्रगटतभयऊ । तेहि क्षण एकपुरुषतहँ ठयऊ॥
करेहु विवाद परस्पर दोहुन । प्रथम भयेउकोयहँपर पाहुन ॥
दिव्य सहस्र वर्ष यहि भाँती । लड़त रहे जल पर दोउजाती ॥
तब शंकर इमि कीन्हबिचारा । जिन पर सृष्टि भार हम डारा॥

दो—वे दोनों यहि भाँति सों, लड़त रहत दिन रात ।
शान्ति हेत तिनके तबै, उपज्यो लिंग सुहात॥१४२॥

तेज पुञ्ज सो लिंग सुहावा । उपजत तुरतगगनको धावा ॥

---

१ जो शिवपुराण को माने और शिव ही से जगत् की उत्पत्ति समझे ।

चकित भये दोउलिंगनिहारी । आदि अन्तकी परखविचारी ॥
आदि जानि जो पहिले आवै । अथवा अन्त जानि जो पावै ॥
आवहि प्रथम पिता है सोई । दूसर पुत्र मानि चुप होई ॥
विष्णु धरेउ तब कूर्म सरूपा । चले आदि खोजन अनुरूपा ॥
अरु ब्रह्मा भये हंस सुहाये । उड़ि आकाश ओर नियराये ॥
दिव्य सहस्रवर्ष सो घूम्यो । थाह न पाई दोउ जन भूल्यो ॥
बीचहि ब्रह्मा सोचन लागे । विष्णु थाह लै ऐहैं आगे ॥

दो०—तेहिअवसर यकवृत्ततहँ, नाम केतकी जान ।
और गऊ आई तहाँ, दीन्हेउ आइ प्रमान ॥१४३॥

पूछेउ गाय कहहु निज बाता । कौन कहाँ ते आये ताता ॥
तब ब्रह्मा सब बात सुनाई । पूछेउ अन्त कहाँ है माई ॥
कहत गऊ तुम थाह न पावहु । चाहे कोटिन जन्म बितावहु ॥
तब ब्रह्मा समुझावन लागे । ह्वै साक्षी चलिये मम आगे ॥
गउसन कहेउ कहहु यहिभाँती । हम नितछाँड़त दूधसुहाती ॥
कहेहु वृक्षसन तुम अस कहहू । छाँड़त फूलरहतनिशिअहहू ॥
अस साक्षी दीजे मम हेता । चलहुतुरत तुम विष्णुनिकेता ॥
तब दोहुन कह सुनिये भाई । झूठ कहब तहँ हमनहिंजाई ॥

दो०—तब रिसाइ ब्रह्मा कहत, यदि न गवाही देहु ।
भस्म करहुँ यक क्षणिकमहँ, लखुसरापममएहु ॥१४४॥

सुनत श्राप दोनहु डरि गयेऊ । जसतुमकहहुसोइहमकहेऊ ॥
तब वह तीनो नांचे आये । विष्णुहि प्रथम तहाँहीपाये ॥

विष्णु कहा हम थाह न पाई । कह ब्रह्मा तबइमिसमुझाई ॥
थाह उपर की हम लै आये । साखि गाय तरुकेतकि लाये ॥
साखी दुहुन दीन्हतेहिअवसर । निशिदिन रहे लिंगके ऊपर ॥
निकसेहु शब्द लिंग से तबहीं । कहेहु झूठ तीनहु ने जबहीं ॥
पुष्प तुम्हार निरर्थक होई । देवार्चन में धरहि न कोई ॥
अस केतकि को दीन्हो श्रापा । गउसन कहेहु बहुरिकरिदापा॥

दो०—जामुख से तुमने कह्यो, झूठ वचन यहि बार ।
तासों कोउ पूजै नहीं, भखहु पुरीप निहार ॥१४५॥

ब्रह्महिं श्राप दियो यहिभाँती । पूजहि तुमहि न कोऊ जाती ॥
अरु वर दीन्ह विष्णुकहँभाई । पूजहि तुमहिं जगतसमुदाई ॥
तब दोहुँन मिलिस्तुतिकीन्ही । लिंगदेव तनमय हितचीन्ही ॥
प्रकटेउ जटाजूट बिकराला । शंकर महादेव तेहि काला ॥
कहत रिसाइ दोहुँन सों बाता । लड़न हेत का आयेहु ताता ॥
हम तो कहा सृष्टि उपजायहु । तुम दोहुँन बहु रारि बढ़ायहु ॥
तब बिष्णू कह सुनहु महेशा । सृष्टि हेत कछु नहिंअवशेशा ॥
काढ़ि जटा सों शंकर लीन्हो । गोला एक भस्म को दीन्हो ॥

दो०—और कहा लै जाहु तुम, सृष्टि रचहु बहु भाँति ।
भाँति-भाँतिफलफूलसब, और अनेकनजाति॥१४६॥
याविधिकल्पित कथाबहु, रची पुरानन खींच ।
पूछहु इनसों प्रेम युत, बुद्धी को धरि बीच ॥१४७॥

नहिं जब सृष्टि तत्त्वनहिंभूता । तब कहँकमल लिंगजलयूता ॥

अरु वह भस्म कहाँ ते आई। वृत्त सुकेतकि अरु शुभ गाई॥
शिव पुरान की सृष्टि कहानी। सुनतपढ़त अनहित अनमानी॥
याही विधिहै विष्णु पुराना। तिनहु लिख्यो गाथा है नाना॥
और भागवत इमि दर्शाई। प्रथम भये विष्णू सुखदाई॥
निकसेउ कमल नाभि से भाई। ब्रह्मा उत्पति तहाँ बताई॥
ब्रह्मा के दाहिन अंगुष्ठा। निकसेउ स्वायम्भुवअवधिष्ठा॥
अरु बायें सतरूपा रानी। अरु ललाट से रुद्र प्रमानी॥
तिनसों भये दश पुत्रमरीची। भयेप्रजापति दशतिन सींची॥

दो०—अरु तेरह पुत्री भईं, तिनकर कीन्ह विवाह।
कश्यपऋषि ध्योताबने, कीन्हेउ सृष्टि प्रवाह॥१४८॥

दिति से दैत्य भये बहुतेरे। दनु से दानव जगत घनेरे॥
अदिति से भे आदित्य प्रवीना। विनता पक्षी प्रबल नवीना॥
कद्रू सकल सर्प उपजाये। कूकुर स्यारआदि अपनाये॥
गज हय ऊँट गधा अरु भैंसा। घास फूस कंटक तरु जैसा॥
और त्रियनसों यह सबभयऊ। जो जग में बाकी रहि गयऊ॥
यह भागवत केरि पँडिताई। लिखत तनिक लज्जा नहिं आई॥
मनुज योनि से कूकर स्यारा। सिंह अश्व तरु आदि उचारा॥
सृष्टि विरुद्ध कहहु किमिहोई। लीला पोप विचारहु कोई॥

दो०—हम जानत ते अन्ध अति, पढ़त सुनत निशि घोस।
महा घोर तम में फँसत, रहत बुद्धिनहिंजोस॥१४९॥

तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। हमहि न कछु विरोध दिखराई॥

जासु विवाह गीत हैं तासू । करत कवन विधि तुम परिहासू ॥
जब हम करत विष्णु की पूजा । तब विष्णू सम और न दूजा ॥
तब विष्णू को ईश्वर मानहिं । अन्य जिते सब दास प्रमानहिं ॥
जब शिवके गुनको हम गावहिं । तबतिनको परमातम मानहिं ॥
अरु औरन कहँ किंकर जानहिं । रीति सदा याही उर आनहिं ॥
माया सों सब कछु बनिजाई । है ईश्वर की यह प्रभुताई ॥
वह नर को पशु तुरत बनावै । अरु पशु को मानुष दरशावै ॥
बिन कारन समरथ अपनीसों । प्रकटत सृष्टि सकल शक्ती सों ॥

दो०—कहत स्वामि भोले मनुज, हृदय विचारहु नेक ।
हैं विवाह के गीत जहँ, तहाँ बड़ाई एक ॥१५०॥

दूसर की निन्दा नहिं करहीं । पितुसमाननहिंतेहिउरधरहीं ॥
तुम स्वारथवश अधिक भुलाने । सत्य असत्य नाहिं पहिचाने ॥
नियम विरुद्ध कछू नहिं होई । सृष्टि नेम तनि देखहु जोई ॥
यह अनुमान सत्य है भाई । करी भूल पोपन समुदाई ॥
शतपथ में यह पाठ[1] सुहावा । कश्यप सकल सृष्टि उपजावा ॥
कश्यप[2] नाम ईश यहि भाँती । देखत सकल चराचर जाती ॥
पश्यक से कश्यप बनि गयऊ । आदि अन्त विपरीतजो भयऊ ॥
अर्थ न जानि कथा गढ़ि डारी । सृष्टि विरुद्ध रची विधिन्यारी ॥

1—तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥ शत ७ । ५ । १ । ५
2—कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति ॥ निरुक्त, अ० २ ख० २

दो०—अद्भुत कथा विचारिये, दुर्गापाठ निहारि ।
मार्कण्डेय पुरान बिच, लिख्योताहिबिस्तारि ॥१५१॥

देवी तनु से निकस्यो तेजा । तेहि महिषासुर फोर्‌यो भेजा ॥
रक्तबीज तेहि मारि गिरायो । भूमि रक्त गिरि दृश्य देखायो ॥
उपजे रक्तबीज बहुतेरे । भये जगत बिच रूप घनेरे ॥
सरिता रक्त बही तेहि काला । या विधि लिख्यो बहुत बेताला ॥
कहहु असम्भव केर ठिकाना । जो लिखि मार्‌यो बहुत पुराना ॥
लीला सुनहु भागवत केरी । करत बड़ाई जासु घनेरी ॥
है अस्कंद दूसरे माहीं । नव अध्याय विलोकहु जाहीं ॥
नारायण ब्रह्मा सन कहेऊ । चारि श्लोक भागवत दयेऊ ॥

दो०—परम गुह्य विज्ञान जो, है रहस्य की बात ।
धर्म अर्थ कामादि सब, ग्रहन करहु सुखदात ॥१५२॥
सृष्टि प्रलय सब काल में, मोह न व्यापै ताहि ।
नारायण यहि भाँतिसों, चतुराननहि बताहि ॥१५३॥

अरु अध्याय दशम तुम देखहु । वत्सहरन ब्रह्मा जहँ पेखहु ॥
दोनहु सत्य कहहु किमि होहीं । या वरदान झूठ है ओहीं ॥
तनि विचारकरि याकहँ देखहु । मूल सत्य वा असत विलोकहु ॥
मूल पुष्ट जाकर नहि होई । बढ़ै कवन विधि सो तरु सोई ॥
जब बैकुण्ठ बड़ाई करहीं । तहँ न द्वेष ईर्षा उच्चरहीं ॥
पर बैकुण्ठ कथा इमि कहहीं । द्वारपाल जय बिजय सुअहहीं ॥
जब सनकादिक तहँ परगयऊ । द्वारपाल तब रोकत भयऊ ॥

तिन अपराध कहहु का कीन्हा । कार्यस्वामिबिचजोचितचीन्हा॥

दो०—तब सनकादिक शाप दिय, गिरहु भूमि पर जाइ ।
का भूमी तहँ ना रही, पंचतत्त्व बिलगाइ॥१५४॥

पुनि जयविजयकीन्हगुनगाथा । करि स्तुति अरु नायहु माथा॥
कहा नाथ यह मोहिं बतावहु । आउब बहुरि कबहुँ यहिठांवहु॥
तब सनकादिक कहत बुझाई । करिहहु ईश भक्ति मनलाई ॥
तौ तुम जन्म सातवें माहीं । पुनि ऐहहु वैकुंठ सराहीं ॥
यदि विरोध भक्तीतुमकरिहहु । जन्म तीसरे यह तनु धरिहहु ॥
अब विचार करिये सब लोगू । किमि जय विजय शापके यागू॥
स्वामिकाजमहँतिनचितदीन्हा॥ कार्य्य जो द्वार केर सोइ कीन्हा॥
का नारायण नीति न जानत । बिन अपराध दुःख में सानत ॥

दो०—जो निज सेवक की दशा, देखि न करत उपाय ।
कहहुऔरकीकरहिकिमि,"इष्ट"सुतनिकसहाय॥१५५॥

सो०—नारायण घर न्याय, कहहु कहा यहि भाँति है ।
अब जानेहु यहि भाय, बड़ेहिं देखि सब डरत हैं॥१५॥

पुनि देखहु यह कथा सुहाई । भे हिरण्याक्षकशिपुदोउभाई ॥
हिरण्याक्ष यक कीन्ह उपाई । भूमि लपेटी मनहुँ चटाई ॥
तापर शिर धरि सोवन लागा । कीन्ह बराह युद्ध तब जागा ॥
विष्णु धरेउ वाराह स्वरूपा । सुन्दर मुख अरु दाँत अनूपा ॥
तब पृथ्वी मुख ऊपर धारी । शिर से लीन्हीं तुरत निकारी ॥
भई परस्पर अधिक लड़ाई । मारेहु हिरण्याक्ष हर्षाई ॥

अब इन पोप पुजारिन पूछहु । भूमि चटाई गोल प्रतीतहु ॥
जिन खगोल भूगोल दिखावा । नाना भाँतिन गणित बनावा ॥
तिन घर आजु भये यह पोपा । रचि पुरान बनिगे सब भोंपा ॥

दो०—जब पृथिवी हिरण्याक्ष ने, सीस तरे धरि लीन ।
कहहु सो सोयो है कहाँ, भूमिबिना बुधिहीन॥१५६॥

अरु बराह कापैं पग धारी । लड़े कवनविधि दोउबलकारी ॥
भूमि बराह जबै शिरधारी । बिनाभूमि सो किमि सुखकारी॥
कहहु कहा इन पोपन छाती । लड़त रहे जहँ दोनहुँ जाती ॥
गप्प कहाँ लगि इनकी देखी । मनहु गप्प गप्पी सम पेखी ॥
अब कश्यपु की सुनहु कहानी । रची जो पोपन ने मनमानी ॥
ताकहँ सुत प्रहलाद कहाई । पठवत पढ़न हेत गुरु ठाँई ॥
पितु आज्ञायुत पढ़त न सोई । तब पितु दंड दीन्ह है ओई ॥
कूप गेरि परबत लुढ़कावा । अग्निमाहिंपुनिताहिबिठावा ॥
तब प्रहलाद तजेउ नहिं प्राना । बाँध्यो खम्भ परम सुखमाना ॥
अरु लै शस्त्र पिता इमि कहई । बचहु कवनविधि जानन चहई॥
तब नरसिंह प्रकट हुइ गयऊ । हिरण्यकशिपुपरधावतभयऊ॥

दो०—अबविचार यहकीजिए, नारायण की बात ।
चौथी पीढ़ी में भयो, यहप्रहलादसुतात ॥१५७॥
चतुरानन सों प्रजापति, तिनसों कश्यप देव ।
कश्यपसों हिरण्याक्ष भे, हिरण्यकशिपु दुखदेव १५८॥

तब पुनि कहब होइ केहि भाँती । इकइस की सदगति सुखमाती॥

पुनि भे कुम्भकरन अरु रावन। ऋषिन केर तपयज्ञ नशावन॥
दूसर जन्म भये पुनि एही। दन्तवक्र शिशुपाल सनेही॥
तिन हित राम कृष्ण जग आई। मारेहु तिनहिं सहित समुदाई॥

दो०–ऐसेहि सागर की कथा, कहत सबन समुझाइ।
प्रियव्रत के रथ चक्र सों, लीक समुद्र लखाइ॥१५९॥
ऐसेहि नाना भाँति की, लिखी कथा अधिकाय।
व्यास देव को नाम धरि, लिख्यो पोप हर्षाय॥१६०॥

बोप देव जयदेव सुहाई। रहे सहोदर दोनों भाई॥
बोप भागवत दीन्ह बनाई। गीत गोबिंद जयदेव रचाई॥
ग्रन्थ हिमाद्रि बिलोकहु जाई। हैं जामँह श्लोक सोहाई॥
भोज सचिव तेहिनाम हिमाद्री। पूछत बोपदेव सों आद्री॥
श्रीमद्भाग्वत ग्रन्थ तुम्हारा। सुनि न सकहुँ बहु है बिस्तारा॥
ताते कछु संक्षेप की भाँती। सूचीपत्र बनाइ सुहाती॥
तौ लघु कालहि में प्रभुताई। समुझहुँ कथा परम सुखदाई॥
तब यक सूचीपत्र बनावा। कथा सार तामहँ दर्शावा॥

दो०–जोन बोधयहिभाँतिहो, देखहु ग्रन्थ हिमाद्रि।
बोपरचित यह ग्रन्थ है, निरखिबिचारहुआद्रि॥१६१॥

या विधि सकल पुरानन केरी। जानि लेहु लीला बहु तेरी॥
कृष्ण कथा महभारत देखहु। गीता चरित सो पावन पेखहु॥
श्रेष्ठ कर्म गुन तहँ पर भाई। अरु स्वभाव उत्तम दर्शाई॥
तहँ से ज्ञात होत यह नाहीं। कृष्ण कियो अधरम केहु ठाहीं॥

कृष्णहि चोर जार बतलायो। भागवत में बहु दोष देखायो ॥
दूध दही माखन की चोरी। गोपिन संग कीन्ह बरजोरी ॥
पर नारिन संग रहस रचायो। अरु कुबिजा सँग प्रेम बढ़ायो ॥
यहि प्रकार की कथा सलोनी। भागवत में बिर्चीं अनहोनी ॥
कहूँ कहाँ लगि इनकी करनी। नाना भाँति पुरानन बरनी ॥

दो०—एक कहत ऋषिराज सों, नहिं जानत यह बात।
पुरुष केर सामर्थ जस, तस तस ग्रन्थ लखात ॥१६२॥

छं०—जब वेद की सामर्थ नाहीं स्मृती तबहीं भई।
जब स्मृती बुधि में न आई शास्त्र तेहि क्षण उपजई ॥
जब मन न लाग्यो शास्त्र में तबहीं पुरानें निर्मई।
पढ़ने लगे जब शूद्र याको तब अधर्म देखावई ॥११॥

स्वामि कहत यह मिथ्यावादा। करत निरर्थक जौन बिवादा ॥
बिना पढ़े सामर्थ न होई। पढ़ै जौन विद्यावित सोई ॥
तुम तौ कहत नारि नहिं पढ़हीं। वेद पढ़न अधिकार न लहहीं ॥
तो गार्गी आदिक जे नारी। शास्त्र विवाद कीन्ह विस्तारी ॥
ताहीविधि छान्दोग्य विलोकहु। शूद्रवंश जान श्रुति देखहु ॥
मुनिवर रैक्य[1] निकट सो जाई। वेद पढ़्यो अतिही हर्षाई ॥
यदि मानहु तुम वेदकी बाता। यजुर्वेद अवलोकहु ताता ॥
है अधिकार शूद्र को तहँवाँ। लिख्योविप्र आदिक को जँहवाँ ॥

१—जनश्रुति और रैक्य मुनि का संवाद उपनिषद् में देखो।

दो०-छब्बिसवें अध्याय में, मंत्र' दूसरा जान।
मनुष मात्र अधिकार है, वेद पढ़ै सुखदान ॥१६३॥

तापर स्वार्थी स्वारथ हेता। मिथ्या ग्रन्थ बनाइ सचेता॥
मूर्ख रहे जो या जग माहीं। जाइ फंसे सो हैं तेहि ठाहीं॥
जब गृह चक्र विचित्र चलावा। झूठ कथा सत कहि समुझावा॥
बेदन के बहु मंत्र* देखाए। जिन महँ नाम गृहन समुझाए॥

१—यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु॥ य०अ० २६ मं० २॥

* १—आकृष्णेन रजसा य० अ०३४ मं० ३१ (सूर्य का मं० बताया) २—इमं देवा असपत्नँ य०अ०१०मं०१८ (चन्द्रमा का मंत्र बताया) ३—अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः य० अ० ३ मं० १२ (मंगल का मंत्र बताया) ४—उद्बुध्यस्वा य०अ०१८ मं०६१ (बुध का मंत्र बताया) ५—बृहस्पते अतियदर्यो य०अ० २६ मं० ३ (बृहस्पति का मंत्र बताया) ६—अन्नात्परिस्रुतोरसं ब्रह्मणा...शुक्रमन्धसः य०अ०१९मं०७५ (शुक्र का मंत्र बताया) ७—शन्नो देवीरभिष्टये य०अ०३६ मं०१२ (शनैश्चर का मंत्र बताया) ८—कयानश्चित्र आभुव य०अ०३६मं०४(२६-३९)(राहु का मंत्र) ९—केतु कृण्वन्न केतवे य० अ०२९ मं०३७ (केतु का मंत्र)

नोट—संकेतमात्र मंत्र लिखा है। पूरा मंत्र देखना हो, तो यजुर्वेद में उपरोक्त संकेतों से देख लेना। उपरोक्त मंत्र ग्रहों के वाचक नहीं हैं। वास्तविकता इन मंत्रों की इस प्रकार से सूक्ष्मरूप से यहाँ लिखी है।*

अर्थ न जानि पड़े भ्रमजाला। आपु गिरे अरु सब जग घाला॥
एक कहत का गृह फल नाहीं। स्वामि कहत तुम समुझे नाहीं॥
सूर्य्य सदा उपमा युत होवे। चन्द्र शीत किरणै नित देवे॥
ऋतु सों काल चक्र यहि भाँती। हित अनहित सब काहु दिखाती॥

दो०—पर तुम लीला करत हो, भय मिथ्या दिखराय।
गृह के दोष बताइ कै, दान करावत जाय॥१६४॥

अरु यह सब सन कहत सुनाई। ब्राह्मण की जग में गुरुआई॥
है सब जगत दैव आधीना। देव रहत मंत्रन आसीना॥
ते सब मंत्र विप्र आधीना। याते विप्र गुरू पद चीन्हा॥
देखहु केहि विधि देत प्रमाना। जग समुझावत है मनमाना॥
पूछहु इनसों सब कोइ जाई। तुम्हरे बस्य देव समुदाई॥
डाकू चोर कुकर्मी जे जन। ते आधीन तुम्हारे देउतन॥
तो शुभ अशुभ करम जो आहीं। सबै करावत दैव सराहीं॥
तौ कस देव निशाचर भेदा। जो मानत याको तजि खेदा॥

---

* (१) आकृष्णेन यह मंत्र सूर्य्य और भूमि का आकर्षण सिद्ध करता है (२) राजगुण विधायक है (३) अग्नि से सम्बन्ध रखता है। (४) यजमान से सम्बन्धित (५) विद्वानों के सम्बन्ध में (६) वीर्य और अन्न के सम्बन्ध में (७) जलयान और परमेश्वर के सम्बन्ध में (८) मित्र के सम्बन्ध में (९) ज्ञान ग्रहण का विधायक है। विशेष देखना हो तो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा मूल सत्यार्थप्रकाश में देखो।

दो०—जो तुम्हरे बस देवता, तौ किमि माँगत भीख।
लै कुबेर धन घर धरहु, यह मानहु मम सीख ॥१६५॥

रवि प्रसन्न जा नर पर होहीं। डरहि तपन से किमि नर सोई॥
तिन कहँ जेठ मास के माहीं। राखहु घाम मौंहि यक ठाहीं॥
तब देखिय वह नाहीं भागत। सूर्य्य तेज तिनकहँ नहिंलागत॥
यह सब भाँतिन झूठ कहानी। रची सकल पोपन मन मानी॥
दुखी होहिं इनकहँ नहिं दीन्हे। ठेका मनहु गृहन कर लीन्हे॥
तबयक कहत सुनहु ऋषिराई। ज्योतिष फल प्रत्यक्ष लखाई॥
गगन माहिं देखहु तारागन। राहु चन्द्रमिलिग्रहनहोतघन॥
तेहि सँयोग पहिलेहि कहि देहीं। पुनि प्रत्यक्ष होत वैसेहीं॥

दो०—याही विधि प्रत्यक्ष है, ग्रहन केर फल आय।
सुखी दुखी जेतो जगत, राज रंक जो भाय ॥१६६॥

बोलत ऋषी सत्य मृदु बानी। गणितसत्यसबविधिसन्मानी॥
फलित सत्य कबहूँ नहिं होई। मानन योग न है जग सोई॥
पृथवी सूर्य चन्द्र गति जोई। लिखा सूर्यसिद्धांत लखोई॥
आवत सूर्य चन्द्र भूमी बिच। तबहीं कहत ग्रहन पत्रा खिच॥
ताकहँ चन्द्रग्रहन सब कहहीं। सूर्यग्रहन याही विधि अहहीं॥
निज कर्मन मिस राजा होई। होत धनी दारिद्री सोई॥
बहुतक ज्योतिष ज्ञाता देखे। करत काज तिथि पत्रा पेखे॥
तिनहू घर बिधवा बहु अहहीं। मरै नारि दुख नाना सहहीं॥

दो०—याते या सब झूठ है, गती करम की साँच।
ताते करम करहु सदा, हिये न आवहि आँच ॥१६७॥

तब यक कहत गरुड़का झूठो। जो पुरान अति परम अनूठो ॥
स्वामि कहत सब असत कहानी। बहुरि कहत ऋषि सों अभिमानी॥
मृत्यु भये पर कस गति होई। तब कह स्वामि कर्म जस सोई ॥
बहुरि कहत सुनिये ऋषिराजा। है जहँ चित्रगुप्त यमराजा ॥
महा भयंकर गण तहँ रहहीं। सो लै जात जीव को तहहीं ॥
पाप पुन्य को करत विचारा। पठवत स्वर्ग नरक बहु बारा ॥
पुन्य श्राद्ध तरपन गोदाना। करत सकल जन बिविध बिधाना ॥
बैतरनी सरिता तरि जाहीं। का यह झूठ अहै सब ठाहीं ॥

दो०—कहत ऋषी यह सब कथा, है गपोड़ की बात।
करि लीला पुजवाइ जग, पेट भरत दिनरात ॥१६८॥

है केतिक यमलोक बतावहु। न्याय होत काको जो गावहु ॥
जब कहुँ आग लगत बनमाहीं। च्यूँटी आदि जरत सब ठाहीं॥
तब केतिक यम गन तहँ आवत। लै विमान फरसा जो धावत ॥
गऊ पूँछ पकड़त जेहि करसों। सो जरिजात चिता में जरसों॥
अरु वह गऊ जात तहँ नाहीं। जहँ बैतरनी नदी बताहीं ॥
कहहु पूँछ पकड़त वह कैसे। तहँ न गऊ नहिं हाथ अनैसे ॥
एक कथा हम तुमहिं सुनावहिं। जाट केर करतब बतरावहिं ॥
जाट एक अति चतुर सयाना। पुत्र पिता धन सम्पति नाना॥

दो०-गऊ एक ताके रही, पालहि परम सनेह।
बीस सेर सो नित दुहै, दूध धरहि निज गेह ॥१६६॥

देखि सुप्रोहित डाह बढ़ावा। सोचत यत्न उपाय न आवा॥
चाहत कब ऐसे दिन आवैं। गाइ जाट सों पुन्य करावैं॥
जोहन बाट वृद्ध की लागे। आवहि मौत भाग मम जागे॥
या विधि कछु दिन गये बिताई। जाटपिता मृत्यू नगिचाई॥
सेवा करत सकल परिवारा। बेगि उठावत थूक खखारा॥
तबहिं पोपजी पहुँचे आई। परम मित्रता तहँ दर्शाई॥
कह अब करहु तुरत गोदाना। देत होइ जो दूध महाना॥
मरहिं बाप कह बारहिं बारा। गऊ करत प्रानी निस्तारा॥

दो०-तबहिं जाट कछु द्रव्य लै, देत विप्र के हाथ।
विप्र कहत लै का करौं, तबपितु परमसनाथ ॥१७०॥

साक्षात गउ दीजै भाई। जासों बैतरनी तरि जाई॥
जब कछु जाट विचारन लागा। गऊ नेह में है बहु पागा॥
तब पुनि विप्र कहत रिसिआई। का पितु ते बड़ि गाय देखाई॥
चहत न पितु बैतरनी नाघै। डूबहि सहै दुसहदुख आघै॥
तुम सुपुत्र कस हो जग माहीं। जो न करत पितु अन्त सहाहीं॥
सकल कुटुम्ब जन प्रोहितओरा। ह्वै कर कहन लगे बरजोरा॥
तुरत गाइ दीजै पितु हेता। पुन्य करहु पुनि जो कछुचेता॥
तेहि क्षण जाट मौन हुइ रहेऊ। प्रोहित तबै गऊ लै गयेऊ॥

दो०—गऊ दोहनी को तबै, प्रोहित घर लै जाय ।
ताकहँ घरमें राखिकै, बहुरि पधारे आय ॥१७१॥

जाटपिता तौ स्वर्ग सिधायो । प्रोहित मृतक क्रिया करवायो ॥
महब्राह्मन प्रोहित दोनों मिल । लूट्यो ताहि कियो नाना छल ॥
जाट दूधबिन बहु दुख पायहु । केहुविधितेरह दिवस बितायहु ॥
दिवस चौदवें जाट सिधारे । गये सु प्रोहित केर दुआरे ॥
दुहत गाइ अति हर्ष बढ़ाई । जाट गये तहँ पर नियराई ॥
जबै दूध लै घरहिं सिधाये । तबहिं जाट यह वचन सुनाये ॥
विप्र बात मेरी सुनि लीजै । ता पीछे कछु और करीजै ॥
कह हम दूध घरहिं धरिआवहिं । जाटकहतयहहमहिं न भावहि ॥

दो०—सहित दोहनी दूध के, आवहु तुम मम पास ।
सुनि प्रोहित आये तहाँ, मनमें कछुक उदास ॥१७२॥

जाट कहत तुम हो अति झूठे । कहत पोप तुम किमि हो रूठे ॥
बोलत जाट कहहु केहि हेता । गउ लाये तुम दूध समेता ॥
तब कह पोप नदीतारन हित । बैतरनी पितु तरहिं यथोचित ॥
तब कह पुनि बैतरनि किनारे । काहे न पहुँचायहु यम द्वारे ॥
उलटि गऊ लै घर बिच बाँधी । पिता फँसे जानें कस व्याधी ॥
कहत पोप नाहीं यजमाना । दान से बनत गऊ तहँ नाना ॥
जाट कहत केतिक है दूरी । अरु केहि ओर बतावहु रूरी ॥
कहत पोप दक्षिण की ओरा । जहँ नैर्ऋत्य कोण को छोरा ॥
तीस करोड़ कोस पर जाई । है बैतरनी नदी सुहाई ॥

दो०—कहत जाट बतलाइये, समाचार तुम पास ।
चिट्ठी अथवा तारसों, केहिविधिआयोखास ॥१७३॥

सो वह मोहिं देखावहु भाई । पुन्य से गाय बनी तहँ जाई ॥
अरु पितु गये नाँघि बैतरनी । मोहिं देखावहु आपनि करनी ॥
तब तो पोप कहत सुनि लीजै । गरुड़पुराण लेख चितदीजै ॥
गरुड़ प्रमाण हमारे पासा । दूसर और कोउ नहिं आसा ॥
पत्र तार कछुहू ना आवत । पुन्य प्रभाव सबै दर्शावत ॥
हम याको किमि साँची मानहिं । पोपकहतजससबकोइजानहिं॥
जाट कहत पूर्वज जे रहहीं । यह पुरान जीवन हित अहहीं॥
गऊ दूध सँग लै कर बाछा । चले जाट कछुनी को काछा ॥

दो०—और कहत प्रोहित सुनहु, आवहिं पिता सँदेस ।
तब भेजब हम गऊ को, साक्षात यहिबेस ॥१७४॥

पोप कहत हुइहै तव नाशा । देकर दान लेत निज आशा ॥
कहत जाट बोलिय नहिं बाता । नहिं तो और देहुगे घाता ॥
तेरह दिवस दूध बिन भाई । दुख पायो सो लेहुँ छिनाई ॥
मौन भये तब पोप सयाने । जाट दूध लै घर नियराने ॥
सुख सों जाट रहे घरमाहीं । पोप जाल छुटि अधिकसिहाहीं॥
जाट समान होहिं यजमाना । तब नहिं पोच न चलै बहाना ॥
एक बात औरहु चितदीजै । पोपन की लीला लखि लीजै ॥
करत पिंड़ जब होत सपिंडी । गात्र अंगुष्ठ प्रमान अखंडी ॥
बनकर गात्र जात यमलोका । कहहु कहा तब होत अशोका ॥

दो०—प्रश्न करत ऋषिराज सों, एक पुरुष हर गाय ।
स्वर्ग माहिं कछु ना मिलै, एक पुन्य बिलगाय ॥१७५॥
कहतस्वामि तव स्वर्ग से, यहै लोक है नीक ।
जहँ सब भाँति सुपास की, मिलत वस्तु है ठीक॥१७६॥

पुनि कह जब न अहै यम लोका । करै न्याय को धर्म बिलोका ॥
कहतस्वामिजोकछु तुमकहहू । गरुड़पुराण प्रमान न लहहू ॥
सो सब झूठ महा अज्ञाना । वेदन में बहु मिलत प्रमाना ॥
है यम नाम वायु का जानो । अन्तरिक्ष में भ्रमत प्रमानो ॥
त्याग करत जब जीव शरीरा । वायु संग भरमत अतिधीरा ॥
अरु जो पक्षरहित जगमाहीं । परमातमा सत्यव्रत जाहीं ॥
ता कहँ धरमराज सब कहहीं । करतन्याय बुधजन सुखलहहीं ॥
और कहूँ स्थान न कोई । ना केहु ठौर सभा कोउ होई ॥

दो०—एक कहत तुम्हरे कहे, देइ न काहू दान ।
दान पुण्य सब वृथा जग, करहिं तुम्हारी जान ॥१७७॥

स्वामिकहत यह भूलतुम्हारी । परउपकारिन देहु सम्हारी ॥
सुबरणरजतऔमाणिकहीरा । मोती अन्न थान जल चीरा ॥
उचित अवशि करिये बहुदाना । देहु कुपात्र न एकौ दाना ॥
तबकहऋषिवरमोहिंसमुझावहु। पात्र कुपात्र मोहिं दर्शावहु ॥
कहत स्वामि जो हैं छलवादी । कपटी लम्पट मिथ्यावादी ॥
मोह से युक्त करैं पर हानी । करि आलस सब बात भुलानी॥

दाता ढिग जावहिं बहुबारा। धरना दै पुनि करै सहारा॥
जब कोइ दाता नाहीं करहीं। तदपि करहिहठतनिकनटरहीं॥
मन संतोष होत नहिं कबई। जो न देइ निन्दा तेहि बकई॥

दो०–गाली और सराप को, देवहिं तिनके हेत।
जो कछु इनको देत नहिं, जानहिं शत्रु निकेत॥१७८॥

साधु भेष धरिजग भरमावहिं। ठगहिं आप औरन ठगवावहिं॥
जो कछु वस्तु होइ ढिग माहीं। तौ यह कहहिं निकट कछु नाहीं॥
औरन को फुसिलाइ सदाई। अर्थ सिद्ध निज करहिं बनाई॥
न गहिं भीख सदा दिनराती। मादक द्रव्य पियहिं जो जाती॥
ह्वै उन्मत्त प्रमादी बनिकै। सत्य भुलावहिं जग बनिठनिकै॥
चेलन सों सेवा करवावहिं। यहै तीर्थ मुक्ती दर्शावहिं॥
मातु बन्धु व्यवहारि अप्रीती। करहिं सकल अनुचितही रीती॥
यह कुपात्र लक्षण तुम जानहु। है सुपात्र सो तुमहि सुनावहु॥

दो०–होहिं जितेन्द्री वेदवित, जो ब्रह्मचारि सुशील।
सतवादी पुरुषारथी, परोपकार प्रिय शील॥१७९॥

छं०–विद्या धरम की करहिं उन्नति शान्त ह्वै निर्भय रहैं।
निन्दा सुने तेहि दुख न होवे नाहिं स्तुति सुख चहैं॥
उत्साहि योगि उदार बनकर ईश के गुन में रमैं।
वेदज्ञ ज्ञानी सृष्टि कर्महि जानि नहिं योनिन भ्रमैं॥१२॥
सो पक्षपात न करै कबहूँ न्याय की विधि को कहै।
अरु दे यथारथ तिनहिं उत्तर प्रश्न जो कोऊ चहै॥

निज आत्मा सम 'इष्ट' निशिदिन अन्य दुख सुख जानहीं।
अरुहानिलाभसमान जानहिं हृदयक्लेशनमानहीं॥१३॥

दो०—अविद्यादि हठ क्लेश को, दुराग्रहहु अभिमान।
इनसे अलग रहै सदा, होत आत्म बलवान १८०॥

जिनहिंसदा अपमानपियारा। अमृत सम तेहि पात्र निहारा॥
विष समानसो समुझहिंमाना। हिय संतोष रहै सुखनाना॥
करहिं सदा सुजननकर संगा। चलहिं कतहुँ नहिं चालकुसंगा॥
करहिं न कतहुँ दुष्ट आचारा। संग द्वेष कछु नाहिं बिकारा॥
परहित लागि तजत जो माना। तेइ सुपात्र जग विदित महाना॥
पर जब आवत आपतकाला। हो अकाल में सबै बिहाला॥
तबहिं दान दीजै सब काहू। अन्न वस्त्र औषध उत्साहू॥

दो०—एक कहत ऋषिराजसों, मन अति प्रेम बढ़ाइ।
दाता किते प्रकार के, मोहिंकहहु समुझाइ॥१८१॥

स्वामि कहत हैं तीन प्रकारा। उत्तम मध्यम अधम बिचारा॥
देशकाल अरु पात्र न देखै। सत विद्या नित धर्म न पेखै॥
परोपकार अरु उन्नति हेता। देइ दान अरु रहै सचेता॥
सो उत्तम दाता जगमाहीं। धर्मपन्थ पर चलहिं सदाहीं॥
स्वारथ मानि चहै निज कीरति। दान करै मध्यम ताकी गति॥
नीच कतहुँ उपकार न करई। वेश्यन में निशिवासर फिरई॥
भाँड़ आदि मँगता जे नीचा। तिनहिं देत धनवारि उलीचा॥
निन्दित कर्म करत दिनराती। हैं जेती जग मँगता जाती॥

तिनके हित धन बहुत लुटावें । स्वाँग आदि बहु नृत्य करावें ॥
पात्र कुपात्र न करहिंविचारा । दान देहिं नहिं लखहिं अचारा ॥

दो०—सहित परीक्षा दान जो, धर्मवन्त को देइ ।
वह दाता उत्तम लखहु, अनहित नाहिं करेइ ॥१८२॥

जो कबहूँकछु नाहिंविचारहिं । अन्धा धुन्ध दान करि डारहिं ॥
ते निकृष्ट दाता जग जानहु । दान क्रिया यहि भाँति प्रमानहु ॥
कहत एक मुनिप ऋषिराई । दान माहिं फल कौन लखाई ॥
कह ऋषि फल होवै सर्वत्रा । हो दाता केहु भाँति सुमित्रा ॥
कहत ऋषी सबको फल होवे । जस जस कर्मन को वह जोवे ॥
जिमि जग में जो डाकू चोरा । जात सो बंदी गृह बरजोरा ॥
ताही विधि प्रभु की है रीती । सुख दुख देत विचारिके नीती ॥
जाविधिकर्मकरतनिशिवासर । वैसेहि फल देवै प्रभु आगर ॥

दो०—गरुड़आदि जे ग्रन्थ जग, देखि होत अनुकूल ।
सो यह वेदविरुद्ध हैं, सदा धर्म प्रतिकूल ॥१८३॥

जिमि जग होय एकको मित्रा । अरु ताके बहु होत अमित्रा ॥
ताही विधि पुरान जग मानहु । और तंत्र आदिक तहँ जानहु ॥
ये पुरान नहिं मानन योगू । है पशुता यह कह बुध लोगू ॥
निरखहु शिवपुरान के माहीं । मुख्य त्रयोदशि सवन जताहीं ॥
अरु दिन सोमवार शुभ कहहीं । रवि आदित्य वार जे अहहीं ॥
या विधि ग्रह नछत्र बहु भाँती । मानत विविध भाँति सबजाती ॥
लीला तिथिन सुनहु मनलाई । जा विधि लिखा पुरानन भाई ॥

छं०—बावन एकादशि द्वादशी नरसिंह की मानत सबै।
शिव की त्रयोदशि अरु अनन्त चतुर्दशी जानत सबै॥
है चन्द्रमा की पूर्णिमा दिगपाल की दशमी अबै।
दुर्गा कि अष्टमि वसुकी नवमी मुनिन की सप्तमि जबै १४॥
छठि स्वामिकार्तिक पंचमी तिथि नाग की बरनन करैं।
गणपति चतुर्थी गौरि तीज द्वितीय अश्वनि उच्चरैं॥
है प्रतिपदा अग्न्यादि देवी पित्रऽमावस जानिये।
यहिभाँति "इष्ट" सबैतिथीउपवासहितपरमानिये॥१५॥

दो०—सब काहुन याही लिख्यौ, करै न अन्न अहार।
तब जानहु सब मनुज को, है फल ही आहार १८४॥

इन तिथियनमें अन्न जो खावहिं। ता कहँ पापीजन बतरावहिं॥
बहुरिसुज्योतिषअधुनिकदेखहु। है विचित्र लीला जो पेखहु॥
कहुँ दशमी एकादशि कहहीं। कहुँ एकादशि द्वादशि लहहीं॥
अरु यह कहत सबहिं समुझाई। पाप यकादशि अन्न समाई॥
पूछहु इनसों केहिके पापा। हैं तुम्हार या तुम्हरे बापा॥
यदि यह बात सत्य है भाई। तेहिदिन काहुहिदुख न लखाई॥
अंड बंड बहु कथा बनाई। नारि पुरुष दीन्हे भरमाई॥
कथाएकादशितुम्हहिंसुनावहुँ। व्रतफल कहत जौन बतरावहुँ॥

सो०—ब्रह्मलोक के माहिं, वेश्या एक तहाँ रही।
लखि अपराधी ताहि, शाप भयो तेहि स्वर्ग में॥१५॥

दो०—आइ गिरी सो धरनि पर, मृत्युलोक के बीच ।
व्याकुल ह्वै स्तुति करी, लेहु नाथ मोहिं खींच ॥१८५॥

अरु कह नाथ बतावहु मोहीं । मम अपराध क्षमा कब होहीं ॥
स्वर्गबहुरिहमकबलगिआउब । तव दर्शन धौं कबहुँक पाउब ॥
मिल्यो ताहि उत्तरयहिभाँती । देहिएकादशिफलकोउजाती ॥
व्रत फल पुन्य प्रतापहि पाई । ब्रह्मलोक पुनि अइहहु धाई ॥
सहित विमान गिरी केहु ठाईं । नृपति चरित पूछेहु है जाई ॥
तेहिवृतान्त नृपसनसब कहेऊ । तब नृप दूत बोलावत भयेऊ ॥
खोजहु नगर माहिं तुम जाई । व्रती एकादशि है कोउ भाई ॥
दूतन खोज करेउ बहु तेरा । तहँ न व्रती कोउ मिलेउ बसेरा॥

दो०—एक नारि पति सों लड़ी, तिथी एकादशि माहिं ।
रिस बस तेहि खायो तबै, अन्न दूध कछु नाहिं ॥१८६॥

दूत तहाँ पर पहुँचे जाई । तासन कहेउ बहुत समुझाई ॥
आइ छुयो तेहि तुरत विमाना । वेश्या कीन्हेउ स्वर्ग पयाना ॥
देखहु व्रतफल कहत बुझाई । बिन जाने फल होत सदाई ॥
जानि रहत व्रत जो नरनारी । परम एकादशि है हितकारी ॥
सो फल भोगत हैं बहु भाँती । व्रत राखत जो मानव जाती ॥
या विधि कथा बनाइ सुनावहिं । मूढ़नको बहुविधि समुझावहिं॥
जो यह बात सत्य हो भाई । तो हमहूँ मानब अधिकाई ॥
हम यक ताम्बूल को बीरा । पठउब स्वर्ग माहिं केहुँ तीरा ॥

दो०-तहाँ पान नहिं होत हैं, हम पठउब अधिकाय ।
जो न पानहू पहुँचई, तो सब झूठ लखाय ॥१८७॥
धनदा सुतदा नाम धरि, धस्यो कामदा नाम ।
नाम निर्जला आदि बहु, कहेउ सुफल सुखधाम ॥१८८॥

पर इनको कछु दया न आई । जेष्ठ मास निर्जला बताई ॥
बहुतक रोगी यामहँ होवें । निज बल अरु पुरुषारथ खोवें ॥
बालक वृद्ध गर्भिणी नारी । नहिं उपवास केर अधिकारी ॥
पर यह पोप पेट के साथी । निज स्वार्थी अरु अधिक प्रमाथी ॥
याते तुम नहिं मानहुं बाता । पोप फंद फँसिये नहिं ताता ॥
सम्प्रदाय तिन बहुत बनाये । नाना भाँतिन मंत्र रचाये ॥
वेदन की शाखा बहुतेरी । कहत लुप्त हो गईं घनेरी ॥
तिन महँ रही मूर्ति की पूजा । लिखो रहो हुइहै केहू जा ॥

दो०-ऋग की यकइस मानिये, यजुः एकशत एक ।
सामवेद की है सहस, अथरब का नौ नेक ॥१८९॥

बहुतक इनमहँ मिलत न भाई । लोप करीं यवनन समुदाई ॥
कहतस्वामिभ्रम आपनोजानहु । शाखा को तुम वेद प्रमानहु ॥
मूल होइ जस शाखा तैसहि । जस कारन हो कारज वैसहि ॥
वेद मूर्तिपूजा न लखाई । स्वार्थिन निज हित लीन बनाई ॥
मूर्तिन से निन्दा बहु होई । राम कृष्ण शिव कीरति खोई ॥
कहहु कहा यह है नहिं निन्दा । मूर्ति बनाइ मँगावहिं चन्दा ॥
राम कृष्ण वृषभानुदुलारी । सीता पतिव्रता सुकुमारी ॥

तिनकी धूर्त बनावं मूर्ती। भीख मँगावें करें अकीर्ती॥

दो०—होत राम यहि समय जो, तौ कस होत अनर्थ।
राम कृष्ण को नाम धरि, माँगि करत निजअर्थ॥१९०॥

मन्दिर टूटि गयो केहि ठामा। कहुँ चोरन लीन्हों सब जामा॥
कहुँ चूहन लै आँख निकारी। केहु दीन्हें बहु बस्तर फारी॥
राम खड़े मन्दिर के माहीं। बैठि पुजारी हर्ष मनाहीं॥
कहुँ कहुँ ताला देत लगाई। कहहु कहा यह कौन बड़ाई॥
यदि कोउ मूरति तोड़न लागे। हाहा करि सब तहँ से भागे॥
मेलन माहिं बिलोकहु जाई। मुकुट कोट धरि राम बनाई॥
भीख मँगावत मग के माँई। घंट बजाइ शंख सहनाई॥
कहहु कहा ये राम दरिद्री। करत सो या विधि कर्म अभद्री॥

दो०—सिरी लगावत माथ में, अहैं दरिद्री लोग।
कहहु सिरी को यहै गुन, रहै तहाँ दुख भोग॥१९१॥
आर्यवर्त के देस में, भई हानि सब भाँति।
जब से पाथर पूजने, लागी मानव जाति॥१९२॥

यदि न छुटी पाषान की पूजा। तौ दुख बाढ़ै करे अपूजा॥
बाममार्गि अपराध बढ़ायो। महा पखंडी धूर्त लखायो॥
मंत्र देहिं नाना विधि चेलन। क्रिया बतावहिं मारन मोहन॥
द्वेषण वशीकरन उच्चाटन। करत तंत्र नानाविधि साधन॥
सुनहु मंत्र सों कछु नहिं होई। करत उपाय और कछु सोई॥

कोउ सिद्ध बगुलामुखि[1] करहीं । अरु चामुंडा[2] कोउ हिय धरहीं ॥
कोउ भैरव[3] के बनहिं उपासक । अरु कोउ दुर्गा[4] के हों ध्यावक ॥
कोऊ मंत्र एकाक्षर[5] जपहीं । कोऊ त्र्यक्षर[6] को उच्चरहीं ॥
दो०—इन सों कछु नहिं होत है, जानि लेहु सब कोइ ।
करत औरही जाल कछु, सम्भव होइ न होइ ॥१९३॥
जपहिं मंत्र उच्चाटन[7] हेता । मद्य मांस बहु भखैं निकेता ॥
भैरवचक्र जाइ जो कोई । अवशि मांस तहँ खाउब होई ॥
जो न करै तहँ मद्य अहारा । ताकहँ मारि करैं सब छारा ॥
बहुतक मनुष मांस हू खावें । बहुतक विष्ठा मूत्र चढ़ावें ॥
चोलीमार्ग एक पथ तहँवाँ । बीजमार्ग पथ लखिये जहँवाँ ॥
चोलीमार्गिन क्रिया सुनावहुँ । गुप्त स्थान भेद बतलावहुँ ॥
सब एकान्त जगह पर जाई । भूमि मध्य एक चिह्न बनाई ॥
करत सबै तहँ मांस अहारा । पियहिं मद्य हों भ्रष्ट अचारा ॥
दो०—नग्न होत नारी पुरुष, पूजत इन्द्रिय गुप्त ।
कहि दुर्गा देवी सबै, पियहिं मद्य उनमत्त ॥१९४॥

१—ह्लां ह्लीं ह्लूं बगुलामुख्यै फट् स्वाहा ॥ २—ऐं ह्लीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ३—भं भैरवाय नमः ॥ ४—दुं दुर्गायै नमः ॥ ५—ह्रीं श्रीं क्लीं ॥ ६—हूं फट् स्वाहा ॥ ७—मारय२ उच्चाटय२ विद्वेषय२ छिन्धि२ भिन्धि२ वशीकुरु२ खादय२ भक्षय२ त्रोटय२ नाशय२ मम शत्रून् वशीकुरु२ हुं फट् स्वाहा ॥ कामतंत्र उच्चाटन प्रकरण मं० ५-७

नग्न पुरुष करि पूजत नारी । करत अधर्म कर्म व्यभिचारी ॥
स्तन पर जो चोलि सुहाई । नारि निकारि धरहिं यकजाई ॥
पुनिसबमस्त होहिं जेहिकाला । वृद्ध युवा अरु यौवन बाला ॥
तब जाकी चोली जो पावे । तेहि सन संग करै मन भावे ॥
कछु विचार तहँ पर यह नाहीं । कोउ न पुत्रि बधू बिलगाहीं ॥
चोली जासु हाथ में आवे । तेहिच्छण वह तेहि नारि कहावे ॥
जासु भाँति मद्यपि की करणी । होत तहाँ पर जो जग बरणी ॥
प्रातकाल जब सब घर जाहीं । तहँ पर मातु पुत्रि पुनि कहहीं ॥

दो०—बीजमार्ग की रीति यह, करहिं समागम दोय ।
वीर्य्य मिलावहिं वारि महँ, पियत रहत हैं सोय ॥ १९५ ॥

करहिं कुकर्म चहैं सो मुक्ती । और विचारत कोउ न उक्ती ॥
नहिं विद्या नहिं सज्जनताई । नहिं विचार नहिं है गरुआई ॥
एक कहत सुनिए ऋषिराई । पंथ शैव मोहिं श्रेष्ठ लखाई ॥
कह तब स्वामि श्रेष्ठ केहि हेता । जस हैं वे वैसेहि यह नेता ॥
पंचाक्षरी[1] मंत्र ये देहीं । भस्म रुद्राक्ष सुतनु पर लेहीं ॥
पूजत लिंग पषाण बनाई । हर हर बम् बम्[2] शब्द सुनाई ॥

१—ओं नमः शिवाय ॥ २—कहते हैं कि जब भस्मासुर के सन्मुख से महादेव भागे थे तब बं बं ठट्ठे की तालियां बजी थीं इससे पार्वतीजी प्रसन्न होती हैं और महादेव अप्रसन्न ।

बड़बड़ करहिं अजासम अहहीं । होत प्रसन्न शम्भु यह कहहीं ॥
व्रत प्रदोष शिवरात्री मानहिं । इनहीं सों सो मुक्ती जानहिं ॥

दो०—बामी जिमि भूले फिरहिं, तिमि भूले हैं शैव ।
इन महँ नाथ गिरी पुरी, अरु गृहस्थ भी शैव ॥१९६॥

कोउ दोउमारगफिरहिंभुलाने । बाम मार्ग अरु शैव सयाने ॥
अरु केतिक वैष्णवहू होहीं । देत प्रमान तंत्र यक जोहीं ॥
भीतर बाममार्गी रहहीं । बाहर शैव सबन सों कहहीं ॥
सभा मध्य जब पहुँचैं धाई । तबहीं वह वैष्णव बनि जाई ॥
स्वामी कहहु तौ वैष्णव नीके । तबकहस्वामिकवनविधिनीके॥
देखहु वैष्णव की यह लीला । मानहिं विष्णुदास गुनशीला ॥
उन महँ यक चक्रांकित होहीं । मानत सर्वमान्य निज कोहीं ॥
तब यक वैष्णव बोलन लागा । मत हमार किमि श्रेष्ठ न लागा॥

दो०—हम ललाट में तिलक को, देत विष्णु पद जानि ।
बीच श्री को लखत सब, श्री वैष्णव सुखदानि॥१९७॥

---

१. कहते हैं कि पार्वती (सती) के पिता दक्षप्रजापति का सिर वीरभद्र नें काटकर अग्नि में डाल दिया था तब देवतों ने बकरे का सिर उनके धड़ पर लगा दिया था, उसी के तुल्य बकरे का-सा शब्द करते हैं, तब पार्वती नाराज़ होती हैं, महादेवजी प्रसन्न होते हैं।

२. बकरी।

३. अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः । नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

हम दूसर मानत नहिं अंगा। कबहुँ न दरश करतशिवलिंगा॥
कारण श्री मम माथ विराजत। देखि लिंग शिव वह है लाजत॥
करि स्तोत्र पाठ हम तबहीं। मंत्र सहित नारायण जपहीं॥
कबहुँ न मांस मद्य हम खाहीं। पुनिहमकिमिनहिंश्रेष्ठकहाहीं॥
स्वामि कहत हरिपद नहिं होई। जो तुम माथे तिलक खचोई॥
यह रेखा बिरथा श्री मानत। निज हाथन जो रेख बनावत॥
बीच ललाट श्री जब राजत। तो काहे तुम घरघर माँगत॥
नाना भाँतिन कथा बनाई। भक्तमाल लिखि सकल भुलाई॥

दो०—एक भक्त वैष्णव रह्यो, नाम जासु परिकाल।
करत महा छल कपट नित, डाका चोरि कुचाल॥१९८॥
धन दूसर को छीनिकै, देत वैष्णवन धाइ।
हर्ष बढ़ावत हिय महा, वैष्णव के ढिग जाइ॥१९९॥

वैष्णव परिकाल की कथा

यकदिनतेहिनमिल्योकछुचोरी। ना कहुँ लूटन कहुँ घर फोरी॥
अतिव्याकुलसोफिरत भुलाना। कियेबहुतविधिहृदयनिशाना॥
भगतजानि नारायन तेहिछिन। भये सेठ आभूषण धरि तन॥
रथ चढ़ि ताके सन्मुख आये। रहे जहाँ परिकाल सुहाये॥
तुरत सेठ ढिग पहुँचो जाई। कहत देहु सब जो प्रभुताई॥
नारायण भूषनहिं निहारी। देन लगे परिकाल सम्हारी॥
भयो बिलम्ब मुद्रिका माहीं। निकसत सो काहूविधिनाहीं॥
मुँदरी अँगुठा काटि निकारी। धरेहु झोलि महँ ताहि सम्हारी॥

दो०—धारि चतुर्भुज रूप तब, नारायण तेहि काल।
दर्शन दै प्रिय भक्त कहँ, कीन्हों ताहि निहाल[1]॥२००॥

देखी नारायण की रीती। महा कुपन्थ भक्त सन प्रीती॥
चोरि लूट में जो धन पाई। देत सबै वैष्णवसमुदाई॥
धन्यवाद नारायण दीन्हा। वैष्णव की सेवा चित चीन्हा॥
अरु यक साहूकार कहानी। जो परिकाल केर मनमानी॥
भरि जहाज पुंगीफल[2] लादत। यक की आधी तहाँ मिलावत॥
अरु यह ताकहँ दीन्ह लिखाई। अर्ध सुपारि हमारिहु भाई॥
जब निज बन्दर[3] पहुँच जहाजा। आयो तहँ परिकालसमाजा॥
दीजै हमहिं हमार सुपारी। साह तुरत सोइ दीन निकारी॥

दो०—तब झगड़ा परिकाल किय, अर्ध भाग लिय बाँट।
लै लदाइ घर को चले, दीन्ह वैष्णवन डाँट॥२०१॥

तब बैरागिन मूर्ति बनाई। निजनिज मंदिर में रखवाई॥
इनकी कथा कहाँ लगि कहहीं। डाकू चोर संग सब रहहीं॥
यदि कछु साँच होय कोऊ नर। रहे संग हो अज्ञ अधिकतर॥
भिन्न भिन्न धरि तिलकरुछापा। करत परस्पर बहु परितापा॥
नाना भाँतिन रूप बनावहिं। तनिकसोकतहूँनहिंशरमावहिं॥
भक्तमाल यक कथा सुनावत। वृक्ष निकट कोउ आइ विराजत
मृत्यु भई ताकी तेहि काला। काक बीट मस्तक पर डाला॥
सोइ बनिगयो तिलक आकारा। मानहुँ वैष्णव चिह्न प्रचारा॥

---

१. प्रसन्न कर दिया। २. सुपारी। ३. जहाज़ के ठहरने की जगह।

तब यमदूत तहां पर आये। दूत वैष्णव तहँ नियराये ॥

दो०—दोहुन में खटखट भई, कौन याहि लै जाइ।
वैष्णव दल तेहि लै गयो, निज बैकुण्ठ सिधाइ ॥ २०२ ॥

कहहु तिलक की यहै बड़ाई। समुझै बीट तिलक सुखदाई ॥
मस्तक श्री अरु मांगहिं भीखा। कहा कहहु याही है सीखा ॥
बगुला भगत बने सब डोलत। गाँजा भाँग चरस मद भोगत ॥
यदि कोउ पढ़न लगै मनलाई। तौ ताकहँ बहु विधि समुझाई ॥
जो कोउ पढ़त मरत सोऊजन। दन्तकटाकटकरहिंसोकेहिसन॥
धाम चारि फिरि सन्तन सेवा। भजहि राम नित खावहिं मेवा ॥
मूरख बुद्धिहीन जो चहहू। तो एक खाखी को तुम लहहू ॥
श्रीगणेश कहिबो नहिं आवै। सबको ऊटपटांग बतावै ॥

दो०—भंग धतूरा संखिया, पियहिं खूब छकि सोय।
नंगे रहि धर्मी बनहिं, भीख माँगि के जोय ॥२०३ ॥

अस सुनि खाखी[1] बहुत रिसाना। चिमटामारहिंअसहियठाना ॥

१—खाखियों का अड्डा–दर्शक आये और दण्डवत् कर बैठ गये। एक कहता है–रामदासिये ! (उत्तर) हाँ, महराज–तैंने विसुन सहसर नाम पढ़ा है ? अरे गोविन्ददासिये ! (उत्तर) हाँ, महराज। तैंने राम सतवराज पढ़ा है ? हाँ महराज, अमुक खाखी जी के पास—

खाखी – अरे चलबे छोकरे, हम किसी को गुरू नहीं मानते। परागराज में रहते थे, आखर नहीं आता था। किसी लम्बी धोती-वाले पंडित को देखा तो पूछा कि यह कलँगीवाला अक्खर क्या है ? ऐसे ही पूछता-पूछता अठारह अध्याय गीता रगड़ मारी।

अरु अस बोल्यो सबन सुनाई । सुनहु सकल संतन प्रभुताई ॥
तुम सब साधु कर्म का जानहु । सन्त स्वभाव अपूर्व प्रमानहु ॥
तुम काहू सँग अटके नाहीं । नतु कपार फूटत सब ठाहीं ॥
जब अस मूरख भे जग आई । होय न किमि अधर्म अधिकाई॥
दिन प्रति नसा पियहिं ये भाई । बनहिं प्रमादी करहिं लड़ाई ॥
घंटा शंख बजै घड़ियाला । धुनी रमाइ बिछावत जाला ॥
नाना भाँतिन मंत्र[1] बनाये । निज शिष्यन कहँ हैं अपनाये ॥
अरु तूंबे का मंत्र[2] पढ़ावहिं । होइ पवित्र सो विधि करवावहिं ॥

दो०—तपत रहत निशि दिवस सब, सुनत सु अनहद शब्द ।
सुरति कहत मन वृत्ति को, सन्त कहत यह शब्द २०४॥

याते बढ़हि न आतम विचारा । जो यह है शिशु खेल प्रचारा ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । नानक मारग परम सुहाई ॥
मूरति पूजा ते नहिं गहहीं । होहिं न साधु गृहस्थी रहहीं ॥
यवनन ते बहु लोग बचाये । जातिभेद तजि सब अपनाये ॥

१—नाथों का मंत्र—नमः शिवाय। खाखियों का मंत्र—नृसिंहाय नमः। रामावतों का—रामचन्द्राय नमः, सीतारामाभ्यां नमः। कृष्ण उपासकों का—श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः, नमो भगवते वासुदेवाय। बंगालियों का—गोविन्दाय नमः।

२—जल पवित्तर थल पवित्तर और पवित्तर कुँआँ।
शिव कहै सुन पारबती, तूँबा पवित्तर किया ॥

देखहु तिन यह मंत्र¹ बनावा । अर्थ तासु मोहिं परम सुहावा ॥
करता पुरुष सत्य है नामा । नहिं आवत योनिन केहु ठामा ॥
है अकाल मूर्ति निर्वैरा । है सच जगत जो नानक हेरा ॥
तब स्वामी कह सुनिये भाई । नानक पक्ष पवित्र लखाई ॥

दो०—पर वे विद्या हीन हैं, अज्ञानी अभिमानि ।
जो भाषा ग्रामीण है, तेहिजानतसुखखानि॥२०५॥

जानत हैं संस्कृत कछु नाहीं । निर्भय को निर्भो समझाहीं ॥
अरु अभिमान करत बहुतेरा । दम्भी बनि सब काहुन हेरा ॥
वेद विरुद्ध कही सब बाता । बनिगे जगत गुरू सुखदाता ॥
यदि नानक जी जानत भेदा । पढ़त शास्त्र जो मानत वेदा ॥
तौ कबहूँ या विधि जग आई । करत न ते ऐसी गुरुआई ॥
भये पंचाल देश के माहीं । नानक जन्म लीन्ह तेहि ठाहीं ॥
तेहि क्षण यवन महा दुखदाई । पीड़ित करत आर्य्य समुदाई ॥
तब नानक यक पन्थ चलावा । यवनन सों तिन बहुत बचावा ॥

दो०—नानकचन्द्रोदय लिखी, तिन पीछे महराज ।
जन्म साखिहू लिखत भे, बहु कर्तब उपराज ॥२०६॥

नानक जी को झूठ कहानी । शिष्यन लिखी बहुत मनमानी ॥
या महँ नानक को नहिं दोषा । चेलन नाना विधि सों पोषा ॥

१—ओं सत्य नाम करता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्ति अजोनि सह भं गुरुप्रसाद जय आदि सच जगादि सच है भी नानक होसीभी सच—जपजी ।

दूसर गुरु भे पुत्र उदासी। भये निर्मले तीसर खासी॥
और भये बहुतक तहँ आई। निज भाषा रचि ग्रन्थ मिलाई॥
गुरु गोविन्द दशम गुरु भयेऊ। तिन सब ग्रंथ कियो एक ठयऊ॥
ताके बाद बढ़यो कछु नाहीं। पुस्तक लेख ग्रंथ के माहीं॥
नाना भाँतिन कथा बनाई। है पुरान सम दी दरसाई॥
यवनन अत्याचार विशाला। कियोबहुतविधिसोंतेहिकाला॥
तब गुरु गोविंद बानि सुनाई। है वरदान सुनहु सब भाई॥
खड्ग एक देवी ने दीन्हा। हमहिं एकअधिकारी चीन्हा॥
और कहा तुम करहु लड़ाई। जाइ यवन दल करहु सफाई॥
साथी बने बहुत तेहि काला। देखत यवनन केर हवाला॥

सो०—बामिन पंच मकार, किय सकार चक्रांकितन।
गुरु ने पंच ककार, कियो सबन आदेश यह॥१७॥

दो०—कंकन, केश, कड़ा सहित, कंघी, कच्छ विधान।
अरु कटार बाँधत सबै, करहिं सु युद्ध निदान॥२०७॥

ये सब युद्ध केर सामाना। प्रतिक्षणशिष्यसोधारहिंबाना॥
नहिं मूरति पूजक ये भाई। देत ग्रन्थ साहब शिरनाई॥
ये भिन्नता प्रचारनवारे। तजहु पंथ सब जो हिय धारे॥
अरु सब चलहु वेद अनुकूला। दुरभिमान त्यागहिं सब शूला॥

(दादू पंथ)

कहत एक ऋषिवर सों आई। दादूपंथ हमहिं अति भाई॥
स्वामिकहतअतिपरमसुहावन। वेद मार्ग ही है जग पावन॥

यदि गहि सकहु गहहु हर्षाई । नाहिंन पंथन डूबहु जाई ॥
दादू जन्म भयेउ गुजराता । अरु अजमेर रहे सो ताता ॥
तहाँ तेल बेच्यो बहु भाँती । पुनितेइ पन्थ चलाइ सुहाती॥

दो०—ईश त्यागि दादू भजहिं, देखहु देश की रीति ।
दादू पन्थ कहाइ कै, मानहिं मुक्ती नीति ॥२०८॥

रामसनेही

राम सनेहिन सुनहु प्रमाना । खान-पान में रहत भुलाना ॥
ते नहिं करत मूर्ति की पूजा । आपनि करवावत हैं पूजा ॥
नारिन महँ सो रहत भुलाने । विना नारि नहिं आनँद माने ॥
अब तिनको कछु सुनहु हवाला । भयो एक साधू तेहि काला ॥
नाम सु रामचरण सब कहहीं । जन्मेउ शाहपुरा सो अहहीं ॥
राम राम ही मंत्र बतावत । सोइ सिद्धान्त आइ ठहरावत ॥
तिनहू को यक ग्रन्थ लखाई । सन्तदास की [1]बानि सुहाई ॥
राम कहे ते छूटहिं पापा । कर्म जो बन्धन अरु सब तापा ॥

दो०—कर्मकेर फल कटत कब, यह सब लेहु विचारि ।
पाप पुन्य जो करत जग, भोगत अवशि मझारि॥२०९॥

पाप बढ़ावन की है रीती । जो गुरु लोगन की है नीती ॥
रामचरन जो बचन बनाये । सो हम तैसेहि तुमहिं सुनाये ॥

१—परम रोग तबहीं मिट्या, रट्या निरंजन राय ।
तब जम का कागज फट्या, बँध्या कर्म तब जाय ॥ साखी

इन बचनन[२] के अर्थ बिचारहु । अरुबुधिविद्या सकलनिहारहु ॥
रह्यो पुरुष सो अति ही सीधा । बिन विद्या १ रखता बींधा ॥
राम नाम ते छूटत कर्मा । यह विश्वासमात्र है भर्मा ॥
जन्म अकारथ आपन खोवत । अरु औरन दुखसागर डारत ॥
राज सिपाही डाकू चोरा । व्याघ्र सर्प बीछी घरफोरा ॥
भय न छुटत जब राम उचारे । बिन आतम बल आप निहारे ॥
निशि दिन रामराम रटिडारैं । नहिं हम कछु सारांश निहारैं ॥
जिमि कोउ मुखसे शकरउचारे । ना मुख मीठ न क्षुधा निवारे ॥

दो०—रामसनेही नाम धरि, करत राँड सन नेह ।
करि पाखण्ड सुदेश में, नाश करत निज देह ॥२१०॥

२—महमा नाव प्रताप का, सुणौ सरवण चितलाइ ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ ॥ १ ॥
जिन-जिन सुमिरयां नामकूँ, सो सब उतरयां पार ।
रामचरण जो बीसरयां, सो ही जम के द्वार ॥ २ ॥
राम बिना सब झूठ बताया ॥ ३ ॥
राम भजत छूट्या सब कम्मा । चन्द्र औ सूर देइ परकम्मा ॥ ४ ॥
राम कहे तिनकूं मैं नाहीं । तीन लोक में कीरति गाहीं ॥ ५ ॥
राम रटत जम जोर न लागा ॥ ६ ॥
राम नाम लखि पथर तराहीं । भगत हेत औतारहि धरहीं ॥
ऊँच नीच कुल भेद विचारै । सो तो जन्म आपणो हारै ॥
संता के कुल दीसैं नाहीं । राम राम कहि राम सम्हाहीं ॥
ऐसो कुण जो कीरति गावे । हरिहर जनको पार न पावे ॥
राम संतों का अन्त न आवै । आप आपकी बुद्धि सम गावे ॥

रामचरितयदिधारतहियबिच।तौविधिवतसबदलआवतखिच॥
साधुन की गति देखन चहहू। जाइ तीर्थन कौतुक लहहू॥
पन्थ सु रामदेव है दूसर। चेला करत रहतवह खूसर॥
रामचरन के वचन सुनावत। महामंत्र ताकहँ समुझावत॥
गुरु के नख अरु दाढ़ी बारा। करतनहैं कबहूँ तेहि न्यारा॥
इनहू अपनी सोखि बनाई। अरु सब शिष्यन दीन पढ़ाई॥
बहु पुस्तक यहि भाँति बनाये। नारि हेत यह कर्म गिनाये॥
निज पतिसेवा पाप बतावहिं। सेवा गुरू धर्म ठहरावहिं॥
ते वरणाश्रम कछु नहिं मानहिं। होत सनेही उत्तम जानहिं॥
हैं प्रपञ्च बहुतक यहि भाँती। जानहिं बुधवर मानव जाती॥

दो०—कहत एक ऋषिवर सुनहु, ये भोगत सुख भोग।
गोकुलिये गोसाइँ जो, यशवन्तीसबलोग॥२११॥

स्वामि कहतजोइनढिगआहीं। वह प्रभुता इनकी है नाहीं॥
यह सब गृहस्थन केरि कमाई। छल सों जो है इन अपनाई॥
कोउ गोलोक चरितबतरावहिं। कोउ गोकुलके कान्ह गनावहिं॥
यह मत तैलँग देश ते आयो। लछिमण भट्ट जाहि दर्शायो॥
करि विवाह त्यागे पितु माता। त्यागि नारि त्यागे सब ताता॥
काशी आइ लीन्ह संन्यासा। नहिं राखी कछु घर की आसा॥

१—साखी—पण्डिताइ पानें पढ़ी, औ पर्वली पाप।
राम राम सुमिर्याँ बिना, रहि गये रीते आप॥
बेद पुरान पढ़े पढ़ि गीता। राम भजन बिन रह गये रीता॥

मात पिता नारी सुधि पाई। ढूंढ़्यो इनहिं तहाँ पर आई॥
जेहि संन्यास दीन्ह तहँ जाई। नाना विधि सों रुदन मचाई॥
दो०—कह्योनारि यहिभाँतिसों, दियो जो है संन्यास।
मो पति मोहिं मिलाइये, नतु दीजै संन्यास॥२१२॥
तब गुरु ताको तुरत बुलावा। अरुबहुविधिसोंतेहिसमुझावा॥
मिथ्या वचन कहे जेहि भाँती। कियो दोष तुम जो गुरु घाती॥
याते त्यागहु तुम संन्यासा। बनहु गृहस्थ तजहु ममआसा॥
मानि लीन्ह गुरुके यह वचना। जानि दोष औगुनसबअपना॥
नारि संग सो गृह को गयऊ। तहँ न जातिवालेनतेहिलयऊ॥
तब वह करत भ्रमन तहँआवा। चम्पारन बन है जेहि ठाँवा॥
काशी निकट चैरणगढ़ अहई। तासु समीप अरण्य सुहाई॥
तेहि वन पुत्र गयो कोउत्यागी। गयो लगाइ चहूँदिशि आगी॥
लछिमण भट्ट ताहि अपनायो। लै तेहि बालक पुत्र बनायो॥
दो०—पुनि काशी में जा रहे, नारि पुत्र के साथ।
युवा भयो विद्या पढ़ी, सब छात्रनके साथ॥२१३॥
विष्णु स्वामि के मन्दिर धाई। बनेउ शिष्य केहु स्थल जाई॥

१—चरणाद्रिगढ़ जिसको इस समय चुनार कहते हैं किसी समय इसी को नैनागढ़ भी कहते थे। यह भर्तृहरि के समय का बताया जाता है। अब सरकार के अधीन है और लड़कों का जेलख़ाना है। इसमें भर्तृहरि की समाधि बनी है और सुनत्रां के विवाह का मंडप बना है।

तहँ से पुनि काशी सो आवा । लीन्ह महासंन्यास सुहावा ॥
बीत्यो कछुककाल यहिभाँती । मिल्यो विप्र जो रह्यो कुजाती ॥
कह त्यागहु संन्यास उछाहू । मोर सुता सँग करहु विवाहू ॥
तबतेहि ब्याहकीन्ह अनुरागी । नारि हेत संन्यासहिं त्यागी ॥
जो पितु कियो कियोसुतसोई । बीज स्वभाव न त्यागन होई ॥
नारि सहित तहँ रहन न पावा । गुरु मन्दिर जहँ पर्म सुहावा ॥
गयो तबै ब्रज भूमि पराई । तहाँ आपनी थाप जमाई ॥
तहँ मूरख बहुतक अपनाये । अरु बैष्णव चौरासि बनाये ॥
साधन मंत्र[1] लिये द्वै मानी । एक समर्पण[2] यक है दानी ॥

दो०–शिष्यन को करवावते, शिष्यसमर्पण आय ।
तंत्र क्लीं कृष्णेति यह, वल्लभ को समुदाय ॥२१४॥
वाम मार्ग का भेद है, करत गोसाईं संग ।
गोपी वल्लभ ऐति कहि, करत नारि सत्संग ॥२१५॥

कहा कृष्ण गोपिन के प्रेमी । नारि संग को करत अनेमी ॥
हमरी जानि कृष्ण अस नाहीं । जो तुम कहत रहत सबठाहीं ॥

१—मंत्र–श्रीकृष्णः शरणं मम । क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॥ (गोपाल-सहस्रनाम)

२—श्रीकृष्णः शरणं मम, सहस्रपरिवत्सरमितकालजात कृष्ण-वियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहंभगवतेकृष्णायदेहेन्द्रियप्राणान्तः-करणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपरायणात्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ।

वर्ष सहस्र वियोग बतावहु । कृष्णकेरिकहि जो समुझावहु॥
यह है सकल गल्प की बाता । मानहु इनहिं न कोई ताता ॥
औरहु इनकी बहुतक लीला । बहुतक कथा अहैं अशलीला ॥
मूल तत्त्व देखहु यह भाई । है गोसांइ मत जहँ दरशाई ॥
है सिद्धान्त रहस तेहि नामा । लिखा बहुतविधिहैतेहिठामा ॥
श्रावण मास पक्ष एकादशि । दर्शन कृष्ण भयो ताही निशि ॥

दो०–दरश कौनविधिसों भयो, कहहु सो वल्लभ काहिं ।
सहस पंच बीत्यो समय, बीत्याकृष्णबताहिं ॥२१६॥

अरु यह कहत दोष छुटि जावें । जो कोउ वल्लभ मत में आवें ॥
पर हम देखत हैं दिन राती । जात न है दारिद्र सुखघाती ॥
पाँच दोष मानत नहिं कोई । गोसांई अनुचर जो होई ॥
एक जो सहज स्वाभाविक होई । दूसर केहू पाप करोई ॥
तीसर भक्षाभक्ष की रीती । अरु मिथ्या भाषण जो नीती ॥
है चातुर्थ कुसंगति जानहु । चोरिआदिव्यभिचारप्रमानहु ॥
पंचम जो नहिं छुअन के योगा । तिनहिं छुअतहैं जोकहुँलोगा ॥
मानत इनहिं कतहुँ ते नाहीं । है गोसांइ सिद्धान्त सदाहीं ॥
याते चेलन के उर भरहीं । गुरु अर्पन बिन भोगनकरहीं ॥

दो०–वस्तु कोई संसार में, भोगि सकत वह नाहिं ।
जौलगिनहिंअर्पनकरै, नहिंभोगतचितचाहि ॥२१७॥

जौ लगि करत न अर्पन भाई । तौ लगि रहत अशुद्ध सदाई ॥
केतिक अवगुन करै जो कोई । बनत गोसाइँ ब्रह्मवित होई ॥

अबहीं सुनहु हमारो बाता। त्यागहु पथ जो है दुखदाता ॥
वेदविरुद्ध जो है जगमाहीं। सो है त्यागन योग सदाहीं ॥
अबलगि जो कछुक्रियोकुभाऊ। मिथ्या चार अधर्म सुभाऊ ॥
सुफलकरहु अब मानुषको तन। धारहु चारि पदारथ को मन ॥
धर्म अर्थ कामादिक पाई। जाहु मोक्ष ढिग तुम नियराई ॥
पुष्ट मार्ग नहिं समुझहु याहीं। जो तुम भोगत रहत सदाहीं ॥

दो०—याविधि जालरचाइकै, बरन भुलावा दीन।
आइ फँसे भोले पुरुष, निजतन अर्पनकीन ॥२१८॥
कृष्ण मानते आपको, और कहत समुझाइ।
नरन उबारन हेत ही, हम जन्मे हैं आय ॥२१६॥

जौ लगि मम उपदेश न मानत। तौ लगि वह गोलोक न पावत ॥
पुरुष तहाँ यक कृष्णविहारो। अरु सब नारि महा सुकुमारी ॥
जेतिक शिष्य गोसांई केरे। बनहिं जाइ गोपी तनु हेरे ॥
सोचहु तनिक विचार दृढ़ाई। सुधरत कौन नारि ढिग जाई ॥
जहँ दो नारि-पुरुष अकुलाई। होहिं अधिक कस गति हो भाई ॥
नारि डाह हिय रहत सदाई। भोगे बिपति पुरुष अधिकाई ॥
जो यह कहत कृष्ण प्रभुताई। करत प्रसन्न सबन अपनाई ॥
ताते नारि स्वामिनी होहीं। कहा समर्थन है तेहि कोहीं ॥

दो०—कहहु कहा गो लोककी, कौन बड़ाई आइ।
जब तहँ नरनारी रहत, भोगकरतसुखदाइ ॥२२०॥

जिमि यहिलोक माँहि बहुरोगा। ताही विधि गोलोक सुभोगा ॥

सुनि के खेद होत मनमाहीं । कहत कहा गोलोक सराहीं ॥
मृत्युलोक जो आवत भाई । लै अवतार मनुज सुखदाई ॥
राग द्वेष दोऊ यहँ रहहीं । तेहि गोलोक कोउ नहिं कहहीं ॥
जो यह कहहु तहाँ नहिं रोगा । यह किमि होत विचारहु लोगा ॥
अवशि रोग होवे तहँ भोगा । तौ केहि विधि गोलोक न रोगा ॥
बहुतक नारि कृष्ण की आहीं । कहहु कहा तिनके सुत नाहीं ॥
जब गोलोक कृष्ण अरु नारी । तौ न होत किमि उत्पति जारी ॥
यदि यह कहहु पुत्रही होहीं । अथवा पुत्रि जनत सब कोही ॥
या दोनों उपजत तेहि ठामा । भये तहाँ पर नर अरु बामा ॥

दो०—मृत्युलोक के सदृश तब, जानि लेहु गोलोक ।
कौन बड़ाई लहत नर, जाइ गऊ के लोक ॥२२१॥

सबहिं गोसाइँ इमि अपनावहिं । तनमनधन, अर्पन करवावहिं ॥
नारिन को तन पुरुष अधीना । पुरुष शरीर नारि आधीना ॥
मन अर्पन होवे केहि भाँती । तनसँग रहतइन्द्रिगन जाती ॥
अरु धन की गति यहहै भाई । बिनमन किमि अर्पनहुइ जाई ॥
इन लीला बहु भाँति रचाई । और कमावें खाहि गोसाईं ॥
विद्याहीन मूर्ख अधिकाई । चरन पुजाये घर घर जाई ॥
तहँ पर बैठि मौन ह्वै रहहीं । पूछेहु पर सो कछु ना कहहीं ॥
यदि कछुबोलि देहिं तेहिकाला । तौखुलि जाइजो बांध्योजाला ॥

दो०—मूरख को बल मौन है, कहत याहि बुधलोग ।
सोइ रीति निज हियधरत, छूटै न कोऊ भोग ॥२२२॥

आवहिं नारि करहिं पधरौनी। निरखततिनहिंविचारतहोनी॥
जासु ओर देखहिं गोसांई। जन्म सुफल ताकहँ है जाई॥
माता पिता बन्धु अरु भ्राता। देखिसिहात कहतनहिं बाता॥
और देत आज्ञा यहि भाँती। गुरु की सेवा करहु सुहाती॥
मृत्यु समय धारत पग छाती। जोकछु मिलहिरखावतथाती॥
समय बिचारि गोसाईं आवत। नारिन सों पूजा करवावत॥
तैल लगाइ नारि नहवावहिं। पुनिपीताम्बरकोपहिरावहिं॥
अरु धोती लै सकल निचोरहिं। करहिंआचमनपुनिकरजोरहिं॥

दो०—बीड़ा पान लगाइकै, देत गोसाईं जाइ।
पान खाइ बीरा चबत, थूकत पाक बनाइ ॥२२३॥

मुख्यप्रसाद ताहिसबकहहीं। आचमनकरहिंशिष्यजोअहहीं॥
बहुतक अनाचार की रीती। पंथ गोसाईं माँहिं जो नीती॥
बेचत भोग बजारन जाई। महा कुपन्थ मोहिं दर्शाई॥
डूबत आप डुबावत औरन। करत कुकर्म सदा सबठोरन॥

नारायण पन्थ

पूछत एक ऋषी सों भाई। नारायण मत कस दर्शाई॥
तब स्वामी कह वैसेहि मानहु। जस देवी तस वाहन जानहु॥
धन हित करत गोसाईं लीला। वैसहि याही मत का हीला॥
सुनहु सुनावहिं एक कहानी। सहजानन्द केर गुन मानी॥

दो०—नगर अयोध्या के निकट, एक ग्राम के बीच।
जन्मे सहजानन्द तहँ, अति स्वभाव के नीच ॥२२४॥

बनि ब्रह्मचारी गयो बिदेशा। जहँ गुजरात कच्छ भुजदेशा॥
तेहि देखेउ तहँ मूरखताई। फैलाई अपनी प्रभुताई॥
कछु चेला तहँ लीन्ह बनाई। ते सब कहन लगे गुरुराई॥
श्री नारायण लिय अवतारा। सहजानन्द परम सुखसारा॥
सो काठियावाड़ में जाई। चतुर्भुजी निज मूर्ति देखाई॥
भूमिपती यक दादाखाचर। सहजानन्दकियोतेहिआदर॥
था तम[1] अधिक तहाँ लै जाई। बांधिमुकुट निज मूर्तिदेखाई॥
बनेउ चतुर्भुज हाथ लगाई। तेहि लीला नृप तबलखिपाई॥

दो०—नृपति फँसेउ अति जालमें, जाइ कोठरी बीच।
चतुर्भुजी देखराइकै, पुनि बैठ्यो तन खींच॥२२५॥

याविधि तेहि जमाइ जड़ लीन्हीं। मूरख जनताको बसकीन्हीं॥
कबहुँ काहु को मूर्छित करई। नस दबाइ कौतुक उरधरई॥
है दृष्टान्त एक जग माहीं। कहतजोबुधजनसबनसराहीं॥
करत चोरि पकरेउ यक चोरा। राज सभा लायहु बरजोरा॥
राजा नाक कान तेहि काटी। अरुसमुझायहुबहुबिधिडाटी॥
राज त्यागि वह गयो पराई। सोचत करिये कौन उपाई॥
यक दिन नाचन गावन लागा। ह्वै प्रसन्न कह मम बड़ भागा॥
कह नारायण मोंहि देखाई। मोहिंआनन्द भयोअधिकाई॥
यक कह हमहिं देखात न भाई। कारन नाक न तुम्हहिं देखाई॥
तुमहूँ नाक कटावहु आई। प्रभु के दर्शन करहु सदाई॥

1—अन्धकार।

दो०—ईश दरश की चाहहित, नाक कटावत जाय ।
जिमि चलनी में दूध दुहि, पुनिपाछे पछिताय ॥२२६॥

नाक काटि याविधि समुझावा । कहहु तुमहुँ दर्शन है पावा ॥
न तु तुम कहँ हँसिहैं सबलोगा । बने समाज होत सुखभोगा ॥
याविधि बहुतन नाक कटाई । मुखकी शोभा सबन गवाँई ॥
नृप यक बसत रहेउ तेहिठामा । विद्या रहित अविद्या धामा ॥
नारायण दर्शन सुधिपाई । नाक कटे देखत प्रभुताई ॥
सो उन साधुन के ढिग गयेऊ । कहतईश दर्शनकिमि भयेऊ ॥
राजहिं तिन समुझाइ सुनीती । नारायण दर्शन की रीती ॥
तब नृप मानि बात सो लीन्ही । मुहूर्त बिचारन आज्ञादीन्ही ॥

दो०—मुहूर्त बिचारत ज्योतिषी, नाक कटन को काल ।
कस न होइ संसार में, विप्रन को बेहाल ॥२२७॥

अहह पोपजी धनि जग माँहीं । नाक कटै सो मुहूर्त बताहीं ॥
प्रात काल दशमी तिथि आवे । आठ बजे जो नाक कटावे ॥
सो नारायण दर्शन पावहिं । नारायण पंथी कहलावहिं ॥
वृद्ध सचिव यक रहेउ तहाँई । नाक कटन की तेहि सुधिपाई॥
सोचत हृदय बहुत पछिताई । यह नृप के मन केहि बिधि आई॥
गयो सचिव तब नृप के पासा । कहेउ नाथ तुम्हरी का आसा ॥
तबकहनृपतिदरशहम करिहैं । नारायण स्वरूप हिय धरिहैं ॥
आज मुहूर्त बनेउ है नीको । करि दर्शनत्यागहिंभय जीको ॥

दो०—तब मंत्री या भाँति सों, कहत नृपति समुझाइ ।
पहिले हम दर्शन करहिं, ता पीछे नृपराय ॥२२८॥

दो०—नृपतिकह्यो हे सचिवसुनु, करत कहा संकोच ।
हम डेरात नहिं नाक को, हृदय न है मम पोच ॥२२६॥
तब मंत्री या बिधि समुझाई । बिना परीक्षा करत जो भाई ॥
सो पाछे बहु विधि पछितावे । करिके कार्य दुःख अति पावे ॥
कह नृप सहस पुरुष का झूठे । जो तुम इनहीं सों हौ रूठे ॥
झूठसाँचहमकछु नहिंजानहिं । बिन परखेसोकेहिबिधिमानहिं ॥
तब पुनि परखहोहि केहिभाँती । कहत मंत्रि यक बुद्धि सोहाती ॥
जो हो सृष्टि कर्म अनुकूला । अरु प्रत्यक्ष प्रमाण समूला ॥
तब नृप कहत मूर्ख जो अहहीं । सो केहि भाँति परीक्षा लहहीं ॥
कहत मंत्रि सुनिये नृपराई । जो अतिमूर्ख हृदय कदराई ॥
सो मानहिं विद्वान न बाता । संग ते ज्ञान वृद्धि हो ताता ॥
दो०—नृपति कहेउ विद्वानवर, जो न मिलहि तेहिकाल ।
कहतसचिवपुरुषार्थ सों, ढूंढ़िलेत सबजाल ॥२३०॥
नृपति कह्यो जो होय रजाई । करहुँ सोइ जो कहहु उपाई ॥
तब कह सचिव बूढ़ मैं भयऊ । घर बैठे थोड़े दिन जियऊँ ॥
प्रथम परीक्षा हम करि लेहीं । पाछे तुम्हहिं सोख हम देहीं ॥
तब पण्डितकोपुनि बोलवाई । बहुरि मुहूरत तुरत देखाई ॥
कह पण्डित शुभ लगन सुहाई । जो श्रीमान हेत बतराई ॥
कह्यो सचिव सेना सँग लीजै । द्वै सहस्र को आज्ञा दीजै ॥
कह नृप सैन्य केर कह होई । सचिव कहत नहिं जानत सोई ॥
नियत समय सेना तहँ जाई । जहाँ रहे नकटा समुदाई ॥
देखि नृपति सब नाचन लागे । पनहु नारायण दर्शन पागे ॥

दो०—सचिव कहेउ गुरुवर सुनहु, हमहिं देखावहु ईश।
महाराज पुनि दरश करि, सबन झुकावहिं शीश॥२३१॥
ठीक मुहूरत के समय, थाल छुरी लै हाथ।
नाक काटि थाली धरी, कहत कान गहि माथ॥२३२॥
अब तुम कहहु ईश हम देखा। नाक कटे की यहहि विशेखा।
तब नृप आइ सचिव सन पूछत। कहहु कहा नारायण सूझत॥
कहत सचिव कछु नाहिं देखाई। यह सब इनकी धूरतताई।
अब प्रभु इनहिं दंड अस दीजै। पूरे जन्म कैद कर दीजै॥
अरु जेहि ने यह रीति चलाई। ताकहँ गर्धभ देहु चढ़ाई।
कालो मुख करि नगर घुमाई। पुनि श्वानन सों देहु नोचाई॥
ताते कोउ न करहि अस ढोंगा। बनहि न पंथ न हो कोउ पोंगा।
ऐसी ही पंथन की लीला। धन लीन्ह्यो नाना करि हीला॥
दो०—याविधि बहुतक भे जगत, वेद बिरोधी लोग।
स्वामी नारायण भये, सहजानन्द अयोग॥२३३॥
अरु बहुतक याविधि बहकावें। मृत्यु काल पर यह समुझावें।
सहजानन्द लखहु ये आये। श्वेत अश्व पर परम सुहाये॥
नित प्रति मन्दिर में सो आवत। आजु तुम्हार युक्तिहित धावत।
ऐसी बहुतक कहत कहानी। हैं गढ़ि लीन्ह बहुत मनमानी॥
अपने को सत्संगि बतावहिं। अरु कुसंगि दूसर ठहरावहिं।
सब वर्णन पर लिय कर बाँधी। रचि के पंथ जो माया साधी॥
कहत सदेह जात सब कोई। सहजानन्द संग जो होई।
मरत समय तेहि देत छिपाई। कहत गयो लै सँग सो भाई॥

दो०—श्रीकृष्णः सुशरणं मम, मंत्र जपत सब कोय ।
अर्थ अनर्थ न सोचहीं, उलट पलट यह होय ॥२३४॥
विद्या विमुख चलत हैं धाई । जानत कछू नाहिं प्रभुताई ॥

—माध्वमत—

एक कहत सुनिये ऋषिराई । माध्व पंथ तो हमहिं सुहाई ।
कहत स्वामि जस सब मत भाई । तैसेहि हैं जग माध्व सदाई ॥
यहहू चक्रांकित ही होहीं । कछुक विशेष बात हिय जोहीं ।
चक्रांकित यक बारहि होई । हैं रामानुज इन महँ जोई ॥
माध्व वर्ष प्रति हों चक्रांकित । श्याम माथ रेखा करि अंकित ।
पण्डित एक मिल्यो यकबारा । अरु माध्वन सों करत उचारा ॥
तिलक लगावत जो तुम भाई । अरु काली रेखा दर्शाई ।
याको फल कछु कहहु सुनाई । कहत शास्त्रि याविधि समुझाई ॥
दो०—तिलक लगावें माथ में, श्याम लगावें रेख ।
वह जावे बैकुण्ठ को, यह शास्त्रन के लेख ॥२३५॥
श्याम रंग हैं कृष्णजी, मम हिय सदा सनेह ।
श्याम रेख मस्तक धरहुँ, श्याम तिलक सो नेह ॥२३६॥
जस तुम्हारि इच्छा तस करहू । हमरो जानि श्याम तन करहू ॥
जसपाछिलहमतुम्हहिं सुनाये । तैसेहि हैं यह हूं मन भाये ॥

लिङ्गाङ्कित

एक कहत ऋषि सों अकुलाई । लिङ्गाङ्कित की कौन बड़ाई ॥
कहत ऋषी जस हैं चक्रांकित । ताही विधि यहहू है अंकित ॥

चक्र चिन्ह चक्रांकित धारत । लिगांकिततनलिंगसम्हारत ॥
महादेव को ईश्वर मानत । और काहु को कछु नहिं जानत॥
अरु पाषाण लिंग यक लेहीं । ताहि सुवर्ण माहिं मढ़ि लेहीं॥
अरु नित गले माहिंसो राखत । ताहि देखाइ भोग सब पावत ॥
शैव समान मंत्र तिन केरा । जपत रहत सब कोइ सब बेरा॥

ब्रह्मसमाज और प्रार्थना-समाज

दो०—एक कहत अति श्रेष्ठ है, जग में ब्रह्मसमाज ।
नीक नियम संगठन अति, प्रारथना सामाज ॥२३७॥

कह ऋषि कछुक बात है नीकी । अरुबहुतकमिथ्याअतिफीकी ॥
वेद विहीन सत्य किमि होई । जो कल्पना करै जग कोई ॥
इन दोहुन कछु किय उपकारा । देश इसाइन ते निर्वारा ॥
अरु पाथर पूजा कछु रोकी । तोड़े कछु कछु जाल विलोकी॥
रही न तिनमहँ देश की प्रीती । चलन लगे विदेश की रीती ॥
खान पान अरु ब्याह की रीती । बदलत रहत करत निजनीती॥
अपने पूर्वज देश वड़ाई । करत न कबहुँ प्रेम मनलाई ॥
अवशि करहिं निन्दा बहुतेरी । कहैं कीर्ति सरकार घनेरी ॥
अरुयहकहत बृटिसजबआवा । तब से हम बुधि विद्या पावा ॥

दो०—कहत सदाई मूर्ख थे, आर्य्यवर्त के लोग ।
नहिं उन्नति कबहूँ रही, लह्यो नहीं कछु भोग ॥२३८॥

निन्दा वेद करहिं दिनराती । निज उद्देश बनाइ सुजाती ॥
निज पुस्तक महँ साधु गनाए । ईसा अरु मूसा दर्शाए ॥

और मुहम्मद नानक साँई । लिख्यो तहां चैतन्य देखाई ॥
लिख्यो न है केहु ऋषिकोनामा । याते जानि परत का कामा ॥
यह तुम सोचि लेहु मनमाहीं । केहि विधिसों यह जातसराहीं ॥
पढ़ि विदेश भाषा मन बानी । बनि पंडित सब भे अभिमानी ॥
कहहु कहा यह उत्तमताई । करत रहत बालकन कि नाईं ॥
अंत्यज यवन इसाइन के सँग । सबबिधिमेलकियोतिनकेसँग ॥
खान पान कछु भेद न राख्यो । अंत्यज विप्र सबै यक भाख्यो ॥
दो०—खान पियन के भेद को, जाति पाँति को भेद ।
तोड़े उन्नति मानहीं, मिले सकल बिन खेद ॥२३९॥
यह सुधार की रीति न भाई । अवशि देश हित जात नशाई ॥
तबयकपंडित या विधिबोलत । जाति भेद यह जो जग होवत ॥
ईश्वर कृत या मनुज अधीना । कहहुस्वामिजोतवहियचीन्हा ॥
कहऋषिईशमनुजदोउकरता । जाति भेद संशय जग हरता ॥
पूछत कवन ईश कृत भाई । कवन मनुष कृत कहहु सुनाई ॥
कहऋषि मनुज वृत्तजलजाता । पशु पत्ती आदिक जो ताता ॥
हैं परमेश्वर कृत यह जाती । जे देखत प्रत्यक्ष सुहाती ॥
हस्ति अश्व गो पशुन के माहीं । तस वृत्तन बट पीपर आहीं ॥
मत्स्य मकर आदिक जे जीवा । जल जन्तू अवलोकहु जीवा ॥
दो०—लखहु ताहि विधि नरन में, विप्र क्षत्रि अरु वैश्य ।
अंत्यज शूद्र जो जातियाँ, ईश्वर करत अवश्य ॥२४०॥
पर मानव समुदाय के माहीं । ब्राह्मणादि जाती जो आहीं ॥

है सामान्य जाति में नाहीं। किन्तु विशेषात्मक सब ठाहीं॥
जा विधि पूर्व कहेउ हम भाई। देखहु हिय विचार दृढ़ाई॥
गुनअरुकर्मस्वभाव विचारी। बरन व्यवस्था लेहु निहारी॥
मानुष कृत गुन कर्म स्वभावा। पाछिल कहेउ जौन है भावा॥
ब्राह्मण क्षत्रि वैश्य शूद्रादिक। परखहुगुनअरुकर्मस्वभाविक॥
बरणव्यवस्था करहिं बिधाना। देश नृपति अरु जो विद्वाना॥
याही विधि है भोजन भेदा। ईश मनुज दोउ करत अखेदा॥
जिमिसिंहादिकजीव जोआहीं। खात मांस ते अन्न न खाहीं॥
अरु गो आदिक पशू लखाहीं। घास खात ते मांस न खाहीं॥
देश काल अरु वस्तु विभेदा। है मानुष-कृत भोजन-भेदा॥
तब यक प्रश्न करन अस लागा। देखहु यूरुप केहि विधि जागा॥
कोट बूट पतलून चढ़ाई। होटल खात सबै एकजाई॥
दो०—सबके हाथन सों सदा, खात रहत दिन-रात।
याते बहु वृद्धी भई, मम हिय यहै समात॥२४१॥
कहत स्वामि यह भूल तुम्हारी। देखहु मुसलमान नर-नारी॥
अरु अन्त्यज सब हाथन खावहिं। छुआछूतहिय बीच न लावहिं॥
पर तिनकी उन्नति नहिं होइ। याते जानि लेहु सब कोई॥
तो हम मानत हृदय सराहीं। बाल विवाह करत ते नाहीं॥
अरु पुत्रन बहु शिक्षा देहीं। व्याहस्वयम्बर सोंकरिलेहीं॥
जहँ अनुचित उपदेश न होई। तहँपाखण्ड चलतनहिं कोई॥
जो कछु करत समाज समेता। करि विचार निश्चय यकनेता॥
उन्नति जाति होइ जेहि भाँती। तन मन धन कर्तव्य सुहाती॥

दो०—देश-भक्ति अवलोकिये, है तिनकी यह रीति।
वस्तु जो उनके देश की, करत ताहिसों प्रीति ॥२४२॥

देखहु यह प्रत्यक्ष प्रमाना। धारत नाहिं विदेशी बाना ॥
लगभग बीत्यो है शत वर्षा। प्रथा न त्यागत रहत सहर्षा ॥
बनै उपानत[1] जो निज देशा। होत सो दफ्तर[2] माँहिं प्रवेशा ॥
लखहु तुम्हार तहाँ नहिं जाई। पुष्ट उपानत परम सुहाई ॥
याही ते वे हैं बुधिवाले। नाना भाँतिन यंत्र निकाले ॥
करत अरम्भ कोइ जो कामा। करि पूरा जावहिं निज धामा ॥
है यहि कारन उन्नति भाई। नतरु बूटयुत होटल खाई ॥
हैं इनहूँ महँ बहुतक भेदा। जा विधि हैं सब पन्थ विभेदा ॥

दो०—करहिं बिदेशिन ब्याहजो, बड़ अधिकारी होय।
ताहि खवावत संग नहिं, मिलैजातिनहिंसोय ॥२४३॥

करत विवाह न तिनमहँ कोई। कन्या सुत जो कोई होई ॥
जाति-भेद का वह नहिं होई। तुम्हहिं भुलावत हैं सब कोई ॥
अरु तुम मानि लेत सब बाता। बिन बिद्या नहिं समुझत ताता ॥
याते चलिये सोचि बिचारी। होय न पश्चात्ताप दुखारी ॥
रोगिन के हित ओषधि अहई। कतहुँ निरोगि न ओषधि लहई ॥
विद्यारहित सदा हैं रोगी। अरु विद्वान सुःख के भोगी ॥
इनका धर्म सबै बिलगाई। केवल भोजन माँहिं देखाई ॥
यदिकोउकरनलगैकहुँभोजन। भागत हैं तेहिते कई योजन ॥

---

१. जूता। २. न्यायालय, कचहरी आदि।

दो०—अरु यह सब सों कहत हैं, धर्मभ्रष्ट बतराय ।
ताकी सुनै न बात कोइ, नहिं बैठत नगिचाय ॥२४४॥

तब वे जात दूसरेन के सँग । याविधिनिशिदिनकाटत हैं अँग ॥
तुम स्वारथ बस रहे भुलाने । परमारथ ढिग नहिं नगिचाने ॥
ताते भयो लाभ तिन केरा । जे अज्ञानि रहे सब वेरा ॥
यदि तुम करत प्रेम को नाता । तौ काहे त्यागत पितुमाता ॥
चाहिय हमहिं करहिं उपकारा । मूरखता को तजहिं बिचारा ॥
नितप्रति होय देश की उन्नति । करैं उपाय न होवे अवनति ॥
एक कहत ऋषिवर सुनि लीजै । मम विचार हिय में तनि दीजै ॥
पुस्तक कोउ जगत के माहीं । ईश्वरकृत हम मानत नाहीं ॥
अरु सर्वांश सत्य जो होई । हमरी जानि नाहिं है कोई ॥

सो०—है कोऊ अब नाहिं, भ्रान्ति-रहित या जगत में ।
हम मानत हैं ताहि, कहै जौन निर्भ्रान्त हो ॥ १८ ॥

दो०—ताते हम निशिवासर, गहैं सत्य को पन्थ ।
असत सदा त्यागन करहिं, होय चहै जो ग्रन्थ ॥२४५॥

चहै बाइबिल होय कुराना । अरु चाहै कोउ होय पुराना ॥
हम नित ग्रहन सत्य ही करिहैं । असत कबहुँ ना हियमा धरिहैं ॥
कह तब स्वामिसुनहुचितलाई । तुम सतग्राही होत न भाई ॥
जबकोउभ्रान्तिरहितजगनाहीं । कहहु कहा तुम तिन महँ नाहीं ॥
तबतुम्हारिकसमानहिं बाता । कोउ न भ्रम बिन जब है ताता ॥
अबतुम्हारिअसगतिभइ भाई । छब्बे बनन गयो कोउ धाई ॥

सोकि तहाँपर दुबे ही रहेऊ। चौबेपना वहाँ मिटि गयऊ॥
जब सर्वज्ञ न मानव जाती। तब सत असत परख केहि भाँती॥

दो०—अवशि जानि हम सत्य को, करहिं असत सन प्रेम।
अल्पज्ञता प्रभाव ते, मानि लेहि जो नेम॥ २४६॥
याते हम अल्पज्ञ को, चाहिय ईश सहाय।
जानि तासु सर्वज्ञ गुन, नेह करहिं चितलाय॥२४७॥

जसजस लिख्यो वेद के माहीं। तेहि मानहु तुम अवशि सदाहीं॥
नाहित भ्रष्ट होहु सब भाँती। भ्रष्टन संग करे दिन-राती॥
वेद सत्य सब विधि जगमाहीं। तहाँ असत कबहूँ है नाहीं॥
ताके ग्रहन करन में कोई। शंका करत रहत जन जोई॥
ते दूसर अरु आपन हित को। खोवहिं सदा सहैं नित दुखको॥
याही ते आपन नहिं मानत। भारतवासी तुम्हहिं दुरावत॥
तुम उन्नति कारन भे नाहीं। जग महँ भिक्षुक रहे सदाहीं॥
जिमि माता सब सुत अपनाई। पालन करन लगी समुदाई॥
बात असम्भव किमि अस होई। निज सुत हू उन्नति दी खोई॥

दो०—अस गति भई तुम्हारि, वेद सत्यपथ त्यागिकै।
माने बिन सतसार, उन्नति कतहुँ न होवई॥२४८॥

जासु रोग तुम रोगी रहेऊ। ओषधि रोग कतहुँ ना लहेऊ॥
यूरुप वारे कछु ना पूछहि। तुम्हरे अर्थ उनहिं ना सूझहि॥
ताते सब मिलि करिये कर्मा। गहहु वेद-पथ जो यक धर्मा॥
जब लगि वेद पढ़त तुम नाहीं। ज्ञान न होत कबहुँ केहु ठाहीं॥

जग रचना बिन कारन जानहु । और जीव की उत्पति मानहु ॥
जा विधि मुसलमान ईसाई । ता बिधि तुम्हहूँ मानत भाई ॥
सृष्टिवर्ग तुम देखहु जाई । तहाँ लिखाबहुविधिसमुझाई ॥
जीव ईश की व्याख्या देखहु । बिन कारण कारज नहिं पेखहु ॥

सो०–है तुम्हार यक दोष, पाप छुटहिं स्तुति करे ।
यह मानत तजि रोष, हानि होत संसार को ॥१६॥

दो०–याते या संसार में, पाप बढ़े अधिकाय ।
कछु उपाय निर्मित कियो, पोपन के समुदाय ॥२४६॥

एक बार तीरथ असनाना । पाप छुटैं अस लिख्यो पुराना॥
मंत्र जाप से जैनी मानहिं । मुसलमान तोबा कहि टालहिं ॥
ईसाई यहि विधि समुझावहिं । ईसा केर भरोस बतावहिं ॥
या विधि बढ़न पाप बहु लागे । निजस्वारथबलसब अनुरागे ॥
बिन भोगे छूटत जब पापा । तौकसकरहिंपापहित दापा ॥
ब्रह्मसमाजी हू अस मानत । अरु समाज प्रारथना जानत ॥
यदि जग सुनत वेद की बानी । करहिं पाप भोगै अभिमानी ॥
तौ भय कछुक रहत उरमाहीं । बिन भयधरमहोत कहुँनाहीं ॥

दो०–जो मानत तुम जीव को, उन्नति होत अनन्त ।
सो कबहूँ नहिं होवई, प्रकृति नियम बलवन्त ॥२५०॥
गुण अरु कर्म स्वभाव फल, होय जीव के साथ ।
जब गुनकर्म अनन्त नहिं, फलअनन्तकिमि तात॥२५१॥

तबयककहत सुनहु ऋषिराई । ईश दयालु हमहिं दर्शाई ॥

है समीप दे कर्म अनन्ता। जो कृपालु ईश्वर बलवन्ता॥
तब ऋषिकहतईश असकरई। न्याय नष्ट होवहि तेहि छणई॥
कछुककर्मफलहोहिं अनन्ता। पाप छुटै दर्शन किए सन्ता॥
करि प्रारथना पाप जो छूटत। तौ पुनि कर्मअवशिजगभूलत॥
याविधिबढ़हिंपाप जगमाहीं। हानि धर्म की होत सदाहीं॥
बहुरिकहतऋषिसोंसमुझाई। हम स्वाभाविक ज्ञान सदाई॥
मानत बड़ा वेद से सोई। नहिं मानत नैमित्तिक जोई॥

दो०–स्वाभाविक मानत सदा, नैमित्तिक को नाहिं।
ईश दयो यहि कारन, पढ़हिं वेद हम जाहिं॥२५२॥

जो न होत स्वाभाविक ज्ञाना। दीन ईश मोहिं समरथजाना॥
हम कस पढ़त वेद की बानी। कससमुझतअरुहोवें ज्ञानी॥
स्वामिकहतयहबात तुम्हारी। अर्थ रहित जस कहत अनारी॥
वह स्वाभाविक ज्ञान न होई। देत काहु को दूसर कोई॥
ना वह घटत न बढ़त कदाई। तौ उन्नति कस होत लखाई॥
वनमानुषन माँहिं है ज्ञाना। स्वाभाविक जो कहत बिधाना॥
तदपि न वे उन्नति निज करहीं। उन्नति नैमित्तिक उच्चरहीं॥
ज्ञान सहित पुरुषारथ करई। पावे सुख आलस तन हरई॥

दो०–देखहु मनहिं विचारि सब, बाल काल को भेव।
धर्माधर्म न जानहीं, जानत नाहिं कुटेव॥२५३॥

जब विद्वानन सों पढ़ि लीन्हा। तब कर्तव्य कर्म हम चीन्हा॥
जानेहु धर्म अधर्म का भावा। यह स्वाभाविक ज्ञान कहावा॥

जो तुम पूर्व जन्म नहिं मानेहु । सो इसाइ यवनन सों आनेहु ॥
समुझहु नित्य शाश्वत जीवा । कर्म सुनित्य प्रवाह अतीवा ॥
कर्ता कर्म नित्य सम्बन्धा । कहा जीव बैठत बिन धन्धा ॥
तुम्हरी जानि ईश अस होई । है निरउद्यम बैठत सोई ॥
यदि तुम पुनरजन्म नहिं मानत । पापपुन्यफलकेहिबिधिपावत ॥
कर्म नाश नहिं बिन फल भोगे । बात तुम्हारी यहहु अयोगे ॥

दो०-बात तुम्हारी एक यह, हम मानहिं केहि भाँति ।
विद्या धर्म स्वभावयुत, कहहिं न देवसुहाति ॥२५४॥

देव न होत जगत के माँहीं । ईशहिं महादेव किमि कहहीं ॥
हवनादिक जो क्रिया विशेषा । जो कर्तव्य कर्म अवशेषा ॥
तेहि उत्तम समुझततुमनाहीं । मानत नहिं उपकार कदाहीं ॥
यह न नीक सिद्धान्त तुम्हारा । और सुनहु जो तव ब्यवहारा ॥
ऋषी महर्षिन किय उपकारा । नहिं मानत तुम वह व्यवहारा ॥
अरु आधुनिकईसादिक जो नर ।तिनपथचलेहुकियोबहुआदर ॥
और असम्भव कहहु सुनाई । बिना वेद विद्या करताई ॥
शिखा जनेऊ विद्या अंगा । त्यागि देत तुम करत कुसंगा ॥
यवन इसाइन के सम घूमत । धर्म-चिह्न को सबबिधिभूलत ॥

दो०-जब तुम धारत कोट को, अरु पतलून सम्हारि ।
तब पवीत केतो बड़ो, डारत जासु निकारि ॥२५५॥

मान अर्थ तमगा बहु डारत । बढ़तसुयशजेहिजोकछुभावत ॥
तब किमिवैदिकचिह्न बिहाई । कुरवावत तुम धर्म हँसाई ॥

आर्यवर्तबहु ऋषिमुनिभयेऊ । तिनको कछू ध्यान ना दयेऊ ॥
और बिदेशिन करत बड़ाई । करत खुसामद नित्य डराई ॥
बीजांकुर सों उत्पति मानत । जीव केरि या विधि बतरावत ॥
कहत होत जड़ चेतन योगा । उपजत जीव करत सब भोगा ॥
यह विरुद्ध सब भाँति लखाई । उपज जीव की जो दर्शाई ॥
उत्पति पूर्व कहा नहिं चेतन । का न रहेउ जड़ आवत है मन ॥

दो०—जड़ चेतन दोउ ना रहे, भयो सो किमि संयोग ।
यदि मानत हो आदि ते, कछुक ठीक हो याग ॥२५६॥

पर यह मानत जो तुम भाई । सृष्टि पूर्व कछु नाहिं लखाई ॥
ना कोइ तत्त्व न जीवविधाना । केवल ईश्वर को ही माना ॥
पक्ष तुम्हार बृथा सब भाँती । मानहु बात जो चित्तसमाती ॥
तौ तुम आर्यसमाज के साथा । चलहु सकल मिलि गहिके हाथा ॥
तेहि अनुकुल करहु आचरना । पावहु सुःख जाइ नहिं बरना ॥
नतरु हाथ लागै कछु भाई । ताते सब मिलि करहु उपाई ॥
हमकोउचित यहैनिसिवासर । करहिंस्वदेशवस्तु सँग आदर ॥
देश पदारथ बनेउ शरीरा । ताही सों पालित मतिधीरा ॥

दो०—ताकी उन्नति नेह सों, करहु सकल मिलि धाय ।
उन्नति ही के कारने, आर्यसमाज लखाय ॥२५७॥

दूसर कोउ न करत हित इतना । देश हेत उपकारी जितना ॥
एक कहत ऋषि सों कर जोरी । आप करत खंडन बर जोरी ॥
हमरी जानि जौन जेहि धर्मा । श्रेष्ठ लखात जो है निज धर्मा ॥

याते काहु न करिये खंडन । यदि तुम करत बतावहु मंडन ॥
तुव समान जग में कोउ नाहीं । भयो, न है, का हुइहै नाहीं ॥
तुम्हरे योग उचित अस नाहीं । करतजोतुमअभिमानसदाहीं ॥
स्वामि कहतमोहिं कहहुबुझाई । होत धर्म सबका यक भाई ॥
अथवा होत अनेक प्रकारा । जानिपरमहित जो जेहि धारा ॥

दो०—यदि यह कहहु अनेक हैं, तौ बतरावहु तात ।
है विरुद्ध अथवा नहीं, एक से दूसर बात ॥२५८॥

यदि अविरुद्ध विचारहु ओही । तो पृथकता व्यर्थ ही होही ॥
या ते एकहि धर्म अधर्मा । नहिं अनेक हैं यामें कर्मा ॥
यह ही बात हमारि विशेषा । देखहु खोजि रहत यक शेषा ॥
सकल पंथ यकठौर करीजै । एक सहस्र तिनहिं गनि लीजै ॥
तिन महँ मुख्य भाग हैं चारी । लिख्यो बहुत विधिहै विस्तारी ॥
जैनी और पुरानि किरानी । और कहत हैं जाहि कुरानी ॥
इन महँ आइ जात सब पन्था । सबन बनाये निज निज ग्रन्था ॥
यदि कोउ राजा करहि उपाई । करहि सभा इन सबन बोलाई ॥

दो०—तो यह या विधि कहत सब, सुनहु सुनावहु भ्रात ।
भई एक जिज्ञासु की, वाममार्गि सन बात ॥२५९॥

सो०—कहहु मोहिं समुझाइ, कौन धर्म है श्रेष्ठ अति ।
धारहिं हम सुखदाइ, करैं गुरू हम नेह सों ॥२०॥

तबहीं बाममार्गि अस कहेऊ । सबसे श्रेष्ठ धर्म मम ठयऊ ॥
तब जिज्ञासु कहत गुरुराई । और जो केतिक धर्म लखाई ॥

नवशत निन्नानबे जे धर्मा । तुम्हरी जानि सबै बेधर्मा ॥
कहत बामि ते सब हैं झूठे । जाहिं नरक जो हमसों रूठे ॥
बचन[1] प्रमान सुनहु चितलाई । धर्म हमार परे कोउ नाहीं ॥
पूछत धर्म आपनो कहहू । कहत सुनहु जो जानन चहहू ॥
देवी इष्ट सदा हम मानहिं । मद्य मांस हम सब कुछ खावहिं ॥

दो०—सेवहिं पंचमकार[2] को, मानहिं चौंसठ तंत्र ।
मुक्ति चहत जो कोउ नर, जपत हमारो मंत्र ॥२६०॥

तब जिज्ञासु कहत हम जाई । पूछहिं साधु सन्त मिलि साईं ॥
तौ जामें मम श्रद्धा होवै । धारन करहुँ जो मम दुख खोवै ॥
कहत वामि परिहहु भ्रमजाला । बिछे जाल बहुतक यहि काला ॥
अरु बहकाइ लेहिं सब लोगा । मिलहिं न तुमहिं कछु कउ पभोगा ॥
तुम न जाहु काहू ढिग भाई । मम शरणागत रहहु सदाई ॥
नतु पछितैहौ मोहिं बिहाई । मोक्ष भोग दोनों नहिं पाई ॥
हमरे निकट दुओ सुख मिलहीं । चेला होत सो आनँद लहहीं ॥
कह जिज्ञासु देखि हम आवहिं । ढूँढ़त और कोउ मिलि जावहिं ॥
तौ लगि शैव मिल्यो एक आगे । तेहि पूछत हिय अति अनुरागे ॥

दो०—तेहि सन पूछत प्रेम सों, धर्म ग्रहन की बात ।
बाममार्गि सम सब कही, एक विशेष लखात ॥२६१॥

---

१. कौलात्परतरं नहि ।

२. मद्यं[1], मांसं[2], च मीनं च[3] मुद्रा[4] मैथुन[5] मेव च ।
एते पञ्च मकाराः मोक्षदा हि युगे-युगे ॥

बिन रुद्राक्ष भस्म हिय धारे। लिङ्गार्चन बिन जात न पारे ॥
तहहूँ जग संतोष न भयऊ। तबहिं एक वेदान्ती मिलेऊ ॥
ता सन पूछि उठेउ अकुलाई। धर्म तुम्हार कौन है भाई ॥
कहत वेदान्ति सुनहु ममबाता। धर्माधर्म जो हैं जग ताता ॥
हम तिनको कछु मानत नाहीं। हम साक्षात सुब्रह्म सदाहीं ॥
हममें धर्माधर्म न भाई। यह जग मिथ्या परत लखाई ॥
चेतन शुद्ध बनन जो चहहू। तौ सर्वत्र ब्रह्म ही लहहू ॥
दो०–जीवभाव को त्यागि कै, नित्य मुक्त ह्वै जाउ।
ब्रह्म मानिये आपको, करहु न और उपाउ ॥२६२॥
तब जिज्ञासू इमि कहत, नित्य मुक्त तुम ब्रह्म।
तौ गुनकर्मस्वभाव किमि, होत न तुम महँ ब्रह्म ॥२६३॥
ब्रह्म रूप ह्व बन्धन माँहीं। रहिकिमिभोगतदुःखसदाहीं ॥
तब वेदान्ति कहत यहि भाँती। दुख नहिं भोगत हमरी जाती ॥
हम नहिं बन्धन माँहिं कदाई। हम देखत हैं ब्रह्म सदाई ॥
तुमहिं देखात शरीर शरीरा। ताते भ्रमत सहत दुख पीरा ॥
बहुरि कहत तुम देखत काको। तुम हौ कौन जो देखत जाको ॥
उतर देत हम ब्रह्म को देखत। हमहैं ब्रह्म सकल ब्रह्म पेखत ॥
तब जिज्ञासू कहत सुनाई। ब्रह्म कहा दुइ मानत भाई ॥
कहत वेदान्ती हम इमि पेखत। दुइ न होहिं अपने को देखत ॥
दो०–तब जिज्ञासू कहत इमि, उदाहरण दै भाय।
निज काँधे परपुरुष कोउ, बैठत आप सिहाय ॥२६४॥

बात तुम्हारि कछू नहिं भावे । पागलपना हमहिं दिखरावे ॥
पुनि जैनी ढिग पूछत जाई । तिनहूँ वैसिहि बात सुनाई ॥
तनिक विशेष कहीं तिन बाता । जैन धर्म ही श्रेष्ठ लखाता ॥
ईश अनादि न है जग कर्ता । ना कोइ याको है संहर्ता ॥
आदि काल से जस चलि आवा । तैसहि रहै सदा यह भावा ॥
याते होहु हमारे चेला । झेलत काहेक बहुत झमेला ॥
वाद विवाद कियो बहुतेरा । पुनि आगे चलि दूसर हेरा ॥
तौ लगि मिल्यो एक ईसाई । इनहूँ सों बहु बुद्धि लड़ाई ॥
जो न करहि ईसा विश्वासा । सो तजि देहि मुक्ति की आसा ॥
सबके पाप हरन के कारन । प्रान दिये किय भक्त उबारन ॥

दो०—तब इसाइ या विधि कहत, पापी नर सब कोइ ।
निज सामर्थ्य न छूटई, पाप कियो है जोइ ॥२६५॥

दो०—आये तेहि छिन मौलवी, तिनहू सन भइ बात ।
वैसी ही बातैं भईं, जस पीछे दिखरात ॥२६६॥

कही विशेष बात तिन एका । लाशरीक[1] है ईश विवेका ॥
बिन पैग़म्बर[2] और कुराना । कोउ न पावत ईश समाना ॥
जो इस्लाम धरम नहिं मानत । सो नर अवशि नरक को पावत ॥
तिन कहँ हिन्दू काफिर कहहीं । हैं यह हनन योग दुख सहहीं ॥
बहुरि गयो वैष्णव के पासा । कथा सुनत तहँ भयउ निरासा ॥
कहत वैष्णव ताहि सुनाईं । तिलक देखि यम हमहिं डराईं ॥

---

१. दूसरा शरीक न हो । २. हज़रत मुहम्मद ।

तब जिज्ञासू यह मन लावत । चोर न डरत न डाकू भागत ॥
पुनि यमराज डरहिं कहु कैसे । या विधि भरमत फिरत अनैसे ॥
दो०—बहुतक मतवादी जहाँ, गयो तहाँ जिज्ञासु ।
अपनी-अपनी सब कहत, सबहिं बुलावत आसु ॥२६७॥
कबिरा कहत हमारी मानहु । औरन को कछुहू ना जानहु ॥
नानक दादू आदिक जेते । माधव वल्लभ गुरु हैं तेते ॥
जानि परत सब किये दुकाना । रचत ढोंग विधिकरत महाना ॥
आपन आपन करत बड़ाई । रहत विरोध महा अधिकाई ॥
याते गुरु करिबे के योगा । नहिं जानहुँ हैं ये सब लोगा ॥
ताते गुरु-महिमा जस बरनी । मुण्डक उपनिषद्हु हितकरनी ॥
छं०—सतज्ञान अर्थ सो जाइ गुरु पहँ बाँधि कर बिनती करै ।
हो ब्रह्मनिष्ठ अरु वेदज्ञाता भेंट कछु आगे धरै ॥
जिज्ञासु जानि जितेन्द्रि गुरु उपदेश बहु बिधि सों करै ।
जेहि धर्म अर्थ सुकामनादिक मोक्ष पथ सहजहिं सरै १६
छं०—जब मिल्यो याविधि को गुरु तहँ जाइ तेहिं बिनती करी ।
भ्रमि फिर्‌यो सारे जगत में नहिं कामना कछुहू सरी ॥
अवलोकि आपस में विरोध टिक्यो न मन एकौ घरी ।
अब करहु किरपा "इष्ट" मोपर देहु पथ औगुन हरी १७
दो०—जासु बात सों एकमत, होत सहस एकबार ।
सोई सत्य कहात जग, वेद-मार्ग सुखसार ॥२६८॥
कहत कहहु परखहु केहि भाँती । गुरु कहँ पछहु बात सुहाती ॥

तब पुनि गयो जहाँ सब अहहीं । करतप्रपंच दुसह दुख सहहीं ॥
पूछत सुनहु हमारी बाता । उतरदेहुसब मिलि मोहिंताता ॥
बोलन सत्य धर्म कस भाई । और असत का कहहु सुनाई ॥
सत्य धर्म अरु असत अधर्मा । पढ़ि वि..ा जानहिं सब मर्मा ॥
ब्रह्मचर्य्य है धर्म सुहावा । अरु अधर्म व्यभिचार कहावा ॥
तबसब कहन लगे हम मानत । जो तुम आजु सभामहँ भाखत ॥
तबवहकहतचलतकिमिनाहीं । उतर देत बहु भाँति कराहीं ॥

सो०—कहत जो तुम समुझाइ, करन लगैं तेहि भाँति हम ।
तौ हमार सब जाइ, धन सम्पति जो निकट मम ॥२१॥

दो०—अरु कोऊ संसार में, सुनहि न हमरी बात ।
जो कछु ढोंग रचैं नहीं, नहिं आवहि कोउ तात ॥२६९॥

हमरी सुनहु अनोखी रीती । राजा प्रजा करत सब प्रीती ॥
याते राजा हू बस मोरे । फँसत ढोंग आवत सब नेरे ॥
अबहिं करत आनन्द बधाई । जबजस होहि सहहुँतस भाई ॥
बात तुम्हारी जो हम मानहिं । तो अपने सारे सुख त्यागहिं ॥
बालापन विद्या को पढ़हीं । पुनि उपदेश सबन को करहीं ॥
हम किमिकरहिंमहापुरुषारथ । मिलहिहमहि धनबिनपुरुषारथ ॥
टका धरम अरु टका है कर्मा । टका परमपद जानहु मर्मा ॥
जा घर टका नाहिं देखराई । करत टकाहित टकटक धाई ॥

दो०—अंश कला सोलह कहीं, जो ईश्वर के माँहिं ।
सो यह रुपया के लिये, हैं प्रत्यक्ष लखाहिं ॥२७०॥

खूब कमाइ खाहिं बहु भाँती । याही सुख मानत सब जाती ॥
बिना परिश्रम आनँद भोगत । सुखपूर्वकहमनिशिदिनसोवत ॥
जो जग मूढ़ बुद्धि धनवाना । तिनहिं देत उपदेश महाना ॥
हम कंठी तिन कहँ पहिराई । चेला तुरतहि लीन्ह बनाई ॥
फिर वह पशु समान मम बाता । मानत कहत जो हमहैं ताता ॥
मोहिं समुझावत जो तुम भाई । करहु नौकरी धनहित जाई ॥
सो हम वृथा मूढ़ को मारहिं । धनहितकिमिकारजउरधारहिं ॥
तब जिज्ञासू कहत सचेता । तुमहिं देत धन वह केहि हेता ॥
तब मतवादी कहत सुनाई । धर्म मुक्ति हित देत सदाई ॥

दो०—तब जिज्ञासू इमि कहत, तुम न मुक्ति को रूप ।
तो तुम्हारि सेवा किये, किमि हों मुक्तस्वरूप ॥२७१॥

तब मतवादी कहत बुझाई । मिलतनतेहियहिलोक कदाई ॥
मोहिं देत जो धन हर्षाई । अरु मम सेवा करत बनाई ॥
मिलत सो है परलोक सदाई । कह जिज्ञासुसुनहुचितलाई ॥
जो यह देत अवशि सो पावत । अथवा जो कछु होय कहावत ॥
तुम्हहिं मिलतकह कहहुसुनाई । नरक मिले या अन्य जो भाई ॥
तब मतवादी कहत पुकारी । जो हम भजन करत सुखकारी ॥
सोई हम कहँ मिलहिं सप्रीती । यह है धर्मशास्त्र की रीती ॥
हँसि जिज्ञासू बहुरि सुनावत । तुम नित द्रव्य देत ही धावत ॥

दो०—वह यहहीं रहि जात है, मिल्यो जो किये अनीत ।
यदि तुम ईश्वर को भजत, आतम होत पुनीत ॥२७२॥

दो०–तब मतवादी कहत इमि, हम अशुद्ध केहि भाँति।
अरु जान्यो केहि रीतिसों, तुमको कहा देखाति ॥२७३॥

कह जिज्ञासु जो तव व्यवहारा। जानि लेत जाते संसारा॥
अरु तुम भीतर महा अपावन। कह मतवादि सुनहु बड़ेपावन॥
साधुन को व्यवहार न जानहु। फिरि काहे बहु बातबखानहु॥
हस्ति-दन्त सम मम व्यवहारा। और खात देखरावत न्यारा॥
तस भीतर हम पावन रहहीं। बाहर लीला सबन देखाहीं॥
कह जिज्ञासु जो अन्तर पावन। तो बाहर कस होत अपावन॥
याते मलिन तुम्हारो अन्तर। कह मतवादि शुद्ध मम मन्तर॥
हम चाहे जस होवें भाई। पावन शिष्य हमार सदाई॥
कहत जिज्ञासु गुरू जसमेला। होवहि तैसेही वह चेला॥
कह मतवादि एक मत नाहीं। होत पुरुष कबहूँ कोउनाहीं॥

दो०–है गुनकर्म स्वभाव नहिं, सकल जनन को एक।
भिन्न-भिन्न हुइ जात मत, याते लखहु अनेक॥२७४॥

तब जिज्ञासु कहत समुझाई। बाल-काल की रीति बताई॥
बाल अवस्था शिक्षा देई। सतवादी हो यतन करेई॥
सत्य धर्म अरु झूठ अधर्मा। करत रहत जो कोउ जस कर्मा॥
तस स्वभाव ताको बनि जाई। यह जग रीति सदा चलिआई॥
जब धर्मी जग होत घनेरे। तब दुख कतहुँ न आवत नेरे॥
यदि उपदेश करहि विद्वाना। होहिं एक सब तजि अभिमाना॥
मतवादी कह कलियुग आही। तुमकहँ सतयुग बात सोहाही॥

कलियुग में सतयुग कस होई। दीन्हो धर्म कर्म सब खोई॥

दो०—दोष नहीं जिज्ञासु कह, कलियुग को है भाय।
काल सदा निष्क्रिय रहत, समय गती अधिकाय॥२७५॥

काल करत नहिं धर्म अधर्मा। नहिं साधक नहिं बाधक कर्मा॥
तुमहिं बने कलिकाल कि मूरति। करि कुसंग खोई सब कीरति॥
यह सतसंग दोष जग माँहीं। नहिं स्वाभाविक परत लखाहीं॥
यह कहि गयो आप्त[1] के पासा। जिज्ञासू मन भयो हुलासा[2]॥
नाथ कियो है मम उद्धारा। केवल हमहिं तुम्हार सहारा॥
नतरु जात पाखंडिन में फँसि। धर्म कर्म सब जात तहाँ धँसि॥
अब हम खंडन करहिं सदाई। अरु सत मंडन प्रेम बढ़ाई॥
आप्त पुरुष कह मानुष धर्मा। विद्यावित संन्यासिन कर्मा॥
करहिं सदा सत को उपदेशा। नहिं जग रहहि असत लवलेशा॥

दो०—एक कहत ऋषिराजसों, नाथ कहहु समुझाय।
जो ब्रह्मचारि लखात जग, अरु सँन्यासि समुदाय॥२७६॥

ये हैं ठीक कहहु ऋषिराई। अथवा कस यह परत लखाई॥
स्वामि कहत आश्रम तौ ठीका। पर यह करम करत हैं फीका॥
कोऊ जटा बढ़ावत रहहीं। अरु निजमुख ब्रह्मचारी कहहीं॥
कोउ लघुव्यय में होत संन्यासी। निबहत नाँहि परत गलफाँसी॥
इनमहँ वेद व्रती जो होई। तेहि ब्रह्मचारि कहत सबकोई॥
झूठ मूठ त्यागी बनि डोलत। हम हैं ब्रह्म यहै वह बोलत॥

---

१. वेद-धर्म का ज्ञाता, ईश्वर-विश्वासी। २. प्रसन्न।

यह तो डरत पाप ते नाहीं। मानत ब्रह्म सदा सब ठाहीं॥
देखहु कैसी उलटी रीती। ईश सामुहे करत कुरीती॥
दो०—अस संन्यासी जगत में, वृथा करत हैं वास।
जो न चहत हित और को, करत रहत निज आस॥२७७॥
तब पूछत गिरि भारती, पुरी गोसाईं सन्त।
अहहिं श्रेष्ठ यह जगत में, कहहु कहा भगवन्त॥२७८॥
यह मंडली बाँधिकर डोलत। देत अनन्द आप बहु भोगत॥
अरु अद्वैत करत उपदेसा। अरु कछु पढ़त रहत निशि द्योसा॥
याते जानि परत मोहिं नीके। भाव न जानहुँ इनके जीके॥
तब ऋषि कहत सुनहु मन लाई। इन दश नामन की प्रभुताई॥
कल्पित करि पीछे को लीन्हे। महामूर्ख बहु विद्या हीने॥
भोजन हेत बनावत मंडल। करत दम्भ ते घूमत जंगल॥
सब मह एक महन्त बनावहिं। हाथ जोड़ि सब पुष्प चढ़ावहिं॥
भाँति भाँति श्लोक[1] रचाई। पढ़हिं सकल मिलि प्रेम बढ़ाई॥
दो०—हर हर अस भाषन करहिं, अरु बरसावत फूल।
साष्टाङ्ग परनाम करि, जानि गुरू एक मूल॥२७९॥
जो रहि संग असकरहिं न भाई। ताकहँ तहाँ रहब दुखदाई॥
जग दिखरावन हित असकरहीं। श्रद्धा कछू नाहिं उर धरहीं॥
केतिक मठधारी जग माहीं। बनि गृहस्थ संन्यास लजाहीं॥
संन्यासिन गुन कर्म स्वभाऊ। कहेउ जो पाछिल[2] है सब भाऊ॥

---

१. नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च। व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्॥ आदि। २. [illegible]-सागर के ९वें तरंग में देखो

भस्म करत धारन हैं केतिक। अरु रुद्राक्ष धरत अँग जेतिक॥
हों चक्रांकित फिरत भुलाने। खंडन-मंडन कछु नहिं जाने॥
याही तें बहु वेद विरोधी। भये जगतबिचअधिककुरोधी॥
मुसलमान जैनी ईसाई। बढ़े जगतबिचअधिक मुसाई॥
दो०—यह सब तुम्हरे अंग हैं, त्यागि दीन्ह निज धर्म।
करत रहत संसार में, जो मन भावे कर्म॥२८०॥
डूबे लालच गुरु संन्यासी। कछु न कह्यो ते रहे उदासी॥
लोक वित्त अरु पुत्र ईषणा। करतरहतनिशिदिनअन्वेष्णा[1]॥
यह इषणा छूटत नहिं जौलगि। नहिं संन्यासि होतहै तौलगि॥
जिमि गृहस्थ सब हों व्यवहारी। ताही विधि साधू आचारी॥
सन्मुख बढ़त पखंड जमाना। होत यवन ईसाई नाना॥
तनिक न गृह की रक्षा कीनी। मिलनरीतिसबही तजि दीनी॥
स्वारथ त्यागि देश-हित करिये। वेद-धर्म-शिक्षा हिय धरिये॥
त्यागहु धूर्तपने की बातैं। करत रहत हौ जो तुम घातैं॥
दो०—यदि चाहहु उन्नति जगत, गहहु वेद को पंथ।
आश्रम विधि प्रचलित करहु, पढ़हु सदासद्ग्रंथ॥२८१॥
बहुत कहैं पाखंड की बाता। लखि मानत साँची बहु ताता॥
जिमि धनसारी[2] ठगन कहानी। सुनहुजोकरतरहत मनमानी॥
पाँच सात मिलि जात विदेसा। साधक सिद्ध सरूप विशेसा॥
लखत जहाँ धनिकन को ग्रामा। तहाँ बनावत अपनो ठामा॥

---

१. ढूँढ़ते रहना। २. यह एक प्रकार के ठगी करनेवाले होते हैं।

बन उपवन बाटिका सुहाई। देत सिद्ध को तहाँ टिकाई॥
अरु साधक सब ग्रामन जाई। करत बहुत विधि तासु बड़ाई॥
पूछत कोउ सिद्ध की बाता। कहत बतावत हित की बाता॥
सब विधि लै अन्तर को भावा। सँगलैगृहस्थसिद्ध ढिगआवा॥

दो०—लाला साधक सिद्ध की, जानि बचहु सब लोग।
फँसहि जो इनके जाल में, सोपात्रतदुखभोग॥२८२॥

लिय संकेत[1] कछुक निर्धारी। तावत ताको नियम बिचारी॥
बैठत ही बोलत करि क्रोधा। जीतहु शत्रु बिनाबनि ओधा॥
का हम वैद्य जो रोग बतावहिं। अरुधनदैकातुम्हहिंरिझावहिं॥
सिद्ध कही जब मन की बाता। जानि लीन्ह याही फलदाता॥
तब साधक या विधिसमुझावत। मनगामी गुरुवरतुम जानत॥
करन चहहु जो कछु तुम सेवा। भेंट देहु जो कछु धन मेवा॥
सो तुम करहु प्रेमयुत भाई। ना जानहि यह कब रमिजाई॥
जब बहुतक मेला लगि जावे। तबसाधकतेहि मौन सधावे॥
कोउ साधकन देत बतराई। ताकहँ ताही बिधि लै जाई॥

---

१. जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहिनी ओर, जिसको पुत्र की इच्छा हो उसे सन्मुख, जिसको रोग-निवारण की इच्छा हो उसको बाँई ओर, जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उन सबों को उसी उसी भाँति लाकर बैठाते हैं। जो पिता रोगी हो तो साधक अँगूठा, माता हो, तो तर्जनी, जो भाई हो, तो मध्यमा, स्त्री हो, तो अनामिका, कन्या हो तो कनिष्ठिका साधक दिखा देता है।

दो०—कोउ मेवा मिष्टानयुत, धरत सिद्ध के पास।
धन सम्पतिअर्पनकरहिं, करिकेबहु विश्वास॥२८३॥

पुत्र हेत केहु आशिष देहीं। काहुहि दै राखी ठगि लेहीं॥
जब तक चढ़त भेंट अरु पूजा। तबतककरत उपाय न दूजा॥
या विधि धन लै लीन्ह विशेषा। गये बहुरि वह अपने देशा॥
जब नर ठगे जात यहि भाँती। तबहिं परीक्षा रीति सुहाती॥
बिन विद्या नहिं होत परीक्षा। अरुनहिंहोत धरमधनरक्षा॥
होत अविद्या बढ़त कुसंगा। तहाँ न रहत धरम के अंगा॥
याते बालकाल से भाई। देहु सदा शिक्षा सुखदाई॥
विद्या पढ़हिं धर्म को जानहिं। ज्ञानी ह्वै सत असतविचारहिं॥
मुनि चाणक्य[1] कह्यो यहि भाँती। सुख पावत मानत जो जाती॥

छं०—जानत न कोऊ जासु गुन निन्दा सदा ताकी करैं।
जा भाँति मुक्ता त्यागि भिल्लिनि जाइ गुंजाहियधरैं॥
तेहि भाँति वेद न जानि महिमा अन्य ग्रन्थन को गहैं।
सो "इष्ट" कछु पावैं नहीं संसार में भरमत रहैं॥१८॥

दो०—जो धार्मिक सत्पुरुष हैं, पुरुषार्थी विद्वान।
अरु सुशील योगी महा, इन्द्रियजित बलवान॥२८४॥

---

१. न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं, स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किराती करिकुम्भजातां, मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुंजाम्॥
चा॰नी०, अ० ११, श्लोक १२.

दो०--धर्म, अर्थ अरु काम को, पावत मोक्ष निदान ।
जन्म और परजन्म में, भोगत सुःखमहान ॥२८५॥

बसत जो आर्यवर्त के माँहीं । मत तिन महँ जो कछु दर्शाहीं ॥
कह्यो तिनहिं संक्षेप विधाना । नाहिं त बाढ़त ग्रंथ महाना ॥
अब कछु आर्यवर्त के राजा । रहे आर्य जहँ लगि महराजा ॥
स्वायंभुव से पांडवताई । है भारत इतिहास लखाई ॥
धर्मराज से जहँ लगि भाई । है यशपाल केरि प्रभुताई ॥
सो सब समय सुनहु चितलाई । लिखा जो हम यक स्थलपाई[1] ॥
ताको तुम्हरे सन्मुख लाई । कहिहौं प्रेमसहित समुझाई ॥
आर्यवर्त्त रजधानि सुहाई । इन्द्रप्रस्थ (देहली) सुखदाई ॥
तहाँ युधिष्ठिर से यश पाला । बरणन करहुँ राज्य को काला ॥

दो०--वर्ष मास दिन जो कियो, राजपुरुष ने राज ।
जानि लेहु सब भाँति सों, भे जो यहँ महराज ॥२८६॥
पांडव लों राजा रहे, चक्रवर्ति सरताज ।
सर्वदेश पर हम रहे, शासकसहितसमाज ॥२८७॥

---

१. विद्यार्थियों की समिति से 'हरिश्चन्द्र-चंद्रिका,' और 'मोहन-चन्द्रिका' यह पाक्षिक पत्र श्रीनाथद्वार से निकलता था जो राजपूताना, चित्तौड़ में सबको विदित है । उसी से हमने अनुवाद किया है । उस पत्रसम्पादक ने एक लेख प्राचीन पुस्तक संवत् १७८२ की लिखी हुई में से संवत् १९३९ वि० मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक-पत्रों में छपा है ।

नृपति युधिष्ठिर से यहि भाँती । एक शत चौबिस पीढ़ि सुहाती ॥
चारि सहस्र एक शत वर्षा । पुनि सत्तावन तक उत्कर्षा ॥
अरु नवमास चतुर्दश राती । आर्य राज्य तहँ रहा सुहाती ॥
सुनहु 'युधिष्ठिर'-वंश कहानी । पीढ़ी तीस जो हैं अनुमानी ॥
एक सहस शत सात प्रमाना । सत्तर वर्ष राज अनुमाना ॥
मास एकादश दश दिन ताईं । कियो राज्य तेहि वंश सुहाईं ॥
छत्तिस वर्ष 'युधिष्ठिर' कीन्हा । मास आठ पच्चिस दिन चीन्हा ॥
तिनके बाद 'परीच्छित' राजा । वर्ष साठ लग भे महराजा ॥
राजा 'जन्मेजय' पुनि भयऊ । चौरासी सम्बत तहँ ठयऊ ॥
सात मास तेइस दिन औरा । कह जन्मेजय राज्य को ब्यौरा ॥

दो०- 'अश्वमेध' ने राज्य किय, वर्ष बयासी माँहिं ।
　　आठ मास बाइस दिवस, राज स्वतंत्र सराहिं ॥२८८॥

'द्वितिय राम' अट्ठासी जानौ । युग्म मास दिन आठ प्रमानौ ॥
राज 'छत्रमल' किय हर्षाई । इक्कासी सम्बत लौं भाई ॥
मास एकादस दिन सत्ताइस । बहुरि 'चित्ररथ' तेहि अपनाइस ॥
किय पचहत्तर वर्ष प्रमाना । तीन मास अष्टादश अहना ॥
'दुष्टशैल्य' पुनि भे युवराजा । वर्ष पछत्तर कीन्हो राजा ॥
मास सुदश चौबिस दिन औरा । आगे 'उग्रसेन' को ब्यौरा ॥
तिन अठहत्तर वर्ष समाना । सात मास इकइस दिन जाना ॥

---

१. १२४ पीढ़ी ४१५७ वर्ष, ९ मास. १४ दिन महाभारत के पश्चात् आर्य-राज्य रहा ।

इतनहिं 'सूरसेन' ने कीन्हा। पीछे 'भुवनपती' ने लीन्हा॥
तिन उनहत्तर वर्ष प्रभाऊ। मास पाँच दिन पाँच उछाहू॥

दो०—बहुरि भयो 'रणजीत' नृप, पैंसठ वर्ष प्रमान।
दशमहिनाअरुचारिदिन, राजकियोअनुमान॥२८९॥

बहुरि भये 'ऋक्षक' तहँ राजा। कियोराजतिनसहितसमाजा॥
सप्त मास अरु चौंसठ वर्षा। चारि दिवस लौं कीन सहर्षा॥
पुनि 'सुखदेव' राजतहँ कीन्हा। बासठ वर्ष प्रजा हित चीन्हा॥
वर्ष इकावन 'नरहरि' देवा। मास सुदशद्विदिन की सेवा॥
'सुचिरथ' वर्ष बयालिस लहेऊ। ग्यारह मास दिवसद्वि रहेऊ॥
'दूसर सूरसेन' सःहर्षा। दस महिना अट्ठावन वर्षा॥
और आठ दिन कीन्ह सप्रीती। ता पुनि 'पर्वतसेन' की रीती॥
पचपन वर्ष अरु अष्ट महीना। दशदिनऔरराज्यतिनकीना॥

दो०—'मेधावी' राजा भयो, बावन वर्ष प्रमान।
मास सुदश दशदिवसलौं, कियो राज सनमान॥२९०॥

'सोनचीर' राजा पुनि भयेऊ। वर्ष पचास यहाँ पर रहेऊ॥
आठ मास अरु एकइस वासर। तेहिं नृपकीन्हप्रजाको आदर॥
'भीमदेव' सैंतालिस वर्षा। नव महिना विंशति दिन हर्षा॥
'नृहरिदेव' रहे पैंतालिस। ग्यारह मास दिवस हैं तेइस॥
पुनि 'पूरनमल' भये भुआला। वर्ष चवालिस राज सँभाला॥
आठ मास अरु सप्त सुवासर। पूरनमल तहँ भये उजागर॥
इतनेहि वर्ष 'करदवी दादा'। आठमास कम एकदिनज्यादा॥

वर्ष पचास 'अलेमिक' राजा । मासएकादशसहित समाजा ॥
आठ दिवस तेहि और बिताये । तबपुनि 'उदयपाल' तहँ आये ॥

दो०—नौ महिना अड़तिस बरस, कीन्हो बहुबिधि राज ।
बहुरि 'दुवनमल' तहाँ पर, कियोराजसुखसाज॥२६१॥

चालिसबरस मास दस भाई । छब्बिस दिवस गये नियराई ॥
'श्रीदमात' राजा तहँ भयऊ । बत्तिस बरससुशासनकियेऊ ॥
'भीमपाल' अट्ठावन वर्षा । पाँच माह नवदिनअति हर्षा ॥
'क्षेमक' कीनराजअड़तालिस । ग्यारहमासदिवसतहँएकइस ॥
क्षेमक को जो रह्यो प्रधाना । नाम 'विश्रवा' प्रबल महाना ॥
क्षेमकवधकरिलियअधिकारा । राजकाज सब तुरत सम्हारा ॥
पीढ़ि चतुर्दश ताके वंशा । वर्ष पाँच शत ताको अंशा ॥
मास तीन सत्रह दिन ताईं । विवरण सुनहु सकल मनलाईं ॥

दो०—'विश्वश्रवा' राजा रहे, सत्रह वर्ष प्रमान ।
तीन मास उन्तिस दिवस,कियोसहितअभिमान॥२६२॥

'पुरसेनी' तहँ भे महराजा । बर्ष बयालिस कीन्हो राजा ॥
आठ मास अरुयकइस बासर । पाल्योप्रजा कियोअति आदर॥
भये 'बीरसेनी' पुनि राजा । बावन वर्ष राज्य तिन साजा ॥
मास सुदसअरुसातहिंवासर । भये 'अनँगशाही' तहँ नागर ॥
वर्ष सैंतालिस आठ महीना । तेइसदिवस परम सुखचीन्हा ॥
पुनि'हरिजित'राजातहँभयऊ । पैंतिस वर्ष राज-पद लहेऊ ॥
नौ महिना सत्रह दिन ताईं । प्रजापालि बहुबिधि चितलाईं ॥

बहुरि 'परमसेनी' तहँ आये। बर्ष चवालिस रहे सुहाये॥
युग्म मास अरु दिन भे तेइस। पुनि सुखपाल रहेदिनयकइस॥

दो०—युग्म मास तेइस दिवस, सुख पायो महिपाल।
पुनि तहँ पर राजा भये, आये 'सुखपाताल' ॥२९३॥
तीस बरस द्विमास लगि, अरु इकइस दिनरात।
कियो राज आनन्द सों, कहत नहृदय सिहात॥२९४॥

'कद्रुत' भये बयालिस वर्षा। नौ महिना चौबिस दिन हर्षा॥
तैंतिस बर्ष 'सज्ज' तहँ राजा। द्विमहिना चौदह दिन साजा॥
'अमरचूड़' किय राज विशेषा। वर्ष सताइस रहे अशेषा॥
मास तीनि सोरह दिन भाई। कियो राज अतिहो सुख पाई॥
'अमीपाल' भे वर्ष सुबाइस। ग्यारहमासदिवसतहँपच्चिस॥
'दशरथ' पच्चिस वर्ष देखाने। चारि मास बारह दिन माने॥
'बीरसाल' भे इकतिस वर्षा। आठ मास ग्यारह दिन हर्षा॥
सेन सहित सैंतालिस भोगा। चौदह दिवस कीन्ह उपभोगा॥

दो०—'वीरमहा' ने तेहि समय, मारि कियो है राज।
वंश चलेउ सोलह तहाँ, प्रथम रहेउ युवराज॥२९५॥
वर्ष पैंतालिस चारिशत, मास पाँच दिन तीन।
वीर 'महोक' सुवंश की, लिखी कथा प्राचीन॥२९६।

पैंतिस वर्ष राज तेहि कीन्हा। दस महिनादिन आठप्रवीना॥
'अजितसिंह' सत्ताइस भोगा। सात मास उनइस दिनयोगा॥
'सर्वदत्त' अट्ठाइस रहेऊ। तीनमासदश दिन तहँ ठयऊ॥

'भुवनपती' जो पंद्रह वर्षा। चारि मास दस दिन उत्कर्षा ॥
पुनि तहँ 'वीरसेन' जी आये। यकइस वर्ष परम सुख पाये ॥
छिमहिना तेरह दिन पीछे। महीपाल आये सु तिरीछे ॥
पुनि भे शत्रुपाल तहँ राजा। छब्बिस वर्ष राज तिन साजा ॥
चारिमास दिन तीन बिराजे। पुनि भे 'संघराज' महराजे ॥
सत्रह बरस मास छिजानो। अरु दसवासर राज प्रमानो ॥
'तेजपाल' अट्ठाइस वर्षा। ग्यारह मास दिवस दस हर्षा ॥

दो०—'मणिकचन्द्र सैंतिसबरस, सात मास किय राज।
दिवस सुइकइस प्रेम सों, नीतिनिपुणमहराज ॥२९७॥

भये 'कामसेनी' पुनि राजा। वर्ष बयालिस सहित समाजा ॥
पाँचमासदस दिवस सनीती। सकल चलाई अपनी रीती ॥
बहुरि 'शत्रुमर्दन' सुख आसा। आठ वर्ष एकादश मासा ॥
अरु तेरह दिन राज्य अशोका। बहुरि भये नृप 'जीवनलोका' ॥
वर्ष अठाइस अरु वन मासा। सत्रह दिवसराज्यकियखासा ॥
पुनि 'हरिराव' बरस छब्बीसा। मास सुदस बासर उन्तीसा ॥
दूसर 'वीरसेन' भे राजा। पैंतिस वर्ष मास छिसाजा ॥
दिवस बीस लौं जन सुखहेतू। बहुरि भये नृप 'अदित्यकेतू' ॥

दो०—तिन सम्वत तेइस कियो, मास एकादश भाय।
दिवस त्रयोदश और किय, राजकाज सुखदाय ॥२९८॥
मगधदेश में यह नृपति, रहे अधिक बलवान।
'धुन्धर'नृपति प्रयाग को, मारेउ ताहि निदान ॥२९९॥

पुनि नवपीढ़िराज्यतिन कीन्हा । वर्ष तीनशत लौं सुखचीन्हा ॥
अरु चौहत्तर ग्यारह मासा । छब्बिसदिवसरहेउसुखआसा॥
सुनहु राज 'धुन्धर' जो कीन्हा । वर्ष बयालिसजनसुखदीन्हा ॥
सात मास अरु चौबिस बासर । कीन्हप्रजाकोबहुबिधिआदर॥
पुनि यकतालिस वर्ष 'महर्षी' । मास युग्म उन्तिस दिन हर्षी ॥
ता पुनि 'सनरच्छी' भे राजा । वर्ष पचास राज को काजा ॥
मास सुदस अरु उनइस बासर । पूरिरह्यो यश लोक उजागर ॥
'महायुद्ध' नृप तीस सुबर्षा । तीन मास दिन आठ सहर्षा ॥

दो०–'दूरनाथ' पुनि नृपति भे, वर्ष अट्ठाइस जान ।
पाँच मास पच्चिस दिवस,राज्यकियोसुखदान॥३००॥

वर्ष पैंतालिस 'जीवन राजा' । युग्ममासदिनपाँच सुकाजा ॥
'रुद्रसेन' सैंतालिस वर्षा । मास चारि लौं अति उत्कर्षा ॥
दिन अट्ठाइस सहित समाजा । कीन्ह प्रबन्धपरमसुखसाजा ॥
'आरीलक' बावन लौं रहेऊ । माससुदसदिनआठहु ठहेऊ ॥
'राजपाल' पुनि छब्बिस वर्षा । कियो संगठन आपु सहर्षा ॥
तेहि सामन्त नृपति ने मार्‌यो । 'महापाल'जेहिनाम उचार्‌यो ॥
एक वर्ष अरु चौदह मासा । पीढ़ी एक रहे सुख आसा ॥
महापाल पर कीन्ह चढ़ाई । नृपति 'विक्रमादित्य' सुहाई ॥

सो०–हैं उज्जैन-नरेश, कहत अवन्तिक जासु सब ।
छीन लियो वह देश, बसत रह्यो महिपाल जहँ ॥२२॥

दो०—राज कियो तीरानबे, वर्ष सु पीढ़ी एक ।
इनको कुछ विस्तार नहिं, रह्यो वंश नहिं नेक ॥३०१॥

'समुद्रपाल' उमराउ सुहाई । राजा 'शालिवाहन' दर्शाई ॥
तिन विक्रमादित्य को मारी । राज्यकियोअतिहीसुखकारी ॥
सोलह पीढ़ि तीनि शत वर्षा । और बहत्तर वर्ष सहर्षा ॥
मास चारि सत्ताइस बासर । राज रह्यो तेहि वंश उजागर ॥
'समुद्रपाल' किय चौवन वर्षा । मास युग्म विंशति दिन हर्षा ॥
राज कियो अति नेह बढ़ाई । आगे 'चन्द्रपाल' सुखदाई ॥
तिन किय छत्तिस वर्ष स्वराजू । पाँच मास दिन चारिहु राजू ॥
'सहायपाल' राजा पुनि आई । ग्यारह बरस राज अपनाई ॥

दो०—चारि मास ग्यारह दिवस, राज कियो अति नेह ।
'देवपाल' आये बहुरि, जानहिं नीति सनेह ॥३०२॥

वर्ष सताइस मास सु एका । दिवसअठाइससहितविवेका॥
कियो राज बहु नीति बिचारी । पुनि'नरसिंहपाल'बलधारी ॥
वर्ष अठारह विंशति राती । राज कियो पालीं सब जाती ॥
पुनि 'रघुपाल' भये तहँ राजा । बरससुबाइससहितसमाजा ॥
मास तीन अरु दिन पचीसा । कीन्ह राजहर्षित नरकीसा ॥
पुनि 'गोबिन्दपाल' तहँ आये । वर्ष सताइस लौं सुखपाये ॥
एक मास अरु सत्रह बासर । राज कियो पायो बहु आदर ॥
वर्ष सु छत्तिस 'अमृतपाला' । दशमहिना तेरहदिन काला ॥

दो०—'बलीपाल' पुनि नृपति भे, द्वादश वर्ष प्रमान ।
पाँच मास तहँ राज किय, दिवससताइसजान ॥३०३॥

महापाल पुनि भे युवराजा । वर्ष त्रयोदश लौं महराजा ॥
आठ मास अरु चारिहु बासर । कियोराजबहुभाँतिगुणाकर ॥
'हरीपाल' पुनि चौदह वर्षा । आठ मास दिन चारि सहर्षा ॥
राज कियो सब बिधि चितलाई । 'सीसपाल' पुनिकियतहँ आई॥
ग्यारह बरस और दस मासा । तेरह दिनकियराजसुपासा ॥
पुनि भे 'मदनपाल' महराजा । सत्रह बरस राज तिनसाजा ॥
दस महिना अरु उनइस बासर । पाली प्रजा कीन्ह बहु आदर ॥
'कर्मपाल' पुनि भये नरेशा । सोलह बरस सम्हाल्यो देशा ॥

दो०—युग्म मास द्विदिवस लगि, रहे तहाँ 'महिपाल' ।
पुनि कीन्ह्यो यहि देश पर, अधिपति'विक्रमपाल' ३०४॥

चौबिस बरस व ग्यारह मासा । दिवसत्रयोदसलह्यो सुपासा ॥
पश्चिम दिशा एक महराजा । 'मलुखचन्द' बोहरा बिराजा ॥
तासु लरन हित कीन्ह चढ़ाई । विक्रम तहाँ वीर गति पाई ॥
मलुखचन्द सेना युत आवा । इन्द्रप्रस्थ को तेहि अपनावा ॥
तासु वंश दश पीढ़ी ताईं । यकशत इकानवे सुहाई ॥
एक मास दिन सोरह जानहु । मलुखचन्द को वंश प्रमानहु॥
चौवन वर्ष कियो अधिकारा । मास युग्मदिनदशउजियारा॥
'विक्रमचन्द' सुद्वादश वर्षा । सात दिवस बारह दिनहर्षा ॥

---

१. किसी-किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है ।

दो०—'अमीनचन्द' दश वर्ष लगि, पाँच दिवस किय राज ।
'रामचन्द' पुनि आइकर, कीन्हो सहित समाज॥३०५॥
तेरह बरस औ ग्यारह मासा । आठदिवस कियराज सुपासा ॥
'हरीचन्द' पुनि चौदह वर्षा । नव महिना दिन चौबिस हर्षा ॥
राज कियो अति ही सुखदाई । पुनि 'कल्याणचन्द'लिय आई ॥
तिन दशवर्षप्रजहि सुखदीना । पाँच मास दिन चारअदीना ॥
पुनिकिय'भीमचन्द'अधिकारा। सोलह बरस सहितपरिवारा ॥
अरु द्वि मास दिवस नव जानो । राज कीन्ह यह काल प्रमानो ॥
पुनि भे 'लोपचन्द'[1] तहँ राजा। छब्बिसवर्ष ठाठ तिन साजा ॥
तीनि मास अरु बाइस बासर। रहे तहाँ आनन्द उजागर ॥
सो०—बहुरि सु इकतिस वर्ष, 'गोविन्दचन्द' राजा भये ।
सात मास सह हर्ष, औरदिवस बारह गये॥२३॥
दो०—पुनि रानी 'पद्मावती', एक वर्ष परमान ।
बैठि सिंहासनराजकिय,अरु पायो बहु मान॥३०६॥
जब पद्मावति[2] स्वर्ग सिधारी । रह्योनकोउसुत राज्यधिकारी॥
तब मंत्रिन मिलि कीन्हबिचारा। बिनराजाकेहि बिधि बिस्तारा॥
'हरि-प्रेम' बैरागि जो रहेऊ। ताकहँ राजसिंहासन दयेऊ ॥
करन लगे सब राज के काजा । मंत्रीगन जो सहित समाजा ॥
पीढ़ि चारि अरु वर्ष पचासा । इकइस दिवस पत्यौबहु पाँसा॥

---

१. कहीं-कहीं इसका नाम मानकचन्द भी लिखा है ।

२. रानी पद्मावती गोविन्दचन्द की स्त्री थी ।

'हरि-प्रेम' विस्तार सुनाऊँ। सात वर्ष पँच मास गनाऊँ॥
अरु सोलह दिन राज सम्हारा। ता पीछे वैकुण्ठ सिधारा॥
पुनि 'गोविन्द-प्रेम' भये राजा। बीसबरस तेहि कीन्ह स्वराजा॥

दो०—मासयुग्म अरु आठ दिन, राजकियो अतिनेह।
पुनि 'गोपाल-प्रेम' तहँ, आये सहित सनेह॥ ३०७॥

वर्ष एक अरु सप्त महीना। दिन अट्ठाइस लौं सुखदीना॥
बहुरि 'महाबाहू' तहँ राजा। रहे छै बरस सहित समाजा॥
आठ मास अरु उन्तिस बासर। कियो राज अतिनीतिउजागर॥
राज त्यागि सो वनहि सिधावा। तपहित प्रेम हृदय में आवा॥
तब बङ्गाल देश को राजा। 'आधीसेन' जो भो महराजा॥
इन्द्रप्रस्थ सो तुरतहि धावा। सूनसिंहासन जब सुनिपावा॥
राज्य कियो तेहि औसर पाई। बारह पीढ़ि रही प्रभुताई॥
यकशत अरु इक्यावन वर्षा। मास यकादश दिन छि हर्षा॥

दो०—राजा आधीसेन भे, रहे अष्टदश वर्ष।
पाँच मास यकइस दिवस, कीन्हो राजसहर्ष॥ ३०८॥

बहुरि 'बिलावल सेन' समाजा। द्वादश वर्ष रहे तहँ राजा॥
चारि मास अरु छिदिन बीते। आये 'केशवसेन' सप्रीते॥
पन्द्रह वर्ष अरु सात महीना। बारह दिवस राज्य तिन कीना॥
'माधसेन' पुनि नृप तहँ भयेऊ। द्वादश वर्ष तहाँ पर रहेऊ॥
चारि मास छि दिवस बिताई। गयो नृपति सो स्वर्ग सिधाई॥
भयो 'मयूरसेन' तब राजा। बीस वर्ष लगि कीन्हेहु काजा॥

और यकादश मास सुहाई । दिय सत्ताइस दिवस बिताई ॥
'भीमसेन' पुनि भे युवराजा । पाँच वर्ष कीन्हो तिन काजा ॥
मास सु दश अरु नव दिन भाई । प्रेम प्रजासँग किय अधिकाई ॥

दो०—पुनि 'कल्याणसेन' तहँ, चारि बरस किय राज ।
आठ मास इकइस दिवस, भोग्यो सहित समाज ॥ ३०९ ॥

'हरीसेन' किय द्वादश वर्षा । दिवस पचीस महा उत्कर्षा ॥
'क्षेमसेन' पुनि भये नरेशा । वर्ष आठ राजा निज देशा ॥
मास यकादश पन्द्रह बासर । कियो प्रजा को बहुविधि आदर ॥
पुनि 'नारायणसेन' सप्रीती । छब्बिस बरस चलायो नीती ॥
अरु दशमास राज तिन कीन्हा । बहुरि 'दमोदरसेन' अधीना ॥
वर्ष यकादश पाँच महीना । उनइस दिवस राज तिनकीना ॥
'दीपसिंह' उमराव सुहाई । तेहि दुखदीन नृपति अधिकाई ॥
तब तेहि लीन्ही सैन्य मिलाई । अरु राजा सँग रारि बढ़ाई ॥

दो०—मारि दमोदरसेन का, विजय कियो बहु भाँति ।
'दीपसिंह' उमराव जो, अपनाई सब जाति ॥ ३१० ॥

यकशत सात वर्ष यहि भाँती । मास सु छे बाइस दिनराती ॥
अरु षट पीढ़ी कीन्हेउ राजू । दीपसिंह उमराव समाजू ॥
सत्रह बरस आप भे राजा । एक मास छब्बिस दिन साजा ॥
'राजसिंह' पुनि चौदह वर्षा । पाँच मास किय राज सहर्षा ॥
पुनि 'रणसिंह' भये तहँ राजा । सम्बत नौ लगि कीन्ह्यो काजा ॥
आठमास एकादश वासर । कियो अधिक प्रजासों आदर ॥

'नरसिंह' वर्ष पँतालिस ठहेऊ । पंद्रह दिवस राजपद लहेऊ ॥
पुनि 'हरिसिंह' त्रयोदशवर्षा । द्वि महिना उन्तिसदिन हर्षा ॥
राज कियो अति नेह बढ़ाई । पुनि 'जीवनसिंह' तेहि अपनाई ॥
दो०—राजकियो अति नेह सों, जीवनसिंह हर्षाय ।
आठवर्ष यक मास गि, प्रजहि कीन्ह सुखदाय ॥ ३११ ॥
एक समय कछु कारज हेता । सैन्य लै गयो उत्तर नेता ॥
बिना सैन्य जब राज निहारी । पृथीराज यह बात बिचारी ॥
सैन्य सहित राजा बलवाना । बिना सैन्य है नारिसमाना ॥
अस जिय जानि चढ़ाई कीनी । युद्ध हेतु सेना रचि लीनी ॥
राजा 'जीवनसिंह' हि मारी । राजलियो सबविधि सुखकारी ॥
इन्द्रप्रस्थ पर किय अधिकारा । पीढ़ी पाँच केर विस्तारा ॥
वर्ष छियासी अरु दिन बीसा । रहेउ राज्य अस कहेउ मुनीसा ॥
'पृथीराज' किय द्वादश वर्षा । युग्म मास उनइस दिन हर्षा ॥
दो०—'अभयपाल' पुनि नृपति भे, *पृथीराज के बाद ।
वर्ष चतुर्दश रहे तहँ, राजकीन्ह सुखसाद ॥ ३१२
पाँच मास अरु सत्रह वासर । राज्य कियो लै सेना कादर ॥
'दुरजनपाल' भये पुनि राजा । ग्यारहवर्ष साज तिन साजा ॥

---

* इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज पर सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी ने चढ़ाई की और कई बार हारकर लौट गया । अन्त में संवत् १२४९ में आपस की फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को जीत अंधा कर अपने देश को ले गया और राज्य किया । मुसलमानों की पीढ़ी ४९ वर्ष ६१३ राज्य रहा ।

चारि मास अरु चौदह राती । शासन प्रजा कीन्ह बहु भाँती ॥
'उदयपाल' पुनि भयो नरेशा । वर्ष एकादश राज अशेशा ॥
सात मास दिन तीनि सुप्रीती । राज कीन्ह भोगी अनरीती ॥
पुनि 'यशपाल' भये महराजा । छत्तिस वर्ष राज तिन साजा ॥
चारि मास अरु दिन सत्ताइस । पुनि यहिदेश यवन अपनाइस ॥
गढ़ गजनी से करी चढ़ाई । शाहबुद्दीन गोरि रिसियाई ॥

दो०-घेरि लीन्ह सुलतान ने, तब यशपाल नरेश ।
निजवशकरि पकस्यो तबै, राज्य कीन्ह यहि देश ॥ ३१३

कोट प्रयाग माहिं लै जाई । बन्द कियो ताकहँ हर्षाई ॥
संवत बारह सौ उन्चासा । आयो इन्द्रप्रस्थ करि आसा ॥
कियो राज्य अतिही दुखदाई । प्रजहिं कष्ट दीनो अधिकाई ॥
तिरपन पीढ़ि सातसौ वर्षा । अरु चौवन मिलाइ उत्कर्षा ॥
मास एक अरु सत्रह वासर । रह्यो राज्य जेहि देखत कायर ॥
यहि विस्तार लिख्यो बहुठाईं । देखहु तहाँ विचार दृढ़ाईं ॥
आगे बौध जैन को भेदा । कहिहौं बहुरि त्यागि सबखेदा ॥
जोमम बचन हृदय धरि लहिहौ । तौ कबहूँ दुखदुसह न सहिहौ ॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वती-
वर्णित मतमतान्तरविषय वैद्य कविराज पंडित
गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित
गुरु-शिष्यसंवाद एकादश तरङ्गः ॥ ११ ॥

(स० ११ स०)

अथ द्वादश तरङ्ग (स० १२ स०)

चार्वाक्, जैन और बौद्धमत-वर्णन

शिष्य

सो०—ऋषिवर मो हित जान, कह्यो जो ग्रंथन की कथा।
मोर गयो अभिमान, रह्यो अविद्यायुक्त जो ॥ १॥

दो०—कही पुराननि[1] की कथा, सुनत हृदय अकुलात।
अब न फँसहुँ यहि जाल में, जा महँ रह्यो भुलात ॥१॥
जैनधर्म की कथा को, कहहु मोहिं समुझाय।
तीर्थ देवता ग्रन्थ सब, सूक्षम देहु सुनाय ॥२॥
जौं लगि धर्मन की कथा, नहिं जानत नर कोय।
तौलगिजग भ्रमजालसे, छूटत है नहिं सोय ॥३॥

गुरु

कहगुरु सुनहु शिष्यकरिध्याना। नाहिं उपाय और है आना॥
ऋषिवर दयानन्द जग आई। जैनधर्म कछु बात सुनाई॥
सोई सुनहु सकल मन लाई। ऋषिवरकह्यो जौन समुझाई॥
जानहु सकल धर्म की बाता। तौ न पड़हु भ्रमजाल सुताता॥
ऋषिवर दयानन्द सों आई। पूछत एक शिष्य हर्षाई॥
नाथ कहहु जिनधर्म[2] कहानी। करी जौन जैनिन मनमानी॥

---

१. पुराणों के अनुकूल धर्म मानने वाले। २. जैनधर्म।

तब ऋषि कहत सुनहु मम बाता। कहिहौं जैनधर्म कछु ताता ॥
और बौध की कछु कछु बातैं। धर्म नाम धरि करी जो घातैं॥

सो०–प्रकस्यो का विधि आय, जैन बौध यहि ठौर पर।
स्वामि कहत समुझाय, फँसे अविद्या में जबहिं॥३॥

दो०–सत्यासत्य विचार जग, नष्ट भयो जेहि काल।
त्यागी विद्या वेद की, तब से भयो बेहाल ॥४॥

प्रकटे जैन बौध बहु पन्था। और वनाये नाना ग्रन्था॥
जो है वालमीकि रामायन। और महाभारत सुखदायन ॥
तिन महँ जैन बौध्र नहिं नामा। नहिं तहँ चारवाक सुखधामा॥
जब हम ग्रन्थ जैन के देखत। तो तहँ रामकृष्ण अवरेखत ॥
रामकृष्ण की सकल कहानी। लिखी जैन बौधन हितमानी॥
तौ केहि भाँति पुराण बतावहिं। जैनधर्म जो सबहिंसुनावहिं॥
यदि यह सबसे होत पुराने। तौ काहे न महभारत आने ॥
जब पुरान इतिहासन माहीं। जैन बौध कहुँ नाहिं लखाहीं॥

दो०–धर्म पुरानो जैन है, हम मानहिं केहि भाँति।
कबहूँ सुत के सामने, निज पितु जन्म लखाति ॥५॥

याते सब यह बात बिचारहु। जैन बौद्ध नूतन पहिंचानहु ॥
यह द्वादश प्रसंग हम कहहीं। जैनधर्म जो मानत रहहीं॥
जैनग्रन्थ के सहित प्रमाना। कहिहौंकछुकनाहिं मनमाना॥
कोऊ जैनी मेरी बाता। सुनिके दुखितहोयनहिंताता॥
सत्य असत्य विचारन हेता। जो हम कहब प्रमाण समेता ॥

हम न चहहिं काहू की हानी । निर्णय करहिं सत्य सुखदानी ॥
जैन बौध द्वौ सुनहिं सुनावहिं । अंधकारभ्रम सब नशिजावहिं॥
त्यागहिं असत मार्ग सब कोई । धारहिं सत्य पंथ हित होई ॥

दो०—यदि मानव सत असत को, करहिं न कबहुँ विचार।
वृथा जन्म संसार में, ताको लेहु निहार ॥६॥

जो सत असत विचार न होई । होइ न उन्नति केहु विधि सोई ॥
लाभ होइ बहु जनसमुदाई । देखि जैनमत की प्रभुताई ॥
ग्रन्थ न कतहुँ देखावहिं काहू । राखहिं गुप्त करहिं उत्साहू ॥
अधिक परिश्रम जब हमकीन्हा । कछु बम्बई प्रेस मोहिं दीन्हा ॥
जो कछु पोल न परत लखाई । तौ काहे निज ग्रन्थ छिपाई ॥
अरु काहुहि नहिं देखन देहीं । हिय डरपैं कोउ जानि न लेहीं ॥
पहिले अपने दोष विचारी । चलहिं सुदूसर दोष निहारी ॥
ताते सुनहु हमारी बाता । और विचारि लेहु तुम ताता ॥

दो०—पुरुष वृहस्पति नाम को, भयो रह्यो कयहु काल ।
तेहि मान्यो नहिं वेद को, सो नास्तिक विकराल ॥७॥
और न मानत यज्ञ को, नहिं ईश्वर चित देय ।
याविधिसबसनकहतभो, निज बुद्धी का धेय ॥८॥

सकल मरत जग के बिच आई । कोउ न जीवित रहत सदाई ॥
याते जौ लगि रहै शरीरा । सुख सों रहै सहै नहिं पीरा ॥
चारवाक इमि कहत बखानी । बहुरिनकोउआवतअभिमानी ॥
जीव नशै यह नशत शरीरा । भस्म करतसबजनतजिपीरा ॥

जाको धन सुख हित हम खायो । सो शरीर सँग स्वर्ग सिधायो ॥
जेहि खायो सो बहुरि न आवै । फिर कासों वह जन धन पावै ॥
ताते रहहु चैन से भाई । भोग करहु धन जाविधि पाई ॥
निज ऐश्वर्य बढ़हि जेहि भाँती । करहु नीति सोई सुखमाती ॥

दो०—मन इच्छित फल भोगई, यही लोक के माहिं ।
है परलोक कछू नहीं, यह समझहु हिय माहिं ॥९॥
क्षितिजलपावक वायु सों, यह शरीर दिखराय ।
चारि भूत के योग से, चेतन उपजत आय ॥१०॥

जिमि जग मादक द्रव्य सदाई । पियहि नशा होवै अधिकाई ॥
तिमि शरीर सँग जीव विराजत । नष्ट भये सोऊ सँग जावत ॥
पुनि केहि पाप पुन्य जग होई । धारहु हिययह वचन सँजोई ॥
भूत सँयोग सु तन के माहीं । उपजत जीव रहत तेहि ठाहीं ॥
होत वियोग नष्ट सो होई । यह प्रतक्ष जानहिं सब कोई ॥
मृत्यु भये पर नाहिं दिखाई । बिन प्रतक्ष अनुमान न भाई ॥
ग्राह्य सदा प्रत्यक्ष लखाई । अरु अनुमान गौण दर्शाई ॥
सुंदर नारि रमै आनँद हित । है पुरुषारथ फल धारहु चित ॥

दो०—यह सिधान्त ऋषिवर सुन्यो, तबै कहत समुझाय ।
सुनहु चित्त दै सकल जन, हम जो कहत सुनाय ॥११॥

यहजड़ भूतसकल जग जानत । तिनसोंचेतनकेहिविधिआवत॥
उपजत देह मातु पितु योगा । वैसेहि आदि सृष्टि उपभोगा ॥
बिना ईश यह मनुजशरीरा । होत न कतहुँ परम बलवीरा ॥

मद[१] समान नहिं चेतन होई। इष्ट विनाशवान नहिं सोई॥
यह जग रीति सदा चलिआई। होत नशा चेतन समुदाई॥
जेहि न विलोकै कहै अभावा। सो न जीव महँ आवत भावा॥
नष्ट शरीर होत सब भाँती। नशत न जीवपरम सुखमातो॥
जसपूरब तस आगिल रहई। तेहिउपनिषद्याहिविधिकहई॥
दो०—याज्ञवल्क ऋषि इमिकहत, मैत्रेयी समुझाय।
मैं न मोह सों कहत हौं, सुनियेचित्तलगाय॥ १२॥
है अविनाशीआतमा, योग करत जब देह।
तबहिं चेष्टा तनुकरत, जीव शरीर सनेह॥ १३॥
जीव शरीर पृथक जब होई। रहत ज्ञान नहिं तयतनुकोई॥
है सँयोग चेतनता भाई। अरु वियोग जड़ मूर्ति लखाई॥
बात प्रतत्त सुनहु यहि भाँती। आँख न देखत अपनी पाँती॥
अरुसबकाहुहि नित प्रति देखै। या विधि जग प्रत्यत्त विलोकै॥
जो द्रष्टा वह द्रष्टा रहई। होय न दृश्य कतहुसोइअहई॥
बिन अधार आधेय न होई। नहिं कारन बिनकारज सोई॥
बिना अवयवी अवयव नाहीं। कर्ता बिन नहिं कर्म लखाहीं॥
तिमि प्रतत्त करता बिन कैसे। इमि मनमानी कहत अनैसे॥
दो०—नारि संग पुरुषार्थ फल, जो तुम मानत भाय।
त्तणिक सुःख के हेत ही, कर्म करतदुखदाय॥ १४॥
सम्भव होय दुःख अधिकाई। सोउफल पुरुषारथ का भाई॥

१. नशा।

यदि दुखहू पुरुषारथ मानहु । तौ आदरकरि का अपनावहु ॥
अवशि स्वर्ग हानी दुख भोगहु । मुक्ति अर्थ सुखहानिविलोकहु ॥
तबहीं चारवाक इमि भाखत । दुख संयुत सुखकोजोत्यागत॥
वे मूरख जग मोहिं लखाहीं । अन्न त्यागि भुसलेत सराहीं ॥
जे बुधिवन्त जगत के माहीं । लहत सुःखदुख त्यागत जाहीं॥
जो सन्मुख सुख ताकहँ त्यागी । इच्छा करहिं स्वर्गसुखलागी ॥
धूर्तन कथित वेद की बानी । है सब भाँतिन परमअमानी ॥

दो०—कर्म उपासन यज्ञ को, करहि ज्ञान युत जोय ।
ते अज्ञानी जग महा, लहत मूर्खता सोय ॥१५॥

कबहुँ न जव परलोक लखाई । तब आशा बड़ि मूरखताई ॥
गुरू बृहस्पति या विधि कहई । चारवाक जिन[1] रीति जोअहई ॥
अग्निहोत्र अरु तीनहु वेदा । तीनि दण्ड अरुभस्मअखेदा ॥
बुद्धिहीन पुरुषार्थ रहित नर । लिय बनाइजीविकानिरन्तर ॥
काँटे लगे होत दुख जोई । नाम नरक हम मानत सोई ॥
लोक सिद्ध राजा परमेश्वर । देह नाश स्वइ मोक्ष नरेश्वर ॥
है यह जगत और कछु नहीं । जो हम मानि परमपद लहहीं॥
तबऋषिकहतसुनहुहम कहहीं । लव सुखविषयसुःखजोअहहीं॥

दो०—तेहि मानत पुरुपार्थ फल, औरन कहत अज्ञान ।
अबुध मूर्खता है महा, मोक्ष न लहत अयान ॥१६॥

अग्निहोत्र अरु यज्ञ प्रभावा । होय वृष्टि शुचिपवनसोहावा ॥
होत निरोग सकल जन तेई । धर्म अर्थ कामादिक लेई ॥

---

1. जैनधर्म ।

सोई धूर्त अधम अभिमानी। मानत जो न वेद सुखदानी॥
दण्ड भस्म खंडन जो कीन्हा। सत्य सो बात चतुर्थी चीन्हा॥
नरकनाम कंटक दुख मानत। महारोग किमि नरक न भाषत॥
पालहि प्रजा जगत हित करहीं। अस राजा पवित्र जे अहहीं॥
यदि ताकहँ तुम आदर करहू। तौ यह साँच वचन उरधरहू॥
अरु यदि हो अन्यायी राजा। निरत पापमय सहित समाजा॥
ऐसेहु नृपति ईशगुत मानहु। तुम समान मूरख को आनहु॥

दो०--देह नाश ही को यदा, मानहु मोक्ष समान।
स्वान गर्द्धभा और तुम, भेद कवन अनुमान॥१७॥

केवल है आकार विभिन्ना। कहत हृदय लागत अतिखिन्ना॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। जो हम कहत सुनहु चितलाई॥
जग उत्पत्ति स्वभाविक मानत। जैन बौध आभणक बखानत॥
गुन स्वभाव से जग बनिजाई। और पदारथ जौन लखाई॥
जिमि उष्णता अग्नि गुन रहई। जलमहँ शीतलता नित अहई॥
शीत स्पर्श वायु विच जानहु। याही भाँति जगत परमानहु॥
जग कर्ता कोउ दूसर नाहीं। केवल है स्वभाव दर्शाहीं॥
स्वामि कहत यह झूठ प्रमाना। जो न करहिं चेतन निर्माना॥
तौ स्वभाव ते कछु नहिं बनहीं। चाहे किते पदारथ मिलहीं॥

दो०--जो स्वभाव हम मानहीं, तौ काहे नहिं होत।
द्वितिय सूर्य अरु चंद्रगन, काहे न होत उदोत॥१८॥

तब यक चारवाक इमि कहई। स्वर्ग अपवर्ग कछू ना अहई॥

नहिं आत्मा और परलोका । नहिं वर्णाश्रम क्रिया न लोका ॥
स्वर्ग मिलत यदि पशुके मारे । तौ निज पितु काहेन हनिडारे ॥
श्राद्ध सों मृतक जो तृप्ती लहहीं । तौकिमि पथिकदुःखको सहहीं ॥
दानसे तृप्त होत सुरवासी । भोगभोगि सब बनहिं विलासी ॥
तौ परदेशी किमि दुख भरहीं । दैकर दान दुःख सब हरहीं ॥
जौलगि जियहि सुःखसोंरहई । खाइ दूध घृत आनँद लहई ॥
ऋण लैकर निशिवासर खावहिं । भस्मभये पुनिको यहँ आवहिं॥

दो०--देहदशा को त्यागिके, जीव जात परलोक ।
कहहु सो किमि आवै नहीं, गृह सनेह अवलोक ॥१९॥
सो०--याते विप्रसमाज, विदिधि बनाई जीविका ।
करवावत महराज, मृतक श्राद्ध गात्रादि जो ॥३॥

तीन वेद करता जगमाहीं । भाँड धूर्त हैं हमहिं लखाहीं ॥
जानहु सकल निशाचरकरनी । वेदन में जो कछु है बरनी ॥
अरु जरफरी तुर्फरी भासा । स्वार्थिनरची बहुतकरि आसा ॥
देखहु वेदन की है रचना । किमिन कहहिं हमधूर्तनवचना॥
नारी ग्रहण करहिं सब भाँती । अश्वशिश्नु धारै सुखमाती ॥
नारी अश्व समागम रीती । निन्दित है यह वेदकी नीती ॥
माँस अहार जहाँ दर्शाई । सो करतूत निशाचर भाई ॥
तबकह स्वामि सुनहु चितलाई । हिय धारहु जो तुमहिं सुहाई ॥

दो०–स्वर्ग महासुख भोग है, अहै नरक दुख भोग ।
जीव न होवै कहहु को, भोगै सारे भोग ॥ २० ॥

भोगत सुख दुख जो यहि बेरा। ताहि भाँति पर जन्म बसेरा॥
जो उपकार करहि दिन राती। बोलहि सत्य सदा सब भाँती॥
यह कृतकर्म नशहि नहिं कतहूँ। मानि लेहिं कैसेहि कोउ कबहूँ॥
पशुबध यज्ञ वेद नहिं भाषत। अरुनहिंमृतक श्राद्ध बतरावत॥
यह कपोलकलपित बहु गाथा। लिखे पुरानिन अपने हाथा॥
या विधि तुम्हहू खण्डनकरहू। पुरानआदिनहिंहिय महँधरहू॥
जो तुमकहत कर्मनहिं भोगहिं। अरुऋणलेइऋणीनहिंहोवहिं॥
यह तुम्हारि बहु भूल लखाई। जो तुम मानत भोग न भाई॥

दो०—जीव अभाव न होवई, यह शरीर नशिजात।
कर्म शुभाशुभ जो कछू, जन्म दूसरे जात॥ २१॥
याते ऋण लै जगत में, जो भोगत है भोग।
है पापी दूसर जनम, तेहि पावत उपभोग॥२२॥

अरुजोकहतबहुरि नहिंआवत। प्रीतिकुटुम्बीसकल भुलावत॥
तनु से निकसि जीव जब जाई। कर्मनुकूल और तनु पाई॥
याते बहुरि न आवन तहवाँ। पूर्व जन्म सुख पायहु जहवाँ॥
जो जग प्रेतकर्म दिखराई। वहस्वार्थिन यक रीतिचलाई॥
लिय बनाइ जीविका अनूठी। वेद माहिं सबविधि है झूठी॥
खण्डन करन योग यह बाता। है हमार हू सम्मत ताता॥
समुझि लेहु यह हृदय विचारी। पढ़िविद्या नहिं होत अनारी॥
चारवाक यदिकछुअवलोकत। तौअसबातैंकतहु नहिं बोलत॥

दो०—समुझिसकेनहिंअर्थको, वेद सत्य जो ज्ञान।
लौकिकविधिटीकाकरी, मानि महा अभिमान॥ २३॥

बहु अश्लील अर्थ दर्शायो। करि धूर्तता जगत अपनायो ॥
यामें दोष वेद को नाहीं। लिख्यो महीधर निजमतिचाहीं॥
करि धूर्तता जगत भरमायो। जैनिन वेद देखि नहिं पायो ॥
जो हैं चारवाक अरु बौद्धा। वेद न देख्यो है करि श्रद्धा ॥
याते बुद्धि नशी सब केरी। निन्दा करत वेद बहुतेरी ॥
वाम मार्गिन टीका देखी। कीन्ह विरोध[1] वेद को पेखी ॥
रहित प्रमाण कल्पना कीन्ही। बहु मूरखता जो लिखदीन्ही ॥
दुख होवे लखिके चतुराई। देखहु तुमहु विचार दृढ़ाई ॥
दो०—वेद अर्थ बहु भाँति सों, भ्रष्ट कियो है आय।
वाममार्गी भ्रष्ट हैं, भखत मांस हर्षाय ॥२४॥
अरु जो कछु तुम कह्यो बखानी। है नहिं वेदन की यह बानी ॥
वाममार्गिन भ्रष्ट अचारा। किये सकल लै वेद सहारा ॥
नास्तिक भये देखिके अर्था। मूल ज्ञान में नाहिं समर्था ॥
जैन बौद्धमत धारन कीन्हों। वेदन निन्दा में चित दीन्हों ॥
बहु मत बड़े अनीश्वरवादी। चारवाक सम भये विवादी ॥
मूल अर्थ यदि कछुक विचारत। तौपुनिअसतबातनहिंभाषत॥
जो न होत अस बुधि नर केरी। तौकिमिपावतविपति घनेरी ॥
तात विनाश समय जब आवै। बुधि विपरीत होत दुखलावै ॥
दो०—चारवाक के भेद अब, सुनहु सुनावहिं ताहि।
बहुतक समता है नहीं, चारवाक के माँहि ॥ २५ ॥

---

१. त्रयो वेदस्य कर्तारः भांडधूर्तनिशाचराः ।

पर विशेष यक मानत बाता । तनु उत्पन्न जीव सँग ताता ॥
देह नशे सोऊ नशि जावे । पुनर्जन्म कबहूँ नहिं पावे ॥
अरु परलोक नाहिं हैं मानत । यक प्रत्यक्ष प्रमान बतावत ॥
और प्रमान कोऊ नहिं मानत । चारवाक को अर्थ सुनावत ॥
चारवाक जो शब्द लखावहिं । तेहिं विशेष अर्थी वतरावहिं ॥
बोलन माहिं प्रगल्भ कहाई । वैतण्डिक बहु अर्थ जनाई ॥
बौध जैन चारिहू प्रमाना । पुनर्जन्म परलोकहु माना ॥
ते नित मानत जीव अनादी । मुक्तिहु मानत द्वौ मतवादी ॥

दो०–चारवाक अरु बौध में, और जैन के बीच ।
भेद जो है ऊपर कह्यो, धरहु हिये बिच खींच ॥२६॥
निंदा ईश्वर वेद की, और नास्तिक-वाद[1] ।
करता जगत न मानहीं, पर मत द्वेष, विवाद ॥२७॥

सुनहु बौद्धमत की कछु शिक्षा । भेद बनाइ दीन्ह जो शिक्षा ॥
कार्य देखि जो कारण मानत । कारण सो कारज दर्शावत ॥
अरु अवशेष[2] कहत अनुमाना । और प्रमान नाहिं कोउ माना ॥
चारि प्रकार बौद्धमत माहीं । चारवाक से पृथक लखाहीं ॥
एक प्रकार "माध्यमिक" जानो । दूसर "योगाचार" बखानो ॥
तीसर है "सौत्रान्तिक" भाई । "वैभाषिक" चतुर्थ दर्शाई ॥
बुद्धि से सिद्ध होत जो बाता । निजबुधि मानि लेहि तेहि ताता ॥
निज बुधि में जो नाहिं समाई । ताको कतहुँ न मानत भाई ॥

---

१. वेद का विरोधी । २. जो बाक़ी रहा ।

दो०–बौद्ध केर है अर्थ यह, समुझहु हिये विचार ।
नेत्र खोलि देखहु जगत, का यह करत अचार ॥२८॥

सर्व शून्यता माध्यम मानत । अर्थकरतयहिविधिसमुझावत॥
आदि न होहिं अन्त नहिं रहहीं। प्रकट अवस्था मध्य लखाहीं ॥
जिमि घट उत्पति पूर्व न रहेऊ । अन्तसमयसोपुनिनशिगयेऊ॥
मध्य समय घट परत लखाई । भये नाश घट नाम नशाई ॥
याते शून्य तत्त्व एक अहई । बौद्धमाध्यमिकयाविधिकहई ॥
बाह्य शून्य मानत व्यवहारा । कहत बौद्ध जो योगाचारा ॥
भीतर ज्ञान पदारथ भासत[1] । बाहर कछू नाहिं है भावत ॥
जिमि घटज्ञान आतमबिच रहई । देखि पदार्थ जो मानव लहई ॥
यदि न होहिं भीतरतेहि ज्ञाना । तौसबभाँतिन पुरुष अयाना[2] ॥

दो०–तीसर"सौत्रान्तिक"करत, बाह्यअर्थ अनुमान ।
बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष नहिं, अंग उपांग समान ॥२९॥

सो०–शेष होत अनुमान, एकदेश प्रत्यक्ष जब ।
मानत यहै प्रमान,सौत्रान्तिकसबभाँतिसों॥४॥

"वैभाषिक"यहिभाँतिबतावहिं। बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष सुनावहिं ॥
जिमि घट नीलबरन है देख्यो । बाह्य प्रतीत वरण जो पेख्यो ॥
यद्यपि आचारी है एका । बुद्ध तपस्वी नीतिविवेका ॥
शिष्यन बुद्धिभेद से भाई । चारि भेद करि लीन्ह बनाई ॥
जिमिबहुपुरुषकरतव्यवहारा । कर्मकरत निजबुधिअनुसारा ॥

---

१. दिखाई देते । २. अज्ञानी (नासमझ) ।

दूसर बात सुनहु चितलाई। सबहित्तणिकमाध्यमिकबताई॥
त्तणत्तणबदलतबुधिपरिणामा। बीत्यो त्तणनहिं आवत कामा॥
यकत्तणजासुलख्योजेहिभाँती। दूसर त्तण तस नाहिं सुहाती॥
अरु उपदेश सबन अस करहीं। जासोत्तणिकमानिहिय धरहीं॥

दो०—"योगाचार"प्रवृत्तिको, मानत दुख को रूप।
तुष्ट न कोऊ होत है, इच्छा रहत अनूप॥३०॥

सो०—मानत लत्तण देखि, सौत्रान्तिकयहिभाँतिसों।
गऊ अश्व को पेखि, लत्तमाहिं लत्तणकरत॥५॥

या विधि सदा लत्त के माहीं। लत्तण रहतजो पंडितकहहीं॥
"वैभाषिक"यहिभाँतिबखानत। शून्यहि एक पदारथ मानत॥
वैभाषिक अरु माध्यम दोऊ। मानत शून्य पदारथ सोऊ॥
बहुत विवाद बौद्ध के माहीं। मानत चारि भावना आहीं॥
पुनिसमुझाइ कहत ऋषिराई। या महँ बहु संदेह लखाई॥
जो सब शून्य होइँ जग माहीं। शून्य न होत जो जानत ताहीं॥
होय शून्य सब तौ किमिजानै। शून्य शून्य केहि भाँति प्रमानै॥
शून्य के सिद्ध भये द्वै साधन। ज्ञाता[1] ज्ञेय[2] पदारथ पावन॥

दो०—योगाचारी मानहीं, बाह्य शून्य को भाव।
महा असम्भव बात यह, जानहु सहज स्वभाव॥३१॥

तो चाहिय परबत उरमाहीं। हृदय बीचअस अस्थलनाहीं॥
परबत ज्ञान अभ्यन्तर[3] रहही। परबत बाहर स्थित अहही।

---

१. जाननेवाला। २. जो जाना जाय। ३. भीतर।

"सौत्रान्तिक" प्रत्यक्षनमानत । जिते पदारथ जग में भासत ॥
तौकेहिविधिवहस्वतः प्रत्यक्षा । और न तासु वचन प्रत्यक्षा ॥
यदि प्रत्यक्ष न होवे भाई । तौ यह घटकसकहत सुनाई ॥
बाह्य प्रत्यक्ष वैभाषिक मानत । सोउ न ठीक काहुविधि भावत ॥
ज्ञाता[1] ज्ञान[2] जहाँ पर होई । होत प्रत्यक्ष तहाँ पर सोई ॥
यदपि प्रत्यक्ष विषय जो अहई । सो निशिवासर बाहर रहई ॥
तासु ज्ञान आतम बिच होई । तदाकार भावत हिय सोई ॥

दो०–क्षणिकवाद[3] को मानहीं, तो प्रतिभिज्ञा[4] दोष ।
कही बात भूलै सदा, सुनहु याहि तजि रोष ॥३२॥

पर जो कुछ हम देखहिं सुनहीं । वह स्मरण सदा ही रहहीं ॥
याते क्षणिकवाद नहिं ठीका । यह भ्रम सकल निकारहु जीका ॥
जो दुख होइ सु:ख नहिं होई । अथवा सुख हो दुख नहिं होई ॥
तो कस दुख सुख होय प्रतीती । रात्रिबिना दिनहो कसरीती ॥
बाध जाहि तीर्थङ्कर मानत । सकल जैन ताकहँ अपनावत ॥
याते दोनों एक समाना । भाव चतुष्टय करत विधाना ॥
जासु वासना सब नशि जाहीं । जात शून्य निर्वाण सराही ॥
याको ही मुक्ती वह मानत । शिष्यन योगाचार सिखावत ॥
और कहत जो गुरुके वचना । मानहु तिनहिं जानिहित अपना ॥

दो०–अनादि बुद्धि में वासना, होय जासु व्यवहार ।
भासत ताकी बुद्धि में, बुद्धि अनेकाकार ॥३३॥

---

१. जाननेवाला । २. जिससे जाना जाय । ३. पदार्थ क्षणिक और उसका ज्ञान क्षणिक । ४. मैंने वह बात की थी ऐसा स्मरण न होना चाहिये ।

प्रथमस्कन्द लिखा यहि भाँती । मानहि ताकहँ बौद्धजमाती*॥
रूप[१]†, विज्ञान[२], वेदना[३], जानहु । संज्ञा[४], संसकार[५] पहिचानहु ॥
इनके अर्थ सुनहु यहि भाँती । प्रथम कहत जो लोकसुहाती॥
इन्द्रिन सों रूपादि विकारा । ग्रहन करत मानत अति प्यारा ॥
ताकहँ रूप-स्कन्ध बतावहिं । दूसरविधि याविधि समुझावहिं ॥
घर विज्ञान प्रवृत्ती जानत । रूपआदि व्यवहार सम्हारत ॥
तेहि विज्ञान-स्कन्ध बतावत । दूसर जैन बौध को भावत ॥
उपजत इन दोहुन से तीसर । सुख दुख ज्ञानहोत उरभीतर॥

दो०—स्कन्धवेदना तीसरी, कहत सबै समुझाय ।
संज्ञास्कन्ध चतुर्थ है, सुनिये चित्त लगाय ॥३४॥

गौ आदिक जो नाम लखाहीं । संज्ञानाम सो मानत ताहीं ॥
पंचम होत राग अरु दोषा । क्लेश क्षुधा तृष्णा मदरोषा ॥
धर्म प्रमाद और अभिमाना । अरु अधर्म उपक्लेश गुमाना ॥
ये उपजत वेदनास्कन्धा । मानत है संस्कारस्कन्धा ॥
जग दुखरूप दुःख को धामा । दुख साधनकरि भावसकामा ॥
याही विधि जग दुख को मानै । मुक्ति सरूप यहै हिय ठानै ॥
एतो अधिक बौध मत मानत । चारवाक से अधिक बखानत ॥
जो विरक्त ज्ञानी जग माहीं । जीवनमुक्त लोक पति आहीं ॥

दो०—बुद्ध आदि तीर्थङ्कर, तासु पदार्थ स्वरूप ।
जानि करत उपदेश नित, भिन्न भिन्न जो रूप ॥३५॥

---

* समूह (समाज) । †[illegible]स्कन्दादि ।

जानहि क्रिया उपाय त्रिभेदा । मानत तासु सकल तजि खेदा ॥
बड़ गम्भीर भाव हिय धारी । गुप्त प्रकट उपदेश सँभारी ॥
अलग अलग गुरुअन उपदेशा । जस पूरब कीन्हो आदेशा ॥
द्वादश अयतन पूजा कीही । मोक्ष करनि मानत हैं सोही ॥
ताहिहि धन सञ्चय करि लेही । करि पूजा बनि जात सनेही ॥
अरु द्वादश स्थान बनाई । बहु प्रकार सब भाँति सजाई ॥
पूजा करहिं प्रेम मन लावैं । दूसर की पूजा न सुहावैं ॥
ज्ञानइन्द्रिरी पाँच विधाना । जिह्वा नैन नाक त्वक काना ॥
करमइन्द्रिरी पाँच सुहाई । हस्तपाद शुभ वर्णि लखाई ॥
गुदा उपस्थ इन्द्रियुत जानो । दश इन्द्री यहिभाँति बखानो ॥
दो०—मन बुधि मिलि द्वादश भये, करहिं सदा सत्कार ।
आनँद में राखहु सदा, है यह बौद्ध विचार ॥ ३६ ॥
या विधि कछु सिद्धान्त बताई । करत समीक्षा बहु समुझाई ॥
जो दुखरूप जगत यह कहहीं । तौ पुनि जीवन इच्छा लहहीं ॥
देखियत प्रगट चाह सब माहीं । याते दुखमय यह जग नाहीं ॥
हैं सुख दुख दोनों जग माहीं । प्रगट जगत के बीच लखाहीं ॥
मानत बौद्ध जो यहि विधिभाई । तौ किमि औषधि करत बनाई ॥
तनरक्षा किमि करत उपाई । किमि सुख मानत व्यथा नशाई ॥
जो यह कहहिं करत सब कामा । मानत दुःख सदा सब ठामा ॥
तो यह कथन न सम्भव होई । सुख हो जासु कर्म कर सोई ॥
सो०—सुःख जानि नित जीव, करत प्रवृती कर्म में ।
जानि दुःख बलसीव, मनहि निवृत्ती धारिये ॥ ६ ॥

दो०—धर्म, क्रिया, विद्या जगत, सत्सगादिक कर्म ।
सुखकारक व्यवहार शुभ, जानतबुधिवरमर्म ॥ ३७॥

दुःख लिंग नहिं मानत कोई । बौद्ध विहाय बुद्धिवर जोई ॥
अहैं अपूरण पंच स्कन्धा । बौद्धन हिय धारेहु जो धन्धा ॥
जो यहि भाँति विचारन लागे । भेद अनेक होत हैं आगे ॥
जो तीर्थङ्कर इनके माहीं । तिन उपदेशक कहतसराहीं ॥
जगतपती तिनही कहँजानहिं । परमेश्वर को कछु नहिंमानहिं॥
तीर्थङ्करन कहाँ ते पायो । बनि उपदेशक सबन सुनायो ॥
जो यह कहहु स्वतः है पायो । बिन कारन कारजकसआयो ॥
यदि हम मानहिं उनकी बाता । होतनकिमियहि औसरताता ॥
बिन सत्संग कर्म बिन चीन्हें । ज्ञानवान होवैं बिन कीन्हें ॥

दो०-जो न होत यहि भाँति सों, तौ सब है निर्मूल ।
रोगी सम बड़रात सब, युक्ति शून्य प्रतिकूल ॥ ३८॥

बौद्ध शून्य अद्वैत जो मानत । निर्मित यह उपदेश बखानत ॥
देखहु शून्य प्रकट ना होई । कारणरूप सूक्ष्म तौ होई ॥
पर भ्रम रूप याहु को जानहु । और जो पूजा द्वादश मानहु ॥
अरु तेहि मुक्ती साधन कहहू । तौ किन बात हमारी गहहू ॥
तो दश प्राण एकादश जीवा । पूजा करहु जो हैं बलसीवा ॥
अन्तःकरण इन्द्रगण पूजा । मानत मोक्षदायिनी पूजा ॥
तौ इन बौद्धन औ विषयीजन । अन्तर कहा जो आवहिमोमन॥
इन्द्रिय विषय जहाँ पर होई । तहाँ भक्ति का काम न कोई ॥

दो०—करी अविद्या उन्नती, समता है कोउ नाहि ।
घटहि न दूसर में कतहुँ, निश्चय मानहु याहि ॥३६॥

वेद त्यागि जो दुख को भोगत । नाना भाँतिन पूजा जोवत ॥
पुनि फल मिलत कछू है नाहीं । भरमतआँखिमीचिसबठाहीं ॥
बात हमारि मानि यह लेहीं । तौ सब त्यागि वेद चितदेहीं ॥
करि भरोस ईश्वर दिन राती । करहिंसुफलजीवनसबभाँती ॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई । देखहु बौद्धग्रन्थ प्रभुताई ॥
ग्रन्थ विवेकबिलास[1] लखाई । लिखो बौद्धमत जो दर्शाई ॥

---

१. बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम् ।
आर्यसत्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ १ ॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः ।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥ २ ॥
दुःख संसारिणःस्कन्दास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः ।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३ ॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दा वा विषयाः पञ्च मानसम् ।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥ ४ ॥
रागादीनां गणो यः स्यात्समुदेति नृणां हृदि ।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः ॥ ५ ॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा ।
समार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षानुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा ।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ७ ॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहुमन्यते ।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षं ग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥ ८ ॥

मानत बौद्ध "सुगत" भगवाना। पूजनीय जो देवसमाना॥
क्षणभंगुर जग को ते मानत। आर्य्याआर्य्यनारिनरभाषत॥
चार तत्त्व आख्या संज्ञादिक। मानतबौद्धचहतअणिमादिक॥
सो०—दुखगृह मानहिं विश्व, ता पीछे उन्नति चहहिं।
अब आगे सर्वस्व, सहित प्रेमव्याख्या सुनहु ॥७॥
दो०—यह जग दुख को मूल है, जानि लेहु सब भाँति।
पंच स्कन्ध विलोकिये, पूर्व कह्यो बहु भाँति ॥४०॥
ज्ञानइन्द्रि जो पाँच लखाहीं। पाँच विषय ताके दर्शाहीं॥
अरु मन बुधियुत द्वादश जानहु। धर्मस्थान बौद्ध पहिचानहु॥
राग द्वेष मानुष हिय माहीं। उपजत "समुदय" ताहिबताहीं॥
आतम को आतम सम्बन्धा। जोस्वभाववह "आख्या" धन्धा॥
मानत क्षणिक सबै सँस्कारा। स्थिर होति वासना धारा॥
शून्य तत्त्व अरु रूप शून्य हो। मारग बौद्ध लखहु स्थिर हो॥
जो प्रतक्ष अनुमान प्रमाना। मानत दो ही प्रबल प्रमाना॥
तिनके चारि भेद इमि कहहीं। वैभाषिकसौत्रान्तिक अहहीं॥
और माध्यमिक योगाचारा। मानत ये हो चारि प्रकारा॥

आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥ ९ ॥
रागादिज्ञानसन्तानवासनोच्छेदसंभवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥
कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।
संघो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥ ११ ॥

सो०—ज्ञान माहिं जो अर्थ, विद्यमान मानत सदा।
'वैभाषिक' सामर्थ, कहत ज्ञान बिन और नहिं ॥८॥

दो०—"सौत्रान्तिक" मानत सदा, है भीतर प्रत्यक्ष।
बाहर कछु मानत नहीं, जो कछु पक्ष विपक्ष ॥४१॥

सहित अकार ज्ञानयुत बुद्धी। मानत "योगाचार" समृद्धी॥
कहत 'माध्यमिक" हैं यहि भाँती। है कोउ नाहिं पदारथ जाती॥
केवल ज्ञानमात्र निज माहीं। सकल पदारथ जो जग आहीं॥
रागादिक जो ज्ञान प्रवाहा। होत वासना जो जग चाहा॥
तासु नशे मुक्ती उपराजै। चारौ बौद्ध हृदय बिच छाजै॥
मूड़ मुड़ाय कमंडलधारी। लै मृगचर्म बनहिं आचारी॥
बलकल वस्त्र लाल रँग होई। रहहि अकेल न कतहूँ कोई॥
प्रथम प्रहर भोजन नित करहीं। बौद्ध साधुयह उर बिच धरहीं॥
स्वामि उत्तर दीन्हो हर्षाई। सुनहु कह्यो जो चित्त लगाई॥

दो०—सुगत बुद्ध ही देव है, बौद्धन के समुदाय।
तौ गुरु इनको कौन है, कहहु हमहिं समुझाय ॥४२॥

सो०—विश्व होय क्षणभंग, तौ काको स्मरण हो।
जो कहि करत उमंग, याहि पूर्व हमने लख्यो ॥९॥

या बिधि हो स्मरण न भाई। तो क्षणभंग सो नाहिं लखाई॥
है क्षणभंग पदार्थ नशाई। पुनि स्मरण होय कस भाई॥
इनका क्षणिकवाद पथ जोई। ता क्षणभंग मोक्षहु होई॥
ज्ञान सहित द्रव्यर्थ जो भाई। कौ जड़ द्रव्यहु ज्ञान लखाई॥

कहहु क्रियासो केहिपर करई। चालनादि जो हियविचधरई॥
बाहर जो कछु प्रकट लखाई। वह मिथ्या केहि विधि दर्शाई॥
जो आकाशसहित बुधि होवै। तौ तेहि प्रकटरूप जग होवै॥
जो हो केवल ज्ञान बिचारा। हृदय आत्माबिच है धारा॥

दो०—बाह्य पदारथ ज्ञानही, केवल मानो जाय।
तौ पदार्थ के ज्ञेय बिन, ज्ञान न होवे भाय॥४३॥
नाश वासना मुक्ति यदि, मानि लेहिं जो तात।
तौ मुक्ती सुषुप्ति में, किमि नहिं मानी जात॥४४॥

जो हम अस मानहिं जग माहीं। हो विरोध विद्या सब ठाहीं॥
अब बुधिमान विचारहिं लोगू। बौद्धधर्म विद्या कस योगू॥
अवतनि सुनहु जैन व्यवहारा। लिख्योजो ग्रंथनबिचविस्तारा[1]॥
मानतबौद्ध"गगन"अरुकाला। "जीव"और"पुद्गल"को हाला॥
जिमि यह चारि द्रव्य हैं मानत। तिमि जैनी षट[2] द्रव्य बखानत॥

---

१. प्रकरणरत्नाकर भाग १ नयचक्रसार में यह प्रकरण मिलता है।

२. (१) धर्मास्तिकाय—जो गति परिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुआ, पुद्गल इसकी गती के समीप से स्तम्भन करने का हेतु है, वह धर्मास्तिकाय और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और लोक में व्यापक है।

(२) अधर्मास्तिकाय—यह है जो स्थिरता से परिमाणी हुए जीव तथा पुद्गल को स्थिति के आश्रय का हेतु है।

या विधि इनकी सुनहु समीक्षा । दीन्ह जौन विधि जैनिन दीक्षा ॥
चारि द्रव्य प्रति समय नवीना ! जो मानत है बौद्ध प्रवीना ॥
वे हैं झूठ सदा सब भाँती । जानहिं बुद्धिमान जो जाती ॥
गगन, काल अरु जीव, प्रमानू । होत नवीन न कतहु पुरानू ॥
दो०–ये अविनाशि अनादि हैं, लखिये कारण रूप ।
नव पुरान किमि घटि सकै, नहिं कोइ युक्ति अनूप ॥४५॥
सो०–जैनि जो मानत बात, सोऊ है नहिं ठीक विधि ।
गुण हीं प्रगट देखात, धर्माधर्म न द्रव्य है ॥१०॥
धर्म अधर्म जो गुन जग माहीं । आवत जीवास्तिकाय के माहीं ॥
जीव, काल, परमाणु आकासा । चारहि मानत जो करि आसा ॥

---

(३) आकाशास्तिकाय—उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्यों का आधार जिसमें अवगाहन, प्रवेश, निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलों को अवगाहन का हेतु और सर्वव्यापी है ।

(४) पुद्गलास्तिकाय—यह है जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एकरस, वर्ण, गंध, स्पर्श, कार्य का लिंग पूरने और गलने के स्वभाववाला होता है ।

(५) जीवास्तिकाय—जो चेतनालक्षण ज्ञानदर्शन में उपयुक्त अनन्त पर्यायों से परिणामी होनेवाला कर्ता भोक्ता है ।

(६) काल—यह है जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायों का परत्व अपरत्व नवीन प्राचीनता का चिह्नरूप प्रसिद्ध वर्तमानरूप पर्यायों से युक्त है । परंतु इसमें काल को अस्तिकाय नहीं मानते किन्तु ऐसा कहते हैं कि काल उपचार से द्रव्य है, वस्तुतः नहीं ।

तौ कछु ठीक होत विधि नीकी । मिटत वासना अनुचितहीकी ॥
वैशेषिक नव द्रव्य जो मानें । ते सब भाँति ठीक ही जानें ॥
क्षिति जल पावक गगनसमीरा । जानहु पंच तत्त्व धरि धीरा ॥
काल दिशा मन आतम ये नव । निश्चय पृथक पदारथहैं सब ॥
चेतन जीव एक ही जानत । जैन बौद्ध ईश्वर नहिं मानत ॥
यह इनकर है झूठ प्रलापा । मिथ्या पक्षपात हिय तापा ॥
दो०—सप्तभंगि[1] जो मानहीं, जैन बौद्ध समुदाय ।
स्याद्वाद[2] मानत बहुरि, सुनहुकहौं समुझाय ॥४६॥

---

1. (१) "सन् घटः" इसको प्रथम भंग कहते हैं; क्योंकि घट अपने वर्तमानता से युक्त, अर्थात् घड़ा है । इसने अभाव का विरोध किया है ।

(२) "असन् घटः" घड़ा नहीं है । प्रथम घट के भाव से यह घड़े के असद्भाव से दूसरा भंग है ।

(३) "सन्नसन्न घटः", अर्थात् यह घड़ा तो है परन्तु पट नहीं, क्योंकि उन दोनों से पृथक् हो गया ।

(४) "घटोऽघटः"—जैसे "अघटः=पटः ।" दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है । युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है ।

(५) यह है कि घट को पट कहना अयोग्य अर्थात् उसमें घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है ।

(६) यह है कि जो घट नहीं वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह है और कहने योग्य भी है ।

(७) जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं ।

2. "स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भंगः" ॥ १ ॥

या विधि नित्यानित्य लखाई । सप्तभंगि सब विधि दर्शाई ॥
तैसेहि धर्म समान विशेषा । सप्तभंग बिन नाहिं अशेषा ॥

अर्थ—जीव ऐसा कथन होवे तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों का जीव में अभावरूप भंग प्रथम कहाता है ।

"स्यान्नास्तिजीवो द्वितीयो भंगः" ॥ २ ॥

अर्थ—दूसरा भंग यह है कि नहीं है जीव जड़ में ऐसा कथन भी होता है—इससे यह दूसरा भंग कहाता है ।

"स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंगः" ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं यह तीसरा भंग कहाता है।

"स्यादस्ति नास्ति नास्ति रूपो जीवश्चतुर्थो भंगः" ॥ ४ ॥

अर्थ—जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक् होता है, तब अप्रसिद्ध रहता है, ऐसा कथन होवे उसको चतुर्थ भंग कहते हैं ।

"स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पञ्चमो भंगः" ॥ ५ ॥

अर्थ—जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं, जो ऐसा कथन है उसको पंचम भंग कहते हैं ।

"स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भंगः" ॥ ६ ॥

अर्थ—जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कहने में नहीं आता इसलिये चक्षु प्रत्यक्ष नहीं है, ऐसा व्यवहार है, उसको छठा भंग कहते हैं ।

"स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भंगः" ॥ ७ ॥

अर्थ—एक काल में जीव का अनुमान से होना और अदृश्यपन में न होना और एकसा न रहना किन्तु क्षण क्षण में परिणाम को प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होवे और नास्ति अस्ति व्यवहार भी न होवे यह सातवाँ भंग कहाता है ।

द्रव्य स्वभाव और गुण योगा। अहैं अनन्त जो जानत लोगा॥
तौ अनन्त सप्तभंगिहु होहीं। बौद्ध जैन सम्मत कह जोहीं॥
अब इनकी तनि सुनहु समीक्षा। इनके गुरुन दीन्ह जो दीक्षा॥
दूसर भाव होत यहि भाँती। लखहु ताहि साधर्म सुहाती॥
अरु वैधर्म होहिं जग माहीं। सरल सुभाव विलोकहु ताहीं॥
याते सरल पन्थ जो त्यागत। निज स्वारथहित पन्थ बनावत।

दो०—तिनमहँ फँसिहैं अबुधजन, जिनहिं न तनिक विवेक।
जिमि परिछाहीं निजलखे, सिंह फँसै करि टेक॥४७॥

जीव अभाव सदा जड़ माहीं। है अभाव जड़ जीव लखाहीं॥
करि विचारि देखहु सब लोगू। जड़ चेतन को है जो योगू॥
वर्तमान है जीव सदाई। तैसेहि जड़ प्रकृती दर्शाई॥
यह सहधर्म मिलावहि जोई। हौं सत समता देकर सोई॥
पुनि वैधर्म लखहु यहि भाँती। जड़ में चेतन नाहिं सुहाती॥
नहिं चेतन बिच है जड़ताई। तौ केहि विधिसमभाव लखाई॥
मिलहिं न जब गुन कर्म स्वभावा। धर्मविरुद्ध होत तहँ भावा॥
जबहिं मिलत स्वभाव गुन कर्मा। जानहु ताहि सकलमिलिधर्मा॥

दो०--स्याद्वाद इनको सदा, सहजहि समुझो जाय।
तौ प्रपंच ये करतकिमि, जैन बौद्ध समुदाय॥४८॥

अब केवल जैनिन को सारा। सुनहुजो हैं तिनकेर बिचारा॥

---

१. चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः॥ १॥
हेयं हि कर्तृ रागादि तत्कार्यमविवेकिनः।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैक लक्षणम्॥ २॥

चित चेतन जड़ अचित बतावें। भाव दोऊ परत्व ठहरावें ॥
जो विवेचना जड़ चेतन की। करत जौन नर वहै विवेकी॥
त्याग करहि जो त्यागन योगू। ग्रहन करहि जो गहिबे जोगू॥
राग मोह जग रचना सारी। रचत सदा ईश्वर बलकारी ॥
जो यह कहत सो है अविवेकी। त्यागहि कर्म सकल अविवेकी॥
ज्योति रूप जो संयुत योगा। जीवएक सबविधिसुखभोगा॥
लहहु सदा यक जीव बड़ाई। यह जैनिन की उत्तमताई ॥
दो०—जीव बिना दूसर कोऊ, चेतन मानत नाहिं।
अरु ईश्वर नहिं मानहीं, कहत अनादी नाहिं ॥ ४६ ॥
शिवप्रसाद यहि भाँतिबखानत। ग्रन्थ तिमिरनाशक दर्शावत॥
जैन बौध दोउ एकहि नामा। एकहि अर्थ लखात ललामा ॥

---

१. इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ के तीसरे खंड में यह भी लिखा है, स्वामी शंकराचार्य के पहिले जैनधर्म को केवल एक सहस्र वर्ष के लगभग गुज़रे हैं। सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था। इस पर नोट यह है कि बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शंकर स्वामी के समय तक वेदविरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना, उससे जैन बाहर नहीं निकल सकते। जिन जिससे जैन निकला और बुध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। कोष में दोनों का एक ही अर्थ लिखा है। गौतम को दोनों मानते हैं, पस उनके समय उनका एक मत रहा होगा। गौतम और महावीर कई स्थलों पर एक ही नाम से पाये जाते हैं (अमरकोष कांड १ वर्ग १ श्लोक ८ से १०)

वाममार्गि बौधन बिच पंथा । मांसाहार लिख्यो निज ग्रंथा ॥
अरु सब भखन मांस को लागे । कीन्हविचार न तनिकौआगे ॥
तव विरोध जैनिन ने कीन्हा । ह्वै कर त्रिलगइनहिंतजिदीन्हा॥
पर दो एक लिख्यो बहु ठाईं ! जैन बौद्ध जो पंथ लखाईं ॥
भूले अमरसिंह क्या भाई । अमरकोषजिन लिख्योबनाई ॥
जो बुधिवान सदा ते जानत । जे अज्ञान ते अटपट भाखत ॥
दो०—यामें कछु सन्देह नहिं, जैन बौद्ध द्वौ एक ।
एकार्थी द्वौ शब्द हैं, जानि धरहु हिय टेक ॥ ५० ॥
जीवहि ईश्वरता को लहई । जैन धर्म याही विधि कहई ॥
तीर्थंकरन को ईश्वर मानत । मुक्तिमात्र या विधि दर्शावत ॥
इनहिं को मिलत परम जो मुक्ती । इनबिन कोइ और नहिंशक्ती ॥
कोउ अनादि नाहिं है ईशा । हैं षटदेव[1] नास्तिकन[2] ईशा ॥
औरहु स्थल लिखा प्रमाना । सुनहु जो मानत ईश महाना ॥
राग दोष से रहित जो होई । पूजित तीनहु लोकन जोई ॥
जस होवे तस बरनन वारो । तेहि अरहन परमेश उचारो ॥
जब प्रतक्ष हम देखत नाहीं । परमेश्वर नहिं है केहु ठाहीं ॥
तब अनुमान करहिं केहि हेता । है परमेश्वर ही एक नेता ॥
दो०—एक देश प्रत्यक्ष बिन, होत नहीं अनुमान ।
जब प्रतक्ष अनुमान नहिं, आगम[3] कौन प्रमान ॥ ५१ ॥

---

१. सर्वज्ञ[१], वीतराग[२], अर्हिन[३], केवली[४], तीर्थकृत, जिन[६] ।
२. जो ईश्वर और वेद को नहीं मानता वह नास्तिक है ।
३. अर्थात् नित्य, अनादि, [illegible] परमात्मा का बोधकशब्द प्रमान ।

दो०-याविधि शब्द प्रमाण से, सिद्ध होत नहिं ईश।
अर्थवाद किमि घटिसकत, जो इतिहास अनीश ॥५२॥

अरु अन्यार्थ प्रधान[1] समाना। परोक्ष ईश नहिं सिद्ध विधाना॥
तब उपदेश सुने बिन भाई। करि अनुवाद कौन दर्शाई॥
तब स्वामी कह सुनिये खण्डन। जो तुम करत रहे हो मण्डन॥
होत न जो अनादि जगदीशा। तौ किमि होते अरहन ईशा॥
कौन बनावत मातु शरीरा। पिता आदि जो हैं मतिधीरा॥
बिन सँयोगकर्ता[2] के कोऊ। बनत न नरतन जग में सोऊ॥
जौन पदार्थन देह रचाई। जे जड़रूप न शक्ति लखाई॥
नहिं अस ज्ञान स्वतः बनिजाई। यथायोग्य सब भाँति सुहाई॥

दो०-रागद्वेष के सहित जो, दोषरहित पुनि होय।
वह ईश्वर ह्वै सकत नहिं, कबहुँ बिचारहि कोय॥५३॥
छुटहि राग आदिकन सों, तो मुक्ती दर्शात।
कार्य निमित के हेत सों, मुक्ति अनित्य लखात॥५४॥

अल्प न सर्वव्यापक होई। कबहुँ न अल्पज्ञ सर्वज्ञ होई॥
परिमित जीव स्वरूप सदाई। और एकदेशी दर्शाई॥
ऐसहि गुन अरु कर्म स्वभावा। जानत नहिं सबविद्यनभावा॥
तौ यह तीर्थंकरहु तुम्हारे। हुइ न सकत ईश्वर के प्यारे॥
तौ तुम्हार यहहू तीर्थंकर। केहु विधिहुइनसकतपरमेश्वर॥
और जो तुम प्रत्यक्षहि[3] मानहु। अप्रतक्ष कबहुँ नहिं जानहु॥

१. बहुव्रीहि समास के समान। २. बनानेवाला। ३. दिखाई देनेवाला। ४. न दिखाई देनेवाला।

जिमि जगरूप न कान लखावे। नहिं चक्षु कछु बात सुनावे॥
वैसेहि देखन चहहु जो ईश्वर। जोअनादिअनुपम जगदीश्वर॥

दो०—अन्तःकरन पवित्र करि, करिये योगाभ्यास।
विद्यावित योगी बनहिं, देखहिं ईश्वर भास॥ ५५॥

छं०—जाविधि पढ़े बिन कोउ जानत नाहिं विद्या सार है।
तेहि भाँति योगाभ्यास बिन नहिं ईश निरखनहार है॥
जिमि रूप आदिक जानि गुन प्रत्यक्ष भूमि लखात है।
तेहिभाँति जगरचना निरखि जगदीश जानोजातहै॥ १॥

पाप करत भय शंका होई। अरु लज्जा हिय प्रगटत सोई॥
यह ईश्वर करनी तुम जानहु। है अन्तरयामी पहिचानहु॥
या विधि सों प्रत्यक्ष सदाई। घट घट व्यापक ईश लखाई॥
किमि नहिं होत कहहु अनुमाना। मानहु बिन संदेह प्रमाना॥
जब यह दोउ प्रमान घटि जाहीं। पुनिआगमसबभाँतिसराहीं॥
ईश्वर नित्य अनादि अनन्ता। शब्दप्रमान लखहु भगवन्ता॥
ईश्वर को जब जानत जीवा। स्तुति करहु ईशबल सीवा॥
जाको गुण अरु कर्म स्वभावा। जबहै नित्यपरम सुख भावा॥

दो०—जिमि कर्ता बिन जगत में, होत न कोऊ काज।
तिमि बिन कर्ता होत नहिं, महाकार्य सुखसाज॥ ५६॥

या विधि कोउ न करत सन्देहा। महामूढ़ जानत करि नेहा॥
याते जैन पन्थ से भाई। खंडन होत ईश है नाईं॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। जब सर्वज्ञ ईश दर्शाई॥

शास्त्र अनादि अर्थ नहिं होई। सर्वज्ञता बीच जब होई॥
असतवचनसों केहिविधिकहहू। ईश वचन नहिं ईश्वर लहहू॥
यदि ईश्वर सिद्धी यहि भाँती। ईश्वर वचन मानिसुखमाती॥
एक से एक सिद्धि यदि भाई। यह अन्याऽन्य दोष दर्शाई॥
वेद सत्य तुम मानत जबहीं। ईश्वर वचन मानिलें तबहीं।
मानहिं ईश वेद के वचना। हुइ न सकत जोकरतकल्पना॥
सिद्धि हेत दोहुन परमाना। मानहु तीसर कोइ समाना॥

---

१. अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते॥ १॥

अर्थ—बीच में सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्र का अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किये हुए असत्य वचन से उसका प्रतिपादन किस प्रकार से हो सके॥ १॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते।
प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः॥ २॥

अर्थ—और जो परमेश्वर ही के वचन से परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वर से अनादि शास्त्र की सिद्धि अनादि शास्त्रसे अनादि ईश्वर की सिद्धि अन्योऽन्याश्रय दोष आता है॥ २॥

सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता।
कथं तदुभयं सिद्ध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते॥ ३॥

अर्थ—क्योंकि सर्वज्ञ के कथन से वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेद-वचन से ईश्वर की सिद्धि करते हो यह कैसे सिद्ध हो सकता है? उस शास्त्र और परमेश्वर की सिद्धि के लिये तीसरा कोई प्रमाण जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोष आवेगा॥ ३॥

दो०—तब अनवस्था दोष हो, लगहि ईश के साथ।
मोहिं स्वामी समुझाइये, चरण नवाऊँ माथ ॥ ५७॥

तब स्वामीयहिविधिसमुझावा। जो मानत है ईश्वर भावा॥
परमेश्वर गुन कर्म स्वभावा। हम मानत अनादिजोभावा॥
जो पदार्थ है नित्य अनादी। तिनमें दोष न हो अन्यादी॥
कारज से कारन को ज्ञाना। कारन सों कारज पहिचाना॥
तैसेहि ईश्वर को पहिचानहु। है अनन्त गुण ईश्वर जानहु॥
जिमि अनन्त गुणनित्यलखाहीं। ईश्वर में सबभाँति स्वहाहीं॥
तासु ज्ञान में वेद अनंता। है निर्दोष लखत हैं सन्ता॥
तेहि अनवस्था दोष न लागहि। कर्मनिष्ठ नर के हियभावहि॥

दो०—तुम ईश्वर तीर्थंकरन, मानत हौ जो तात।
सो काहू विधिनहिंबनत, नहिंहियआवतबात ॥५८॥

है अनादि ईश्वर जगकर्ता। परमातम सुजनन दुखहर्ता॥
और सुनहु यक ग्रन्थ[१] हवाला। भाग दूसरे में जो हाला॥
है आस्तिकनास्तिकसम्बादा। सुनहु सोइजोलिख्योविवादा॥

नास्तिक

होत ईश इच्छा कछु नाहीं। कर्महिं सों सबहोत लखाहीं॥

आस्तिक

जो सब होत कर्म सों भाई। उपजेहु कर्म कहा ते आई॥
आदि जीव कर्ता यदि मानहु। तौचिनइन्द्रिनकेहिविधिजानहु॥

---

१. प्रकरण रत्नाकर (जिसको जैनियों ने माना है और सम्मतियाँ दी हैं और बम्बई में छपवाया है) ।

श्रोत्रादिक जो साधन अहहीं। जिन बिन जीवकछू ना लहहीं ॥
अरु काते ये भये बतावहु। यदि तुमकालअनादिलखावहु ॥
दो०–अरु यह कहहु स्वभावते, करत कर्म सब कोय।
इन्द्रि आदिसमुदाय सब, होतस्वभावज सोय ॥५९॥
तौ अनादि छूटै केहि भाँती। मुक्ति असंभव हमहिंलखाती ॥
कर्म निवृत्त होत नहिं कबहूँ। मानहु सान्त अनादी जबहूँ ॥
तौ बिन यत्न कर्म छुटि जाहीं। तब यह मुक्ति अर्थ है नाहीं ॥
यदि न होय ईश्वर फलदाता। पाप कर्म फल दुःख प्रदाता ॥
तौ निज इच्छा जीव न भोगत। करत पापअरुसुखसोंसोवत ॥
जिमिजगचोरचोरिफल जानत। निज इच्छानहिंदंडसँहारत ॥
भोगत राजसभा डर सोऊ। तिमि ईश्वर फल दे सब कोऊ ॥
भोगत पाप पुन्य फल जीवा। भोगवावत ईश्वर बलसीवा ॥
दो०–नतु होवहिं संकर करम, भोगहि अन्य को अन्य।
पुन्य करहि फल पापहो, पाप करहि फल पुन्य ॥६०॥

नास्तिक

ईश्वर अक्रिय[1] है लखहु, लगै न ताको कर्म।
याते जो हम मानते[2], तुमहु लहहु सो धर्म ॥६१॥

---

१. यदि ईश्वर कर्त्ता कर्म का होता तो उसको कर्म-फल भी भोगना पड़ता, अतः फल नहीं भोगता इससे अक्रिय है ॥

२. जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं।

आस्तिक

छंद—ईश्वर न अक्रिय है कतहु सक्रिय सदा पहिचानिये ।
चैतन्य गुण जा महँ विराजत तासु कर्ता मानिये ॥
कर्ता लखहु जाको क्रिया सों वह बिलग कबहूँ नहीं ।
ईश्वर[१] बखानत जाहि तुम बुधवर न ताको मानहीं ॥२॥

जो निमित्त से ईश्वर बनई । तौ स्वाधीन ईश किमि गनई ॥
ईश अनित्य होत तब भाई । पराधीन ईश्वर दर्शाई ॥
प्रथम रहेउ अलपज्ञ सो जीवा । पुनि बनि गयो ईश बलसींवा ॥
रह्यो सदा है सोई जीवा । छुटत नजीवस्वभाव अतीवा ॥
जीव अनन्त काल से आई । रहहि अनन्त काल लौं भाई ॥
याते ईश अनन्त विचारहु । स्वतःसिद्धईश्वर पहिचानहु ॥
जिमि जग जीव करत है पापा । भोगत दुःखकरत परितापा[२] ॥
करत पुन्य सुख भोगत नीके । परम स्वतंत्र भावते जीके ॥

दो॰—तिमि ईश्वर कबहूँ नहीं, जीव जौन विधि होय ।
क्रियावानयदिईशनहिं, रचत जगत किमि सोय ॥६२॥

मानत क्रिया जो मुक्ती माहीं । तिनहिं ज्ञान होवे या नाहीं ॥
जो यह कहहु होत है ज्ञाना । तौ है अन्तःकरन महाना ॥
अन्तःकरन क्रिया सब होई । अहंकार मन चित बुधि जोई ॥
यदि पखानवत जड़ ह्वै रहहीं । रहि यक ठौर कष्ट को सहहीं ॥

---

१. जैनसमुदाय अपने तीर्थंकरों को ही ईश्वर मानता है ।

२. पश्चात्ताप (पछिताना)

जब कछु चेष्टा करत न भाई । कहहु मुक्ति यह कवन लखाई ॥
यह तो अन्धकार अति अहई । मुक्ति न है यह बन्धन लहई ॥

नास्तिक

तबनास्तिकयहिभाँतिबखानत । हम ईश्वरव्यापकनहिंमानत ॥
यदि ईश्वर व्यापक जग माहीं । वस्तु सबै चेतन किमि नाहीं ॥
ब्राह्मण क्षत्रि वैश्य व्यवहारू । शूद्र सहितजो वरणविचारू ॥
दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, किमि होवें व्यवहार ।
जब ईश्वर सबमें रहत, चहिय न यह व्यवहार ॥६३॥

आस्तिक

आस्तिककहततनिकचितदीजै । जोहम कहतताहिसुनि लीजै ॥
व्यापक व्याप्य एक नहिं होहीं । किन्तु पृथक द्वौ चेतन होहीं ॥
व्याप्य एकदेशी सब काला । व्यापक प्रभूअखण्डनिराला ॥
और सर्वदेशी तेहि जानहु । व्यापकगगनसमानप्रमानहु ॥
घट अकाश अरु पट आकाशा । अरु भूगोल केर परकाशा ॥
एकदेशि जो व्याप्य सदाई । अरुव्यापकआकाश लखाई ॥
जिमि पृथिवी आकाश न एका । जगत ब्रह्म तिमि नाहीं एका ॥
जिमि घट पट आकाश न भाई । व्यापि रहेउ सबठौर लखाई ॥
दो०—ताविधि चेतन सकल में, व्यापि रह्यो सिरमौर ।
सब चेतन नहिं होत हैं, लखहु नेम सबठौर ॥६४॥
सो०—जिमि सम कतहु न होत, धर्मी और अधर्मि जन ।
श्रेष्ठ कर्म उद्योत, विघ्नशील स्वभाव युत ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ कर्म जब वृद्धी पावैं। तबहीं तेहि ब्राह्मण ठहरावैं॥
न्यूनाधिक कर्मन ते भाई। ऊँच नीच जग महँ दर्शाई॥
वर्णाश्रम व्याख्या जो चहहू। कथा चतुर्थ विलोकत रहहू॥

नास्तिक

तब यकनास्तिककहत सुनाई। यदि ईश्वर रचना दर्शाई॥
तौ पितु मातु केर का कामू। जो दर्शावत हैं निज नामू॥

आस्तिक

कहतस्वामि याविधिसमुझाई। ईश्वर सृष्टि ईश उपजाई॥
जीव सृष्टि नहिं ईश बनावे। निज कर्तव्य जीव अपनावे॥
जिमिरचि दीन्हईशफलफूला। अन्न औषधी वृक्ष समूला॥

दो०—लै ताको निशि दिवस जन, खात सकल हर्षाय।
पीसि कूटि सब भाँति सों, अग्नी माहिं पकाय॥६५॥
ताको लै कछु करै नहिं, संसकार गृहयोग[1]।
कूटै पीसै ना कछू, नाहिं करहि उपभोग॥६६॥
कहहु कहा ईश्वर करै, यहहु तुम्हारे काम।
निज कर्तव जो ना करहु, तौ जीवन बेकाम॥६७॥

याते आदि सृष्टि के माहीं। नरतनु साँचा ईश बनाहीं॥
पुनि पुत्रादिक उत्पति करई। कर्तव जीव हृदय बिच धरई॥

नास्तिक

कहत बहुरि ईश्वर प्रभुताई। जो अनादि शाश्वत दर्शाई॥

---

१. कूटना, पीसना, रोटी आदि पदार्थों का बनाना।

चिदानन्द ज्ञानी जगदीशा । परमातम सत व्यापक ईशा ॥
तौ किमि परत प्रपंचन माहीं । दुखभोगतसुखत्यागिसदाहीं ॥
असनकरतकोउलघुजनकामा । तौ किमिकीन्हईशसुखधामा ॥

आस्तिक

तब कहस्वामि सुनहुचितलाई । ईश प्रपंच न परत कदाई ॥
ना दुख सहै न आनँद त्यागै । यह सब एकदेशि में लागै ॥

दो०—सर्वदेशि को लगत नहिं, कर्म जीव अलपज्ञ ।
जो अनादि परमात्मा, चिदानन्द सर्वज्ञ ॥ ६८ ॥
ताहि बिना कोऊ नहीं, जगत बनावत जोय ।
जगरचना में हूँ कबहुँ, जीव न समरथ होय ॥ ६९ ॥

नहिं समर्थ जड़ जो बनि जाई । बिन प्रभु कोई नाहिं लखाई ॥
ताते सिद्ध भई यह बाता । जगतरचत ईश्वरसुखदाता ॥
जिमि सृष्टी परमाणु से बनई । तिमिपितुमातुनिमितजगगनई ॥
पर यह नियम ईश ने बाँध्यो । सोइ जीव निज हाथन साध्यो ॥

नास्तिक

पुनि कह ईश मुक्ति सुख त्यागी । सोचत रहत सृष्टिहितलागी ॥
धारण करै प्रलय पुनि करई । किमियहझंझट उरबिचधरई ॥

आस्तिक

स्वामिकहततुमयहनहिंजानत । मुक्त जीव को ईश्वर मानत ॥
एकदेशि नहिं हुइ सक ईशा । सर्वदेशि प्रभु है जगदीशा ॥
वह करता धरता जग केरा । प्रलय करत जब आवहिबेरा ॥

दो०—वश्यकरत इच्छासकल, मुक्त जीव दिन रात ।
ज्ञान युक्त साधन करहिं, योग महा सुखदात ॥ ७० ॥

बन्ध मुक्त में रहत सदाई । जीव एकदेशी जो भाई ॥
ईश्वर बंधचक्र नहिं पावत । जस तुम तीर्थंकरन बतावत ॥
परमात्मा मुक्त सब काला । परत न कबहुँ कोउ भ्रम जाला ॥

नास्तिक

तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । जीव कर्मफल लहत सदाई ॥
जिमि मद्‌भंग केर तन माहीं । भोगत स्वतः ताहि दुख नाहीं ॥
या में ईश्वर को कह कामूँ । है न कोउ ईश्वर केहु ठामूँ ॥

आस्तिक

तब ऋषिराज कहत भयत्यागी । जो जन चौर करम अनुरागी ॥
अरु नित डाका डारति रहहीं । दंड न निज इच्छा ते लहहीं ॥

दो०—बिन राजा कोउ जगत में, नहिं चाहत है दंड ।
जो न देहि नृपकर्मफल, तौ जन होत उदंड ॥७१॥

जिमि राजा परजा सुखलागी । करत उपाय न्याय पथपागी ॥
तिमि ईश्वर सब प्रानिन हेता । कर्मअनुकूलजो सुखदुखदेता ॥
कबहुँ न जीव चहत मन माहीं । भोगहि अधरमफलसबठाहीं ॥

नास्तिक

जब करता कोऊ है नाहीं । स्वयंसिद्ध यहजगतसदाहीं ॥

आस्तिक

भूलत हैं जैनो निशिवासर । समुझत नाहिं बहुतहैं कादर ॥

बिन करता कारज कस होई। देखियत प्रगट जगत में सोई ॥
भोजन वस्त्रादिक शृंगारा। बनत न बिन करता व्यापारा ॥

दो०-तबईश्वरबिनजगतकस, स्वयंसिद्ध है जात।
बुधवर कोउ न मानहीं, बिन प्रमान तव बात ॥७२॥

राग द्वेष ईश्वर में नाहीं। जो तुम समुझत हौ मनमाहीं ॥
ईश करत नाना विधि कर्मा। अरु फल देत देखि जनकर्मा ॥
ईश्वर में सामर्थ अनन्ता। दुख न होत सो परम महन्ता ॥
निज अज्ञता ईश में मानत। घोर अविद्या यह दरशावत ॥
तब यक जैन कहत यहि भाँती। सुनहु ऋषीश्वरशास्त्रसुहाती ॥
मूल प्रमान[1] हमारे सुनहू। अरु पुनि अर्थ तासु को गुनहू ॥
तब न रहै तुम्हार सन्देहा। होवै जैनधर्म सों नेहा ॥
है यह जगत अनादि अनन्ता। आदि न है नहिंहै कहुँ अन्ता ॥
नाश न याको कबहूँ होई। याहि बनायो है नहिं कोई ॥

सो०-कहत स्वामि समुझाइ, तनि विचार हिय बिच धरहु।
बहुत लियो भरमाइ, अबनचलहिबुधहीनमत ॥१२॥

दो०-उत्पति जो संयोग से, वह न अनादि अनन्त।
बिन उत्पत्ति बिन नाश के,कबहुँरहतिनहिंशान्त॥७३॥

जो उत्पत्ति जगत के माहीं। सब संयोग रूप देखराहीं ॥
है संयोग नाश को भावा। तब सृष्टी कस नाश न पावा ॥

---

१. सामि अणाइ अणन्ते च नूगइ संसार घोर कान्तरे।
मोहाइ कम्म गुरु ठिइ विवाग बस तुभमइ जीवरो ॥
(प्रकरणरत्नाकर भाग २ षष्ठी शतक ६० सूत्र २ गौतम-महावीर-संवाद)

जस तुम्हार गुरुअन जग माहीं। कहिअनहोनीसवनसिखाहीं॥
जानि परत भूगोल न जानत। अरुखगोलविद्यानहिं आवत॥
मानत सृष्टिभेद[1] जेहि भाँती। ता विधिमानत कोउ नजाती॥
एक ग्रन्थ की कछु ही बातैं। सुनहु करी हैं जो कछु घातैं॥
रत्नसार है भाग सोहावा। नानकचन्द जती छपवावा॥
जैनप्रभाकर प्रेस के माहीं। छप्यो बनारसबीच लखाहीं॥
तेहि निर्माणकाल[2] लखि लेहू। अरु पुनि जैनधर्म चित देहू॥
समयविभाग कह्यो यहिभाँती। लिखीग्रन्थ[3]बिचहैंकछुपाँती॥

---

१. सृष्टि में पृथ्वीकाय अर्थात् पृथ्वी भी जीव का शरीर है और जल-कायादि जीव भी मानते हैं।

२. रत्नसारभाग—निर्माणकाल २८ अप्रैल, १८७९ ई०

३. रत्नसारभाग पृष्ठ १४५—समय का नाम सूक्ष्म काल है। असंख्यात समयों (अवलि) की एक करोड़ सरसठ लाख सत्तर हज़ार दो सौ सोलह अवलियों का एक मुहूर्त वैसे तीस मुहूर्तों का एक दिवस और १५ दिवसों का (पक्ष); दो पक्षों का एक माह; बारह महीनों का वर्ष वैसे सत्तर लाख करोड़, छप्पन सहस्र करोड़ वर्षों का पूर्व ऐसे असंख्यात पूर्वों का पल्योपम (काल) कहते हैं।

असंख्यात का अर्थ करते हैं— एक चार कोस का उतना ही गहरा कुआँ खोदकर उसको जुगुलिये मनुष्यों के बालों में इस प्रकार भरे। जुगुलिये मनुष्य के चार सहस्र छानवे बालों को इकट्ठा करे, तब इस समय के मनुष्य का एक बाल होता है। ऐसे जुगुलिये मनुष्य के एक बाल के एक अंगुल भाग के सात बार आठ आठ टुकड़े करने से २०९७१५२ टुकड़े होते हैं ऐसे टुकड़ों में से पूर्वोक्त कुआँ को भरना पुनः उसमें से सौ बरस में एक एक टुकड़ा निकालना जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआँ

लिखब ग्रन्थ मन में जब आवा। अन्धाधुन्धलिख्यो जोपावा ॥
दो०—जैनिन जस सृष्टी लिखी, केहु न लखी केहु ठाम।
महा असम्भवलिखिदियो, नहिंआवतकेहुकाम ॥७४॥

खाली हो जावे तभी वह संख्यात काल है और जब उनमें से एक टुकड़े के असंख्यात टुकड़े किये जावें और उसी कुआँ को भरा जावे जिसके ऊपर से फ़ौज सहित राजा की सवारी निकल जावे तो भी न दब सके। उन टुकड़ों में से सौ सौ बरस बाद एक एक टुकड़ा निकाला जावे। जब कुआँ खाली हो जावे तब उसमें असंख्यात पूर्व पेड़ तक एक एक पल्योपम काल होता है। यह पल्योपम काल इस कुआँ के दृष्टान्त से जानना। जब दश करोड़ानकरोड़ पल्योपम काल बीते तब एक सागरोपम काल होता है। जब दश करोड़ सागरोपम काल बीते तब उत्सर्पिणी काल होता है। जब एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल बीत जाय तो कालचक्र होता है। जब अनन्त कालचक्र बीत जाय तब एक पुद्गल परावृत काल होता है। काल की संख्या इस प्रकार की है, जो नव दृष्टान्तों में संख्या की गई है। अनन्त उससे उपरान्त अन्तकाल कहाता है। वैसे पुद्गल परावृत-काल जीव को भ्रमते हुए बीते हैं इत्यादि। इसी प्रकार रत्नसारभाग पृ० १३३ से लेकर जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थ जो कि उनके तीर्थंकर अर्थात् ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्य्यन्त चौबीस हुए हैं, उनके वचनों का सारसंग्रह है। ऐसा रत्नसारभाग पृ० १४८ में लिखा है कि पृथ्वी-काय के जीव यही पाषाणादि पृथ्वी के भेद जानना। उनमें रहनेवाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अंगुल का असंख्यातवाँ समझना अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं। उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्य्यंत जीते हैं। रत्नसारभाग पृ० १४९ वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं। वे साधारण वनस्पति कहाते हैं जो कि कन्द-मूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं। उनको

मत्स्य आदि जल जन्तु लखाहीं । तनु यक कोटि कोश बतलाहीं ॥
उतनिहि आयु बतावत रहहीं । जलचर आदि जन्तु जो अहहीं ॥
या विधि हस्तिन देह[1] बतावहिं । और आयु[2] तिन कोठहरावहिं ॥
अस अद्भुत लीला इन केरी । निज ग्रंथन[3] विचलिखीघनेरी ॥

साधारण वनस्पति के जीव कहने चाहिये । उनका आयुमान अन्तर मुहूर्त होता है। यहाँ पूर्वोक्त उनका मुहूर्त समझना चाहिये और एक शरीर में जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं । उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोस लम्बा होता है परन्तु जैनियों का योजन १०००० कोसों का होता है । ऐसे ४ सहस्र कोस का शरीर होता है । उसका आयुमान अधिक से अधिक दस सहस्र वर्ष होता है। अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख, कौड़ी और जूं आदि होते हैं । उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालिस कोस का स्थूल शरीर होता है । और उनका आयुमान अधिक से अधिक १२ वर्ष का होता है। (यहाँ बहुत भूल गया, इतने बड़े शरीर की आयु अधिक होनी चाहिये थी । अड़तालिस कोस का जूं जैनियों के शरीर में पड़ता होगा और उन्हीं ने देखा भी होगा और भाग्य ऐसा कहाँ जो इतने बड़े जूं को देखे !!!) रत्नसार पृष्ठ १५० और देखो, इनका अन्धाधुन्ध बिच्छू, (गिजाई वगाई), कसारी (कंसेराई), मक्खी एक योजन शरीरवाले होते हैं। इनका आयुमान अधिक से अधिक छः महीने का है ।

---

१. चतुष्पाद हाथी आदि का देहमान २ कोस से ६ कोस पर्यन्त ।
२. आयुमान ८४ सहस्र वर्षों का ।
३. रत्नसार भाग पृ० १५१ । जलचर गर्भज जीवों का देहमान उत्कृष्ट १ सहस्र योजन अर्थात् १००००००० कोशों का और आयुमान एक करोड़ वर्षों का होता है ।

असजगबृहतजीव तन धारहिं । जैन अचारजतिनहिंनिहारहिं ॥
कहहु कहा यह होवहि साँची । जस जैनिन निज ग्रन्थन बाँची ॥
होत असम्भव जो जग माहीं । सो कस सम्भव परत लखाहीं ॥
अब तनि सुनहु भूमि परिमानू । लिख्योग्रन्थबिचजो[1] अनुमानू ॥
दो०—सुनहु सकल जन चित्त दै, जो जानत भूगोल ।
तुम भूले या जैन सब, गणित जौन भूगोल ॥७५॥
जो भूल्यो वह समुझै हितसों । करिविचारदेखहिंवहहियसों ॥
भूविद्या जैनी नहिं जानत । जो जानत अस कबहुँ न भाषत ॥
जो लिख दई असम्भव बातैं । ना जानै इनकी को घातैं ॥

---

१. रत्नसारभाग पृ० १४२ । इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं । इन असंख्यात का परिमाण अर्थात् जो अढ़ाई सागरोपम काल में जितना समय हो, उतने द्वीप तथा समुद्र जानना । अब इस पृथ्वी में जम्बूद्वीप प्रथम सब द्वीपों के बीच में है। इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् एक अरब कोस का है । इसके चारों ओर लवण-समुद्र है, उसका प्रमाण दो लाख योजन अर्थात् २ अरब कोस का है । इस द्वीप के चारों ओर धातकीखण्ड नाम का द्वीप है । जो ४ लाख योजन अर्थात् ४ अरब कोस का है । उसके पीछे कालोदधि समुद्र है । उसका आठ लाख योजन अर्थात् ८ अरब कोस का प्रमाण है। उसके पीछे पुष्करावर्त द्वीप है। उसका प्रमाण १६ कोस का है । उस द्वीप के आधे में मनुष्य बसते हैं । उसके उपरान्त असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, उनमें तिर्यग् योनि के जीव बसते हैं । रत्नसार भाग पृ० १४३ । जम्बूद्वीप में एक हिमवन्त, एक ऐरण्डवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक, एक देवगुर, एक उत्तर कुरु यह ६ क्षेत्र हैं ।

जो यह मानत ईश्वर नाहीं । तो आश्चर्य तनिक है नाहीं ॥
जसबुधिहीन कहतदिनराती । तैसेहि जैनिन रीति लखाती ॥
देत न बुधिवर को निज पोथी । जो गुनहीन अपूरब थोथी ॥

दो०—जगतअनादीकहनहित, जो प्रपंच थिर कीन्ह ।
सोअसत्यसबभाँति सों, ग्रन्थ प्रमाणजो दीन्ह ॥७६॥

धारण जगत अनादि सदाई । तत्त्व प्रमानु अकर्तृ लखाई ॥
स्वत: समर्थवान ये नाहीं । पृथक स्वभाव रूप जड़ आहीं ॥
ताते अवशि बनावन वारो । चेतन रूप ईश उच्चारो ॥
पृथिवी सूर्य आदि जे लोका । राखत नियम माहिं सबलोका ॥
अनन्त अनादि जो चेतनताई । परमेश्वर यह काम लखाई ॥
रचना अधिक सँयोग लखाई । जग स्थूल अनादि न भाई ॥
जगत कार्य तुम नित्यजोमानहु । तो तेहिकारनकवन बखानहु ॥
यदि सोइ कारज कारनरूपा । जो होवै तो दोष[1] सरूपा ॥

दो०—जिमिनचढ़तनिजकंधकोउ, बिनपितुपुत्रनहोय ।
तिमिजगकरताकेबिना, कारज लखहु न कोय ॥७७॥

तब यक जैनी बोलन लागा । परम चतुरतागुन में पागा ॥
जग करता जो ईश्वर मानहु । तो ईश्वर कर्ता बतरावहु ॥
स्वामि कहत सुनिये सब कोई । कर्ता का कर्ता नहिं होई ॥
अरु नहिं कारण कारण कोई । कर्ता कारण कारज होई ॥
जब अस मोटी बात नसमुझत । तोअतिसूक्ष्महृदयकसपहुँचत ॥
सृष्टि विषय हम जो समुझावा । ताहिविचारि लहहु मनभावा ॥

---

१. अन्योन्याश्रय और आत्माश्रय दोष ईश्वर पर घटता है ।

जीव अजीव भेद यहि भाँती । वचन[1] कहेउ जिनदत्त सुहाती ॥
याको भेद[2] सुनहु मन लाई । पाप पुण्य जो रीति लखाई ॥
दो०—कर्म त्याग को मुक्ति जब, मानत हो तुम लोग ।
मुक्ती केर निमित्त यह, छुटहिं कर्म के भोग ॥ ७८ ॥

---

१. यह जिनदत्त सूरि का वचन है । और यही प्रकरण रत्नाकर भाग १ में नवचक्रसार में भी लिखा है ।

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः ।
सत्कर्म पुद्गलाः पुण्यं पापे तस्य विपर्ययः ॥

चेतनालक्षण जीव और चेतनारहित अजीव, अर्थात् जड़ है । सत्कर्म रूप पुद्गल पुण्य और पापकर्मरूप पुद्गल पाप कहे जाते हैं ।

२. (समीक्षा) जीव और जड़ का लक्षण तो ठीक है, परंतु जो जड़रूप पुद्गल हैं, वे पाप-पुण्ययुक्त कभी नहीं हो सकते, क्योंकि पाप-पुण्य करने का स्वभाव चेतन में होता है । देखो, ये जितने जड़पदार्थ हैं वे सब पाप-पुण्य से रहित हैं । जो जीवों को अनादि मानते हैं, यह तो ठीक है, परंतु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीव को मुक्ति-दशा में सर्वज्ञ मानना झूठ है । क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है उसका सामर्थ्य भी सदा समीप रहेगा । जैनी लोग जगत् जीव के कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं । यहाँ भी जैनी लोग भूल गए हैं, क्योंकि संयुक्त जगत् का कार्य कारण प्रवाह से कार्य और जीव के कर्मबंध भी अनादि नहीं हो सकते—जब ऐसा मानते तो कर्म और बंध का छूटना क्यों मानते हो ? क्योंकि जब अनादि पदार्थ है वह कभी नहीं छूट सकता । जो अनादि का नाश मानोगे, तो तुम्हारे सब अनादि पदार्थों के नाश का प्रसंग होगा, और जब अनादि मानोगे, तो कर्म और बंध भी नित्य होगा ।

नैमित्तिक मुक्ती जब होई। सदा सकत है रहि नहिं सोई ॥
कर्ता कर्म नित्य सम्बन्धा। यदि होवे तौ छुटे न फंदा ॥
तबवहपुनिऋषिसोंयहि भाँती। अपनी युक्ति निकारि सुहाती ॥
जिमि चावल भूसी को त्यागी। पुनिनजमतकोउयतननलागी ॥
ताही विधि जो मुक्ती पावत। जन्मत मरत न या जगआवत ॥
तब कह स्वामि सुनहु चितलाई। जो तुम कहत न ठीक लखाई ॥
जीव कर्म अस नहिं संबंधा। जस चावल भूसी को धंधा ॥
जीव कर्म कर्तव्य को संगा। आदि काल से रहेउ अभंगा ॥

दो०–कर्म जीव के साथ ही, बनो रहत सब काल।
होत सो अपने कर्म सों, धनी, रंक, भूपाल ॥ ७९ ॥

कहत कतहुँ नहिं निर्मल जीवा। रहत सदा मलसहितअतीवा ॥
कहत स्वामि निर्मल जब नाहीं। तौ न कबहुँ यह अमल लखाहीं ॥
स्वेत वस्त्र जिमि मल लगि जाई। धोवत ही वह छुटत सदाई ॥
बहुरि लगत मल ताके माहीं। धोयहु स्वेत नसत है नाहीं ॥
यहि प्रकार मुक्ती बिच जानहु। जन्म मरन द्वौ संग बखानहु ॥
पुनि कह पाछिल कर्म सहारा। चेतन जीव परम तनु धारा ॥
कहत स्वामि सुनिए चितलाई। कही जान तुम बात बनाई ॥
तनु धारन हित कर्महि एका। होय निमित्त लखहु धरि टेका ॥
कारन ईश्वर यदि नहिं होई। तो नहिं जन्म दुःखमय कोई ॥

दो०–किंतु सदा सुखवंत सब, धारत जीव शरीर।
कर्मबंध काहे लगै, रहै न कोऊ पीर ॥ ८० ॥

दो०—देत दंड नृप चोर को, बिन इच्छा ततकाल।
ईश्वर ताही विधि सबै, फल देवै सब काल ॥ ८१ ॥

कह्यो बहुरि ऋषिवर सुनिलीजै। तनिकहमारि बातचितदीजै॥
जासु स्वभाव होहि जेहि भाँती। वैसेहि फल होवें सुखमाती॥
ईश्वर को यामें का काजा। विन ईश्वर सब वनत समाजा॥
स्वामि कहा स्वभाव फल होई। तौकिमिमिलतकौनविधिसोई॥
ताते झूठ तुम्हारी बाता। मानहु मम उपदेश सु ताता॥
बहुरि कहत ऋषिवर सुनिलीजै। प्रश्न हमार माँहिं चित दीजै॥
बिन संयोग कर्म परिणामा। होत कबहुँ नहिंकोउसकामा॥
जिमि काँजी अरु दूध सँयोगा। बिनाकियेदधिमिलनअयोगा॥
या विधि जीव कर्म कर योगा। पावत है वह सब बिधिभोगा॥
स्वामि कहत तनि लेहु विचारी। दूध माहिं काँजी को डारी॥

दो०—जब तीसर कोऊ नहीं, कहहु मिलावै कौन।
बिनामिलायेमिलतकस, पराधीन है जौन ॥ ८२ ॥

जब तीसर एक देत मिलाई। तब दधि होत रीतियहभाई॥
ताते जीव कर्म-फल संगा। रहत मिलावत ईश असंगा॥
याते सिद्ध भई यह बाता। बिना ईश सृष्टी नहिं ताता॥
पुनि कह मुक्त कर्म से होई। ईश्वर मानि लेहु है सोई॥
कहत स्वामि यह बालकताई। केहिविधिहुइसककहहुसुनाई॥
कर्म अनादि काल से संगा। [illegible]वसे केहिविधि होतअसंगा॥

दो०–पुनि कह बन्धन कर्मको, अहै सादि ऋषिराज ।
हम मानत हैं जौन विधि, सोइ कहेउ महराज ॥८३॥

तब कह स्वामि सादि जो होई । तौ अनादि फल कर्म न कोई ॥
जीव सँयोग जबै नहिं भयऊ । तब ही सों निष्कर्मी रहेऊ ॥
ताते यह भ्रम छोड़हु ताता । देखहु नवम तरंग सुहाता ॥
मानहु ईश्वर को चित लाई । हिय धरि वेदन की प्रभुताई ॥
तुम्हरे ईश सकल दिशि राजत । अणुअणुमेंसब ठौर बिराजत ॥
तब यक आइ ऋषी सों भाषत । धर्मग्रंथ के सूत्र सुनावत ॥
सुनहु सुनावहि तिनको भावा । जो ग्रन्थन बिच है लखिपावा ।
बीतराग तीर्थंकर केरी । आज्ञाभंग पाप कहि टेरी ॥
सोई है तहँ दुख को हेता । आज्ञा मानहु सब धरि चेता ॥

दो०–तातजिनेश्वरकोकथन, धर्म समान जो भाय ।
ताको धारण है कठिन, तजै न कोउ अकुलाय ॥८४॥
कहऋषिवरनिजमुखबहुत, करहु बड़ाई तात ।
मूरखता की बात यह, जानत हैं सब भ्रात ॥८५॥

१. जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्मुत्तले सदेसणाउ ।
आणाभंगे पावंता जिणमय दुक्वरं धम्मम् ॥
(प्रकरण रत्नाकर भाग २, शतक ६, सूत्र ११)

नोट—इसी प्रकार आगे बहुत प्रमाण इसी ग्रन्थ के दिये हैं जिनका भावमात्र आपको पुस्तक में मिलेगा, मूलपाठ देखना हो, तो मूल सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास में देख लो ।

छं०—निज धर्म को ऊँचो कहत अपनी बड़ाई नित करैं ।
अरु दूसरे की करत निन्दा मूर्खता हिय बिच धरैं ॥
जाकी बड़ाई करत बुधजन तेहि बड़ो सबकोई कहै ।
का चोर अपने मुख बड़ाई करि कहूँ कीरति लहै ॥३॥

पुनि कह सुनहु हमारी बाता । पण्डित कोउ होवै बुधिदाता ॥
जैन धर्म जौं लगि नहिं मानत । ताको हम सबबिधि सों त्यागत ॥
करत विरोध जैनमत जोई । ताको दर्शन करहि न कोई ॥
जैनधर्म से विरुध जो धर्मा । ते सब पाप करावत कर्मा ॥
ताते दूसर धर्म न मानहु । जैन धर्म हितकारी जानहु ॥
त्यागहु सर्प समान सदाई । अन्य पन्थ बिच जो हो भाई ॥
सर्प डसे पर एकहि बारा । मरत जीव तजिके संसारा ॥
अन्य मार्ग सँग करहि जो कोई । जन्म-जन्म दुख भोगत सोई ॥

दो०—सुगुरु सुदेव सुधर्म सब, पन्थ हमारेहि होहि ।
अन्य पन्थ के कुगुरु हों, और कुधर्म लखोहि ॥ ८६ ॥

कहत स्वामि तनि देखहु रीती । इन बिच भूल कहहु है केती ॥
जब इनके चेला ह्वै जाते । तब विद्वान विज्ञ कहलाते ॥
यह तो रीति सदा चलि आई । जो जस होत चहन तस भाई ॥
तीर्थंकर इनके बुधिहीना । चहत सोइ सबको अस कीना ॥
बुधिवर हिय विचारि अस लेहीं । पामरता लखि चित कस देहीं ॥
जाको सत्य धर्म जग होई । सो न डरहि हिय तनिकहु कोई ॥
जाके बिच है पोल महाना । डरत रहत अरु मिलत न आना ॥

दूसर निन्दा नित प्रति करहीं । ग्रन्थ देखावत सबकहँ डरहीं ॥

दो०– याते जानहु जैन सब, डूबहिं सागर बीच ।
निन्दा वैर विरोध जब, दुष्ट कर्म की कीच ॥८७॥

जिमि निन्दक जग जैन लखाहीं । तिमि दूसर कोऊ है नाहीं ॥
जब लगि यह सत्संग न करहीं । तौ लगि भरम जाल बिच परहीं ॥
विद्या विरुद्ध धर्म जब त्यागहिं । तबहीं यह उत्तम सुख पावहिं ॥
अपने को पावन बतलावहिं । दूसर को पापी गोहरावहिं ॥
बनत अहिंसक[1] हैं सबभाँती । निज देवतन[2] लखत नहिं जाती ॥
और कहत जिन मूर्ती पूजन । है अति सार करहु सारे जन ॥
अन्य मार्ग की मूर्तिन माहीं । सारकछू नहिं कहत सदाहीं ॥
भला तनिक इनसों यह पूछहु । करि विचार हिय नैनन देखहु ॥

दो०–वैष्णव आदिक जौन विधि, थापति मूर्ति लखात ।
ताही विधि पाषाण की, मूर्ती जैन सुहात ॥८८॥

जस वैष्णवन केर जड़ पूजा । है असार कछु फल नहिं दूजा ॥

१. जब यह अपने के सिवा दूसरों को ज़िन्दा रहना ही नहीं चाहते, तो भला यह अहिंसक कैसे हो सकते हैं ?

२. यह दूसरे के देवतों को बुरा बताते हैं और अपने को तथा अपने देवतों को अहिंसक बताते हैं, परन्तु श्राद्धदिनकृत पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासन देवी ने रात्रि में भोजन करने के कारण एक पुरुष के थपेड़ा मारा। उसकी आँख निकाल डाली। बदले में बकरे की आँख लगाई । इस देवी को हिंसक क्यों नहीं मानते ?

मूर्तीपूजा वैसेहि तुम्हरी । मिथ्या करत आँख है अँधरी ॥
याते कछु नहिं सार लखाई । जो फँसि जात अन्त पछिताई ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । जैनधर्म मोहिं परम सुहाई ॥
जैनधर्मि जगपूजन जोगू । अन्य अपूज्य अधर्मि अयोगू ॥
सहहिं दुःख यह उर बिच धरहीं । कृषिव्यापार[1] कतहुँ ना करहीं ॥
अन्य ते होइ जो कोई कारज । तदपि जैन तजि करै न कारज ॥
जैनधर्म समता जो करई । वह जन घोर नरक में परई ॥

दो०—यदि कछुहू ना बनि सकै, तौ केवल यह बात ।
कहै जैन उत्तम अधिक, सबसे मोहिं देखात ॥८६॥

तब ऋषि कहत सुनहु मम बाता । कहहु जैन कछु तुमहिं सुहाता ॥
कहहु करत पुनि किमि व्यापारा । जब ग्रन्थन बिच अस उच्चारा ॥
और विचारहु हिय के माहीं । स्वार्थसिद्धिहित करत कि नाहीं ॥
तब यह कहि किमि जाल बिछावत । औरन को मिथ्या समुझावत ॥
याते इनकी बहुत कहानी । अंड बंड जो हैं मनमानी ॥
धर्म विरोध जैन सों आयो । पुनि सबहुँन याको अपनायो ॥
तैसेहि मूर्तीपूजन झगड़ा । जैनिन सों आयो यह रगड़ा ॥
इन पाखंड बहुत फैलायो । झूठ धर्म अति स्वर सों गायो ॥

1. तिहु यण जणं मरंतं दट्ठुण निअन्तिजेन अप्पाणं ।
विरमेतिन पावा उधिद्धी धिठत्तणं ताणम् ॥प्र० भा०२ षष्ठी सू०१०६
नोट—अब जैनियों से कहो इसके अनुसार व्यापार, कृषि त्याग देवें ।

दो०-मूरतिपूजन के विषय, लिख्यो जो ग्रन्थन[1] बीच।
पूजन को फल लिखि दयो, ग्रन्थ अनेकन बीच॥९०॥

---

१. श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ १ में मूर्तिपूजा के प्रमाण—

नवकारेण विबाहो (श्रावकों को पहिले द्वार में नवकार जप कर जाना) १, अनुमरणं साडव (दूसरा नवकार जपे पीछे, मैं श्रावक हूँ स्मरण करना) २, वपाइं इमे (अणुव्रतादिक हमारे कितने हैं) ३, जोगे चौथे द्वारे (चार वर्ष में अग्रगामी मोक्ष है उस कारण ज्ञानादिक है सो योग उसका अत्र अतीचार निर्मल करने से छः आवश्यक कारण सो भी उपचार से योग कहाता है) ४, चियवन्दणगे (पाँचवें चैत्यवन्द अर्थात् मूर्ति को नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे) ५, चचरखाणं तु विहि पुच्छम (छठा प्रत्याख्यान द्वार नवकार प्रमुख विधिपर्वक कहूँगा) और इसी ग्रन्थ में आगे बहुत सी विधि लिखी हैं अर्थात् संध्या के भोजन समय जिनबिम्ब अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्ति पूजना और द्वारपूजना जिसमें बहुत से बखेड़े भरे हैं। इसी प्रकार रत्नसारभाग के पृष्ठ १२ तथा पृष्ठ ३ इत्यादि बहुत स्थलों पर लिखा है। मूर्ति पूजन से राज्य मिलता, पर आजतक एक बीघा भी न मिला। पृष्ठ १३ में गौतम के अँगूठे में अमृत है। इच्छा से प्राप्त होता है, तो जैनियों को अमर हो जाना चाहिये। ऐसी मूर्खता की अनेक बातें भरी हैं जो मूर्खों को ही समझाने की हैं।

पृष्ठ ५२ में—जलचन्दनधूपदीपैरक्षतनैवेद्यवस्त्रैः।
उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजाममहे॥

अर्थात् जल, चन्दन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र और अति श्रेष्ठ उपचारों से जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरों की पूजा करें। इसी से हम कहते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियों [illegible] चली है।

दो०—मूर्ति हमारी नग्न ही, रहत सबै सब काल ।
वस्त्र न धारण करत है, कहत जैन जो हाल ॥६१॥

तनिक बिचारि लेहु मनमाहीं । यह पशुतावत है की नाहीं ॥
जो तुम कहत हृदयगुनआवत । मूर्ती देखि देव यश गावत ॥
सो जड़ताइहु हिय में आवै । मूरखता ताको गुन पावै ॥
याते यह सब झूठ कोलाहल । रचिके जैन कियो बहुहलचल ॥
जैनिन को गुरुमंत्र[1] लखायो । रत्नसार में यह लखि पायो ॥
औरहु बहुतक अकथ कहानी[2] । लिखी अनेक भाँति मनमानी ॥
अब इनकी मुक्ती को हाला । सुनहु रहीकस बुद्धिविशाला ॥
महावीर गौतम सम्बादा । रत्नसार बिचलिख्योविवादा ॥

दो०—ऊर्ध्वलोक सिद्धीशिला, स्वर्गपुरी से ऊँच ।
लक्ष पैंतालीस योजन, लम्बाई है सूक्ष ॥६२॥

योजन आठ मोटाई जानहु । श्वेत वरण मोती सम मानहु ॥

---

१. नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहुणं एसो पञ्च नमुक कारो सव्व पावप्पणासणो मंगलाचरणं च सव्वे सिपठमं हवइ मङ्गलम्, इत्यादि ।

अर्थात् नमो अरिहंताणं (सर्व तीर्थंकरों को नमस्कार), नमो सिद्धाणं (जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार), नमो आयरियाणं (जैनमत के सब आचार्यों को नमस्कार), नमो उवज्झायाणं (जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार), नमो लोए सव्व साहुणं (जितने जैनमत के साधू इस लोक में हैं, सबको नमस्कार) ।

यद्यपि मंत्र में जैनमत नहीं है तथापि जैनियों के अनेक ग्रन्थों में जैनमत से अन्य को नमस्कार नहीं लिखा इसलिये यही अर्थ किया ।

२. मूल सत्यार्थप्रकाश में आप देख सकते हैं समुल्लास १२पृ०२६०।

लोक चतुर्दश ऊपर रहई । सिद्धशिलाशिवपुरतहँ ठहई ।
जन्म मर्ण को दोष न जहवाँ । मुक्त पुरुष पहुँचत हैं तहवाँ ।
कर्मन से छूटत सब कोई । मुक्त जैन पथ जानहु सोई ।
पुनि कहहु बिवरहियेबिचारहु । इनमहँ अन्तर कहा निहारहु ।
जिमि वैष्णव वैकुण्ठ बतावहिं । शैव सकल कैलास सुनावहिं ।
अरु गोसाईं गोलोक लखावहिं । श्री पुर आदि अनेक सुनावहिं ।
पौराणिक यहि भाँतिन कहहीं । पड़िभ्रमजालमहादुखसहहीं ।

दो०—आसमान चौथो कहत, ईसाई हर्षाय ।
यवन सातवों हैं भखत, मुक्ती ठौर बताय ॥ ६३ ॥

याते इन केहुन की बाता । सत्य न है यह जानहु भ्राता ।
यदि स्थान शिला कहुँ मानहिं । तौ मुक्ती नहिं बंधन जानहिं ।
देखहु मुक्तिविषय जो भाई । नवम तरंग विलोकहु जाई ।
फँसे सकल मुक्ती भ्रम माहीं । अबुध जैन पथ रहे सदाहीं ।
जैनपंथ मुक्ती भ्रम माहीं । फँसिके सहत दुःख तेहिठाहीं ।
जब यह वेद यथार्थ न जानै । तौ नहिं हिय मुक्ती परमानै ।
कहत असम्भव बात घनेरी । दै प्रमान ग्रंथन[1] बहुतेरी ।

---

१. (विवेकसार पृष्ठ ७८) एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर का जन्म-समय स्नान । (विवेकसार पृष्ठ १२६) दशार्ण राजा महावीर के दर्शन को गया । उसने अभिमान किया तो उसको १६ अरब ७७ करोड़ ७२ लाख १६ हज़ार इन्द्रों के दर्शन कराए और १३ पदम ३७ नील ५ खरब ७२ अरब ८० करोड़ इन्द्राणियों के राजा आश्चर्य में हो गया । (न जाने यह सब बखेड़े कहाँ हुए होंगे, इस गप्प का कहीं ठिकाना है?)

जैन साधुलक्षण यहि भाँती । जिन सूरी लिख दीं कछु पाँती ॥

श्राद्धदिन कृत्य आत्मनिन्दा पृष्ठ ३१ में लिखा है कि बावड़ी, कुआँ, तालाब न बनवाना चाहिए ; क्योंकि इसमें जीव पड़ते हैं और मरते हैं, तो वह पाप बनवानेवाले को लगता है। इसलिए जैनी ऐसा नहीं करते (भला अब यह न जानें क्यों बनवाते हैं और न बनवाते तो पानी कहाँ से पीते) न जानें बुद्धि कहाँ चली गई ! जब छोटे छोटे जंतुओं के मरने से पाप होता है, तो गाय, मनुष्य आदि बड़े-बड़े हितकर जीवों के पालन से पुण्य नहीं होता, इसको क्यों नहीं मानते ? (तत्त्वविवेक पृष्ठ १६६) नन्दमणिक सेठ ने बावड़ी बनवाई थी। उसका धर्मभ्रष्ट होकर १६ महारोग हुए। मरकर उसी बावड़ी में मेंढुका हुआ। महावीर के दर्शन से उसको जातिस्मरण हो गया। कहते हैं कि मेरा आना-जाना जान वह दर्शन को आने लगा, तब श्रेणिकके घोड़ेकी टापमें दबकर मर गया। मेरे ध्यान से शुद्ध दर्दुरांक नाम महर्द्धिक देवता हुआ। (श्राद्धदिन कृत्य पृ० ३६) मृतक वस्त्र साधू ले लेवे। (रत्नसार पृ० १०५) भूजने, कूटनें, पीसने, अन्न पकाने आदि में पाप होता है। (रत्नसार पृ० १०४) बग़ीचा लगाने से एक लक्ष पाप माली को लगता है। (तत्त्वविवेक २०२) एक दिन लब्धि साधू भूले से वेश्या के घर चला गया और धर्म से भिक्षा माँगी। वेश्या बोली—यहाँ धर्म का काम नहीं, किन्तु अर्थ का काम है, तो उस साधू ने साढ़े बारह लाख अशर्फ़ियाँ उसके घर में बरसा दीं। (रत्नसार पृ० ६७) पाषाण की मूर्ति घोड़े पर चढ़ी, उसको जहाँ स्मरण करें वहाँ उपस्थित होती थी और देवतों की रक्षा करती थी। (इस प्रकार की असम्भव बातें हैं, कौन विश्वास करे।)

जैन साधुओं के लक्षण

दो०—भीख माँगि भोजन करहिं, कमरी राखहिं तीर।
लुञ्चित केश बनावहीं, श्वेत धरहिं तनु चीर ॥ ६४ ॥
संग न काहू को करहिं, क्षमायुक्त जो होहिं।
श्वेताम्बर यति कहत जिन, साधुचिह्न यह होहिं ॥६५॥

दूसर वस्त्र धरहिं तनु नाहीं। केश उखाड़े रहत सदाहीं ॥
ऊन वस्त्र यक सँग में राखहिं। तेहितेअवनिबोहारिबिराजहिं॥
इनहिं जो भिक्षा देवहि कोई। धरिके हाथ खाइ लें सोई ॥
इनहिं दिगम्बर साधू कहहीं। तीसर सुनहु जौन विधि रहहीं॥
जबगृहस्थभोजनकरिचुकहीं। तब यह साधू भोजन करहीं ॥
अब इनके कर्तव्य विचारहु। बनतअहिंसकजसउरधारहु ॥
केश उखाड़े कहा न पीरा। होत कहहु तनि धरिके धीरा ॥
चाहे निज हाथ उखारहि कोई। चाहे गुरू उखारहि सोई ॥
कष्ट होत बहु बार उखारे। कष्टहि हिंसा शास्त्र उचारे ॥

दो०—तब यक जैनी इमि कहत, सुनहु ऋषी महराज।
रहत अहिंसक हम सदा, अरुसब जैनसमाज॥६६॥

मुख पर पट्टी अवशि चढ़ावहिं। वायुकाय सब जीव बचावहिं ॥
मुखसे भापजो निकसत रहहीं। जीवमरतअरु दुखको लहहीं ॥
स्वामि कहत यह मूरखताई। एकहु युक्ति नाहिं ठहराई ॥
भाप से कतहुँ जीव नहिं मरहीं। कहतअमरजबकेहिबिधिमरहीं॥

पुनिकहु अवशि जीव नहिंमरई । पर पीरा मुख करे न धरई ॥
जोपहुँचावत जीवहिं पीरा । पाप होत ता कहँ गम्भीरा ॥
स्वामि कहत यह सम्भव नाहीं । बिना जीव दुखकाज लखाहीं ॥
मुख सों पीड़ा जीवन होई । तबकहुचलतफिरत नहिं सोई ॥
याते बिलग न तुमहू भाई । पहुँचावत पीड़ा सब काई ॥

दो०—पुनि कह जहँ तक बनि सकै, काहुहि दुःख न देय ।
तेहि कारन हमरो सदा, मुख बाँधन को धेय ॥६७॥

स्वामिकहतयह कथनतुम्हारा । युक्तिशून्य दुख देवनहारा ॥
जो मुख बाँधि रहहु दिनराती । तौश्वासा मुख में रुकिजाती ॥
अरु बहु वेग नासिका द्वारा । निकरतस्वासजगत व्यवहारा॥
बाँधे मुख बोलत है जोई । शुद्ध शब्द निकसत नहिं कोई॥
काहु अंग ते वायु को वेगा । रोग बढ़ै जो रोकत वेगा ॥
जिमि विशूचिकाआदिकरोगा । मल रोके पावत दुख भोगा ॥
तिमि भोगहु दुख मुखके बांधे । दोष धरहु तीर्थङ्कर काँधे ॥
फूँकत अग्नि कहत जो बाता । हाथ लगाये रहत सुताता ॥

दो०—याते भूलत हौ सदा, नहिं जानत कछु भाव ।
इन्द्रियविषयविकारको, दुख सुख होत स्वभाव ॥६८॥
बधिरसुनै नहिंकानसों, अन्ध न देखहिं रूप ।
पीनस नासा गन्ध नहिं, इन्द्रिन लखहु सरूप ॥६९॥

ता विधि जीव सुसृष्टी माहीं । संज्ञाशून्य रहत सब ठाहीं ॥

जिमि जग वैद्य सुँघाइ दवाई। काटत अंग परम निपुणाई॥
कष्ट न होत जीव तेहि काला। है सुषुप्ति बिच जीव बहाला॥
तिमि यह जन्तुजोतुमबतलाये। वायुकाय जो कहि जतलाये॥
तिनहिं न है दुख सुख को ज्ञाना। स्थावर शरीर जे आना॥
जब प्रत्यक्ष सुख दुख नहिंहोहीं। तब अनुमान कौनविधि जोहीं॥
पूछत बहुरि जीव जब अहई। तबकिमिदुखसुखसो नहिंलहई॥
कह ऋषि काल सुषुप्तीजानहु। तबदुखसुखकिमि नहिंपरमानहु॥
दुख सुख प्राप्ति प्रगट सम्बन्धा। मूर्च्छित जीवन दुखसुख धन्धा॥

सो०—है प्रसिद्ध सम्बन्ध, दुख सुख प्राप्ती को सदा।
जिमि सुषुप्ति को बन्ध, ज्ञात होत कछु हू नहीं॥१३॥

दो०—अति मूर्च्छित में ज्ञान कछु, दुख सुख को नहिं होय।
साधन ज्ञान कछू नहीं, कारन जानहु सोय॥१००॥

कहत जैनि हम शाक न खाहीं। कन्द मूल आदिक जो आहीं॥
इन महँ जीव बसत बहुतेरे। पाप लगै यहि जात न नेरे॥
स्वामि कहत बिद्या ते हीना। जो मानत यह बात नवीना॥
पीड़ा होत न प्रगट लखाई। जो देखाति तो देहु देखाई॥
सम्भव यह नहिं हुइ सक भाई। और न कोउ प्रमान देखराई॥
ताते जो मूर्च्छामय होई। महा सुषुप्ति पड़ो है जोई॥
ताको सुखदुखकबहुँ न व्यापत। भूलकरतजोसुखदुख मानत॥
जब है घर को अन्त लखाई। तेहि वासी अनन्त किमि भाई॥
कन्द अन्त जब निश्चय होई। कहहु कौन विधि बचिहैं सोई॥

दो०—जो हिंसा तुम मानते, वह हिंसा नहिं होय।
ताते हिये बिचारि कै, करहु कर्म सब कोय ॥१०१॥

अब चौविस तीर्थंकर केरी। आयु बतावत लगत न देरी ॥
अरु तिनकी केतिक लम्बाई। रत्नसार[1] विच लिखी सोहाई ॥
"ऋषभ देव" को लखहु शरीरा। पाँच सहस्र धनुष[2] गम्भीरा॥
लख चौरासी वर्ष सुहाये। पूर्व वर्ष जो जैनिन गाये ॥
एती आयु ऋषभ परिमाना। "अजितनाथ" को हाल बखाना॥
धनुष पचास चारिशत जानहु। लम्बाई तनु की परिमानहु ॥
लाख बहत्तर आयु बखानत। "सम्भवनाथ" को हाल सुनावत॥
धनुष चारिशत को परिमाना। साठ लाख आयू को माना ॥
"अभिनन्दन" तनु की लम्बाई। जो शत तीन पचास लखाई ॥
और बतावत आयु प्रमाना। लाख पचास वर्ष अनुमाना ॥

दो०—"सुमितनाथ" की तीनसौ, लम्बाई दिखराइ।
आयू चालिस लाख की, सबन कहत समुझाइ॥१०२॥

आयु "पद्मप्रभ" लाख सुतीसा। है शरीर एकशत चालीसा ॥
"पार्श्वनाथ" तनु दोसो कहहीं। बीस लाख आयु को लहहीं ॥
धनुष डेढ़सो को परिमाना। लम्ब शरीर "चन्द्रप्रभ" माना॥
अरु दश लाख आयु तिनकेरी। लिखी ग्रंथ विच है जो हेरी ॥
"सुविधिनाथ" सौ धनुष शरीरा। युग्म लाख आयू गम्भीरा ॥
"शीतलनाथ" शरीर लखावहिं। नब्बे धनुष ताहि बतलावहिं ॥

---

१. रत्नसार भाग १ पृ० १६६ व १६७। २. धनुष का प्रमाण पीछे लिख आये हैं।

लक्ष एक आयू परिमाना। पूर्व वर्ष जो जैन प्रमाना ॥
"श्रेयांसनाथ" अस्सी धनुजानहु। लख चौरासीआयुप्रमानहु ॥

सो०–सत्तर धनुष शरीर, "वासु पूज्य स्वामी" लखहु।
अति है आयु गँभीर, लक्ष बहत्तर वर्ष की ॥ १४ ॥

दो०–"विमलनाथ" तनु जानहू, साठधनुष परिमान।
साठ लाख की आयु है, पूर्व वर्ष सुखदान ॥१०३॥

"अनन्तनाथ" का धनुषपचासा। लम्बशरीर करतसबत्रासा ॥
तीस लाख की आयू जानहिं। "धर्मनाथ" कोहालबखानहिं ॥
पैंतालिस धनु कहत शरीरा। अरु दशलक्ष आयुगम्भीरा ॥
"शान्तिनाथ" चालिसधनुजानहु। एकलाख की आयु प्रमानहु ॥
"कुंथुनाथ" तनु पैंतिस होई। सहस पचानवे आयु लखोई ॥
"अमरनाथ" तनु तीस बताई। सहस चौरासी आयु सुहाई ॥
पच्चिस "मल्लीनाथ" शरीरा। पचपनसहस आयु गम्भीरा ॥
"मुनिसुवृत्त" तनुधनुहैबीसा। लखिए आयु सहस है तीसा ॥

दो०–धनुष चतुर्दशको लखहु, है "नमिनाथ" शरीर।
एक सहस की आयु है, पूरब वर्ष गँभीर ॥१०४॥

"नेमिनाथ" दशधनुप शरीरा। एक सहस की आयुगँभीरा ॥
अरु नव हाथ शरीर लखावहिं। "पार्श्वनाथ" शतआयुबतावहिं ॥
"महावीर" अन्तिम तीर्थङ्कर। सात हाथ तनुलखहु भयंकर ॥
वर्ष बहत्तर आयु बताई। महावीर सब गुन सुखदाई ॥
चौबिस तीर्थङ्कर जग आई। जैनधर्म पथ दीन चलाई ॥

स्वामिकहत हियलेहु विचारी । बसहिं कहाँ भूगोलसम्हारी ॥
महा असम्भव इनकी बातें । कहँतक बरणों इनकी घातें ॥

---

१. कल्पभाष्य पृ० ४ : नागकेत ने ग्राम के बराबर एक शिला अंगुली पर धर ली ।

कल्पभाष्य पृ० ३५ : महावीर ने अँगूठे से पृथ्वी दबाई तो शेषनाग कँप गये ।

कल्पभाष्य पृ० ४६ : महावीर को सर्प ने काटा, रुधिर की जगह दूध निकला और वह सर्प आठवें स्वर्ग को गया ।

कल्पभाष्य पृ० ४७ : महावीर के पग पर खीर पकाई, पग न जला ।

कल्पभाष्य पृ० १६ : छोटे से पात्र में ऊँट को बुलाया ।

रत्नसारभाग पृ० १४ : शरीर के मैल को न उतारे न खुजलावे ।

विवेकसार भाग १ पृ० १५ : जैनियों के दमशार साधू ने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहर में आग लगा दी ।

विवेकसार भाग १ पृ० १२७ : एक कोशा वेश्या सुई और सरसों के ढेर पर नाची ।

विवेकसार भाग १ पृ० १२७ : राजा की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये ।

तत्त्वविवेक भाग १ पृ० २२८ : इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूल मुनि ने १२ वर्ष तक भोग किया, फिर दीक्षा लेकर स्वर्ग को चले गये ।

विवेकसार भाग १ पृ० १८५ : एक सिद्धि की कन्था को गले में बाँधने से एक वैश्य को ५०० अशर्फी नित्य मिलती रही ।

विवेकसार भा० १ पृ० २२८ : बलवान् पुरुष की आज्ञा, देव की आज्ञा, घोर वन में कष्ट से निर्वाह, गुरु के रोकने, माता, पिता, कुलाचार्य, ज्ञातीय लोग और धर्मोपदेष्टा इन ६ के रोकने से धर्म में न्यूनता होने से धर्म की हानि नहीं होती ।

(अब देखिये इनकी मिथ्या बातें तो हैं और क्या ऊटपटाँग लिख मारीं । ऐसी असम्भव बातों से भला कहीं कोई पन्थ उन्नत हुआ है ।)

याही विधि है द्वीप कहानी । लिखी ग्रन्थ त्रिच है मनमानी ॥

दो०—जम्बूद्वीप बतावहीं, योजन लाख प्रमान ।
चन्द्र सूर्य दुइ दुइ कहत, द्वीप न कोउ समान ॥१०५॥

छं०—हैं चारि रवि अरु चारि शशि जहँ लौंन सिंधु बतावहीं ।
अरु खंड घातकि रहत द्वादश सूर्यचन्द्र लखावहीं ॥
हैं द्वीप पुष्कर सूर्य शशि यकशत चवालिसजानिये ।
अरुहैं अनेकन चन्द्र रवि तहँ खंड केतिक मानिये ॥४॥

या विधि ये भूगोल[1]के ज्ञाता । कहहुकौनविधिधर्मसोदाता ॥
अरु मानत चौदह हैं लोका । सिद्धशिलातेहिउपरअशोका ॥
अरु उत्पत्तिद्विविधिसोमानहिं । गर्भ अगर्भ उपज बतरावहिं ॥

---

१. इनके हिसाब से ४९२ सूर्य तथा इतने ही चन्द्रमा हैं और दूसरे प्रकार अनेकन सूर्य चन्द्रमा हैं ।

सूत्र - दो शशि दो रवि पंती एगंतरियाछ सठि संखाया । मेरु-पयाहिणंता । माणु सखित्तेपरि अडंति ॥ प्रकरण भा० ४ संग्रह सूत्र ७९

अर्थ—मनुष्य-लोक में चन्द्र सूर्य की पंक्ति की संख्या कहते हैं, दो चन्द्रमा, दो सूर्य की पंक्ति हैं, एक-एक लाख योजन के अन्तर से चलते हैं। सूर्य की पंक्ति के अन्तर चन्द्रमा की पंक्ति इस प्रकार छियासठ २ पंक्ति हैं। यदि दोनों दिशा के सूर्य मिलाये जावें तो १३२ हो जाते हैं और १३२ चन्द्रमा मनुष्य-लोक में चाल चलते हैं ।

(समीक्षा) इसको माया अवलोकिये, यह सब सूर्य चन्द्रमा जैनियों के घर में तपते होंगे। भला कुछ अविद्या का ठिकाना है। ऐसी असम्भव बातों में भूगोल-खगोल के न जाननेवाले फँसते हैं। जब यह जैनी इस मत में रहेंगे तब किसी तरह बोध न हो सकेगा।

अरु शरीररचना सब जाती । कहिआये पाछिल बहुभाँती ॥
ना जानहि केहि ठौर समाहीं । इन निमित्तघरकसबनवाहीं ॥
यह सब मिथ्या अकथ कहानी । लिखिलीन्ही बहुतकमनमानी॥
कछु कछु ग्रन्थ प्रमान बताई । जैनपन्थ को दीन्ह बड़ाई ॥
सिद्धशिला आदिक स्थाना । गोलमाल बहु किये बयाना ॥
तीन बात मानन के योगू । जो जिय चहै करहुसबलोगू ॥

दो०—जल पीवत हैं छानिके, निशा न भोजन खाहिं ।
　　नाममात्र ही सों दया, जीवनपरदिखराहिं ॥ १०६॥
　　याते इतनेहि में सकल, परखहु जैनिनपन्थ ।
　　कथा जानिकेलखहुतुम, जैनपन्थ के ग्रन्थ ॥१०७॥
　　जिमिजग चावलएकही, परखत हाँडी बीच ।
　　ताहिभाँति परखहुसदा, सत्यधर्महियखींच ॥ १०८॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती-
वर्णित जैनधर्मविषय वैद्य कविराज पंडित
गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी द्वारा विरचित
गुरुशिष्यसंवाद द्वादश तरंगः ॥ १२ ॥
(स० १२ स०)

अथ त्रयोदश तरंग (स० १३ स०)

क्रिश्चियन-मत-विषय-समीक्षा-वर्णन

शिष्य

सो०—जैनधरम की बात, सुनिहिय बोधभयो महा।
भ्रम न होहि अब तात, जैननास्तिकसकलविधि ॥१॥
कहहु बाइबिल धर्म, ईसाई जेहि पर चलत।
हमहिं बतावहु मर्म, सत्यासत्य बिचार को ॥२॥

दो०—और यहूदी आदि है, पन्थ भये अधिकाय।
तिनकोसबब्योराकहहु, नाथ मोहिं समुझाय ॥१॥

गुरु

सुनहु शिष्य हम कहिहैं सोई। ऋषिवर कह्यो देशहितजोई॥
सब ग्रन्थन को सार सुनावा। बाइबिल अरुतौरेतको भावा॥
कछु कछु सब इंजीलन केरी। बुधि बिचार सों आयत हेरी॥
अरुतिनकोकरिदीन्हसमीक्षा। भ्रम न होहिं दीन्हीसोदीक्षा॥
सोइकथासुनि हृदय बिचारहु। भेद इसाइन केर निहारहु॥
जो कछु सत्य असत्यविचारा। ऋषिनेम विपरीत निहारा॥
सोइ कथा कहिकै समुझाई। समुल्लास तेरह सुखदाई॥
हमहु कहब ताही को भावा। रह्योहियेबिच "इष्ट" सुहावा॥

सो०—कथा परम सुखदात, प्रेमसहितसुनिहियधरहु।
सुनि के सब की बात, [illegible]रहुसोइबुधिसहितजो ॥ ३॥

स्वामि कहत हैं मुख्य इसाई । गौण यहूदी परत लखाई ॥
बाइबिल धर्म ग्रन्थ ही मानत । ताहि यहूदी हू अपनावत ॥
सत्य असत्य बिचारन हेता । समुझावत यह धरम सचेता ॥
सत्य बिचारि करहु शुभ कर्मा । धारहु हिये उचित जो धर्मा ॥
अब कछु सुनहु इसाइन केरी । धर्मकथा जो कहत घनेरी ॥
जासु बाइबिल को यह मानत । अरुईश्वरकृतसबहि सुनावत ॥
तेहि तौरेत पर्व यक माहीं । आयत प्रथम द्वितीय लखाहीं ॥
लिख्योजौनविधिसुनहुहवाला । कहहु अरंभ केर जो हाला ॥

दो०—* ईश्वर ने आरम्भ में, प्रकट्यो भूमि अकाश ।
पृथिवि तहाँ बेडौल थी, अरु सूनी अविकाश ॥ २ ॥
अँधियारा गहिरावपर, रह्यो महाविकराल ।
ईश आत्मा वारि पर, डोलत थी तेहि काल[1] * ॥ ३ ॥

† स्वामि कहत आरम्भ सुनावहु । कहतकाहिविधिसों समुझावहु ॥
यक इसाइ तब बोलन लागा । निजग्रन्थनबिचजेहि अनुरागा ॥
सृष्टि प्रथम उत्पति जो होई । तेहि आरम्भ कहत सब कोई ॥
स्वामि कहत यह कहहु बुझाई । सृष्टि प्रथम यह है सुखदाई ॥
कहहु कबहु नहिं याते पूरब । प्रगट भई यह सृष्टि अपूरब ॥
कह इसाइ हम जानत नाहीं । प्रथम सृष्टि यह है की नाहीं ॥
याको भेद प्रभू ही जानें । स्वामिकहततबहम किमिमानें ॥

* इस चिह्न से प्रत्येक आयत का प्रारम्भ समझो । १. तौरेत पर्व १ आयत १, २ । † समीक्षा १ ।

दो०—जब तुम जानत कछुनहीं, किमिराखतविश्वास ।
और फँसावत सकलको, दै के सुख की आस ॥४॥

किमि न धरहु तुम उरकेमाहीं । शंकारहित वेद मत काहीं ॥
जब जानत नहिं सृष्टि हवाला । तब जानहुकिमि ईश्वरहाला ॥
तुम आकाश कौन को मानत । कहत पोल जो ऊपर भावत ॥
उत्पति पोल कौन विधि होई । स्वामि कहतसमुझावहुसोई ॥
यह विभु सूक्ष्म एक रस रहई । ऊपर नीचे जो कछु अहई ॥
जब आकाश बनायो नाहीं । रहेउ पोल तबही या नाहीं ॥
तेहि क्षण रहेउ जौन आकाशा । कारन जीव कियो कहँ वासा ॥
ताते बिन आकाश कदाई । स्थित रहत पदार्थ न भाई ॥
याते सत्य न तुम्हरी बाता ।बहुरि कहहु जो तुमहिंसोहाता॥

दो०—कहहु ईश बेडौल है, ज्ञान कर्म बेडौल ।
अथवा सकल सुडौल हैं, ईश्वर परम सुडौल ॥ ५ ॥

तब कह ईश्वर नहिं बेडौला । है ईश्वर सब भाँति सुडौला ॥
कह तब स्वामि कथन यह कैसा । भूमि बेडौल लिखा है जैसा ॥
जो करि अर्थ मोहिं समुझावहु । ऊँच नीच के अर्थ बतावहु ॥
सो अब ऊँच नीच का नाहीं । करि बिचारि देखहु मनमाहीं॥
नहिं ईश्वर बेडौल कदाई । वस्तु कोई बेडौल न भाई ॥
कहहुसो केहि समानकरि दीन्ही। का अब ऊँच नीच नहिं चीन्ही॥
ईश्वरकार्य न हो बेडौला । जो सर्वज्ञ सुबोध सुडौला ॥
ताके काम भूल नहिं होई ।[illegible]ा कबहूँ चूकत है सोई ॥

दो०—ईशसृष्टि बेडौल है, लिखा बाइबिल माहिं ।
ताते ईश्वरकृत नहीं, बाइबिल ग्रंथ लखाहिं ॥ ६ ॥

ईश आतमा कौन लखाई । कहहु बेगि तुम मोहिं सुनाई॥
तब इसाइ कह चेतन जानत । स्वामिकहतकेहिभाँति बखानत॥
कहहु सो निराकार है ईशा । अथवा है सकार जगदीशा ॥
अरु व्यापक सब ठौर लखाई । अथवा यकदेशी दर्शाई ॥
यहि प्रकार सौं कहत इसाई । निराकार व्यापक सब ठाँई ॥
काहुहि सों नहिं देत देखाई । जो स्थान विशेष बताई ॥

दो०—निराकार जब ईश है, केहि प्रकार दिखरात ।
अरु जल पर डोलत रहत, यह सम्भव नहिं बात ॥ ७ ॥

यहि विधि सिद्धि होत यह नाहीं । ईशशरीर रहत केहु ठाहीं ॥
निज आत्मा डोलावत जलपर । बात न आवत है मम हियपर ॥
विभु सर्वज्ञ जगत को पालक । न्यायसहित जगकर्मसुधारक॥
यह सामर्थ रहत है नाहीं । प्रलयआदिपुनि करिसक नाहीं॥
जाके गुण अरु कर्म स्वभावा । एकदेशि जब होवै भावा ॥
तब ईश्वर सो हुइसक नाहीं । लक्षण लखहु हिए के माहीं ॥
हैं अनन्त गुण कर्म स्वभावा । नित्य शुद्ध बुध मुक्त स्वभावा ॥
सर्वव्यापक ईश अनूपा । सतचित आनँद परम स्वरूपा ॥
यहि विधि ईश्वर मानहुभाई । मिटहिं सकल जंजाल सदाई ॥

दो०—*तब इसाइ या विधि कहत, नहिं जानत तुम भाव ।
ईश्वर के गुन कर्म को, लखिये तनिक प्रभाव ॥८॥

दो०–ईश्वर ने यहि भाँति सों, कह प्रकाश हुइ जाय।
भा प्रकाश ताही समय, श्रेष्ठ कह्यो हर्षाय ॥ ९ ॥

मम ईश्वर की बात अनोखी। जानिलेहु सब विधिसों चोखी*[१]॥
†स्वामि कहत ईश्वर की बाता। सुनत भयो प्रकाश जड़ जाता॥
यदि सुनि लेत प्रकाश सदाई। तौ अब किमि न सुनत है भाई॥
है प्रकाश जड़रूप सदाई। सुनि न सकत है बात कदाई॥
देखि प्रकाश ईश हर्षाना। अरु ताकहँ अति श्रेष्ठ बखाना॥
कहहु कहा वह प्रथम न जानत। देखत ही जो श्रेष्ठ बखानत॥
होत प्रथम यदि ताकहँ ज्ञाना। तो याविधि नहिं बनत अज्ञाना॥
जब नहिं ज्ञान ईश केहि भाँती। मानत बाइबिल ग्रन्थ सुहाती॥
मानहु ईश्वरवर्णित वेदा। त्यागहु सकल हिये को खेदा॥

दो०–*पुनि कह ईश्वर ने कह्यो, गगन मध्य हुइ जाय।
जलविभाग को पृथक करि, दीन्हों सकल बनाय॥१०॥
जलविभाग आकाश सब, ऊपर तले बनाइ।
स्वर्ग कह्यो आकाश को, साँझ प्रात बतलाइ[२]* ॥११॥

†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। सुनत गगन जल केहि विधि मानहु॥
जब आकाश प्रथम उपजायो। पुनि आकाशहिं वृथा बनायो॥
जबहि गगन को स्वर्ग बतावत। तब वह हू व्यापक दर्शावत॥
तौ पुनि वृथा स्वर्ग को जानहु। ऊपर कहत झूठ तेहि मानहु॥

---

१. तौ० प० १ आ० ३, ४। † स० २। २. तौ० प० १ आ० ६ से ८ तक। † स० ३।

जब उत्पत्ति सूर्य्य की नाहीं। तब दिनरातलखतकेहिठाहीं॥
महा असम्भव बात तुम्हारी। सुनि सुनि होत दुःख है भारी॥
ईश्वर की कछु ईश्वरताई। यदि जानत समुझावहु भाई॥
तबपुनिकहतसुनहु ऋषिराई। सुनहु सुनावहिं प्रभु प्रभुताई॥
दो०—*तब परमेश्वर ने कह्यो, आदम लेहुँ बनाय।
अपनेहिं सम निज रूप में, कहतहि लियोबनाय[१]*॥१२॥

† स्वामि कहत आदम को रूपा। ईश बनायो निज अनुरूपा॥
तब ईश्वर के गुनअनुसारा। भयो न किमिआदमपरिवारा॥
यदि न भयो तो असत कहानी। ईशस्वरूप न आदम आनी॥
कहहु कवनविधिआदमरचना। रच्योस्वविधिसौजगकी रचना॥
तब कह प्रभु आदमहि रचावा। लै माटी तेहि बदन बनावा॥
स्वामि कहत माटी कहँ पाई। कौन समय केहि ठौर बनाई॥
कहत प्रभू समर्थ सब काला। तासुप्रकृतिसबभाँतिविशाला॥
दो०—कहत स्वामि सामर्थ तेहि, है अनादि वा सादि।
वह कहि उठ्यो अनादि है, नहिं नवीन नहिं सादि॥१३
जब अनादि है तो जग कारन कारन ही सो भयो सनातन॥
फिरि किमि मानतहौ तुम भावा। रहेउ सदाजो "इष्ट" अभावा॥
पुनि कह जग के पूरब सोई। बिन ईश्वर कछु और न होई॥
कहत स्वामि पुनिजगकी रचना। भई कौन विधि गुनलै अपना॥
ईश समर्थ द्रव्य का भाई। अथवा है गुनरूप लखाई॥

१. तौ० प० १ आ० ६ से ८ तक। † स० ४।

यदि है द्रव्य तो दूसर औरा। ईश से पृथक रहतसबठौरा ॥
यदियह कहहुकि गुणहैआदी। तौ नहिंबनत द्रव्य गुनसादी ॥
जिमि न रूप सों अग्नि लखाई। रस सों जल प्रगटत है नाँई ॥
दो०—यदि ईश्वर सों बनत जग, होत तासु सम भाव।
तेहि समान गुन कर्म सब, बनतोजगतस्वभाव ॥१४॥
ताते सृष्ट्युत्पत्ति जो रीती। कहीसकलविधिजो अनरीती ॥
नहिं आदम है ईश सरूपा। नहिं ईश्वर आदम के रूपा ॥
किन्तु बन्यो परमाणु शरीरा। जो जड़ तत्त्व समूह समीरा ॥
याते सुनहु सकल चितलाई। वेदरीति जो परम सुहाई ॥
जग उत्पति तुम मानहु सोई। वेद अनुकूल परम हितजोई ॥
अरु जब आदम ईशसरूपा। प्रगटत जग में मानुषरूपा ॥
कस न होहिवह मनुजसमाना। करहु जोतुमईश्वरअनुमाना ॥
तव यकऋषि सों कहत रिसाई। नहिं जानत ईश्वरप्रभुताई ॥
आदम को जेहि भाँति बनावा। सुनहु बाइबिलको जो भावा ॥
दो०—*भूमि धूलिसों ईश ने, आदम लियो बनाय।
जीवन स्वाँसा नाक में, फूँकत ईश्वर धाय ॥१५॥
पूर्व ओर यक वाटिका, अदन शान्त स्थान।
जीवनतरु तहँ पर रहेउ, किय आदमप्रस्थान ॥१६॥
भलो बुरो को होवे ज्ञाना। खाइ लेय फल जो बुधिमाना [१] * ॥
†स्वामि कहततेहिज्ञाननरहेऊ। जो ईश्वरमहिमा उर ठयऊ ॥

---

१. तौ० प० २ आ० ७, ६ । ॰ स० ५ ।

प्रथम आदमहिं तहँ उपजावा । अदन वाटिकापरम सुहावा ॥
बहुरि दीन तेहि तुरत निकारी । कोउअपराधहियेबिचधारी ॥
और आदमहि जब उपजावा । बन्यों धूलि सों परम सुहावा ॥
तब वह ईश्वररूप न होई । अथवा धूलिरूप प्रभु सोई ॥
आदम नासा फूँकन स्वाँसा । ईश्वरचहतसोजीवनआसा ॥
कहहु सो स्वाँस ईश की माना । अथवा है काहू की आना ॥
यदितुम भिन्न स्वाँस बतरावहु । ईशरूप तौ किमि कहि पावहु ॥
यदि दोनों हैं एक सरूपा । तौ ईश्वर हू मानुषरूपा ॥
दो०—क्षुधा तृषा क्षय वृद्धि सब, जन्ममरण को दोष ।
सोउ लगत ईश्वरविषय, रहत न है निर्दोष॥१७॥
याते झूँठ तुम्हारी बाता । नहिं तौरेत ईशकृत ताता ॥
तब पुनि कहसुनिये ऋषिराई । कहहु जौनविधि नारिबनाई ॥
*प्रभु आदम बिचनींदबढ़ाई । सोयो अधिकपरम सुखपाई ॥
तब पसली यकतुरत निकारी । भरेउमांसतेहिछिद्रसम्हारी॥
तेहि पसली से करि चतुराई । परमेश्वर यक नारि बनाई ॥
लैकर तेहिआदम ढिग आये । सौंपिगये निजधाम सुहाये* ॥
† स्वामि कहतयह नीतिनिराली। काईश्वरकी असबुधिखाली ॥
देखहु यह ईश्वर की नीती । केहि विधिजगत करहि परतीती ॥
दो०—जब आदम को धूलि सों, कियो ईश निर्मान ।
किमि न बनायो नारिको, लै धूली सामान ॥१८॥

१, तौ० प० २ आ० २१, २२ । † स० ६ ।

दो०—यदि पसली की अस्थि सों, ईश बनाई नारि ।
काहे न आदम निर्मयो, अस्थीएक निकारि॥१९॥

यदियह सत्य मानि सबलेहीं । तौनिश्चय अवलोकियतेहीं ॥
एकहि पसुलि नारि के होई । एक न्यून सब नरन लखोई ॥
का अद्भुत रचना इन गाई । प्रकृतिविरुद्ध कहत ईसाई ॥
जासु पदारथ जगत बनावा । नर अरु नारि बनाइ न पावा ॥
याते सूर्ष नेमविरुद्धा । करत न कोउधरमसोंश्रद्धा ॥
*तबपुनिकहतसुनहुऋषिराई । ईश्वरकी गति परम लखाई ॥
जगरचना नाना विधि कीन्हीं । जोतौरेत माहिं लिखिदीन्ही ॥
उत्पति पर्व तीन में देखहु । ईश्वर की ईश्वरता पेखहु ॥
तहहुँ धूर्त एक जन्मत भयऊ । सर्प (सैतेन[1]) नामतेहिठयऊ ॥
तेहि समुझायहु हौआ नारी । नगनरहीतहँअति सुकुमारी ॥
अवशि ज्ञानतरु को फल खावहु । नैनखुलहिंडरतनिकनलावहु ॥

दो०—है समुझायहु जो तुम्हैं, फल खाये मरि जाहु ।
ज्ञानवृक्ष जो मध्य में, ता ढिग कबहुँ न जाहु॥२०॥

यह कहितुम्हहिंदीन्ह बहकाई । जानत है सो फल प्रभुताई ॥
जो कहुँ खाय लीन्हफल ज्ञाना । खुलहिं नयनहोवैं बुधिमाना ॥
भले बुरे को होवे ज्ञाना । तब हुइ जाय हमारसमाना ॥
यहि डर से तुम कहँ डरपायो । ताते हम तुम कहँ अपनायो ॥
सर्पबैन सुनि हौआ नारी । फलखायो पुनि अंग निहारी ॥
नगन देखि अतिही सकुचाई । अँग ढाँक्यो पल्लवेन[2] बनाई ॥

---

१. शैतान । २. अंजीर के पत्तों से अंग ढाँपा ।

अरुफल सोइ आदमहिखवाई । उघरे नयन हुपे अधिकाई ॥
जब ईश्वर ने यह सुधिपाई । कहेउसबनसों निकट बोलाई ॥

दो०—दियो सर्प को श्राप अस, चलहु पेट बल जाइ ।
धूलि खाहु जीवनसकल, करहुबैर सबकाइ ॥ २१ ॥

तुम नित काटहु नरनशरीरा । वे कुचिलहिं तव मस्तकवीरा ॥
कहेउ नारि सन तुम जो माना । ताते श्राप सुनहु निज काना ॥
पीड़ा गर्भ तुम्हारि बढ़ावहुँ । पतिइच्छा तेरी अधिकावहुँ ॥
प्रभुता पति तव ऊपर होई । बालक जनत लहे दुख सोई ॥
अरु आदम सन कहेउ सुनाई । नारि कहे पर गये अतुराई ॥
रोकेहु पर तुमने फल खाया । होइहि भूमि तुमहि दुखदाया ॥
बहु पुरुषारथ करहु निरंतर ।तबहु मिलहि नहिं सुखउरअन्तर॥
कंटकारि भूमी उपजाइहिं । सागपातु नर नारी खावहिं* ॥

दो०—† स्वामि कहत प्रभुता कहाँ, सर्वज्ञता नशात ।
प्रथम बतायो ईश ने, बहुरि देखि अकुलात ॥ २२ ॥

यदि सर्वज्ञ होत तव ईशा । तौ न बनावत दुष्टन शीशा ॥
अरु जब पूर्व जन्म नहिं मानत । तौ पापी केहि भाँति बनावत ॥
सुनहु जो सतवादी जगमाहीं । कहहिं सत्य दूसर हितचाहीं ॥
सो शैतान कहहु केहिभाँती । सत्यप्रचारक है दिन राती ॥
ईश तुम्हार महा अन्याई । ज्ञान वृक्षफल देत न काई ॥

---

१. तौ० उत्पत्ति प० ३ आ० १ से ७, १४ से १८ तक । † स० ७ ।

और बतावहु जो शैताना। सर्परूप या मानुष बाना॥
यदि है सर्प तो मानुष भाषा। बोलि सकत कस कहहु खुलासा॥
यदि बोलत नहिं नरकी बानी। तो कस सुनेहु साँप की बानी॥
दो०—ईश्वर झूँठ कह्यो महा, खावै सो मरि जात।
आदम को फल खान से, रोकि दयो सतरात॥२३॥
जबहि कह्यो शैतान सुनाई। खाउ ज्ञानफल मरहु न भाई॥
जब फल खायो नयन उघारे। भले बुरे सब काज निहारे॥
कहु केहि काज वृक्ष उपजावा। जानि परत निज हित अपनावा॥
अरु यहि समय न देखियत कोई। तेहि समान कोउ वृक्ष न होई॥
तुम्हरे ईश्वर की ईश्वरता। देखी सबविधि है चातुरता॥
सतबादी को दीन्हो शापा। किय अन्याय और कछु पापा॥
शापहु सुनि लागत है हाँसी। मनहु दीन्ह तीनहु को फाँसी॥
विना गर्भ किमि उपजै बालक। बिनश्रम कोउ है भोजन साधक॥
शाक पात यदि खावै नाहीं। तो का खावहि मांस सराहीं॥
तो फिरि बाइबिल में केहि भाँती। मांसविधान लिखा बहुभाँती॥
दो०—पुनि आदम केहि भाँतिसों, अपराधी दिखरात।
इष्ट बाइबिल कवन विधि, ईश्वरकृत दर्शात॥२४॥
*तब पुनि कह सुनिये ऋषिराई। परमेश्वर बानी चितलाई॥
जस हम तस आदम जग अहई। भली बुरी सब जानत रहई॥
अमृतफल यह जो भखि लीहै। तो अमरत्व प्राप्त करि लीहै॥
ताते अब आदमहि निकारी। राखेहु जाय अदन की बारी॥

कर दीन्ही ताकी रखवाली। जहँ जीवन तरु छुटा निराली ॥
लैकर नग्न खड्ग रखवारे। रहत सदा तहँ मार्ग निहारे॥
ताते कोउ जीवन तरु तीरा। आइ सकत नहिं भरमत बीरा[1]* ॥
† स्वामि कहत अस भ्रम किमि भयेऊ। ईश्वर हिय बिच ईर्षा ठयेऊ ॥
दो०—कहहु कहा यह बात जग, नाहिं बिचारैं लोग।
जाके बिच है डाह भ्रम, सो कस ईश्वर योग ॥ २५ ॥
ताते सिद्ध भई यह बाता। वह न ईश है मानुष ताता ॥
बाइबिल जो केहु स्थल देखहु। ईश्वर गति मानुष सम पेखहु ॥
ईश्वर को दुख भयो अपारा। ज्ञानवान आदमहि निहारा ॥
अरु ईर्षा सों दियो निकारी। अमर न होहि भविष्य बिचारी ॥
पुनि तेहि वृक्ष कीन्ह रखवारी। मानुष सम भय हिये बिचारी ॥
ताते मानुषसम सब बाता। करै तुम्हार ईश नित ताता ॥
* तव पुनि कहत सुनहु ऋषिराई। ईश्वर की गति जानि न जाई ॥
कछु दिन पीछे काइन[2] आवा। बहु फल फूल ईश हित लावा ॥
अरु हाबील[3] भेड़ लै सुन्दर। पहिलौठी तनु पुष्ट अधिकतर ॥
दो०—दोनों ईश्वर ढिग गये, लै लै अपनी भेंट।
परमेश्वर हाबील की, करि आदर ली भेंट ॥ २६ ॥
काइन केर अनादर कीन्हा। तासु भेंट हित चित नहिं दीन्हा ॥
काइन कुपित भयो तेहि काला। मुँह फुलाइ बैठ्यो बेहाला ॥
तब परमेश्वर तासों पूछत। मुँह फुलाइ किमि रिस हढ़ बोलत[4] * ॥

---

१. पर्व ३ आ० २२,२४। † स० ८। २-३. एक पुरुष का नाम।
४. तौ० प० ४ आ० ३,४,५।

† स्वामि कहत यह ईश्वरताई । मानुषसम जो नित बतराई ॥
ईश तुम्हार मांस आहारी । भेंट भेड़ ताकहँ अति प्यारी ॥
भेड़ भेंट हाबील जो लायो । तेंहिसतकारअधिकतरपायो ॥
अरु काइन को भयो अनादर । तासु भेंट को कियो न आदर ॥
याते विदित भई यह बाता । बाइबिलईशरचितनहिंताता ॥

दो०—*बहुरिकहतऋषिराजसों, परमेश्वर की बात ।
काइन सों पूछत भयो, कहाँ तुम्हारो तात ॥२७॥
तब काइन बोलन लग्यो, रखवालो हौं नाहिं ।
पुनि ईश्वर ने असकह्यो, दोष तुम्हार लखाहिं ॥२८॥

सो०—मोहिं टेरत दिन रात, रक्त तुम्हारे तात को ।
पृथिवी से सतरात, ताते तू श्रापित भयो[१] * ॥ ४ ॥

† स्वामि कहत काइन बिन पूछे । सकत न जानि हिये के छूछे ॥
रक्त पुकारत केहि बिधि भाई । यह सब अबुधन बात लखाई ॥
* पुनि कह वर्ष तीन सौ ताईं । रहेऊ ईश सँग चलत सिहाईं ॥
मतूसिलह[२] हनूक भन चीते । उतपतिकाल बहुतदिनबीते[३] * ॥
† कह ऋषि मानुष सम तवईशा । चलत रहेउसँगमनुषअनीशा ॥
याते वेदन जो कछु भाषा । निराकार ईश्वर परिभाषा ॥
यदि कल्यान चहहु दिनराती । बात धरहु हिय वेदसुहाती ॥
* तब यक दूसर बोलन लागा । परम चतुर ईसामतपागा ॥

---

† स० ९ । १. तौ० प० ४ आ० ९,१०,११ । † स० १० । २. मतूसिलह, हनूक किसी का नाम है । ३. तौ० प० ५ आ० २२ । † स० ११ ।

आदम की पुत्री वहुतेरी । उत्पति भई चतुर चितचेरी ॥
दो०—ईश्वर सुवनन देखितेहि, हैं सुन्दरि सुकुमारि ।
जाको जो भाई तहाँ, ब्याहिलीन्हस्वइनारि ॥ २९ ॥
तेहि अवसर भूमी के माहीं । बसत रह्यो दानव यकठाहीं ॥
आदमसुता ईशसुत दोऊ । मिले जबै सुत उपजे सोऊ ॥
वीर बली अतिचतुर सुहावन । पूर्व रहे नामी अति पावन ॥
जब ईश्वर ने आँख उघारी । पुष्ट भाव आदम उर धारी ॥
व्यापि रही चिन्तानिशिबासर । असतभावहिय भरिगेआगर ॥
तब परमेश्वर बहु पछितावा । नाहक भूमि मनुज उपजावा ॥
शोक भयो ईश्वर अधिकाई । कहत भयो हिय क्रोध बढ़ाई ॥
दो०—मानुष पशु कीरादि सब, पच्छि आदि जे जीव ।
अवशि नशावहुँ अवनिसे, होहिं जिते बलसीव ॥ ३० ॥
हौं पछितात रहत दिनराती । करिके निर्मित नाना जाती [१] ॥
† स्वामि कहत ईसाइन जाई । पूछहु सब कोइ भय बिसराई ॥
को है ईशपुत्र बतलावहु । सासु ससुर सालादि गिनावहु ॥
आदमसुता ईशसुत ब्याहा । भयो विवाह महा उत्साहा ॥
तब तौ पुत्र पौत्र बहुतेरे । भे नाती जामात्र घनेरे ॥
कहहु कहा अस हुइसक ईशा । करत मनुज सन कर्तब ईशा ॥
अरु जेहि पुस्तक में असहोई । वह ईश्वरकृत केहिविधिहोई ॥
याते सिद्ध भई यह बाता । हैं वनचर याके निर्माता ॥

---

१. तौ० प० ६ आ० १ से ७ तक । † स० १२ ।

दो०—अरु वह ईश्वर है नहीं, जो सर्वज्ञ न होय ।
भूत भविष्य न जानहीं, करि पछितावे सोय॥३१॥

तुम्हरो ईश्वर नहिं विद्वाना । नहिं योगी नहिं हिय कछु ज्ञाना ॥
ज्ञान होत तो अस न सुनावत । पशु पत्ती दोषो ठहरावत ॥
याते मम बिचार तुम मानहु । सतचित आनँद ईश्वर जानहु ॥
झूठ पंथ अरु झूठ कहानी । छोड़हु जौन लिखी मनमानी ॥
मानहु सत्य वेद की बानी । बुधि विद्या बल सों है सानी ॥
ताते जन्म सुफल ह्वै जाई । चलहु वेदआज्ञा अपनाई ॥
※ कहत सुनहु ईश्वर की बानी । नूह केरि है जौन कहानी ॥
नाव एक जाकी लम्बाई । हाथ तीन सौ कहत सुनाई ॥
और पचास हाथ चौड़ाई । हाथ तीस की अहै उँचाई ॥

दो०—निज परिवार समेत तुम, बैठहु नौका बीच ।
संग जिते जीवित पशू, पत्ती कीट सहीच ॥ ३२॥
दुइ दुइ सब जन साथ लै, भोजनादि सामान ।
नूह केरि नौका बनी, ईश्वर आज्ञा मान ※ ॥३३॥

†स्वामि कहत कैसे कोउ मानै । बात असम्भव बिना प्रमानै ॥
कोटिन जीव गजादिक नाना । भोजन सहित चढ़े निजबाना ॥
कौन भाँति बैठहिं तहँ जाई । केहि बिधि नौकामाहिंसमाई ॥
याते समुझि लेहु सब लोगू । नहिं विद्वान न कोऊ योगू ॥
ईश्वर कतहुँ कहत असबानी । कही जौन तौरेत कहानी ॥

---

1. तौ० प० ६ आ० १४, ८ से २२ तक । † स० १३ ।

ताते मानुषकृत यह पोथी । अज्ञ महा बुधि ताकी थोथी ॥
*तब कहसुनहुनूहकीकरनी । है तौरेत माहिं जो बरनी ॥
ईश्वरहित यक वेदि बनाई । अरु पावन पशु पत्ती लाई ॥
होम कियो अरु भेंट चढ़ाई । ईश प्रसन्न कियो अधिकाई ॥
सूंघि सुगंध ईश पछिताना । नाहक नरन शाप दिय नाना ॥

दो०—अब कबहूं दीहौं नहीं, पृथिवी तलको शाप ।
और जीव नहिं मारिहौं, होय न जेहि संताप ॥ ३४ ॥

नरन भावना है लड़िकाई । तासों कछुनहिंहानिलखाई* ॥
†कहत स्वामि तब ईश्वर कैसा । जस मानुष लखात है वैसा ॥
बिन समुझे जो देवै शापा । समुझे महा कहत संतापा ॥
लरिकाई सम यह सब घातैं । नहिं विद्वान केरि अस बातैं ॥
जग विद्वान प्रतिज्ञक होवहिं । ईश तुम्हार प्रतिज्ञा खोवहिं ॥
वेदि बनावन होम की नीती । आई वेद शास्त्र की रीती ॥
*कह्यो बहोरि सुनहु ऋषिराई । ईश्वर नूहहि कह्यो बुझाई ॥
मम आशीष सुनहु चितलाई । सबपरिवारसहित मिलिआई ॥
चलत फिरत जे जन्तुदेखाहीं । ते तुम्हार भोजन सबठाहीं ॥ ॥

दो०—वस्तुसकल हम शाकवत, तुम्हैं दई हैं आय ।[2]
केवल मांसहि खाइये, लोहू जीव बराय * ॥ ३५ ॥

†कहत स्वामि यह दया देखाई । प्राण कष्ट दे भोग बताई ॥
का अस ईश दयालु होई । अथवा हीन दया है सोई ॥

---

१. तौ० पर्व ८ आ० २०,२१ । † स० १४ । २. तौ० प० ९ आ० १,३,४ । † स० १५ ।

मात पिता सम हुइ कर जोई। हनत न पुत्र कहूँ जग कोई॥
पर तुम्हार ईश्वर की रीती। जगत सोहात कौनकी नीती॥
यक सुत मारि खवावहिं एका। है वह पापी अरु अविवेका॥
ताते कहहु न ताकहँ ईश्वर। है कसाइवत हिंसक वह नर॥
नर हिंसक बनिगे यहि भाँती। आये अस पापी जन घाती॥
दया विना वह ईश न होई। बुद्धि सहित समुझे नर कोई॥
* पुनि इसाइ बोलत यक बैना। हिये धरहु मम बात सखेना॥

दो०—सम्पूरन संसार में, रही सु भाषा एक।
यक बोली बोलत रहे, करिके एक हि टेक॥३६॥
यह विचार सबने कियो, नगर बनावहिं एक।
गुम्मट एक बनावहीं, रहहिं सदा सब एक॥३७॥

नाम करहिं अपनो जग माहीं। हमन काहुको बिलग लखाहीं॥
तब ईश्वर ने नगर निहारी। गुम्मट देखि चतुरता भारी॥
देखेउ सब यक बानी बोलहिं। करहिं कछू सोई करि डोलहिं॥
अब हम उतरि तहाँ पर जाई। गड़बड़ करहिं सकलसमुदाई॥
भाषा भिन्न करहुँ सब केरी। भेद न समुझत है हियहेरी॥
अस बिचारि ईश्वर तहँ आई। छिन्न भिन्न करिदिय सबकाई॥
निज निज नगर बनावन लागे। निज प्रकृती निज भाषापागे॥
नगर बनाइ सके नहिं एका। राखि सके नहिं अपनीटेका*॥

दो०—† स्वामिकहत जबभूमिपर, हती सुभाषा एक।
अरु बोली सबकी रही, रही एक ही टेक॥३८॥

---

१. तौ० पर्व ११ आ० १, ४ से ८ तक। † स० १६।

तब कस आनँद रहेउ तहाँ पर । जहाँ बहत है आनँद सागर ॥
पर तुम्हार ईश्वर करि ईर्षा । गड़बड़ भाषा करि उत्कर्षा ॥
यह शैतानहु ते है खोटा । काम कियो जो ईश्वर छोटा ॥
काहू विधि नहिं मानन योगू । सब विधि ईश तुम्हार अयोगू ॥
अस पुस्तक ईश्वरकृत नाहीं । बात असंगत बहुत लखाहीं ॥
* अद्भुत बात और सुनि लेहू । बात हमारि तनिक चित देहू ॥
अपनी[1] सरी नाम की नारी । कह्यो तासुसों वचन उचारी ॥
हम जानत तुम अति सुकुमारी । मिश्री[2] देखहिं तुमहिं निहारी ॥
मोहिं मारि हैं जान समेता । बलकरि राखहिं तुम्हहिं निकेता ॥
जो तुम कहहु बहिन मैं इनकी । प्राण बचहिं दीन्हें अस भवकी ॥
तुम्हरे हेतु जियत हम रहहीं । और सुःखजीवन को लहहीं[3] *॥

दो०–† पैगम्बर जिनके लखहु, अबिरहाम से धूर्त ।
ईसाई यवनन विषे, यह हैं गुण की मूर्त ॥३९॥
झूठ कहत नहिं चूकहीं, झूठहिं कर्म महान ।
अस तुम्हार पैगम्बर, करत महा अभिमान ॥४०॥

* कहत एक सुनिये ऋषिराई । मम ईश्वर की जो प्रभुताई ॥
अबिरहाम सों ईश्वर कहेऊ । नियम एक हम निर्मित करेऊ ॥
तुम्हरे वंश बीच सो आई । चलत रहहि यह चिह्न सदाई ॥

---

१. अबिरहाम । २. मिश्रदेशवासी पुरुष । ३. तौ प० १२ आ० ११ से १३ तक । † स० १७ ।

एक नियम हम दोउ बिचरहई । तेहि खतना[१] सब कोई कहई ॥
ताते यक बालक को लावहु । आठ दिवस उपजो जहँ पावहु ॥
सुत तुम्हार या वंशज होई । अथवा धन दै लावहु कोई ॥
ताको खतना करहु बनाई । नियम हमार सदा रहि जाई ॥
जेहि बालक खतना नहिं होई । बिलग करहु ताकहँ सब कोई ॥

दो०—नियम हमारो यह सदा, चलै मांस के साथ ।
तोड़ि देइ जो नियमको, ताहि न लीजै साथ[२] * ॥ ४१ ॥

† कहत स्वामि ईश्वर चतुराई । देखहु यह अन्यथा सदाई ॥
यदि ईश्वर यह नेम सुहाता । तौ असपूर्वहि किमि न बनाता ॥
गुप्तेन्द्री अति कोमलताई । तेहि रक्षाहित खाल बढ़ाई ॥
जिमि नेत्रन पर पलक बनाये । तैसेहि कोमल अंग छिपाये ॥
लघुशंका[३] करने पर कोई । बिन्दु रहै तौ प्रकट न होई ॥
तेहि काटे कछु नहिं चतुराई । ईश नियम तोड़त हौ भाई ॥
अरु ईसाइ अब किमि नहिं मानत । जब यह नियम ईश को जानत ॥
अब बहुतक खतना नहिं करहीं । कहहु कहा ते नहिं आदरहीं ॥
*और सुनहु यक बात अनोखी । ईसाइन ईश्वरगति चोखी ॥

दो०—अबिरहाम सों ईश जब, करि लीन्हीं सब बात ।
चलो गयो ऊपर तबै, जानि लेहु यह तात[४] * ॥ ४२ ॥

† याते ईश्वर पक्षी आनहिं । अथवा मानुष ताहि बखानहिं ॥

---

१. गुप्तइन्द्रिय (मूत्र इन्द्रिय) के ऊपर की खाल काट डालने को खतना कहते हैं । २. तौ० प० १७ आ० ९ से १४ तक । † स० १८ । ३. पेशाब करना । ४. तौ० पर्व १७ आ० २२ । † स० १९ ।

जो नीचे ऊपर को जावै। जिमि जग इन्द्रजाल देखरावै॥
*तबपुनिकहतसुनहुऋषिराई। मायावश जग रहेउ भुलाई॥
यक दिन निज तम्बू के द्वारे। अबिरहाम नर तीन निहारे॥
तब वह चलेउ भेंट के काजा। किय दंडवत भागवड़आजा॥
कह प्रभु कृपा तनिक यह कीजै। मम सत्कार तुच्छ सो लीजै॥
कछु जल अरु यक रोटी लाऊँ। तृप्त होहु हौं पीछे खाऊँ॥
यह कहि निज पत्नीढिगगयेऊ। अतिथि तीनि भोजनहितठयेऊ॥
नपुआ तीनि पिसान उठावहु। ताहि गूँधिफुलुकान पकावहु॥
अरुपुनि दौड़ि गयोयकओरा। बछुड़न झुंड जहाँ पर जोरा॥
यक कोमल बछड़ा लै आवा। दास तासु को तुरत बनावा॥
दो०—दूधअरुमक्खन मांसको, धर्यो अगारू लाय।
खड़ो रह्यो वह वृक्ष तर, लियोसबननेखाय*॥ ४३॥
† स्वामिकहततनि लेहु बिचारी। ईश्वर इनको मांस अहारी॥
कहहु उपासक कब ये त्यागत। केहिविधितेहिईश्वर गोहरावत॥
हमरी जानि रहे वनवासी। एक रह्यौ तिन महँसुखवासी॥
ताहि बाइविल ईश्वर कहेऊ। और न कोऊ ईश्वर ठयेऊ॥
ईश्वरकृत यह पुस्तक नाहीं। तुममानहुजेहिअधिकसराहीं॥
और सुनहु ईश्वर की दाया। अबिरहाम नारी अपनाया॥
*कह्योसरा[2]क्योंअसमुसुकानी। बुढ़ियाकहिवहकिमिसकुचानी॥
अरु यह सोचत पुत्र न होई। ईश समर्थ चहै हो सोई *[3]॥

१. तौ० पर्व १८ आ० १ से ८ तक। † स० २०। २. सरा अबिरहाम की स्त्री है। ३. तौ० पर्व १८ आ० १३, १४।

† नारि पुरुष सम है व्यवहारू । कौन भाँति ईश्वर उच्चारू ॥

दो०—*तब ईश्वर ने असकह्यो, वर्षावहु बहु आग ।
नगर निवासी अरु नगर, बचे न कोऊ भाग ॥४४॥

जो कछु बीज उग्यो महि ऊपर । ताहि उलटि दीन्हो तेहि औसर* ॥
† ईश्वर को कछु दया न आई । कहत भये अस तब ऋषिराई ॥
बालकहुन को दीन्ह दवाई । का अपराध कीन्ह उन भाई ॥
न्याय दया का यह ही नामू । है विरुद्ध का ईश्वर कामू ॥
जब ईश्वर तुम्हार यहि भाँती । तब तुम कस न होहु उत्पाती ॥
*तब पुनि कह तुम समुझे नाहीं । लिख्यो बाइबिल में एक ठाहीं ॥
दो पुत्रिन बहु प्रेम बढ़ावा । निज पितु सन उन स्नेह दृढ़ावा ॥
पितु को उत्तम मद्य पिलाई । कह्यो दाखरस तेहि गोहराई ॥
अरु पितु पास जाइ सो सोई । दिय उपदेश दूसरिहु वोई ॥
ताहू ने वैसेहि किय जाई । गर्भवती दोउ बहिन सुहाई ॥

दो०—सुता दोऊ सोलूत की, पितु सन संगम कीन्ह[२] ।
गर्भवती दोऊ भई, नहिं कलंक चित दीन्ह* ॥ ४५ ॥

† कहत स्वामि देखहु प्रभुताई । मद्य पियन कस गति है भाई ॥
जब भे पुत्रि पिता मदहारी । पिता न अपनी पुत्रि बिचारी ॥
बचि न सके कुकर्म किय भारी । कहहु कौन जन लेइ सम्हारी ॥
ताते मद्य पियहु नहिं कोई । हिय धारहु मम बात सँजोई ॥

† स० २१ । १. तौ० प० १६ आ० २४, २५ । † स० २२ ।
२. तौ० पर्व १६ आ० ३२, ३३, ३४, ३६ । † स० २३ ।

* पुनि कह ईश्वर सरा से भेंटा। कियो विषय ताको भ्रम मेटा ॥
सरा गर्भिणी भई सुहाई। परमेश्वर करतूत देखाई[1] * ॥
†स्वामि कहत हिय माहिं विचारहु। परमेश्वर के काम निहारहु ॥
सरा गर्भ परमेश्वर कारन। तो सर कोउ न गर्भ किय धारन ॥

दो०—*अबिरहाम उठि प्रात ही, लै रोटी जल हाथ।
तुरत हाजिरा कंध धरि, पुत्र कियो तेहि साथ ॥ ४६ ॥
बिदा भई सो पुत्र लै, पहुँची झाड़ी पास।
पुत्र छिपायो तहाँ पै, रोवन लगी निरास ॥ ४७ ॥

तब परमेश्वर शिशु की बानी। सुनो जौन छण रोदन ठानी[2] * ॥
† देखहु इनके ईश्वर ज्ञाना। रोवै नारि पुत्र अनुमाना ॥
जब ईश्वर भ्रम होहि अपारा। कहि न सकत ईश्वर संसारा ॥
*पुनि यक कहत सुनहु सब लोगू। करत परीक्षा ईश्वर योगू ॥
अबिरहाम से कहत पुकारी। प्यार करत तुम जेहि अति भारी ॥
तेहि इज़हाक होम के हेता। भेंट चढ़ावहु परम निकेता ॥
अबिरहाम प्रभु आज्ञा मानी। खड्ग निकारि चलावन ठानी ॥
तेहि छण ईश्वर दूत पुकारी। मत मारहु सुत खड्ग सम्हारी ॥
मानि लियो तुम ईश्वर जानत। आज्ञाता की सब विधि मानत[3] * ॥

दो०—†स्वामि कहत अब सत्य है, ईश महा अलपज्ञ।
जासु बड़ाई तुम करत, और कहत सर्वज्ञ ॥ ४८ ॥

---

१. तौ० उत्पत्ति पर्व २१ आ० १, २। † स० २३। २. तौ० उ० पर्व २१ आ० १४ से १७ तक। † स० २५। ३. तौ० उ० पर्व २२ आ० १, २, ६, से १२ तक। † स० २६।

बाइबिल बीच लिखी प्रभुताई। वह असत्य सब ठौर जनाई ॥
*बहुरि कहत असरीति चलाई। मुरदा गाड़न विधी बताई ॥
अरु यह कह्यो समाधि हमारी। गाड़हु एकमाहिं चितधारी*[१] ॥
†जग मुर्दा गाड़े बहु हानी। वायु बिगाड़हिं करि मनमानी ॥
प्रश्न करन यक ऋषिसों लागा। मनहु रहेउ सोवत अब जागा ॥
जापर प्रीति होय अधिकाई। ताहि जलाये अति विकलाई ॥
जिमि नर सोवत रहत सदाई। गाड़े मृतक रहत तस भाई ॥
स्वामि उतर दै कह समुझाई। समुझि बात हिय धरहु सदाई ॥
प्रीतिमृतकसनजो अतिभारी। तौ घरसे किमि देत निकारी ॥
जीवात्मा सन प्रीति सदाई। तनुसों प्रीति रही न कदाई ॥

दो०—जीव पृथक तनु ते जबै, भयो काल को पाय।
तब शरीर बेकार है, राखहु तहाँ गँधाय ॥ ४९ ॥

माटी से कस होवै प्रीती। जीव बिना कछु नहिं परतीती ॥
तीन हाथ भूमी को खोदत। राख सु तामहँ माटी तोपत ॥
कहहु प्रीति कस लेखे माहीं। जो तुम गाड़ब कहत सराहीं ॥
अरु संदूक माहिं जो राखत। ताकहँ गाड़ि जो कबर बनावत ॥
सड़िके वायु बिगाड़त रहहीं। जासोंमनुजअधिकदुखलहहीं ॥
अरु जो कोऊ जल बिच ढीलहिं। जलजन्तूतेहितुरतहिलीलहिं ॥
तदपि कछुक परमाणू जल में। रहत करत हैं हानी जग में ॥
अरु जो बन बिच फेकत धाई। ताहू को बनचर लें खाई ॥
अस्थी रहत पड़ी तेहि ठाहीं। करिदुर्गन्धी अधिक बसाहीं ॥

---

१. तौ० उत्पत्ति पर्व २२ आ० ३। † स० २७।

दो०—ताते फूकब ही सदा, है उपकार की बात ।
अणु अणु में मिलि जात है, जब शरीर जरिजात॥५०॥

गन्धि हेत परमाणु न रहहीं । जाते कोउ न दुख को सहहीं ॥
सुनहुस्वामिजबमृतकजलावहिं तौदुर्गन्धसकलदिशिजावहिं॥
स्वामिकहतजोविधिकोत्यागत। तहाँअवशिकछुवायुबिगारत ॥
अरु जस वेदरीति बतराई । करत कोई जो रीति सोहाई ॥
उत्तरदक्खिन दिशकी ओरा । करि श्मशानभूमी में ठौरा ॥
खनहु तहाँ पर कुंड सुहाई । तीनि हाथ की हो गहिराई ॥
होवे पाँच हाथ लम्बाई । साढ़े तीनि हाथ चौड़ाई ॥
डेढ़ बलिस्त तले रहि जाई । खोदहु सिरा उतार बनाई ॥
तबलकड़ीचुनिमृतकसुलावहु । चन्दनआमअरुकाष्ठलगावहु ॥

दो०—अरु शरीर कीतौलभरि, है घी को परिमान ।
ता घी के यक सेर में, केसर मासा मान ॥५१॥

यक रत्ती कस्तूरी लेई । घृत बिच डालिमिलानकरेई ॥
चन्दन बीस सेर ले तेई । अगर तगर मनमाना लेई ॥
कर्पूरादि जो द्रव्य सुगन्धित । वस्तुनडालहुकोउअसुगंधित॥
मंत्र सहित पुनि आहुति दीजै । संस्कार विधि कर्म[1] करीजै ॥
याही को नरमेध बखानत । अन्त्येष्टी बुधवर गोहरावत ॥
जो दरिद्र होवै नर कोई । बीस सेर घृत लेवै सोई ॥
माँगहि भीख देइ बहु राजा । अथवा चन्दा करहिसमाजा ॥

---

१. अन्त्येष्टिसंस्कार जो संस्कार-विधि में सोलहवाँ संस्कार है ।

परबिधिको कबहूँ नहिं त्यागहिं । तब कबहूँ दुर्गन्ध न आवहिं ॥

दो०—घृत कपूर आदिक कतहुँ, मिलैं न केहु बिधि काय ।
तऊ फूंकिबो ही भलो, गाड़ब अति दुखदाय ॥५२॥

गाड़ब है सब भाँति निषिद्धा । और रीति यह वेदविरुद्धा ॥
*सुनिये ईसा की बहु करनी । पूर्वजनन की बिधिसों बरनी ॥
ताकहँ धन्य दया जो करई । मार्ग दिखावत भ्रात न फिरई ॥
अबिरहाम मम स्वामी अहहीं । तिन कहँ ईश्वर बहु बिधि चहहीं* ॥
† कहहु कहा तिन ही कर ईशा । अबिरहाम यक पुरुष मुनीशा ॥
अब न ईश केहु मार्ग दिखावत । ना केहू सन है बतरावत ॥
यह ईश्वर गुन है दिखरावा । करत सदा बनचर को भावा ॥
दासी अबिरहाम की प्यारी । सुत उपजाए हाजिरा नारी ॥
*अरु याकूब कहत निज पितुसों । मैं तुम्हार सुत जिमि है ऐसों ।

दो०—मम अहेर उठिकै भखहु, प्राण देहिं आसीस ।
अरु रिबकः बहु भाँति सों, खाल पिन्हाय उतीस* ॥५३

†या विधि झूठ असीस जो लेहीं । पैगम्बर बनि का जग देहीं ॥
अस इसाइ अगुआ तुम देखहु । गड़बड़ बहुत तहाँ पर पेखहु ॥

---

१. तौ० उ० प० ३४ आयत २७ । † स० २८ ।

२. इस्मअएल अबिरहाम के बेटों के नाम— नबीत, कीदार, अदबिएल, मिबसाम, मिसमाअ, दूमः, मस्सा, हदर, तैमा, इतूर, नफ़ीस और किदमः यह सब अबिरहाम की दासी हाज़िरा से थे । ३. तौ० उ० पर्व २५ आ० १३, १४, १५ । ४.५. एक नाम है । ६. तौ० उ० पर्व २७ आ० १५, १६, १६ । † स० २९,३० ।

*और सुनहुयक अकथकहानी। जो याकूब कीन्ह मनमानी ॥
जो पत्थर शिर नीचे धारी। सोयो है बहु पाँव पसारी ॥
प्रात गाड़ि तेहि तेल चढ़ावा। 'वैतएल' कहि नाम सुनावा ॥
अरु कह यह गाड़्यो जो खम्भा। ईश्वर घर जानहु आरम्भा'*॥
† स्वामि कहत देखहु प्रभुताई। यह जंगलिन केरि निपुणाई ॥
पत्थर पूजे अरु पुजवाए। ईश्वर घर ताकहँ ठहराए ॥
मुसलमान तेहि वैतएल² कहहीं। मानि पवित्र जो चूमत रहहीं ॥
याते बहु विधि हैं ईसाई। पत्थरपूजक परम सुहाई ॥
दो०—*अरु ईश्वर ने याद किय, नारी राखिल चोखि।
तासु श्रवण करि खोलदी, बन्द रही जो कोखि ॥ ५४॥
भई गर्भिणी सुत उपजावा। कहेउ ईश सन निजसुखभावा॥
निन्दा दूरि भई मम सारी। ईशअनुग्रह सकल तुम्हारी³*॥
† सुनी इसाइन केरि बड़ाई। जानि परी अब ईश्वरताई ॥
ईश तुम्हार डाक्टर भारी। खोलत कोखि बाँझ जो नारी ॥
कौन शस्त्र औषधि बतलावहु। अन्धाधुन्ध न बात सुनावहु ॥
*तबयककहतसुनहुममबाता। ईश्वर मिलत स्वप्न में ताता ॥
आयो स्वप्न माहिं एक बारा। चौकस रह अस बैन उचारा॥
तुम न करहु याकूब बुराई। पितुगृह तासु चाह अधिकाई॥

१. तौ० उ० प० २८ आ० १८, १६, २६। † स० ३१। २. यह मक्के के मन्दिर में संग असवद है इसी को वैतएल मुक़द्दस कहते हैं।
३. तौ० उ० पर्व ३० आ० २२, २३। † स० ३२।

दो०—और कहत केहि कारने, तुम चोरी मम कीन्ह[1]।
देवन को सब भाँति से, बिन शंका लै लीन्ह*॥५५॥

†स्वामि कहत यह लखहु नमूना। ईश्वर दीखत अब कबहू ना॥
बहुतन स्वप्न अरु जागृत माहीं। ईश्वर देखि परेउ सब ठाहीं॥
बात करि बहुतन फल पाया। बहुतन संग ईश के खाया॥
लिख्यो बाइबिल में बहु ठाहीं। अब कबहूँ कोउ देखत नाहीं॥
जानि परत यह बन के बासी। पूजे पाथर देव उपासी॥
ईश तुम्हारे पाथर भाये। नतरु कहत मम देव चुराये॥
*कहत बहुरि याकूब कहानी। जात रह्यो अपने मन ठानी॥
ईश्वरदूत मिले तेहि आई। दूतन देखि बहुत हर्षाई[2]॥
अरु यह कह्यो सैन्य यह आई। परमेश्वर निज हाथ बनाई*॥

दो०—†कहत स्वामि अब सोचिये, ईसाइन को ईश।
करत मनुज सम काम जब, तब किमि मानहि ईश॥५६॥

जब राखत वह सैन्य सोहाई। तब वह करत अवश्य लड़ाई॥
*तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। नहिं देखी तुम ईश्वरताई॥
ईश्वर युद्ध कियो निसि सारी। जब देख्यो मम ह्वै है हारी॥
मल्लयुद्ध कीन्हों निसि वेला। रह्यो जहाँ याकूब अकेला॥
जब न चल्यो कोउ और उपाई। जाँघ केरि नस दीन्ह चढ़ाई॥
पर याकूब तबहुँ नहिं छोड़त। लरनमाहिं नाहीं मुख मोरत॥
तब अस कह्यो जान मोहिं दीजै। प्रात भयो अब पुनि लरि लीजै॥

---

१. तौ० उ० प० ३१ आ० २४, ३०। † स० ३३। २. तौ० उ० पर्व ३२ आ० १, २। † स० ३४।

कह याक़ूब जान नहिं देऊँ। जबलगिनहिंकछुआशिषलेऊँ॥
दो०—तब पूछेउ निज नाम कहु, दिय याक़ूब बताय।
दै दीन्हों आशीष इमि, सुनिये चित्त लगाय ॥५७॥
छं०—अब नाम जग याक़ूब तुम्हरो होहि नहिं चित धारिये।
इसराईल कहि टेरैं सबै आशीष यह उर राखिये॥
कीन्हीं लड़ाई नृपति सम अरु युद्ध बहु बिधि सों कियो।
निज "इष्ट" जीत्यो प्रबल ह्वै हर्षित भयो मेरो हियो ॥१॥
नाम "कनूएल" तेहि थल केरा। जहँ प्रत्यक्ष ईश को हेरा॥
पुनि लँगड़ात चलेउ सो भाई। सूर्यकिरण तब परीं देखाई॥
ताते नस न जाँघ की खाहीं। इसराइल के वंश सदाहीं॥
परमेश्वर नस दीन्ह चढ़ाई। जाँघ छुई याक़ूब लराई[*]॥
[†]स्वामि कहतधनिईशतुम्हारो। मल्लयुद्ध करि रचत अखारो॥
ऐसेहि कृपा करी बहुतेरी। रायल[2] सरा[3] पुत्र हित हेरी॥
हुइसककबहुँ कहहुअसईश्वर। अस अनभिज्ञ न हो परमेश्वर॥
पूँछत नाम अजान कि नाईं। यह लखि लीन्ही ईश्वरताई॥
दो०—नस चढ़ाइ दी जाँघ की, पुनि न करी तेहि ठीक।
यह ही है प्रत्यक्षता, राखत ईश अनीक[4] ॥५८॥
सो०—मानुष को यह काम, नहिं ईश्वर कोऊ कहै।
लरिकाईं सम काम, करत रहत जो है सदा ॥५॥

१.तौ० उ० पर्व३२, आ० २४ से ३२ तक। †स० ३५। २. रायल यह भी एक स्त्री थी। ३. सरा अबिरहाम् की स्त्री थी। ४. सेना (फ़ौज)।

सुनहु ईश की और कहानी । लिखी जो ईसाइन मनमानी ॥
*प्रथमहिं पुत्र यहूदा जायो । दुष्ट समुझि तेहि ईश नशायो ॥
यहूदा ओनान बोलावा । और बहुत विधि सों समुझावा ॥
तुम अपने भाई की नारी । कीजै ब्याह महा सुखकारी ॥
जासों वंश चलै अधिकाई । भ्रात नाम नहिं जाइ बिलाई ॥
तब ओनान विचारन लागे । वंश न चलै मोर यह आगे ॥
भ्रातनारि ढिग जाकर कीन्हों । वीर्य गिराइ भूमि पर दीन्हों ॥
परमेश्वर यह अनुचित मानी । ताहिमारिकरि दीन्हीहानी[1]*॥

सो०—†अबदेखहु यह काम, मानुष को या ईश को ।
है मार्‌यो बेकाम, किमिनसुधारीबुद्धितेहि॥६॥

दो०—जानहु प्रथा नियोग की, चलत रही सब देश ।
वेदन की मर्याद अब, रही न तनिकौ लेश ॥५६॥

तौरेत यात्रा की पुस्तक—

*बहुरि कहत यात्रा की पोथी । सुनहु सुनावहु नहिं है थोथी ॥
मूसा भयो सयानो जबहीं । देख्यो निज भ्राता को तबहीं ॥
मारत रह्यो ताहि यक मिश्री[2] । मूसा हनि डार्‌यो तब मिश्री ॥
रेत बीच तेहि दीन्ह छिपाई । कीन्ह तहाँ पर अतिचतुराई ॥
अरु दूसर दिन बाहर गयेऊ । तहँ इबरानिन झगड़ा भयेऊ ॥
तहँ मूसा यह कह्यो बुझाई । काह पड़ोसि सतावत भाई ॥

१. तौ० उत्पत्ति प० ३८ आ० ७ से १० तक । † स० ३६ ।
२. मिश्रदेश का निवासी ।

उतर दीन्ह तुमको अध्यत्ता । बनि न्यायी चाहत हो रत्ता ॥
जौन भाँति मिश्रिहि हनिडारो । का सोई मन माहिं बिचारो ॥
दो०—असमुनि मूसा तुरतही, भागिचल्योतेहिकाल ।
हियभयभीत भयो महा, जानिगती बिकराल *॥६०॥
† स्वामिकहततनिनयनउघारहु। मूसा को कर्तव्य विचारहु ॥
दुर्गुण भरे चरित्र लखाहीं । क्रोधादिक सबगुनउर माहीं ॥
हिंसा करै राज्य डर भागे । बात छिपावत है सब आगे ॥
अवशि असतवादी जगआई । हम कहँ मूसा परत लखाई ॥
सोउ मिल्यो ईश्वर सँग जाई । बनि पैगम्बर लीन्ह पुजाई ॥
जेहि यहूदिमत दीन चलाई । सो मूसा समान दर्शाई ॥
जिनके आदि पुरुष अस होहीं। विद्यारहित जंगली सोहीं ॥
मूसा सम भे तहँ पर जोऊ । रहे न बुधिवर मानुष कोऊ ॥
*और कहत लोहू सब द्वारे । पोतहु यहिसबलखहिं निहारे॥
यक मूठी जूफा को लीजै । लोहू में तेहि तर कर दीजै ॥
बासन माहिं धरो है लोहू । तेहि लैकर तुम तत्पर होहू ॥
दो०—परमेश्वर यहि राह सों, जाइ मिश्र के हेत ।
सकल निवासिन मारिहैं, तुम तौ रहहु सचेत ॥ ६१ ॥
या उपाय तुम सब बचि जैहौ । मानहु बहुरि जन्म तुम पैहौ*[२]॥
† अब इनके देखे कस टोना । जानत नहिं हुइहै जो होना ॥
कहि न सकत ईश्वर सर्वज्ञा । है देखात सबविधि सों अज्ञा ॥

---

१. तौ० यात्रा पर्व २ आ० ११ से १५ तक । †स० ३७ । २. तौ० या० प० १२ आ० २१ से २३ तक । †स० ३८ ।

क्षुद्र बुद्धि सम इनके कारज । कहि न सकत कोऊ है आरज ॥
* और सुनहु जो मिश्र कहानी । परमेश्वर ने जो मन ठानी ॥
पहलौठी जितने सुत पाये । पक्षी पशु जो कोउ चौपाये ॥
मार्यो सबन भयो अति शोरा । मृत्यु बिना घर बच्यो न कोरा ॥
फिराऊन सुत तहँ को राजा । मारो गयो जौन युवराजा*[1] ॥

दो०–† देखहु मारन जात है, अर्धनिशा के बीच ।
है डाकुन को काम यह, महा क्रूर मति नीच ॥ ६२ ॥

दयारहित मारे सब बालक । है ईश्वर या यह कुलघालक ॥
अस कारज जग में नर कोई । कबहुँ न साधारण सों होई ॥
का आश्चर्य करत जो ऐसा । मांस अहारिन दया न लेसा ॥
इनका ईश्वर मांस अहारी । ताही ते दी दया बिसारी ॥
* याही विधि बातैं बहुतेरी । लिखी बाइबिल माहिं घनेरी ॥
ईश्वरयुद्ध करहिं तब हेता । मूसा या विधि करत सचेता ॥
इसराइलसुतसों यहि भाँती । कही बढ़हु आगे सब जाती *[2] ॥

दो०– ‡ अब ईश्वर कहँ को गयो, और छिप्या केहि ठाँव ।
किमि न ईश को सौंपि सब, बैठत अपने गाँव ॥ ६३ ॥

सो०–जानि परी यह बात, जस सेवक तस स्वामि है ।
रहत लगावत घात, ईसाई संसार नित ॥ ७ ॥

*सुनहु ईश की अस प्रभुताई । कहत सबन सों भुजा उठाई ॥

---

१. तौ० या० प० १२ आ० २६, ३० । † स० ३६ । २. तौ० या० प० १४ आ० १४ से १६ तक । ‡ प० ४० ।

मैं परमेश्वर ईश तुम्हारा । सर्वशक्तिमन जगत पियारा ॥
पितु अपराध दंड जो होई । देहुँ सुतन मम वैरी जोई ॥
पीढ़ि चारि लो भोगत रहहीं । अथवातीसरिलौंदुखसहहीं* ॥[1]
†कहु तबस्वामि न्याय का अहही । पितुअपराधदंडसुतलहही ॥
पीढ़ी चारि दंड को भोगत । करै कोउ कोऊ है भोगत ॥
यदि सन्तान करै शुभ कर्मा । तऊ दंड भोगै कस धर्मा ॥
बिन अपराध दंड जो देई । न्यायी कहत कोउ नहिं तेई ॥

दो०—*अरु ईश्वर सब सों कहत, छ दिन करहु पुरुषार्थ ।
दिवस सातवें को सदा, लखु विश्राम के अर्थ ॥६४॥

ताहि पवित्र करहु सब भाँती । तेहिरविबारविलोक्योजाती* ॥[2]
† कहहु कहा रविवारहि पावन । और दिवससबमहाअपावन ॥
ईश्वर छु दिन करत नहिं कामा । रहत कहहु कालोउ अकामा ॥
जो आसीस देत रविवारहिं । शाप देत का औरन वारहिं ॥
यक रविवार कौन गुन अहई । जाहि पवित्र पादरी कहई ॥
*और कहत नहिं लालच कीजै । वस्तु पड़ोसीमतिचितदीजै ॥
मिथ्या साच्छि न ताकी कीजै । कछु अन्यायसहित ना लीजै ॥
या विधि जो कछु साँची बानी । मानततिनहिंनकरिमनमानी* ॥[3]

दो०—†मतलब सिन्धु सकलविधि, पच्छपात की मूर्त ।
परदेशिन को देत दुख[4], कर्म करत अति धूर्त ॥६५॥

---

१. तौ० या० प० २० आ० ५ । †स० ४१ । २. तौ० या० प० २० ८, ९ । † स० ४२ । ३. तौ० या० प० २० आ० १६, १७ । †स० ४३ । ४. परदेशियों के माल पर ऐसे टूटते हैं जैसे प्यासा जल पर भूखा अन्न पर टूटता है ।

लखि लीन्हीं इनकी जो नीती । फँसिगे जिन कीन्हीं परतीती ॥
*और सुनहु दोहुन की करनी । ईश्वर अरु मूसा मिलि बरनी ॥
सब पुत्रन अरु नारि सयानी । जो सोई पति सँग सुखमानी ॥
मारहु तिनको प्राण समेता । बचहिं गई नहिं पुरुष निकेता[1] ॥
अक्षतयोनि बालिका जोई । अपने अर्थ राखिये सोई*[2] ॥
†धनि तुम्हार पैगम्बर मूसा । अरु धनि ईश्वर है जो ईसा ॥
हत्या करवावत है सबकी । बाल वृद्ध नारी है जिनकी ॥
और सुने यह मन में आवत । विषयी मूसा सब विधि भावत ॥

दो०—जो विषयी मूसा नहीं, कहहु कही केहि भाँति ।
राखहु अपने हेत सब, बाल कुमारि सुहाति ॥६६॥

*और सुनहु यक बात अनोखी । नीति निपुण कहि दीन्हीं चोखी ॥
यदि कोऊ काहू को मारै । निश्चय मरत तासु संहारै ॥
मारनवारो फाँसी पावै । यदि काहू विधि सो बचि जावै ॥
पर ईश्वर कारन तेहि राखी । सौंपत है देखत निज आँखी ॥
जा विधि बचहु सो मार्ग बतैहौं । भागि जाहु सो पथ दर्शैहौं*[3] ॥
†स्वामि कहत सुनिये चित लाई । सत्य असत्य जौन दर्शाई ॥
न्याय सत्य यदि ईश्वर करई । किमि न दोष मूसा उर धरई ॥
जब मूसा यक नर को मारी । खोदि भूमि दीन्हों तहँ डारी ॥
अरु सो भागि गयो भयमानी । दंड न दीन ईश तेहि जानी ॥

---

१. नज़दीक । २. तौ० गिनती पर्व ३२ आ० १७,१८ । †स० ४४ ।
३. तौ० या० पर्व २१ आ० १२,१३ । †स० ४५ ।

यदि सौंप्यो मारन के हेता । तौ करि पच्छ सो सुखदुख देता॥
दो०—पच्छपात जाके विषे, हुइ न सकत सो ईश ।
न्याय न मूसा को भयो, कस मानहिं जगदीश ॥६७॥
सो०—एक कहत समुझाय, ऋषिवर मेरी मानिये ।
पावत सो सुख भाय, करत जो ईश्वर प्रेम नित ॥८॥

छं०—*शुभ कामना हित बैलको बलिदान बहुविधिसोंकियो ।
अरु रक्त बहि निकस्यो तहाँ पर सकल सो मूसा लियो ॥
तेहि अर्ध राख्यो पात्र बिच अरु अर्ध वेदी छिड़कियो ।
पुनि पात्र में से सबन ऊपर छिड़क तब लोहू दियो ॥ २ ॥
और कह्यो यह ईश्वर प्रेमा । रहै सदा सँग तुम्हरे नेमा ॥
तब ईश्वर मूसहि गोहरावा । ऊपर अपने पास बोलावा ॥
पत्थर की पट्टी लै जाहू । लिखी व्यवस्था जो सब काहू ॥
अरुआज्ञा जो कछुलिखिराखी । सो लै जाहु चहहु निज साखी*
†स्वामि कहत देखहु चतुराई । कस पूजा भक्ती दिखराई ॥
अब देखहु ईश्वर प्रभुताई । करवावत बलिदान सोहाई ॥
छिड़कत रक्त सबन के ऊपर । इन सम अज्ञ और को दूसर ॥
जब इनके ईश्वर यह रीती । भक्त भखत का करत अनीती ॥
ईशप्रसाद समुझि ते खाहीं । गाय बैल बकरी जो चाहीं ॥
दो०—याही बिधि बहु भाँति की, लिखी बाइबिल बात ।
कबहुँ वेद इनके कहे, जग दोषी ठहरात ॥ ६८ ॥

---

१. तौ० या० प० २४ आ० ५, ६. ८, १२ । † स० ४६ ।

छं०—यह जानि निश्चय परत हम कहँ ईश को जे मानते।
सो बसत परवत शिखर पर मन जंगलीपन ठानते॥
नहिं लेखनी तेहि पास कागज देत लिखि पत्थर शिला।
बनि गयो सो ईश्वर तहाँ अरु आइ कछु डाकुनमिला ३

*एक कहत ऋषिवर सुनिलीजै। मम ईश्वर करनी चित दीजै॥
कह ईश्वर मम रूप न देखहिं। मरत तुरत जो मोकहँ पेखहिं॥
कह्यो ईश यक ठौर सोहाई। तहाँ रहहु जिय नहिं घबराई॥
जब मम विभव प्रकाशित होई। तबहिं छिपावहु खोह सँजोई॥
अरु अपने कर तुम्हहिं छिपाऊँ। कर उठाइ पुनि तुमहिं देखाऊँ॥
रूप हमार न तुम लखि पावहु। पीछे चहै उपाय चलावहु*॥
†कहत स्वामि देखी प्रभुताई। मायावी सब भाँति लखाई॥
रचि प्रपंच ईश्वर बनि गयऊ। मिलि मूसा सँग कौतुक रचेऊ॥

दो०—जब मूसा को हाथ सों, अंग छिपायो ईश।
तब केहि विधि है रूप नहिं, कहहु तुम्हारे ईश॥ ६६॥

तौरेत लयव्यवस्था की पुस्तक

पुनि दूसर पुस्तक लै हाथा। कहन लगे बहुतक यक साथा॥
*ईश बड़ाइ कहा तुम जानहु। है सामर्थ सकल विधि मानहु॥
यक दिन मूसा को बुलवाया। तम्बू सों ताकहँ समुझाया॥
इसराईल सुतन सों कहहू। जो मम हेत भेंट तुम चहहू॥
तौ तुम गाय बैल अरु बकरी। लै आवहु भेंड़न को पकरी[3]*॥

---

*. तौ० या० पर्व ३३ आ० २० से २३ तक। † स० ४७।
३. तौ० लय व्यवस्था प० १ आ० १,२।

† कहतस्वामि ईश्वरकीकरनी। जानो जो तुमनिजमुखबरनी ॥
ईश्वर भेंट पशुन की लेई। करि उपदेश जो आज्ञा देई ॥
ताते हिंसक मनुजसमाना। खात मांस धरि ईश्वरबाना ॥
ईश्वर कोटि न सो कहि जाई। तेहि न अहिंसा धर्म लखाई ॥

दो०—*बैल लाइ बलि को करै, ईश्वर सन्मुख आय।
अरु याजक हारूनसुत, लीजै तिन्हैं बोलाय ॥७०॥

सो लै रक्त चहूँ दिशि छिरिकै। वेदीद्वार सकल दिशिभरिकै ॥
खाल निकारि खंड करिताको। धारहु वेदी ऊपर वाको ॥
चुनि लकड़ी अग्नी सो देई। याजक विधि सों भेंट धरेई ॥
तासु सुगन्ध ईश ढिग जाई। जरैमांस अरु जोचिकनाई १* ॥
† अब विचारि देखहु मन माहीं। करहिं भक्त करतव्य सराहीं ॥
परमेश्वर आगे पशु मारैं। लोहू छिड़कत सबन दुआरे ॥
होमैं ताहि अग्नि बिच सोई। मिलहि सुगन्ध ईश कहँ जोई ॥
का कसाइ घर यह है नाहीं। करत क्रिया सब लोग सराहीं ॥

दो०—असपुस्तककेहिभाँतिसों, लखहु ईशकृत होय।
निन्दित कर्मन सों भरी, नर लीला युत सोय ॥७१॥

*और सुनहु केतिकयहि भाँती। कहत मोहिं लज्जा है आती ॥
परमेश्वर मूसा सों कहेऊ। यह याजक अभिषेकी ठयेऊ ॥
यदि सेवक सम पाप सो करई। सो यह दंड हृदय बिच धरई ॥
यक बछिया ईश्वर हित लावे। तेहिमस्तक निजहाथलगावे ॥

---

† स० ४८। १. तौ० लय० ध्य० प० १ आ० ५ से ६ तक। † स० ४६।

अरु अपने कर सों बलि करई । ईश्वर सन्मुख लै सो धरई *[1] ॥
*अरु अध्यज्ञ पाप कोउ करई । भेंट अजासुत[2] सो लै धरई ॥
बली करै ईश्वर के आगे । पाप भेंट यह सबसे लागे*[3] ॥
*अरुयदि हो पूँजीनहिंपासा । "इष्ट" भेंटहितकरतसोआसा॥
दो०—दो कपोत[4] दो पिंडुकिया[5], भेंट धरै सो लाय ।
गला घोंटि बलि देवई, शिरनपृथकहुइजाय ॥७२॥
प्रायश्चित्त करहिं यहि भाँती । छमाहोहिं अपराधसोहाती ॥
*यदि इतनिहु सामर्थ्य न होई । तौ यक सेर पिसान सँजोई ॥
लावहिं भेंट तेल बिन ताहीं । छमाहोहिंअपराधनशाहीं *[6]॥
*प्रायश्चितहितहों बलिदाना । खाल और कोउ लेइनआना ॥
खाल होइ सोइ याजक[7] केरी । मारि चढ़ायो ईश्वर नेरी ॥
अरु भोजन की भेंट जो होई । चहै पकावे केहु थल[8] कोई ॥
सोउ होय तेहि याजक केरा । जोसबभाँतिबन्योतेहिबेरा*[9]॥
† स्वामि कहत यह अद्भुत रीती । पाप छुड़ावन की जो नीती ॥
दो०—एक गाय को मारहीं, परमेश्वर ढिग जाय ।
भेंट लेइ परसन्न है, देवै पाप नशाय ॥७३॥

१. तौ० लय व्य० प० ४ आ० १ से ४ तक । २. बकरी का बच्चा । ३. तौ० लय० पर्व ४ आ० २२ से २४ तक । ४. कबूतर । ५. पड़-खुकी । ६. तौ० लय० प० ५ आ० ७ से १३ तक । ७. पशु को मारकर बलि चढ़ानेवाला, बाइबिल की परिभाषा से । ८. तंदूर में अथवा कड़ाही में या तवे पर । ९. तौ० लय० प० आ० ८-९ ।
† स० ५० से ५३ ।

पुनि किमि पापन सोंकोउडरई । न्यायधीश अध्यक्ष जो करई ॥
अस ईश्वर तुम्हार हत्यारो । जो अस प्रायश्चित्त प्रचारो ॥
जब ईश्वररहित ये पशु मारें । कहहु सो काहे कबहुँ विचारें ॥
शंका हृदय तनिक नहिं होई । प्राण लेत पशु पक्षिन जोई ॥
और सुनत जो हो धनवाना । करै वली सो गाइ महाना ॥
अरु निर्धनी कपोतहि लावे । बहु छोटे पक्षी जहँ पावे ॥
अति दरिद्र जो दीन महाना । सो बलि करे बनाइ पिसाना ॥
कहहु कर्मफल का यह होई । देत ईसाइन ईश्वर सोई ॥

दो०—गला घोंटि पक्षीन को, करत बली यह जोय ।
तड़पत है बहु देर तक, इनहिं दुःख नहिं होय ॥७४॥

पोप पुजारी हमरी जानी । करत अहैं अपने मनमानी ॥
पर जब देखि ईसाइन रीती । महा अनर्गल अधिक कुरीती ॥
मांस खाइ चमड़ा लै दामू । मौज उड़ावहिं करिके कामू ॥
कोउपितुजगमहँयकसुतमारी। दुसरे काहिं खवावहिं भारी ॥
यह अन्याय रीति सब भाँती । है सब भाँतिन बहुकुलघाती ॥
परमेश्वर के सुत सब कोई । पशु पक्षी मानुष हैं जोई ॥
चाहिय तेहि सब ऊपर दाया । जीव शरीर जगत निर्माया ॥
करहिं न्याय कर्मन को देखी । विरुद्ध करै ईश्वर नहिं लेखी ॥

दो०—ताते अबहूँ त्यागिये, पाखंडिन को संग ।
ईश्वर[१] हू में धरत हैं, हिंसा दोष कुसंग ॥७५॥

---

१. ऐसे ईश्वर की ईश्वरताई पर धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी

ताते ईश्वरकृत नहिं पोथी। स्वारथ हेत बनाई थोथी॥
याही विधि या महँ बहुतेरी। महा असंभव लिखी घनेरी॥

तौरेत गिनती की पुस्तक

*कहतएकऋषिसोंयहिभाँती। पुस्तक गिनती की कछु पाँती॥
कह गदही देखेउ एक बारा। ईशदूत कर खड्ग निहारा॥
भागि चली सो मार्ग बराई। तब बलआम[1] दौरि अगुआई॥
अरु ताके एक लाठी मारी। वह परमेश्वर तुरत पुकारी॥
दीन्ह ईश तब तेहि मुख खोली। वहयहिविधिबलआमसोंबोली॥
तीनि बार तुमने मोहिं मारा। कौन कियो अपराध तुम्हारा[2]*॥
दो०—†स्वामि कहत इनकी कथा, मनमानी दिखराइ।
जिमि बहुरूपी छलहिं नित, नाना रूप बनाइ॥७६॥
देख्यो गदही ईश्वर दूता। अवन लखत कोउ पुरुष सपूता॥

और बकरी का बच्चा कबूतर और पिसान (आटा) तक लेने का नियम किया। अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे गर्दन मरोड़वा के लेता था ताकि परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था, वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जंगलियों ने अज्ञानवश स्वीकार कर लिया। अपनी युक्ति से पहाड़ पर ही वह खाने की वस्तुएँ, मांसाहिक तथा अन्न मँगा लिया करता था और मौज करता था। उसके दूत (फ़रिश्ते) काम करते थे। अब सज्जन विचार कीजिये कि बाइबिल में बछड़ा, गाय, बकरी, भेड़, कपोत, पिंड़कियाँ, पिसान आदि खानेवाला ईश्वर और कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी इत्यादि गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर है।

१. एक पुरुष का नाम। २. तौ० गिन्ती० पर्व २२ आ० २३व२८।
† स० ५४।

का सब दूत गये हैं सोई। अथवा रोगग्रस्त हैं सोई ॥
या भूगोल अन्य को गयेऊ। तहँ सब धन्धन में रत रहेऊ॥
अथवा मौत भई तिन केरी। जो न देखात सबै बिधि हेरी॥
याते यह सब मूरखताई। फँसे आप अरु सबन फँसाई॥

तौरेत समूएल की दूसरी पुस्तक

※तब यक दूसर ग्रन्थ[1] उठावा। कहि करनी चाहत अपनावा॥
कहत भयो ईश्वर की बानी। सुनि पाईतेहि निशिसुखदानी॥
कह्यो ईश सेवक ढिग जाई। बात कहहु दाऊद सुनाई॥
दो०—अवशि बनावहु एक घर, कह ईश्वर मम हेत।
दुख पावहु बहु दिवस बसि, छाइ बितानन[2] खेत॥७७॥
इसराइलसुत मिश्रनिवासी। जबसे लायों तिनहिं निकासी॥
तब से घर बिच नहिं रहिपावा। नाकहुँ अपनोभवन बनावा※[3]॥
†स्वामि कहत अब नहिं संदेहा। नरसमान ईश्वर को गेहा॥
नरसमान सब कछु इतिहासा। करत सोउ है नर की आसा॥
हुइ न सकत ईश्वर केहु भाँती। ना ईश्वरकृत पुस्तक भाती॥
तुम्हहिं लाज लागत है नाहीं। या विधि ईश्वर मानत ताहीं॥

तौरेत राजाओं की पुस्तक

※पुनि दूसर पुस्तक लै हाथा। कहन लग्यो सो अपनो गाथा[4]॥
यूरूसलेम नबूसर आवा। तेहिं परमेश्वर भवन जलावा॥

---

१. समूएल की दूसरी पुस्तक। २. तम्बू आदि डेरा। ३. एसमूएल की दूसरी पुस्तक प० ७ आ० ४ से ६ तक। † स० ५५। ४. बाबुल के राजा नबखुदनज़र के राज्य के उन्नीसवें वर्ष के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था।

दो०–भवन जिते तहँ पर रहे, दीन्हें सकल जलाय ।
पुनि सेनापति सैन्य लै, बचे सो दिये ढहाय[१] *॥७८॥

छं०–†कह स्वामि तुम्हरे ईश पै पुनि बिपति आई है नई ।
दुख सहे बहुतक दिन बिताये तानि तम्बू सुखमई ॥
दाऊद सों जब बिनय कीन्हीं तेहि हवेली निर्मई ॥
अब पुनि नबूसर जारि डारी शक्ति जो थी छिन गई ॥४॥

बिपति समयकोउकामन आवे । समयपाय तेहि कोउ सतावे ॥
मिश्र केरि शक्ती कहँ खोई ! मारे बालबृद्ध सब कोई ॥
किमि चुप बैठि रहे मन मारे । रहे कौन को तकत सहारे ॥
कस तुम्हार ईश्वर जग आई । रहित प्रतिष्ठा निन्दा पाई ॥
ऐसहि बहुतक लिखी कहानी । बीच बाइबिल में मनमानी ॥
पुनि जबूर तेहि लीन्ह उठाई । भाग दूसरो लैं सुखदाई ॥
कहन लगा सुनिये ऋषिराई । ईश्वर की जो ईश्वरताई ॥

जबूर दूसरा भाग काल के समाचार की १ पुस्तक

*इसरायल ढिग मौत पठाई । कह्यो तुरत मारहु तुम धाई ॥
सत्तर सहस मरे यक बारा । कियोमौतनेसबन सँहारा[२] *॥

दो०–†स्वामि कहत केहि भाँति सों, ईश पुकारो जाय ।
है प्रसन्न रक्षा करत, क्रोध से देत नशाय ॥७९॥

---

१. तौ० समूएल प० २५ आ० ८ से १० तक । † स० ५६ ।

२. काल सुसमाचार दूसरी पुस्तक प० २१ आ १४ । † स० ५७

कवि ने वचन कहे अति साँचे । जो तुम्हार ईश्वर मन राँचे ॥
जिमि कोउ नर त्त्रणहर्षित होई । त्त्रणमहँ क्रोधवंत हो सोई ॥
अस मानुष भयदायक होई । घटत ईश तुम्हरे महँ सोई ॥
ताते त्यागि सकल जंजाला । देखहु वैदिकधर्म विशाला ॥

एयूब की पुस्तक

*पुनि बोला झुँझलाय इसाई । और सुनहु दूसर प्रभुताई ॥
यक दिन ईश्वर पुत्र घनेरे । आइ गये हैं ईश्वर नेरे ॥
तहँ शैतानहु आइ विराजा । महा प्रवल निज मन का राजा ॥
पूछेहु तब शैतान बोलाई । कहहु कहाँ ते आये भाई ॥
दो०–तुम जाँच्यो एयूब को, करि पूरन विश्वास ।
डरत सदा वह पापते, जात न ताके पास ॥ ८० ॥
निज सचाइ अपने महँ राखत । तेहि मारन हित तुम किमि भाषत ॥
कह शैतान हाथ फैलाई । परखहु तुम ताकी प्रभुताई ॥
ईश्वर कहत सुनहु चितलाई । प्राण बचावहु ताके भाई ॥
तब शैतान चल्यो तेहि ओरा । बसत एयूब रह्यो जेहि ठौरा ॥
फोड़ा दिय उपजाइ शरीरा । गये प्रान सहि सका न पीरा[1] *॥
†स्वामि कहत सामर्थ्य विलोकहु । जो है इनको ईश्वर देखहु ॥
जो एयूब निज भक्त बतावा । रक्षा ताकी नहिं करि पावा ॥
ना कोइ दूत जो होत सहाई । भा शैतान सबन दुखदाई ॥
दो०–होत ईश सर्वज्ञ जो, तौ जानत सब बात ।
पूछत किमि शैतानसों, कस एयूब है तात ॥ ८१ ॥

१.अबूर एयूब पर्व २ आ० १ से ७ तक । † स० ४८ ।

उपदेश की पुस्तक

*होनलग्यो जबहीं नत मस्तक[1]। तबहिं लई उपदेश की पुस्तक॥
कह ईश्वर बुद्धी अरु ज्ञाना। दोउ देखे हम करिके ध्याना॥
है झंझट मन के यह दोऊ। बुधि सों शोक लहत है सोऊ॥
ज्ञान बढ़े जग दुख बढ़ि जाई। असनहोइयहकह ऋषिराई[2]*॥
†इन दोहुन को एकहि भावा। शब्द विभिन्न जगत दर्शावा॥
बुधि में शोक ज्ञान दुखमानहिं। कहहु कौन तेहि ईश्वरजानहिं॥
बात असंगत जहँ पर होई। नाहिं ईशकृत पोथी सोई॥
अब आगे कछु और सुनावहु। लै इंजील ताहि समुझावहु॥

मत्ती रचित इंजील

दो०—*तब ईशू के जन्म को, हाल कहत यहि भाँति।
जेहि अपनायो सकल दिशि, बहुतक मानव जाति ८२

यक बाला सुन्दर अति प्यारी। मरियम नाम महा सुकुमारी॥
[3]मँगिनी यूसुफ संग बिचारी। भई सकल गुन रूप निहारी॥
संग भयो नहिं गर्भ देखानो। तब परमेश्वर गर्भ प्रमानो॥
मरियम चिन्ता करि अकुलानी। सपने दूत कही यक बानी॥
दर्शन दै इमि कह्यो सुनाई। यूसुफ हिय यह बात जनाई॥
तुम दाऊदसुवन बलवाना। होय न मरियम से अपमाना॥
डरहु न तेहि घर लावहु वेगी। शुभ अवसरताकत जेहिनेगी॥

---

१. नीचा सिर। प० १ आ० १६ से १८। २. ज़बूर उप० प० १ आ० १६ से १८। † स० ४६। ३. जिस प्रकार इस देश में डोले का रिवाज है वैसे ही ईसाइयों के यहाँ मगनी का रिवाज है। लड़की पति के पास रहा करती और सब व्यवहारों से परिचित होने पर दोनों ओर की स्वीकृति पर विवाह होता है।

गर्भ पवित्र आत्मा केरा । रक्षा हेतु तुमहिं है हेरा *[1] ॥
दो०—या विधि ईसा जन्म की, कथापरम विख्यात ।
सुख दीन्हों बतराइ पथ, मुक्तिमार्ग सुखदात ॥८३॥
†कहतस्वामिबुधिवरनहिंमानहिं । प्रगटप्रमानन तामहँ लावहिं ॥
यह सब मूर्खजनन की वातैं । करत रहत नितअपनीघातैं ॥
नियमविरुद्ध न ईश्वर करई । पुनि नर कौन भाँतिउरधरई ॥
याविधिबहुत कुमारिन वालक । होतजगतमहँकुलयशघालक ॥
अस महाभारत माहिं कहानी । करन केरि उत्पत्ति बखानी ॥
केहु सँग भई होइ कहुँ प्रीती । गर्भ रह्यो तब सोची नीती ॥
ईश्वरसुत कहि स्वप्न सुनावा । गर्भ माहिं ईश्वर को भावा ॥
नहिं प्रमान कछु सृष्टिविरुद्धा । तामहँकरहु नाहिं कोउ श्रद्धा ॥
दो०—*लीन्हपरीक्षाजौनविधि, परमेश्वर तेहिकाल ।
सुनहुस्वामिहैंजगविदित, ईशकार्य विकराल ॥८४॥
यक दिन ईशुहि लै तहँ गयेऊ । कठिन घोर उपवन जहँरहेऊ ॥
तहँ शैतानहिं लीन्ह बोलाई । कह्यो परीक्षा करिये भाई ॥
चालिस दिवस राति उपवासा । करवायो परखन की आसा ॥
भूख जासु उर जबहिं सताई । तब शैतान कहत गोहराई ॥
जो तुम ईश्वर के सुत होहू । ता पाथर रोटी करि लेहू *[2] ॥
†याते बिदित भई यह बाता । नहिं सर्वज्ञ तुम्हार विधाता ॥

---

१. इंजील प० १ आ० १८, २० । † स० ६० ।
२. इंजील प० ४ आ० १, ३ । † स० ६१ ।

जो सर्वज्ञ तो किमि नहिं जाना। रह्यो मनुषवत सो अज्ञाना ॥
परख हेत शैतान बोलाई। निज सुत की पारख करवाई ॥
पाथर की रोटी न बनाई। ना तेहि निज प्रभुता देखराई ॥

दो०—बुद्धि असंगत वार्ता, लिखि मारी बेकार।
नामबाइबिलतेहिधर्‌यो, कीन्ह्योअधिकप्रचार ॥८५॥

यह सब झूठ निरर्थ कहानी। लिखिडारीबहुतक मनमानी ॥

मत्ती रचित इंजील

*और सुनहु ईश्वरसुत करनी। जो इंजील माहिं है बरनी ॥
जाल बनाइ फँसावन ठानी। तिमिईसा यहबोल्यो [1]बानी*[2]।
† अबुधसकलतिन लीन्हफँसाई। करिके बहुतेरी चतुराई ॥
याते करि विचार मन माहीं। करहु उपाय फँसै कोउनाहीं ॥
*सुनहु स्वामि ईसाउपकारा। देश विदेशन कियो प्रचारा ॥
जो कोउ रोगी इन ढिग आवे। रोग दूरि करि तेहिअपनावे ॥
मृगी आदि अधंग के रोगा। फँस्यो जौन है प्रेत प्रयोगा ॥
दुःख दूरि सबके करि दीन्हे। फिरतसबनकोसँगमें लीन्हे*[3] ॥

सो०—*जो नर दीन महान, स्वर्गराज्य तिनको लखत।
टलि न सकतयक आन, भूमिगगनजौलगरहत*[4] ॥ ६ ॥

*अरु प्रारथना करहु बहोरी। रोटी देहु दिवस की मोरी[5] ॥
याते धरहु न धन को जोरी। कहईसा निजहितबरजोरी* ॥
†स्वामि कहत वैसेहि यह लीला। करत पोपगन जैसी लीला ॥

---

१. आओ तुमको मनुष्यों के मछुए बनाऊँगा। २. इं० मत्ती प० ४ आ० १ से ३। †स० ६२। ३. इं० म० प० ४ आ० २३ से २५। ४. इं० म०प०। आ० २, ४, १८। ५. इं० म० प० ६ आ० १७-१९। स० ६३—६५।

जिमि जग भूतचाल भरमावै । धन ले सारो तेहि अपनावै ॥
ता बिधि तुम्हरो ईश लखाई । ईशपुत्र जा कहँ ठहराई ॥
अब न फँसहि भ्रम तुम्हरे कोऊ । जानि गये तुम्हरोभ्रम सोऊ ॥
और कहो जो स्वर्गकहानी । दीनन राज्य महा सुखदानी ॥
सो वह एक विराजत राजा ।अथवासबकोउसहितसमाजा॥
दो०-दीन कबहुँ नहिं होवई, अधिकारी केहु राज ।
जिमि माँगे कबहूँ मिलत, चाहत जौन स्वराज ॥८६॥
यह सब लोभ प्रलोभन केरा । बात बनाइ कही सब हेरी ॥
जानहु तेहि क्षण सब बनबासी । महा मूर्ख चित रहे उदासी ॥
इन महँ एक गयो बनि राजा । जोरि लियोतेहिकछुकसमाजा ॥
या बिधि औरहु बहुत कहानी । लिखी बाइबिल में मनमानी ॥
याते छोड़ि सकल जंजाला । गहहु धर्म जो महा विशाला ॥
कहत एक ईश्वर की बानी । वचन कहे जो जग हित जानी ॥
*जोनिशिवासरममहितलागी । हे प्रभु हे प्रभु भाखत रागी ॥
स्वर्गराज्य वह धसन न पावे । नहिं ईश्वरताकहँ अपनावे'*॥
दो०-†स्वामि कह्यो यह लखि परत, रहे दीन तेहि काल ।
बनमानुष की भाँति सब, ओढ़तनिसिदिनखाल ॥८७॥
जो बनि ईश्वर रोटी माँगत । ताहि कहवईश्वरकस भावत ॥
किमि धन जोरत आज इसाई । मानत ईश्वरबचन न भाई ॥
ईसाबचन सत्य जो मानत । विषप[2] पादरी जोयहँ आवत ॥

१. इं० म० प० ७ आ० २१ † स० ६६ । २. पादरियों की प्रबन्धकारिणी सभा ।

तौ न करत ईसाप्रभुताई । मानत जा विधि आज इसाई ॥
ईश कबहुँ अस बचन न कहई । निशिदिन कर्मतुम्हारे लहई ॥
समय पाय कहिहैं बहुतेरे । जो कछु कहैं आइके नेरे ॥
†तब कह हम जानत हैं नाहीं । बिलग कुकर्मी रहहु सदाहीं[1]* ॥
दो० †–या बिधि निशिवासर कहत, सदा जंगलिन भाँति ।
देत प्रलोभन सकल विधि, बहकावें सब जाति ॥८८॥
*एक कहत सुनिये ऋषिराई । ईसू की सुनि लेहु बड़ाई ॥
एक समय यक कोढ़ी आवा । ईसा सम्मुख बचन सुनावा ॥
शुद्धकरहु प्रभुमोहिंअपनावहु । कृपा आपनी को दर्शावहु ॥
कर गोह निज इच्छा दर्शाई । होहु शुद्ध यह कह्यो सुनाई ॥
कहतहिं तुरत भयो सो चंगा । गयो कोढ़ पावन भो अंगा*[2] ॥
*अरु जो भूतग्रस्त नर नारी । रहे जो कबरस्थान मझारी ॥
निकरि तहाँ से आइ पुकारा । ईशपुत्र मम सुनहु विचारा ॥
जो तुमहमहिं निकारहुस्वामी । तौ ममविनयसुनहु अनुगामी ॥
दो०–सुअरन पंक्ती बीच मोहिं, बैठन स्थल देहु ।
जाहु तुरत ईसा कह्यो, जहाँ तुम्हारो नेहु ॥८६॥
तब सब सुअरन बिच पगुधारी । चले झुंड बनिसिन्धु करारी ॥
गिरि समुद्र सब स्वर्ग सिधारे । रहे तहाँ जो सुअर बिचारे *[3] ॥
†कह ऋषि कही जौन तुम बातैं । अबुध फँसावन की है घातैं ॥

---

१. इं० म० प० ७ आ० २२,२३ । † ६७ । २. इं० म० प० ८ आ० २, ३ । ३. इं० म० प० ८ आ० २८ से ३२ तक । † स० ६८–६६ ।

सृष्टिविरुद्ध असत्य कहानी । मानत जो ईसाइ मनमानी ॥
याही भाँति पुरानन माहीं । नाना कथा[1] लिखी तेहि ठाहीं ॥
तबतुमउन्हहिंअसतकिमिकहहू। अपनी सत्य बतावत रहहू ॥
तनि विचार युत सोचहु भाई । मुर्दा निकसत कबर कदाई ॥
झूठ असङ्गत सबन सुनाई । मूरखता जग में फैलाई ॥

दो०—*बहुरि कहत अच्छा कियो, पक्षाघाती एक ।
उठि न सकत जो काहु बिधि, यतनहुकियेअनेक॥९०॥

ताके ईसा पाप निवारे । लखि विश्वासभयेतेहि प्यारे ॥
दे संतोष कहत इमि भयेऊ । अब नहिं पाप तुम्हारे रहेऊ ॥
धर्मिन को कछु नाहिं प्रयोजन । पापी रहत सदा हैं मो मन ॥
तिनहिं बोलावनके हित आयो । जो पछिताव करहिंमनभायो[2] *
†कहतस्वामियहवैसिहिबाता । जैसिहि पूर्व कही तुम ताता ॥
जो अज्ञानि अंध मति होहीं । सोमानहिं तुम्हारि मतिकोहीं ॥
न्यायाधीश ईश जगकर्ता । जगपालक न्यायी दुखहर्ता ॥

---

१. शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यपादि की बातें जो अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दीं । बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा-टुकड़ा कर जानवरों और मछलियों को खिला दिया । और फिर शुक्राचार्य ने जिला दिया । पश्चात् कच को मारकर शुक्राचार्य को खिला दिया और पेट से ज़िन्दा निकाला । आप मर गया और उसको कच ने ज़िन्दा किया । इसी प्रकार कश्यप ने तक्षक के जलाये हुए वृक्षादि और मनुष्यादि सब ज़िन्दा किये । धन्वन्तरि ने सैकड़ों मुर्दे जिलाये ।(गप्पों में भी ईसाई पुराणों से न जीत सकेंगे) इ० म०[illegible]० ९ आ० २,१३ । † स० ७० ।

बिना कर्म भोगे जगमाहीं। पाप छुटत काहू को नाहीं॥
*तबपुनिकहतसुनहुऋषिराई। ईसा की जग बहुत बड़ाई॥

दो०—शिष्य बोलाये एक दिन, श्री ईसू महराज।
द्वादश शिष्य सुयोगवर, आये सहित समाज॥६१॥

कह्यो बनहु अधिकारी जाई। भूत अशुद्ध जौन जगमाईं॥
रोगन ते सब काहु बचावहु। अरु व्याधिनको जाइ नशावहु॥
काम आपनो यह हिय धरहू। खङ्ग चलै सो कारज करहू॥
सुतपितुमातुबिलगजेहिभाँती। सास बहू अरु बाबा नाती॥
सोइ उपाय करहु तुम जाई। जासों जावै मेल नसाई[1]*॥
†कह्यो स्वामियहनीति न भाई। कही जो तुम ईश्वरप्रभुताई॥
सोखा और नाउतन केरी। रीति सिखाइ दीन्ह बहुतेरी॥
फूट बढ़ावन हित उपदेशा। कीन्ह होय जेहि भाँति कलेशा॥

दो०—जाके चित कर्तव्य अस, फूट करावत नित्त।
सो ईश्वर केहि भाँतिसों, आवहिं बुधवर चित्त॥६२॥
श्रेष्ठ पुरुष जाके विषे, करत न अस व्यवहार।
जस तुम्हार ईश्वर करत, केहु दुख काहु पियार॥६३॥

*कहत बहुरि ईसाप्रभुताई। कछु रोटिन सों सैन्य जेंवाई॥
पूछत ईशु कहहु कै रोटी। उतर दीन्ह तेहिं सातहैं रोटी॥
अरुकछुछोटि मछलियाँपासा। लै आयों भोजन की आसा॥

---

१. इं० म० प० १० आ० १३, ३४ से ३६ तक। † स० ७१।

लाइ धरीं ईसा ढिग आई। ईसा तुरतहि सैन्य बोलाई॥
शिष्यसमूह सकल चलि आये। तिन रोटिन सों सकल जेंवाये॥
चारि सहसमानुष तहँ रहेऊ। बालक नारि न संख्या करेऊ॥
सात टोकरा रोटिन टूका। बचिगे रह्यो न कोई भूका[1]*॥
† स्वामिकहत यह गप्प निराली। इन्द्रजाल से तनिक न खाली॥

दो०—उनरोटिन में कौनविधि, आय मिलीं अधिकाय।
यदि ईसा सामर्थ सों, दीन्हीं तिनहिं बढ़ाय॥९४॥
तौ ईसा केहि भाँति सों, भूखसमय अकुलाय।
गूलर के फल खाइ के, भटक्यो जंगल जाय॥९५॥

काहेन मोहन भोग मिठाई। तेहि क्षण लीन्हीं तुरत मँगाई॥
बाल खेल सम कहत कहानी। जिमि बहु साधु कहत मनमानी॥
भोले पुरुषन लेत फँसाई। सोई तुम हू रीति चलाई॥
*एक कहत सुनिये ऋषिराई। जस कोइ कर्म करै जग आई॥
फल भोगै ताके अनुसारा। देवै ईश जो सिर्जनहारा[2]*॥
† स्वामिकहत उपदेशनिरन्तर। भरत ईसाइ सकल उर अन्तर॥
सो सब व्यर्थ होत आडम्बर। मूर्खन कहेत रच्यो आडम्बर॥
अब यह मानत नाहिं इसाई। कर्म अनुकूल मिलत फल भाई॥

दो०—*बहुरि कहत ऋषिराज सों, सुनहु हमारी बात।
यक विश्वासहि जगत में, कर्तव्य रूप देखात॥९६॥

कहत ईश सब सों यहि भाँती। मानत याहि इसाई जाती॥

---

१. इं० म० प० १५ आ० ३४ से ३९ तक। † स० ७२।
२. इं० म० प० १६ आ० २७ † स० ७३।

हे अविश्वासी और हठीले। सुनहु सकल तुम हो गर्वीले ॥
जो तनिकौ राखत विश्वासा। राई भरि जो होती आसा ॥
तौ पहाड़ सों जो कहि देते। सुनतहि सो आगे चलि देते ॥[१]
नहिं असाध्य तेहि कैसेउ कामा। जो कर तेहि न सोनिशियामा*॥
†स्वामि कहत सच बात तुम्हारी। मानहिं हम तुम्हारि अनुहारी॥
तौ यह कहहु जो यहु उपदेसा। करत इसाई देत भरोसा ॥
पाप क्षमा अपने करवावहु। तौ तुम सहजहि मुक्ती पावहु ॥
झूठ होहिं यह सब विश्वासा। पाप छुटन की रहत न आसा ॥

दो०—ईसा में सामर्थ जो, पाप छोड़ावन होत।
तौ किमि भरमत शिष्य सब, ज्ञान न होत उदोत ॥९७॥

छं०—करि सक न काहू को कबहुँ निष्पाप पावन सुखमना।
ताते लखहु सब भाँति सों मूर्खन विषे ईश्वर बना ॥
तेहि हृदय पावन स्वतः नहिं है अज्ञताई में सना।
निज "इष्ट" की गति को विचारहु जो कुमारी सों जना ॥५॥

ताते हिये विचारहु नीती। करहु कोउ बाइबिल परतीती॥
नहिं ईश्वरकृत केहु विधि पोथी। रही सदा वह कोरी थोथी ॥
होत न कोउ तरु जाके देसा। आदर करत अरण्ड बिसेसा ॥
तैसेहि तेहि अवसर तेहि देसा। इष्ट बने ईश्वर तहँ ईसा ॥
चतुराई करि सबन रिझावा। मनमाना जो कछु समुझावा ॥
अब विद्या को प्रकट्यो भानू। तिमिर अविद्या सकल मिटानू ॥

---

१. इं० म० प० १७ आ० १७, २० । † स० ७४ ।

यहि अवसर ईसा की बानी। है सब भाँतिन लोक अमानी॥
*कहत बहुरि है यह नहिं बाता। ईशवचन सब भाँति सुहाता॥
दो०—कह ईश्वर फेरहु नहीं, जो मन को विश्वास[1]।
स्वर्गराज्य में जाइहौ, करके मेरी आस *॥६८॥
*और सुनहु मेरी सतबानी। जो धनवान जगत अभिमानी॥
स्वर्ग राज्य ते पहुँचत नाहीं। करतयतनकेतिकमनचाहीं *[2]॥
*अरु ईशू यहि भाँति पुकारी। कहत सुनहु सारे नरनारी॥
जगत माहिं जब नर सुत आई। सिंहासन बैठहिं सुखदाई॥
तो तुम हू जो करि अनुरागा। मेरे हेत मोह सब त्यागा॥
सो बैठहु द्वादश सिंहासन। द्वादश कुलन करहु तुमशासन॥
न्याय करहु नित न्यायी बनिके। कर्तव इसराईलन गुनिके॥
करहु दान जो कछु ममहेता। पावहु सहस गुनो है जेता *[3]॥
दो०—†स्वामि कहत यह बालपन, बालबुद्धि की भाँति।
समुझायो विश्वास फल, जो बालकनसुहाति॥६६॥
अरु यह समुझि परत है बाता। ईसा महा दरिद्र लखाता॥
धनिक प्रतिष्ठा करत न होहीं। लिखिमारेउअसमनकरिकोहीं॥
भले बुरे दोहुन महँ होहीं। जग धनवान दरिद्री जोहीं॥
ईशराज्य यक स्थल माहीं। मानत ईसा रह्यो सदाहीं॥
तब ईश्वर सर्वज्ञ न होई। अरु सर्वत्र लखै नहिं कोई॥
एकदेशि कस ईश्वर मानहु। परमेश्वर सर्वत्र प्रमानहु॥

---

१. इं० म० प० १८ आ० ३। २. इं० म० प० १९ आ० २३,२४। ३. इं० म० प० १९ आ० २८,२९। † स० ७५ से ७७।

रंक जाहिं सब स्वर्ग सिधाई। धनी न पहुँचहिं केहु विधिभाई॥
जो धनवान धर्महित करहीं। तौ न कोऊ जग में दुखभरहीं॥
दो०—लोभ देत केहि भाँति सों, बिलग न कोऊ होय।
बिलग भये ते खुलत है, जाल रच्यो है जोय ॥१००॥
जेहि निज गुरुहिं लोभ सों मार्यो[1]। तिन के न मन महँ पाप विचार्यो॥
ताहि सिंहासन दै निज पासा। बैठावत सब देत सुपासा॥
देखहु इनके न्याय कि रीती। मनमानी जो चाहत नीती॥
केहु अपराध क्षमा सब करहीं। बिन अपराध दंड केहु धरहीं॥
जस गोरा कोउ कर अपराधू। छोड़ि देत लखिके तेहि साधू[2]॥
ऐसेहि इनको ईश्वर न्याई। करत रहत अन्याय सदाई॥
यक अपराध करै दिन राती। धर्म करत यक नाना भाँती॥
राति क़यामत[3] की जब आवे। तब परमेश्वर न्याय चुकावे॥
दो०—एक नरक ही में रहत, एक स्वर्ग में वास।
यक आशा को नित करत, चहत स्वर्ग की आस ॥१०१॥
कहहु कौन विधि ईश्वर न्यायी। भाव जासु सब विधि अन्यायी॥
जेहि पुस्तक महँ अस व्यवहारा। सो न काहु विधि ईश उचारा॥
याते यह बाइबिल केहु भाँती। ईश्वरकृत बुधि में नहिं आती॥
ईशपुत्र ईसा नहिं होई। क्वाँरी गर्भ जन्यो है जोई॥
*एक कहत ईसा की करनी। सुनहु जौन बाइबिल बिच बरनी॥

१. तीस रुपये के लोभ से अपने गुरु को पकड़कर मरवाया।
२. बेअपराधी। ३. इनके सिद्धान्त से प्रलयकाल।

प्रात जात घर वहम[1] सदाहीं। यक दिन भूख लगी मग माहीं॥
गूलरतरु तब पर्यो लखाई। गयो तासु ढिग में सो धाई॥
कोउफलमिल्योनतेहितरुमाहीं। केवल पत्रहिं पत्र लखाहीं॥

दो०–शाप दियो तेहि वृक्ष को, लगहिं न फल केहु काल।
सो तरु सूख्यो तुरतही, देखि क्रोध विकराल[2]* ॥१०२॥

सो०–†कहत स्वामि यह बात, झूठ तुम्हारी सकल विधि।
प्रभु ईसा सुखदात, शान्त रहत सब कालमें ॥१०॥

छं०–ऋतुज्ञानरहित लखात ईसा क्रोध तेहि उर बसि रह्यो।
जड़ वृक्ष को अपराध कौन जो शाप ईसा ने दयो॥
जग शाप से नहिं वृक्ष सूखत बात यह झूठी महाँ।
कोउ यत्न करि नाशन चहै नशि जात तरुसोई तहाँ॥६॥

तामहँ कछु आश्चर्य न भाई। यत्न केर फल होत सदाई॥
*कहयकतुरतहोहिअँधियारा। केवल चाँद केर उजियारा॥
तेहि पीछे न रहै उजियारा। सूर्य माहिं होवै अँधियारा॥
चन्द्र प्रकाश देइ तेहि काला। नखतगिरहिंजगहोत व्यहाला॥
गगन सैन्य सबही डिगि जाई। और सुनहु ईसाप्रभुताई[3]*॥
*ईसा कहत टरै आकाशा। भूमि टरै अरु जाइ प्रकाशा॥
पर मम बात टरै कबहूँ ना। करहुँ सोइ जोमन में ठाना॥[4]*
*बाईं ढिग मम शापित जो जन। कहहुजायतिनसोंममबयनन॥

---

१. ईसा का नाम। २. इं० म० प० २१ आ० १८, १६। † स० ७८।
३. इं० म० प० २४ आ० २६। ४. इं० म० प० २४ आ० ३५।

अग्नि बीच जो जाहिं सिधाई। जो शैतान हेत सुलगाई* ॥
दो०—†स्वामि कहत तुम्हरी कथा, विद्याहीन लखाइ।
बुधिवरफँसतनकोउजन, कहहुजितोसमुझाइ॥१०३॥
ईसा केरि धन्य प्रभुताई। नखतसकलतिनदीन्हगिराई॥
ईसा पढ़त कछू यदि विद्या। तौ न भुलावत सबन अविद्या ॥
उपज्यो बढ़ईकुल के माहीं। करत रह्यो कर्तव्य सदाहीं ॥
जग आकाश शून्य दर्शाई। सोकेहिभाँतिकहहुडिगिजाई॥
अरु निजमुख सों आपनि करनी। अपने मुखसों है जो बरनी ॥
देखहु पक्षपात की बाता। शिष्यन देवै स्वर्ग सुहाता ॥
किमि शैतानहिं प्रथम बनावा। जोतिनकेहितअग्निजलावा ॥
अरुपुनि नरक बनायोतिन हित। करिनसक्योनाहींकछुअनहित
दो०—जब शैतानहु नहिं भयो, ईश्वर से भयभीत।
अरु ईश्वर ताको कछू, करि नहिं सक्योसभीत॥१०४॥

*एक इसाइ कहत यहि भाँती। सुनहुकहहुँजोसमयसुहाती॥
शिष्य[2] यहूदी याजक तीरा। जाइकह्यो यकबचनगँभीरा ॥
ईशुहि हम देहैं पकराई। देहु कहा यह कहहु सुनाई ॥
मुद्रा तीस सु निश्चित भयऊ। पकरन हेत तासु केठयऊ*[3] ॥
†स्वामि कहत यह है करतूती। देखो सब तुम्हार मजबूती ॥
जबनिज शिष्यहि करेउ नपावन। होत कौन विधिदूसरपावन ॥

१. इं० म० प० २५ आ० ४१ । † स० ७६–८१ । २. इसकरियोती
३. इं० म० प० २६ आ० १४, १५ । † स० ८२ से ८६ तक।

और सुनहु यक दिवस कहानी । रोटी माँगि खात अभिमानी ॥
और सबन को रक्त पियावत । नियमनयासबको बतरावत ॥
या विधि बहुतक झूँठ कहानी । लिखीसकलबिधिसों मनमानी ॥
दो०—जामें है सामर्थ नहिं, करै कौन विश्वास ।
बात असम्भव जानिके, रहत न काहुइ आस ॥ १०५ ॥

*सुनहु स्वामि यकदिनकीबाता । ठाढ़ भयो ईशू सुखदाता ॥
तब अध्यक्ष तहाँ चलि आवा । पूछत ईसा सों मनभावा ॥
कहा यहूदिन के तुम राजा । उतरदीन्हसबकहत समाजा ॥
अरु तुमहूँ भाषत यहि भाँती । केहिविधिकरत द्वेषसबजाती ॥
पुनि प्रधान याजकन बोलावा । अरु प्राचीनजनन गोहरावा ॥
दोषी ईसा सबन बतायो । तेहिउत्तरनहिंकछु बतरायो ॥
तब पिलात[1] ईसा सन कहेऊ । सुनत न कछुमौनी ह्वै रहेऊ ॥
विरुद्ध साक्षि सब देत तुम्हारे । का यह सबहैं शत्रु तिहारे ॥
दो०—तबहुँ न उत्तर दीन कछु, संशय करत प्रधान ।
पुनिपिलातसब सों कहत, करहु व्यवस्थाजान ॥ १०६ ॥

सबन व्यवस्था दीन्ह सुनाई । क्रूश[2] चढ़ावहु इनको जाई ॥
तब अध्यक्ष भवन लै जाई । रक्षाहित सब सैन्य बिठाई ॥
वस्त्र सकल लीन्हें उतराई । बागा[3] लाल दीन्ह पहिराई ॥
कटक मुकुट शीश पहिराई । नर्कट[4] दीन्हों हाथ थँभाई ॥

---

१. एक पुरुष का नाम । २. सूली । ३. चोग़ा की शक्ल में एक वस्त्र । ४. कोई हथियार का नाम ।

करि प्रणाम यह कहत सुनाई । बने यहूदिन नृप कस भाई ॥
अरु थूक्यो सबहिन बहु भाँती । रहीं तहाँ पर जेतिक जाती ॥
लै नर्कट तेहि सिर पर मारा । अरु अपमानित शब्द उचारा ॥
करि बहु हँसी तहाँ लै गयऊ । जीवनहरन क्रूश जहँ ठयऊ ॥
दो०—बागा लाल उतारिकै, मसीवस्त्र पहिराय ।
क्रूश चढ़ावन हेत जो, बाना दीन्ह बनाय ॥१०७॥
पुनि सिरका महँ पित्त मिलाई । कहा पियहु याकहँ मनलाई ॥
तेहि न पियो बरजोरिहु कीन्हें । मुख अरुनैन मूँदि तेहिलीन्हें ॥
अरु दो डाकुन हू को साथा । क्रूश चढ़ायो गहिके हाथा ॥
शूली तीनहु दीन्ह चढ़ाई । दोषपत्र दिय शीश बँधाई ॥
जो कोउ आवत जात निहारै । थूकै अरु कटु वचन उचारै ॥
कहत बहुत विश्वास की बानी । समुझायहु इन जो मनमानी ॥
जानि परहि अब जब बचि जाहीं । जो ईश्वरसुत कह्यो सराहीं ॥
पहर तीसरे सारे देशा । सहि न सक्यो सो क्रूशक्लेशा ॥
दो०—अंधकारमय जगत सब, सुनहु[१] भयो तेहि काल ।
तेहि लगा ईसा ने कहे, शब्द महा विकराल ॥१०८॥
सुनेहु सकल जन ईसा बानी । सहित दीनता दुख में सानी ॥
दौड़ि एक सिरका लै आवा । तामहँ लै इसपंज मिलावा ॥
नल पर धारि पियावन लागा । पियो न तेहि निज प्राणहिं त्यागा ॥
तजत प्राण पुनि कह्यो पुकारी । हे ईश्वर करिये रखवारी[२] ॥

१. "एली एली लामा सवक्तनी" अर्थ—हे मेरे ईश्वर तूने क्यों मुझे त्यागा है । २. इं० म० प० २७ आ० ११ से १४ और २२ से ३१ और ३३,३४,३७ से ४० तक ।

†कह ऋषि करी दुष्टता भारी । दुष्टन पाछिल बैर निकारी ॥
पर ईसा कोहू कछु दोषू । कियो अकारन थो बहु रोषू ॥
ईश्वर काहू बाप न होई । ना वह पुत्र जनत है कोई ॥
जगव्यवहार ईश नहिं आवहिं । सालेससुरन पितु सुत भावहिं॥
दो०—जब पूछेउ अध्यक्ष ने, सत्य बतावत बात ।
तौ काहे यहि भाँति सों, सूली पावत भ्रात ॥ १०६ ॥
यदि पूरब की सकल कहानी । कही रही जो कोउ मनमानी ॥
यदि ईसा सतवादी होता । तौयाविधिकिमि जीवनखोता॥
बात असम्भव करि देखराता । क्रूशउतरिसब शिष्य बनाता ॥
होत कर्म यदि कछु तन माहीं । प्राणतजतकिमिदुःखलखाहीं॥
याते सिद्ध भई यह बाता । केतिकचतुरहोय कोउताता ॥
चतुराई करि जगत भुलावे । अन्त समय सबही खुलिजावे॥
सत्य एक सत्यहि रहि जाई । झूठसकल विधि जातबिलाई ॥
औरहु जानि परी यक बाता । बनबासिन महँ पुरुषसुहाता ॥
ना वह ईश्वर सुत केहु भाँती । ईसा कछु न रह्यो करामाती ॥
दो०—प्राण गये केहि भाँति सों, दो डाकुन के संग ।
फल भोग्यो संसार में, कीन्ह्यो जौन कुसंग ॥ ११० ॥
*एक कहत सुनिये प्रभुताई । कर्तब ईसा परम जनाई ॥
एक बवंडर तेहि क्षण आवा । ईश्वरदूत तबहिं चलि आवा ॥
कबरद्वार से शिला हटाई । बैठि गयो तेहि क्षण हर्षाई ॥
अरु यह कह्यो कि वह है नाहीं । तबहिं जीउठ्योहृदयसराहीं ॥

† स० ८७ ।

शिष्य सँदेह गयो तेहि काला। ज्योंही ऐसो[1] सुन्यो हवाला॥
कहहु सबन सों भय तजि देहीं। अरु गालील सकल चलि देहीं॥
तहँ पर मोहिं सब कोउ अवलोकहि। रूप हमार सकल गुन देखहि॥
ऐसहि सबन कीन्ह हर्षाई। तहँ पर गये शिष्य समुदाई॥
दो०—तब ईशू यहि भाँति सों, सबन कहेउ समुझाय।
तनि संदेह न लावहूँ, मुक्त भयो मैं भाय॥१११॥
अब कछु मोहिं दुर्लभ नहीं, करि सकिहौं सब काज।
प्रलयकाल तक सँग रहौं, बनि सबके शिरताज[2]॥११२॥
†स्वामि कहत नहिं मानन योगू। है सब भाँतिन बात अयोगू॥
ईश्वर के कोउ दूत न होई। ना कहुँ आवत जात लखोई॥
बात असम्भव कोऊ न मानहिं। न काहू के बुधिविच आनहिं॥
तीन दिवस लौं सड़ि नहिं गयेऊ। कबर माहिं जो ईसा रहेऊ॥
पुनि निज मुखसों करत बड़ाई। यामहँ कछु न होत पँडिताई॥

मार्क रचित इंजील

❀मार्क कहत का वढ़ई नाहीं। लिखि इंजील जतायो ताहीं[3]❀॥
†स्वामि कहत मे ईसहु बढ़ई। ईसापितु यूसुफ़ था वढ़ई॥
पितु व्यवसाय कियो तेहि काला। बनि पैग़म्बर भयो निहाला॥
बहुरि सोइ ईश्वर बनि गयेऊ। जन्म कुमारि मातु से भयेऊ॥
दो०—ताही ते ताके हृदय, बनेउ विरोधी भाव।
काट कूट अरु फूट को, हैं फैलाये कुभाव॥११३॥

---

१. एक पर्वतीय स्थान है। २. इं० म० प० २८ आ० २, ६, ६, १०, १६, १७, १८, २०। † स० ८८। ३. इं० मार्क प० ६ आ० ३। † स० ८९।

* तबयककहतसुनहुऋषिराई । लूकरचित[1] इंजील सुहाई ॥
ता महँ लिख्यो सुनहु चितलाई । ईसा के कछु बचन लखाई ॥
कह ईसा किमि उत्तम कहहू । ईश्वर श्रेष्ठ ताहि को गहहू ॥
तेहि समान कोउ उत्तम नाहीं । नहिंईश्वरसमकोउदर्शाहीं* ॥
*हेरोदे[2] निकट ईशू जब गयेऊ । तबसोअतिआनन्दित भयेऊ ॥
कह कर्तव्य देखावहु कोई । हम पूछहिं बतलावहु सोई[3]* ॥
†स्वामिकहततनिहियेविचारी । कस ईसा है लेहु निहारी ॥
लूक कहत कछु औरहि बानी । मत्ती में कछु और बखानी ॥
तब केहि भाँति बाइबिल बाता । मानहिं सत्य कहत तुम ताता ॥

दो०—*योहुन्ना ने जो कह्यो, सोउ सुनहु धरि ध्यान ।
आदि वचन ईश्वरवचन, वचन संग सुखदान ॥११४॥
ताही सों उत्पति भयो, जेतो जगत लखात ।
जो जीवन तामें रह्यो, स्वइ प्रकाश तनु जात[4]* ॥११५॥

सो०—*मन फेर्यो शैतान, पुत्र यहूदा के हिये ।
भयो ताहि अभिमान, पकड़ावन को मतो किय[5] * ॥११॥

छं०—*एक दिन ईसा कहत सबसे पुकारि पुकारि कै ।
करो ईश पर विश्वास सारे एक मोहिं अपनाइकै ॥

---

१. लूकरचित इंजील प० १८ आ० १९ । २. एक पुरुष का नाम । ३. लूक प० २६ आ० ८, ६ । † म० ६०, ६१ । ४. योहनरचित सुसमाचार प० १ आ० १ से ४ तक । ५. यो० प० १३ आ० २ ।

मेरे पिता गृह ठौर बहुतक कहत हौं समुझाइकै ।
स्थान तुम्हरे हेत हौं निश्चय करूँगा जाइकै ॥ ७ ॥
पुनि सब काहुन को गहि हाथा । लै चलिहौं सारे निज साथा ॥
मोर मार्ग अरु जीवन साँचा । करि विश्वास ग्रन्थ बिच बाँचा॥
पुनि ईसा कह बिना हमारे । पहुँचत नहिं मम पितु के द्वारे॥[1]
मोहिं जानत जो कोउ जग माहीं । जानिसकतपितुसोइसदाहीं* ॥
* अरुपुनिकहतजोकरविश्वासा । चहत जो मम कर्तब कीआसा॥
सत्य कहौ मोते अधिकाई । कर्तब करके देत देखाई *[2] ॥
* अरु अद्वैत सत्य है ईश्वर । हमबिचारकीन्हौशक्तीभर*[3] ॥
† या विधि इनकी अकथ कहानी । लिखा जो हैं अपने मनमानी ॥
वचन बिना वक्ता किमि होई । ईश्वरवचन कहै नहिं कोई ॥
दो०—कहहु वचन से कौन विधि, सृष्टि होत उत्पन्न ।
नहिं अनादि जीवन कतहुँ, जो कहि होत प्रसन्न॥ ११६॥
यदि अनादि जीवन को जानहु । फूँकिश्वासआदमकसमानहु ॥
यदि शैतान फिरावत मन को । निज अनुकूल चलावत जनको॥
कहहु ईश तेहि कैस उपजावा । किमिस्वभावयहिभाँति बनावा
और फँसावत केहि विधि ईसा । निजपितुठहरावतजगदीसा ॥
अस जग कौन मूर्ख अज्ञाना । जो मानहिं कर्तव्य महाना ॥
मृतक जिलावन आदि कहानी । मानि लेहिं जो हों अज्ञानी ॥

---

१. यो० प० १४ आ० १ से ७ तक । २. यो० प० १४ आ० १२ ।
३. यो० प० १७ आ० ३ । † स० ६२ से ६६ ।

याते यह समुझहु मन माहीं । ईश्वरकृत यह बाइबिल नाहीं ॥
अरु ईश्वरसुत ईसा नाहीं । जसनिजमुखसोंसबहिंबताहीं ॥
दो०—और यहुन्ना ने लिख्यो, परमेश्वर अद्वैत ।
तब इसाइ केहि भाँति सों, मानत है सब द्वैत ॥ ११७ ॥
मानत तीन पादरी सारे । पिता पुत्र अरु रूह सहारे ॥
जहँ विरुद्ध सब भाँति लखाई । कस ईश्वरकृत कहहु सुनाई ॥
ताते त्यागि सकल जंजाला । गहहु वेदमत परम विशाला ॥
* कहत एक ऋषिवर सुनि लीजै । अद्भुत बात और चित दीजै ॥
योहुन के कछु वाक्य सुनाऊँ । प्रभुता ईश तुम्हहिं देखराऊँ ॥
सुवर्ण मुकुट लगाये शीशा । देखे बहुतक तहाँ मुनीशा ॥
दीपक सात सिंहासन लागे । जलत रहे देखे तेहि आगे ॥
काँचसमुद्र भरा तेहि आगे । चारि पुरुष चारौ ढिग लागे ॥
दो०—दीपक सात देखात जो, ईश आत्मा सात ।
चारहु पुरुषन के रहे, दोउ ढिग नेत्र लखात*[१] ॥ ११८ ॥
*अरु सिंहासन जौन विराजत । तेहिहाथनपुस्तकयकराजत ॥
सात मोहर लागी तेहि माँही । को समरथ जो खोलहिं ताही ॥
कोउ न मिल्योतेहि खोलनवारो । भूमि स्वर्ग सबठौरनिहारो*[२] ॥
* पुनि सिंहासन के ढिग जाई । रचना देखि परी तहँ भाई ॥
यक मेमना[३] बधकरि तहँ डारो । सात नेत्र युत ताहि निहारो ॥
सात सींग ताके सिर देखे । अस जग में कबहूँ नहिं पेखे ॥

---

१. यो० प्रकाशित वाक्य प० ४ आ० ४ से ६ । २. यो० प्र० प० ५ आ० १ से ४ तक । ३. बकरी का बच्चा ।

इनको सात आत्मा जानहु ।पठयहुपरमेश्वरअनुमानहु[1]※॥
※अरु पुस्तक लीन्हीं जब हाथा । और नवायो सबको माथा ॥
दो०—तबहि पुराने मेमना, देखि परे चौबीस ।
चारि पुरुष औरहु लखे, सबन नवायो सीस ॥११६॥
धूप पियाला हाथ में, पूजन को सामान ।
थी वीणा सबके करन, और आर्तीदान [2]※ ॥१२०॥
※ तेहि पुस्तक की छाप जब, खोलि दई है आन ।
चारि अश्व अरु पुरुषजन, अद्भुत रूप लखान॥१२१॥
तिनमहँ यक बोल्यो असबानी । गर्ज्यों मेघ मनहुँ अभिमानी ॥
श्वेत अश्व कर धनुष महाना । सीस मुकुट शोभित सुखदाना॥
जय जयकार पुकारन लागा । सुनेहु न तेहिं जो रह्यो अभागा॥
लालबरन दूसर के तीरा । अश्व विलोक्यो महा गँभीरा॥
तेहि अधिकारदियो यहिभाँती। मिलन न पावहिं कोउ सजाती ॥
तीसर के ढिग अश्व निहारा । श्यामबरन लागत अतिप्यारा॥
अश्व चतुर्थ पीतरँग सोहत । देखि ताहि सबको मनमोहत॥
तापर मृत्यु लखी हम चोखी । उपमानहिंसो परमअनोखी[3]※ ॥
†स्वामि कहत जोमोहिं सुनायो। अद्भुत लीला कहि समुझायो ॥
दो०—स्वर्ग बतायो नगरसम, ईश्वर अग्निसमान ।
सिंहासन भूषण मुकुट, मानुष चारि सुजान ॥१२२॥

---

१. यो० प्र० प० ४ आ० ६ । २. यो० प्र० प० ४ आ० ८ ।
३. यो० प्र० प० ६ आ० १ से ८ तक । † स० ६७ से १०१ ।

पीठ पछारू नेत्र बताये। महा असम्भव कार्य लखाये ॥
छाप लगी पुस्तक ठहराई। बिन ईसा कोउ खोलि न पाई ॥
सब बिधिसोनितआपनकरनी। कोटिनविधिनिजमुखसोंवरनी॥
यह ईसा दो आँखिनवाला। सींग रहे नहिं केहू काला ॥
सात नेत्र भे स्वर्ग के माहीं। सात सींग सिर पर देखराहीं ॥
होत विचार कछू हिय माहीं। तो मानत कबहूँ अस नाहीं॥
धूप दीप पूजा हित देखी। मूरतिपूजक कह सब पेखी ॥
करि न सकत खंडन केहु भाँती। बुतपरस्त जग में जो जाती ॥
दो०—स्वप्न माहिं भरमत कोऊ, जगे कहत सब बात ।
वैसी ही तुम्हरी कथा, कहत नाहिं सरमात ॥१२३॥
पौराणिकमत से कम नाहीं। भरी कल्पना झूँठ लखाहीं ॥
शान्ति जहाँ पर तनिकौ नाहीं। तहाँ न्याय बुधिबल नशि जाहीं॥
*और सुनहु यकबात अनोखी। योहन ने लिख दीन्हीं चोखी ॥
वायुवेग आकाश के तारे। गिरे भूमि पर सबन निहारे ॥
जिमि गूलरफलसब गिरिजाहीं। वायुवेग जब होत कदाहीं ॥
जात लपेटो पत्रसमाना। बिन नक्षत्र आकाश देखाना* ॥
† अब देखी इनकी प्रभुताई। विद्यारहित मूर्खता छाई ॥
तारे सकल लोक दर्शाहीं। स्थित सूर्य सहारे लखाहीं ॥
दो०—[2]मदुरी सम आकाश को, समुझत जो तुम लोग ।
कहहु कहा बुधवर कोऊ, देइ तुम्हारो योग ॥१२४॥

---

१. यो० प्र० प० ६ आं० १३, १४ । † स० १०२, १०३ ।
२. चटाई ।

*पुनियककोलिउज्योतेहिकाला। परमेश्वर गुणवन्त विशाला॥
इसराइल कुल छाप लगाई। यकलखचालिसरुहस सोहाई॥
छाप यहूदा कुलहि लगाई। बारह सहस केर समुदाई[१] *॥
†स्वामिकहत काहे असकीन्हा। किमि इसराइलवंशहिं चीन्हा॥
दूसर कोउ कहा नहिं योगू। पावत जो ईश्वर सुखभोगू॥
यह करतून जगत दर्शावत। ईश अज्ञता सबन लखावत॥
अरु ईश्वर सिंहासन आगे। सेवा करत अहरनिशिजागे[२]॥
*धूपदानि महँ अग्नी राखी। तुरही फूँकत है दै साखी॥
छं०—यक दूत तुरही फूँकि अग्नी रक्तयुत बरसावही।
अरु यक तिहाई जारि डारी देश को जेती मही[३]*।
*जब पाँचवें ने फूँक मारी कुंड यक उपज्यो वहाँ।
ताते महा उपज्यो धुआँ बहु टिड्डियाँ प्रकटीं तहाँ॥८॥
दो०—बीछिनगति तिनकहँ दई, कहा जगत में जाइ।
कष्ट देहु बहु भाँति सों, ईश छापबिलगाइ[४] *॥१२५॥
†सुनो प्रलय की जो है रीती। महा असम्भव होत न प्रीती॥
टिड्डी कूप धुआँ की लीला। तुरही फूँकत दूतन ढीला॥
छाप लगी ते नाहिं नशावें। प्रलयकाल ज्वाला जब आवें॥

१. यो० प्र० प० ७ आ० ४, ५। † स० १०४। २. यो० प्र० प० ७ आ० १५। ३. यो० प्र० प० ८ आ० ३, ४, ५, ७। ४. यो० प्र० प० ९ आ० १ से ५। † स० १०५ से ११२ तक।

विद्याहीन बात यह सारी । अबुध नरन असरीति प्रचारी ॥
आर्य्यावर्त उग्यो है भानू[1] । अब नहिं मानत कोउ प्रमानू ॥
अब नहिं चलहि तुम्हारी नीती । करै कोउ नाहीं परतीती ॥
अश्वसवार स्वर्ग के माहीं । कहहु कौन युक्ती ठहराहीं ॥
दूतकथा कछु कम है नाहीं । भाटन से अधिकी दर्शाहीं ॥
दो०—स्वर्ग माहिं मन्दिर कहत, सब विधि पूजन होय ।
मूरतिपूजक नेक विधि, हैं लखात सब कोय ॥१२६॥
*कहत एक ऋषि सों समुझाई । हैं बहुतक आश्चर्य जनाई ॥
एक नारी रवि को उर धारे । पायँन तरे चन्द्रमा डारे ॥
सिर पर तारेन मुकुट बिराजत । द्वादश की गिन्ती है भावत ॥
गर्भवती ह्वै रोदन ठाना । ताके पीड़ा प्रसव महाना ॥
अरु दूसर आश्चर्य देखानो । लालबरन अजगर पहिचानो ॥
सात शीश दश सींग सुहाहीं । ऊपर सात मुकुट दर्शाहीं ॥
अजगर पूँछ गगन लौं धाई । नखत गिराये एक तिहाई[2] *॥
†स्वामि कहत तनि लेहु बिचारी । बुधिमानी हियमाहिं निहारी ॥
दो०—नारी रोवत स्वर्ग बिच, सुनत नाहिं कोउ पीर ।
गर्भवती तहँ पर भई, व्याकुल लखी अधीर ॥१२७॥
यह सब मिथ्या लिखी कहानी । जो चाही अपने मनमानी ॥
केहि बिधि सूर्य गले बिच आयो । चन्द्र पाँइ नीचे कस भायो ॥

---

१. ऋषि दयानन्द के उपदेशरूपी सूरज का प्रकाश हो गया ।
२. यो० प्र० प० १२ आ० १ से ४ तक । † स० ११३ ।

रह्यो कहाँ अजगर अस भारी । जो पती है पूँछ पसारी ॥
भूमि से नखत महान लखाहीं । नाना लोक गगन दर्शाहीं ॥
सो किमि गिरहिं पूँछ के फेरे । अजगर रह्यौ कौन घर घेरे ॥
*अरु अजगर सँग भई लड़ाई । तेहि हराइ के लई बड़ाई ॥
नाम दियाबल अरु शैताना । वह प्राचीन सर्प बलवाना ॥
भरमावत शैतान सदाहीं । स्वर्गहु में भूल्यो सो नाहीं [1]*॥
†पुनि ताकहँ घेर्यो बरजोरी ।किमिनहन्योकेहुविधिसिरफोरी ॥
दो०—यदि भ्रामक शैतान है, तब तो ताको दोष ।
ईश भुलावा देत नित, भयवश करत न रोष ॥१२८॥
क्षमता ईश न करि सक तेई । कवन बड़ाई ईश्वर लेई ॥
दै न सकत तेहि ईश्वर दंडा । रह्यो महा शैतान उदंडा ॥
कहहु कौन विधि ऐसे ईशहि । मानत कोउ नाहिंप्रभुईशहि ॥
ईश तुम्हार न मानन योगू । याविधि है सब भाँतिअयोगू ॥
*बहुरि कहत ईसा यहि भाँती । टेरि सुनावत अपनी जाती ॥
सुनहु सकल आवत शैताना । बसतभूमिअरु सागर नाना[3]*॥
*युद्ध हेत ता कहँ अधिकारा । मासबयालिस विविधप्रकारा ॥
ईशविरुद्ध लड़ाई ठानी । निन्दाकरहिसदामनमानी[4]* ॥
दो०—†स्वामि कहत शैतान जब, बहकावन के हेत ।
परमेश्वर पठवत भयो, भारतभूमी खेत ॥१२६॥

---

१. यो० प्र० प० १२ आ० ७, ६ । † स० ११४, ११५ । २. भ्रमानेवाला । ३. यो० प्र० प० १२ आ० १२ । ४. यो० प्र० प० १३ आ० ५, ६ । † स० ११६, ११७ ।

किमि न होइ डाकुनसरदारा। यह न काम ईश्वर को प्यारा॥
ईश्वर को सब जीव पियारे। सबका पालन है उर धारे॥
कर्मनुकूल न्याय नित करई। सो न कतहुँ बन्धन में परई॥
*कहतबहुरि यक ओर निहारी। सियोनापर्वत है तहँ भारी॥
तापर देखो मनुजसमूहा[1]। छाप लगी ताके है मूहा॥
नाम तासु अरु पितु को नामू। लिखा छाप पर ईश्वर कामू[2]*॥
†कहऋषिकेहिविधिगिनतीकीन्हीं। जोमनमानीहै लिखिदीन्हीं॥
जेहि स्थल ईसा कर वासू। रहत रह्यो सबविधि निष्पापू॥
ताहि ठौर ईसा हू राजत। रक्षा हित वहु सैन्य विराजत॥

दो०–*और कहत सब भाँति सों, पावत जो विश्राम।
निज पौरुष कर्तव्य सब, करत रहत जो काम॥१३०॥

सो०–रहत सो आतम सँग, फल भोगत ताके सदृश[3] *।
†पुनि किमि कहत असंग, ईसाई संसार सब॥१२॥

और कहत छूटत है पापा। क्षमा करावत ईसा तापा॥
कहहु सो छिमहँ को सत होई। भोगत पाप कि छूटत सोई॥
या ईश्वर की झूँठी बानी। अथवा झूँठ इसाइकहानी॥
और कहत वहु अकथ कहानी[4]। परमेश्वरबुधि बलनहिंजानी॥

---

१. एक लाख बयालीस सहस्र। २. यो० प्र० प० १४ आ० १। † स० ११८। ३. यो० प्र० प० १४ आ० १३। † स० ११६ से १२४ तक। ४. * उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुंड में

अबसब कोउसोचहु मनमाहीं । असईश्वरहो केहुविधिनाहीं ॥
ईसा क्रोध बहै जलधारा । ह्वै कर रक्त बहै संसारा ॥
स्वर्ग माहिं बिन साक्षि अकेला । न्याय न करि सक ईश अकेला॥
न्याय समान भाव सों होई । तामहँ छोट न बड़ है कोई ॥

दो०—ईश्वर की लीला कहत, अज्ञानिन समुझाय ।
वैसे ही शैतान सों, सबको देत डराय ॥१३१॥

कोउ शैतान जगत में नाहीं । कहिकहि नानाकथाभ्रमाहीं ॥

डाला और रस के कुंड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस के कुंड में से घोड़े की लगाम तक लोहू एकसौ कोस तक बह निकला । यो० प्र० प० १४ आ० १९,२० । * देखो स्वर्ग में साक्षी के मंदिर का तम्बू खोला गया । यो० प्र० प० १५ आ० ५ । * ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है । जो तुम्हें उसने दिया है, वैसा उसको भर देखो कर्मों के अनुसार उसे दूना दे दो । यो० प्र० प० १८ आ० ५, ६ । * क्योंकि मेमने का विवाह आ पहुँचा है । उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है । यो० प्र० प० १९ आ० ७ । * और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन साँप को जो दियावल और शैतान है पकड़ के उसे सहस्र वर्षों तक और बाँध रक्खा और उसको अथाह कुंड में डाला और बन्द करके उसे छाप दी जिससे जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों, तब तक और किसी को न भरमावे । यो० प्र० प० २० आ० २, ३ * ।

जिमि भरमावत हैं अज्ञानी। [1]कौतुकरचत महाअभिमानी ॥
पेटार्थिन बहु ढोंग रचाये। मनमाने नित पंथ चलाये ॥
ताते फँसहु न इनके जाला। बुध्दिसों काम लेहु सब काला ॥
*तबयककहतसुनहुऋषिराई। प्रभुता ईश्वर जानि न जाई ॥
जेहि सन्मुख ते भूमि अकाशा। गये भाग कछु रही न आशा ॥
सन्मुख ईश मृतक हम देखे। बड़ अरु छोट सबन को पेखे ॥
जीवनपोथी खोलि बिचारन। जौन कर्म तस फल उच्चारत[2]*॥
*उनमें से यक मम ढिग आवा। आर नेह सों बचन सुनावा ॥
मैं मेमना को तुरत बोलैहों। अरु ताकी नारी दिखरैहों[3]* ॥

दो०—† कहत स्वामि यह बालकन, के सम तुम्हरी बात।
पृथिवी और अकाश कहुँ, भागि सकत हैं तात॥१३२॥
यदि भागें तौ कहहु कहँ, सिंहासन ठहरात।
जीवनपोथी मृतकदल, कौन भाँति दर्शात ॥१३३॥

---

१. एक दिन एक पुरुष ने कहा कि हम देवता के दर्शन कर आये, चलो तुमको भी दर्शन करा दें। भोले पुरुष बातों में आ गये और चल दिये। उसने एक अँधेरी से अँधेरी जगह में ले जाकर खड़ा किया और वहाँ एक आदमी के दो हाथ और लगाकर खड़ा कर रक्खा था, कहा—दर्शन करो और भेंट चढ़ाओ। (जब एकांत और अँधेरी जगह में ले गये तो फिर क्या कहना। भेंट तो लेनी ही है, चाहे राज़ी से चाहे कूट-पीटके।) २. यो० प्र० प० २० आ० ११, १२ । ३. यो० प्र० प० २१ आ० ६ । † स० १२५, १२६ ।

और बतावहु स्वर्गहु माहीं। होत कचहरी का तेहि ठाहीं॥
अरु लै कलम लिखतपरमेश्वर। अथवा साथ रहतकोउदूसर॥
स्वर्ग माहिं ईसा की नारी। बतलावत जो अति सुकुमारी॥
ऐसे स्वर्ग जाइ किमि भाई। जहँ घरसम कर्तव्य लखाई॥
जब तहँ हू पै पहुँचै नारी। हाँ मिलि रीतिविवाहप्रचारी॥
होहिं पुत्र पुत्री बहुतेरे। अवशि होहिं तहँ रोग घनेरे॥
होहिं जन्म मृत्यु तहँ दोनो। ऐसे स्वर्ग जाइ नहिं कौनो॥
*तबयककहतसुनहुऋषिराई। नाघो नगर करी चतुराई॥
है शत सात कोस लम्बाई। अरु उतनिहि ताकी चौड़ाई॥
दो०—अरु उँचाइ सबके सदृश, भीत नाप पुनि कीन्ह।
यकशत हाथ चवालिस, दूत नाप करि दीन्ह॥१३४॥
सूर्यकान्त सों जोड़दिय, निर्मल स्वर्णसमान।
नगर बिलोकतसकलजन, आनँदहोतमहान॥१३५॥
प्रथम नींव 'सूर्यकान्त' दिखाई। दूसर 'नीलमणी' दर्शाई॥
अरुतीसर 'लालड़ी' विलोकहु। चोथी 'मर्कतमणि' अवलोकहु॥
'गोमेदक' पंचम लखि परई। शुभ 'माणिक्य' छठीउरधरई॥
सप्तमि 'पीत मणी' पहिचानहु। अरु 'पेरोज' आठवीं जानहु॥
नवयें पर 'पुखराज' लखाई। अरु दशवें 'लहसुनिये' भाई॥
'धूम्रकान्त' ग्यारहवीं सोहत। शुभ 'मर्टीष' देखि मनमोहत॥
बारह फाटक बारह मोती। बन्यो नगर शोभाअतिहोती॥
मग सब स्वच्छकाँचसम सोहैं। नरनारिन देखत मनमोहैं *॥

१. यो० प्र० प० २१ आ० १६ से २१ तक।

दो०—*वस्तु अपावन कोउ तहँ, जाइ सकत है नाहिं ।
नहिं पहुँचत है झूठनर, औरकुकर्मीनाहिं[1] *॥१३६॥

*औरशापअब कछु नहिं होई । ईश्वरकृपा जानिये सोई ॥
ईसा ईश्वर के सँग रहई । अरुमुखदेखि परमपदलहई ॥
तहँ बिन दीपक होत प्रकाशा । ईश केर राखहु विश्वासा[2] *॥
*ईश्वर सबसों कहत पुकारी । सुनहु सकल जेते नरनारी ॥
सबको फल है मेरे साथा । आइ भूमि पर दीन्हों हाथा ॥
निज कर्मन अनुसार सदाई । फल भोगतअरुलहै बड़ाई[3] *॥
†स्वामिकहत तनि लेहुबिचारी । यह लखात सब भाँति अनारी ॥

दो०—कहहु ऊँचाई कौन विधि, नापि लीन्ह सब भाँति ।
जो बतलावत नाप[4] है, सम्भव नाहिं देखाति ॥ १३७ ॥

मूर्खजनन को है समुझावा । मणिमयजटित सुनगर बतावा ॥
अरु पापी तहँ सकत न जाई । तब ईसाइ तहँ केहि विधि जाई ॥
पुनि सब भक्तन के लै पापा । किमि ईसा पहुँचत करि दापा ॥
ईसा ईश्वर एक समाना । बैठि स्वर्ग पावत बहु माना ॥
केहिविधिव्यापकतुम्हरोईशा । मानि सकत कोउ नाहिं मनीशा ॥
कर्मनुकूल जो पावत भोगू । पाप क्षमा मानत किमि लोगू ॥
याते हैं इंजीलकहानी । लिखि लीन्ही सारी मनमानी ॥

---

१. यो० प्र० प० २० आ० २७ । २. यो० प्र० प० २२ आ० ३ से ५ तक । ३. यो० प्र० प० २२ आ० १२ । † स० १२७ से १३० ।
४. साढ़े सात सौ कोस नगर की ऊँचाई नापी गई ।

काहू विधि नहिं मानन योगू। है बाइबिल सब भाँति अयोगू॥

दो०–ताते मानहु वेदपथ, ज्ञाननेत्र को खोलि।
त्यागि देहु भ्रमजाल को, पियहु वेदरस घोलि॥१३८॥
जो आये संसार में, निज कर्मन अनुसार।
ज्ञानयत्न की नाव चढ़ि, हों भवसागर पार॥१३९॥

शिष्य

प्रेमसहित समुझायऊ, ईसाई मत भाव।
भ्रम न रह्यो अब हृदयकछु, उज्ज्वल भयोस्वभाव॥१४०॥
दयानन्द ऋषि की कथा, महा गुनन की खानि।
"इष्ट" रुचिर भाषा करी, बुधि जनकहत बखानि॥१४१॥
भूल चूक जो कछु रही, लीहैं सुजन सुधारि।
सतसागर की शुभ कथा, लेहु हिये बिच धारि॥१४२॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामीदयानन्दसरस्वती वर्णित
ईसाईमतविषयसमीक्षा वैद्य कविराज पं० गदाधर-
प्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित
गुरुशिष्यसंवाद त्रयोदश तरंगः॥१३॥

(स० १३ स०)

अथ चतुर्दश तरङ्ग (स० १४स०)

यवन-मत-विषय-समीक्षा-वर्णन

शिष्य

दो०—गुरुवर मैं आनँद भयों, सुनि ऋषि कथा महान।
हृदयसुधारक गुनभरी, अति रोचक सुखदान ॥ १ ॥
ईसाईमत की कथा, कही जौन विधि तात।
ताहि भाँति समुझाइये, कहि यवनन की बात ॥ २ ॥

गुरु

दो०—प्रेम सहित सुनिये कथा, कही जौन ऋषिराज।
सोई हम तुम सन कहब, सुदिन मुहूरत आज ॥ ३ ॥
प्रथम स्वामि अनुभूमिका, कहत भये समुझाय।
मुसलमानमत के बि`, एक कुरान लखाय ॥ ४ ॥
यदपि बहुत से ग्रन्थ हैं, अरु सिद्धान्त अनेक।
यक विश्वास कुरान पर, करत सकल धरि टेक ॥ ५ ॥

है क़ुरान अर्बी के माहीं। बहुतक उर्दू अर्थ लखाहीं ॥
ताको करि हिन्दी समुझावा। आयो सकल सोइ है भावा ॥
सत्यासत्य विचारन हेता। कह्यो विचार हि यवनन नेता ॥
ग्रहन करहिं गुन दूषण त्यागहिं। सत्य होइ जो ताकहँ मानहिं॥

ऐसेहु पर जो कोउ न मानहिं। हठ करि झूँठहि पंथ प्रमानहिं॥
तौ हम कछु न करब बरजोरी। समुझाउब ताकहँ कर जोरी॥
यह जग रीति सदा चलि आई। बुधवर ताहि लेत अपनाई॥
गुनी सकल गुन को गहि लेहीं। औगुन देखि तुरत तजि देहीं॥
हठ न त्यागि निज पक्ष बनावहिं। तिन कहँ हम निशदिन समुझावहिं॥

दो०—ईर्षा द्वेष विवाद अरु, हठ विरोध के हेत।
रचे अनेकन पन्थ जग, नर नारिन दुख देत॥६॥

सो०—ताहि मेटने हेत, समालोचना करि कही।
सत्य ग्रहन करि लेत, जहँ कहुँ पावत सुजन जन॥१॥

याते "इष्ट" ग्रहन सब कीजै। अरु अनिष्ट त्यागन चित दीजै॥
यक दिन कथा कहत ऋषिराई। यवनपन्थ करतव्य सुनाई॥
तब यक यवन आइ तहँ गयेऊ। बैठि सो ऋषिसों बोलत भयेऊ॥
है इसलाम सबन ते नीको। कहत भाव मैं अपने जी को॥
पुस्तक एक क़ुरान हमारी। ईश्वरकृत अरु हमकहँ प्यारी॥
हम सब मुसलमान हैं जेते। तेहि अनुकूल चलत हैं तेते॥
जो मम मत को मानत नाहीं। हिन्दू[1] तेहिं हम कहत सदाहीं॥
आयत प्रथम सुनहु यहि भाँती। है सब भाँतिन सों सुखमाती॥

दो०—※[2] सहित नाम अल्लाह के, करत अरम्भन काज।
दयावान जो है सदा, न्याय करत महराज ※[3]॥७॥

---

१. हिन्दू दर महाविरा फ़ारसियाँ बमाने दुज़्द रहज़न ग़ुलाम मी आयद—ग़यासुल्लुग़ात। २. (※) यह चिह्न आयत के आदि में सर्वत्र आयेगा। ३. क़ुरानशरीफ़ मंज़िल १ सिपारा १ सूरत १ आयत १।

†कहु तब स्वामि सुनहु चितलाई। पढ़ि आयत[१] जो मोहिं सुनाई॥
जो हैं कहत यवन हर्षाई। यह क़ुरान ईश्वर से आई॥
तौ यह बात प्रकट नहिं होई। देखहिं प्रथम वचन जो कोई॥
जानि परत दूसर कोउ अहई। निर्माता[२] क़ुरान जग लहई॥
सुनहु ईश की होती रचना। कहत न याविधि के वह वचना॥
करत अरम्भ ईश लै नामा। जब कोउ दूसर लिखत सकामा॥
जन उपदेश हेत आरम्भा। या विधि ईशवचन प्रारम्भा॥
दो०—यदि मनुजन शिक्षा करत, कहहु सदा यह बात।
तौ यहहू भावत नहीं, अरु न ठीक दर्शात॥ ८॥
पाप अरम्भ करहिं यदि कोऊ। तबहु नाम लै करिहै सोऊ॥
तौ यह दोष ईश में लागहिं। ईशनाम में दूषण आवहिं॥
जो यह कहहु क्षमा वह करहीं। अरु दयालुता उर बिच धरहीं॥
तौ तेहि जग बिच मानव हेता। आज्ञा पशूहनन की देता॥
दैकर अधिक दुःख अरु पीरा। भखत मांस जेहैं मतिधीरा॥
कहहु कहा वे प्रानी नाहीं। अथवा ईश रच्यो नहिं ताहीं॥
अरु जब लिखन लगत कोउ पुस्तक। लै प्रभु नाम नवावै मस्तक॥
यदि शुभ कर्म ईश लै नामा। करहि अरम्भ परमसुखधामा॥
दो०—मुसलमान सब काल में, बिसमिल्ला रहमान।
पशूवधन हू के समय, कहत सहित अभिमान॥ ९॥

† समीक्षा १। १. मंत्र और श्लोक की तरह संख्या चलती है।
२. बनानेवाला।

कहहु ख़ुदा इनको केहि भाँती । करहि दया सब प्रानिन जाती॥
या विधि रही न पशु पर दाया । तबदयालुनाकेहि विधि गाया॥
यदि तुम कहहु अर्थ यह नाई । तौ यह कहा कहहु समुझाई॥
*तब पुनिकहत सुनहु ऋषिराई । पालन करत जगत मम साँई॥
परमेश्वर हित स्तुति सारी । पालक सब त्रिधि हैसुखकारी॥
पालन करहिं सकल संसारा । करत क्षमादयालु ईश्वारा[1] * ॥
† कहत स्वामिसुनियेचितलाई । पालकईश तुम्हार जो भाई ॥
जो क्षमता करतो सब ऊपर । तौ किमि दंड देत है दूसर ॥

दो०-दूसर मत में जो मनुज, अरु पशु आदिक जीव ।
मरवावत तिनको सदा, यवनन हाथ अतीव[2] ॥ १० ॥

अरु जो क्षमा करत है भाई । तौ पापिन का पाप नशाई ॥
यदि यह सत्य मानि हम लेहीं । पाप क्षमा ईश्वर करि देहीं ॥
तौ पुनि किमि काफ़िरनके[3] हेता । आज्ञा मारन के हित देता ॥
याते ईश्वरकृत नहिं होई । पुस्तक जौन क़ुरान लखोई ॥
* बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई । देखरावहु मोहिं मालिकभाई ॥
भक्ति करत ताकी निशिवासर । चहतसहायकरतबहुआदर ॥
अरु यह विनय करत दिन राती । देखरावहु सदमार्ग सुहाती ॥
सो पथ मोहिं दिखावहु साँई । जिनपरकीन्हदया अधिकाई ॥

१. मं० १ सि०२ सूरतुल् फ़ातिहा आ० १,२ । † स० २ । २. निश्चय
३. जो क़ुरान और पैग़म्बर को न मानें, वे काफ़िर हैं ।

दो०—जापर क्रोध विशेष किय, पथ तिनको न देखाउ ।
अरु भूले जे मार्ग हैं, सोऊ नाहिं बताउ [१] *॥ ११ ॥

†स्वामिकहतयहमोहिं बतावहु । ईश्वर को कर्तव्य लखावहु ॥
क्या ईश्वर नित न्याय न करई । काहू दिवस न्याय उर धरई ॥
यह ईश्वरविच दोष लगावहु । जो यक दिन न्यायी ठहरावहु॥
ईश्वरभक्ति सहायक लेना । अरु सतमार्गमाहिं चितदेना ॥
यह सब ठीक बात दर्शाई । सत्य गहहु नित दोष दुराई ॥
परयह बात समुझि नहिं आवै । यवनमार्ग ही सीध देखावै ॥
जहँ कहुँ सत्यमार्ग दिखराई । यदि न गहहु तौ पक्ष लखाई ॥
अरु जब पूर्वजन्म नहिं मानत । तौकिमिईश्वरक्रोध देखावत ॥

दो०—दया काहु पर करत है, करत काहु पर रोष ।
पक्षपात की बात यह, लागत ईश्वरदोष ॥१२॥

अरु जो पूर्वजन्म के कर्मा । रहत नहीं कोऊ हैं धर्मा ॥
तबप्रभु न्यायकरत केहि भाँती । पुण्य पाप कस होवे जाती ॥
अरु क़ुरान यक भाषा माई । देत विशेष हेत दर्शाई ॥
यहहू पक्षपात की बाता । है लखात तव ईश्वर ताता ॥
परमेश्वर ने ज्ञान प्रचारा । वेद सूर्यवत जग उजियारा ॥
वेद संस्कृत भाषा माहीं । जानहिं सकल एक श्रम माहीं ॥
नहिं ईश्वरकृत अहै क़ुराना । अरबदेश हित जौन बखाना ।
ताते लखहु सत्यपथ वेदा । धारनकरहुहृदयतजि खेदा ।

१. मं० १ सि० १ सू० १ आ० २ से ७ तक । † स० ३, ४ ।

दो०—*बहुरि कहत संदेह नहिं, इस पुस्तक के माहिं।
निश्चय मार्ग देखावई, जग नर पावन[1] काहिं ॥ १३ ॥

करि विश्वास जो स्तुति करहीं। जाइ एकान्त नमाज़[2] जो पढ़हीं ॥
अरु नित खर्च करहिं मम दीन्हीं। मम ऊपर भरोस जिन कीन्हीं ॥
अरु ईमान लावहि मम पोथी। और जो पहिले उतरी पोथी ॥
और क़यामत[3] पर विश्वासा। तिनकी पूरित हों सब आसा ॥
जो निज प्रभु की शिक्षा मानहिं। बन्धन छुटैं ईश को जानहिं ॥
हैं जो काफ़िर जग के माहीं। ते तुम कहैं जो नाहिं डराहीं ॥
है बेकार डेरावन तिनकौ। वे ईमान न लावहिं तनिकौ ॥
तिनके हिये मोहर करि दीन्हीं। सुनहिं न कान युक्ति सो ई कीन्हीं ॥
दिय आँखिन पर परदा डारी। जो न सकहिं कर्तव्य निहारी[4]* ॥

दो०—†स्वामि कहत का दम्भ नहिं, खुदा तुम्हारे माहिं।
जो निज पुस्तक की करत, अधिक बड़ाइ सराहिं ॥ १४ ॥

जो सतमार्गी पावन लोगू। लहत तेइ क़ुरान सुख भोगू ॥
अरु क़ुरान[5] पापिन हित नाहीं। कहहु तौ है केहि लेखे माहीं ॥

---

१. परहेज़गार। २. यह मुसलमानों की उपासना है। ३. इसको प्रलयकाल मानते हैं और यह कहते हैं कि जब तक क़यामत का दिवस न आवेगा तब तक यह जीव (रूहें) इसी तरह से पड़ी रहेंगी। उस दिन इनका खुदा इन्साफ़ कर दोज़ख़ (नरक) और बहिश्त (वैकुंठ) इनके कर्मों के अनुसार देगा। ४. मं० १ सि० १ सू० २ आ० १ से ६ तक। † स० ४। ५. वास्तव में यह शब्द क़ुरआँ है, पर भाषा के बोलने में क़ुरान कहते हैं।

खर्च हेत तुमहीं को देवे। औरन की का सुधि नहिं लेवे॥
जब करना विश्वास बतावा। बाइबिल अरु इंजील सुहावा॥
तौपुनिकिमिभटकतदिनराती।बनतअहरनिशिकिमिउत्पाती॥
हमरी जानि समान लखाहीं। एकहि विषय दोहुन दर्शाहीं॥
कछु कछु कहुँ विपरीत लखाई। कहहु ईशकेहि भाँति बनाई॥
रहि गई प्रथम कवनसी बाता। तेहि हित दूसरि पठई ताता॥
किमि न एकही ग्रन्थ बनावा। वेदसमान एक ही भावा॥

दो०—ईसाई यवनन विषे, कहहु न पापी कोय।
ईशकृपा तेई लहत, मुसलमान जो होय॥ १५॥

कहहु कहा जो तुम्हरो धर्मा। मानत नाहिं करत शुभ कर्मा॥
उनहीं को काफ़िर तुम कहहू। पक्षपातबहु हियबिचलहहू॥
अरु परमेश्वर मोहर लगाई। पापिन अन्तःकरन बनाई॥
तब है पापिन को का दोषू। दोष खुदाकोकरत जो रोषू॥
पुनि किमि दंड लहै जग पापी। कर्तब माहिं स्वतंत्र न पापी॥
कस ईश्वर कस तुम्हरी पोथी। है सब भाँतिन सों सो थोथी॥
*तबयककहतसुनहु ऋषिराई। ईश्वर कीगति परम लखाई॥
रोग रहे कछु हिय में जिनके। और बढ़ावत अल्लह तिनके*[1]॥
*तुम्हहिं बिछावन हेत बनाई। परम बिछावन भूमि सोहाई॥
ताकी छत आकाश बनावा। नीलबरनजोमन को भावा*[2]॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ९। २. मं० १ सि० १ सू० २ आ० २१।

दो०—*एक दिवस ईश्वर कहत, वस्तु हमारी माहिं।
जो पैग़म्बर के उपर, उतरी तुम्हहिं लखाहिं ॥१६॥
सो०—करत जो तुम संदेह, तौ लै आवहु काउ अस।
होय न काहू गेह, जस सूरत हमने कही ॥ २ ॥
अरुतिन साक्षिन लेहु पुकारी। तुम्हहिंसत्यजोकहहिंनिहारी॥
जो न करहु संदेह कदाई। डरत[1] अग्नि सों रहहु सदाई॥
ईंधन तासु मनुष समुदाई। सुलगतरहतसदासबठाई[2] *॥
†स्वामि कहत कस ईश्वर माया। जो हिय आई तनिकनदाया॥
रोगिन को दिय रोग बढ़ाई। कस ईश्वरता है दिखराई॥
यह शैतानहु ते अधिकाई। रोगबढ़ाइहिय मोहर लगाई॥
अरु आकाशन केहु विधि होई। छतसमान बतरावत जोई॥
यह सब बात अविद्या केरी। मानत योग न बुधजन हेरी॥
दो०—अरु चतुराई यह कहत, बनि न सकत यहि भाँति।
तौ फ़ैज़ी[3] की लिखी जो, अवलोकिय कछु पाँति ॥१७॥
कहहु कौन दोज़ख की आगी। डरै तासु सों जो बड़भागी॥
यहि अग्नी सों कोउ नहिं डरई। ईंधन कौन आइ जो परई॥
लिख्यो क़ुरान माहिं जो भाई। हेत काफ़िरन शिला[4] बनाई॥
तैसेहि बीच पुरानन माहीं। म्लेच्छनहेत नरक दिखराहीं॥

१. डरते रहो; क्योंकि काफ़िरों के लिये पत्थर तैयार किये गये हैं।
२. मं० १ सि० १ सू० २ आ० २२, २३। † स० ६ से ८।
३. बादशाह अकबर के समय में मौलवी फ़ैज़ी ने बिना नुक़ता का क़ुरान बनाया था। ४. पत्थर।

कहहु कौन हम मानहिं बाता। इन महँ सत्य कौन है ताता॥
निज निजकथन स्वर्गसबजाहीं। अरु दूसर नरकी बतराहीं॥
याते यह सब झूँठ कहानी। लिखी सबन ने है मनमानी॥
धर्मवान नर नारी जोई। पावत सदा सुःख हैं सोई॥
पाप करत ते सब दुख पावें। निजइच्छा मतकोउअपनावें॥
दो०-*एक कहत आनन्दहित, सुनहु ईश संदेश।
जो लावत ईमान हैं, पावत नाहिं कलेश॥१८॥
अरु शुभकर्म करत हैं जोई। पावत ते बहिश्त सब कोई॥
तहँ पर नहरैं बहति अनोखी। मिलत तहाँ मेवा है चोखी॥
तहँ सदैव नारी[1] अति पावनि। रहतरहीजोपरमसुहावनि[2]*॥
†कहतबस्वामिबहिश्त[3] तुम्हारी। लखी अनोखी सबसे न्यारी॥
कौन बात उत्तम बतराई। जो जग में नहिं परत लखाई॥
जो कछु स्वर्ग तुम्हारे माहीं। सो सब हैं याँ पर दर्शाहीं॥
यह विशेषता स्वर्ग लखाई। नारि तहाँ पर रहत सदाई॥
जिमि यहँपर सब आवहिंजाहीं। जन्मत मरत रहतयहिठाहीं॥
दो०-स्वर्ग माहिं यह ही नहीं, जन्म मरन की बात।
और सकल बातें तहाँ, देखराई तुम तात॥१९॥
तान विचार देखहु मन माहीं। कवन भाँति यह स्वर्ग बताहीं॥
राति क़यामत लौं तहँ रहहीं। बिना पुरुष सोदुखकोसहहीं॥

---

१. बीवियाँ। २. मं० १ सि० १ सू० १ आ० २४। † स० ६।
३. इनकी परिभाषा में स्वर्ग को कहते हैं।

केहिविधिदिवसकटहिं तिनकेरे। खुदाकृपा या काको हेरैं ॥
खुदाआस ते तहँ पर रहहीं। गोकुलिये[1] समबहिश्तअहहीं ॥
कहि गोलोक रमण ते करहीं। ये वहिश्त सवकोउ उचरहीं ॥
तहँ नारिनआदर अधिकाई। खुदा प्रेम बहु परत लखाई ॥
जेतो है नारिन सँग नेहा। तेतो नहिं है नरनसनेहा ॥

दो०—बिना खुदा की कृपा सों, तहाँ रहीं केहि भाँति।
प्रेम बढ़े पर नारि जन, सबही सों फँसिजात ॥ २०॥

नारिन सदा बास तहँ दीन्हों। अरु मनुजन कोवंचितकीन्हों॥
※एक कहतऋषिवर सुनिलीजै। पीछे समालोचना कीजै ॥
यक दिन परमेश्वर समुझाये। आदम को सब नामसिखाये ॥
और फ़रिश्तन लीन्ह बोलाई। सम्मुख उनके कहा सुनाई ॥
हे आदम तुम नाम बतावहु। सकलफ़रिश्तनकेरगिनावहु ॥
जब तेहि दीन्हें तुरत बताई। तबईश्वर यह कहत सुनाई ॥
हम जानत पृथिवी आकासा। छिपी वस्तु जो हो केहु पासा ॥
जानहुँ कर्म सकल जन केरे। जो छिपाइ राखे हैं नेरे ※[2] ॥

दो०—*कह्यो फ़रिश्तन सों बहुरि, करहु दण्डवत आय।
है आदम सबसे बड़ो, हमको एक देखाय ॥ २१ ॥

कहत नवायो सबने माथा। सकलफ़रिश्तन ने एकसाथा ॥

१. गोकुलिये गोसाइयों के समान जिनकी कथा ११ तरंग में देखी होगी। २. मं० १ सि० १ सू० २ आ० २६, ३१।

पर शैतान न कीन्ह प्रणामा । रह्योजोकाफ़िरयकतेहिठामा[1]※॥
※आदम सों यह कह्यो पुकारी । नारिसहितयहँरहहुसुखारी ॥
है बहिश्त यह आनँदखानी । घूमहु जहाँ चहहु मनमानी ॥
परतेहि वृक्ष निकट जनि जाहू । ह्वै पापी दारुण दुख सहहू ॥
तब शैतान दीन्ह मति फेरी । लगी नाहिं तेहि तनिकौ देरी ॥
सुख बहिश्त नहिं भोगन पावा । नहिं मम आज्ञा जो अपनावा ॥
तव आज्ञा यह दीन सुनाई । है कोउ शत्रु तुम्हार लखाई ॥
दो०–ताते अब तुम भूमि पर, करहु ठिकाना जाइ ।
चलि दीन्हों आदम तबै, बसेउ भूमि पर आइ[2]※॥२२॥
†स्वामिकहतकसईशतुम्हारा । हेत बड़ाई करत सहारा ॥
धोखा दै निज चहत बड़ाई । कहहु ईश कर्तब यह भाई ॥
जो तुम ईश्वर करत बड़ाई । सर्वज्ञता रहत नहिं भाई ॥
तीनहुँ कालन की जो बाता । जानत है सर्वज्ञ विधाता ॥
सो शैतान न ताके वचना । माने नाहिं कियो हठ अपना ॥
कछु न चल्यो बस ताके ऊपर । माथ नवायो नहिं केहु दूसर ॥
अब अज्ञता ईश की देखहु । दीन अशीष प्रकटही पेखहु ॥
बहुरि शाप दै भूमि पठावा । नहिं जान्यो आगे को भावा ॥
दो०–देखि परत असमर्थ है, दंड देन में ईश ।
दै न सकत शैतान कहँ, दंड तुम्हारो ईश ॥ २३ ॥
अरु केहि अर्थ वृक्ष उपजावा । किमि आदमहिं जाइ डरवावा ॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ३२ । २. मं० १ सू० २ आ० ३३, ३४, ३५ । † स० १० से १२ ।

अरु बहिश्त केहिठौरसोहाई । भूमि आदमहिं दीन्ह पठाई ॥
रहत रही हुइहैं तहँ माटी । जो आदमहिं बनायो डाटी ॥
जब माटी से बन्यो शरीरा । होय मृत्यु की ताकहँ पीरा ॥
जाको जन्म होय जग माहीं । अवशि मृत्यु ताकीसबठाहीं ॥
ताते हैं बहु झूँठ कहानी । रहैं बहिश्त बीवियाँ मानी ॥
झूँठ पखण्ड बढ़ाइ बतावा । उलटपलट सबको समुझावा ॥
ईश्वरपुस्तक नाहिं क़ुराना । लिखी कथा ताके बिच नाना ॥

दो०—*एक कहत ऋषिवर सुनो, मम ईश्वर की बात ।
समझायो सब भाँति सों, प्रेम सहित दिन रात ॥२४॥
डरहु सदा वा दिवस सों, जब न भरोसा काय ।
चलहिं सिफारिश तहँ नहीं, पावतनाहिं सहाय॥२५॥

अरु नहिं बदला तहँ पर होई । दिवस विचारिलेहु है सोई[1]*॥
*अद्भुत कर्तब अरु यक पोथी । मूसहि दई जो मेरे ढिग थी ॥
दुष्ट कपीश[2] होहु तुम जाई । डरवायो सब भाँति सोहाई ॥
डरत रहत औरहु जेहि कारन । धर्मिन देवै सदा सिखावन[3]* ॥
†कह तब स्वामि भली यह बाता । वर्तमान कछु डर नहिं ताता ॥
यह कछु ठीक बात नहिं होई । निन्दित कर्म डरहु सबकोई ॥
पुनि वह असत तुम्हारि कहानी। पैग़म्बर जो साक्षी मानी ॥
तेहि आदेश स्वर्ग मिलि जाई । बात सत्य यह नाहिं लखाई ॥

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ४६ । २. बन्दर । ३. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ५०, ६१ । † सू० १३, १४ ।

दो०—स्वर्गीजन[१] को है कहा, केवल ईश सहाय।
और नरकबासीन[२] की, सुनत न तनिकौ हाय॥ २६॥

अरु जब मूसहि पुस्तक दीन्हीं। तौ क़ुरान का सबबिधिहीन्हीं॥
और निरर्थक होत क़ुराना। जा बल यवन बनाए नाना॥
तब आश्चर्य[३] शक्ति नित देवै। गयो कहाँ सो अब नहिं देवै॥
अबहुँ स्वार्थी निज हित लागी। लिय बनाइ अबुधन अनुरागी॥
बनत महा विद्वान समाना। कहत असम्भव बातैं नाना॥
तैसेहि तेहु अवसर के माहीं। रहत रहे स्वार्थी सब ठाहीं॥
मूसा को जो पुस्तक दीन्हीं। तामहँ भूल कौनसी कीन्हीं॥
जो क़ुरान को बहुरि बनाई। दीन्ह नवीन रसूल पठाई॥
जो भय जानि कही अस बानी। निन्दित बानर होवहिं प्रानी॥

दो०—तौ वह ईश्वर काहु विधि, हुइ न सकत केहु काल।
ईशरचित क़ुरान को, कहै न देखि हवाल॥२७॥

जामहँ लिखी असंगत बाता। सो ईश्वरकृत केहि विधि ताता॥
*बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई। ईश्वर में बहु है प्रभुताई॥
या विधि मृतक जिलावत ईसा। निज चिन्हौरि दिखरावत ईसा॥
यह सब करत तुम्हारे हेता। जासों समुझहु ईश सचेता*[४]॥
†स्वामि कहत जो प्रथम जिलावत। तौ अबहूँ काहे न जिलावत॥
प्रलयकाल लौं क़बरन माहीं। पड़े रहत दुख सहत सदाहीं॥

---

१. बहिश्ती लोग। २. दोज़ख़ में रहनेवाले। ३. मोजिज़े। ४. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ६७। † स० १५।

कहहु तुम्हार ईश कहँ गयेऊ। का दौरा सिपुर्द सो भयेऊ॥
ईश देखावत कवन निशानी। कही जौन अपने मनमानी॥
दो०—सूर्य चन्द्र पृथिवी सकल, कहहु कहा यह नाहिं।
ईशचिन्हौरी यह सबै, हमरी जानि लखाहिं॥२८॥
कहत बहिश्त सदा ते रहहीं। जो आज्ञा ईश्वर की लहहीं[1]॥
†स्वामि कहत यह सम्भव नाहीं। सदा रहत बैकुंठ लखाहीं॥
ना कोउ पाप सदा उरधरहीं। पुण्य न कोऊ निशिदिन करहीं॥
सृष्टि समय जो तुम बतरावत। आठ सहस्र वर्ष दर्शावत॥
याके पूर्व तुम्हारो ईश्वर। कहहु कहा असमर्थ अनीश्वर॥
और क़यामत दिन के पीछे। काज नहीं कछु बैठत छूँछे॥
याते यह सब बालकताई। परमेश्वर हित जौन बताई॥
नर जस कर्म करहिं जगमाहीं। कर्म अनुकूल देत फल ताहीं॥
काम ईश्वरहि रहत सदाहीं। लिखी क़ुरान बात सो नाहीं॥
दो०—*बहुरि कहत ऋषिवर सुनहु, एक दिवस की बात।
ईश्वर अपने भक्त सों, कहत अनोखी बात॥ २९॥
छं०—जब हमने करवाई प्रतिज्ञा नहिं बहाना रक्त को।
नहिं लड़हु कोई नित परस्पर क्रोध में आसक्त हो॥
अरु नहिं निकारहु काहुको घर आपने में जो बसे।
अब 'इष्ट' अपने को निहारहु बिपद में कोउ ना फँसे॥१॥

1. मं० १ सि० १ स० २ आ० ७५। † सू० १६

यह मानकर निज मुख कह्यो साक्षी तुम्हीं को जानते ।
पर निकारहु घरन ते जो मत तुम्हारा मानते ॥
सब तोड़ि दीन्हीं है प्रतिज्ञा आपने जन मारिके ।
तिनके न कबहूँ पाप हलुके किये जावैं जानिके[1]॥२॥
*जे देत अपनी जिन्दगी अरु मोल लेवहि पाप को ।
तिनको सहायक होहुँ नहिं नहिं क्षमहु तिनके पापको[2]* ॥
*अरु दई पुस्तक बहुरि मूसहि और लाये रसूल को ।
दै दै विशक्तिसमर्थयुत ह्वै प्रकटईसा लाल को[3]*॥ ३ ॥

†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। कवन भाँति ईश्वर ठहरावहु ॥
यह अल्पज्ञन काम लखाई । करत प्रतिज्ञा जो नर धाई ॥
औरन सों करवावत रहई । सो सर्वज्ञ कतहुँ नहिं अहई ॥
कहत सदा निज पक्षकी बाता । लड़हु न कोइ परस्पर ताता ॥
ईर्षा द्वेष ईश में नाहीं । कहत रहत जो अधिक सराहीं॥
पाप क्षमहु ते कवन बतावहु । अरु पापिन के नाम गिनावहु ॥
पाप छोड़ावन की जो रीती । है अन्याय और अनरीती ॥
जो दयालु ईश्वर को कहहू । करत कवन पर सोऊ कहहू ॥

दो०–केवल यवनन पर करत, अथवा सारी जाति ।
जो यवनन पर करत है, दयाहीन दर्शाति ॥३०॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ७७, ७८। २. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ७६ । ३. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ८० । † स० १७ से १६।

अरु जो न्याय करत दिनराती । कर्म अनुकूल लहत सब जाती ॥
तौ क़ुरान को कहा प्रयोजन । और मुहमदु आदिक जे जन ॥
अरु जब मूसहि पुस्तक दीन्हीं । पुनि क़ुरान काहे रचि लीन्हीं ॥
और मोजिज़े जो दिखरावहिं । झूँठ असम्भव सकल लखावहिं ॥
सृष्टि कर्म ते कर्म निषिद्धा । कतहुँ न होहिं करै का श्रद्धा ॥
*तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । काफ़िर की गति जौन लखाई ॥
विजय काफ़िरन पर नित चहहीं । अरु धिक्कारत ईश्वर रहहीं[1]* ॥
* जे ईमानदार जग माहीं । देत ईश आनन्द सराहीं ॥
शत्रु फ़रिश्तन[2] को जो होई । ईश्वर बनत तासु को द्रोही[3]* ॥
दो०—†स्वामि कहत काफ़िर कहहु, निज मत के अनुसार ।
और करहु नित द्वेष बहु, शत्रू तिनहिं निहार ॥ ३१ ॥
ताही विधि तेऊ तुम्हहिं, कहत रहत दिनरात ।
ताते है संगत नहीं, यह दोहुन की बात ॥ ३२ ॥
अरु विचारि देखहु मनमाहीं । झूँठ पाप सब भाँति लखाहीं ॥
झूँठ तुम्हार सकल विधि पन्था । और असत है तुम्हरो ग्रन्था ॥
नरन केर शत्रू जो होई । होत ईश को शत्रू सोई ॥
पर यह बात ईश में नाहीं । होइ त ईश्वरता नशि जाई ॥
अरु जो कहहु पाप छुटि जैहै । माँगे क्षमा सुःख सो पैहै ॥
कहहु कहा यह कर्तब नीको । आइ न सकत भाव जो जीको ॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ८२ । २. जबराईल और मीकाईल ।
३. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ९० । † स० २०, २१ ।

*बहुरि कहत जो करत भलाई। सहित तुम्हारे जो समुदाई ॥
तिनकर पाप क्षमा सब हुइहै। जो माँगन हित मम ढिग ऐहै[1] ॥
सो०—*निज कुटुम्ब के हेत, माँग्यो मूसा वारि जब।
ईश्वर आज्ञा देत, पाहन दण्ड प्रहारिये ॥ २ ॥
दो०—बहन लगेंगे वेगसों, तेहि क्षण द्वादस स्रोत[2]।
मूसा को पानी मिल्यो, प्रभुता ईश उदोत* ॥ २२ ॥
और ईश की बहु करतूती[3]। समुझावत हिय करि मजबूती ॥
† स्वामि कहत सब बात तुम्हारी। महा असम्भव जात निहारी ॥
दया करत सब काहुन ऊपर। मानत एक प्रधान गुणाकर[4] ॥
जब अस ईश्वर गड़बड़ करई। तब शुभ कर्म कौन हिय धरई ॥
अरु को त्यागहि अनुचित कर्मा। बढ़हि अधर्म होय नहिं धर्मा ॥
जब यह बात एक रहि जाई। जासों ईश प्रसन्न सदाई ॥
ताके कर्म जौन कछु होई। पावत सुःख अवशि है सोई ॥
का सर्वत्र ईश है नाहीं। जो समुझावत रहत सदाहीं ॥
जब यह कहत करहु मुख जा दिशि। परमेश्वर अवलोकहु ता दिशि ॥

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ५४। २. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ५६। ३. *अल्लाह ख़ास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपना के। मं० १ सि० १ सू० २ आ० ६७। *ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें, क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं। मं० १ सि० १ सू० २ आ० १०१। *और तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाह का है। मं० १ सि० १ सू० २। आ० १०७। † स० २३ से २६। ४. एक पत्थर की शिला में दंडा मारने से १२ झरना निकलना।

दो०—तब किमि क़िबला[1] कोकहत, पश्चिम दिशि की ओर।
अरु पश्चिम मुख करि पढ़त, जो नेमाज़ जन जोर॥३४॥

यदि वह कहहिं हुक्म[2] मोहिं दीन्हों। तौकेहि विधिकर्ता कोचीन्हों॥
हुइ न सकत दुइ एकसँग साधन। दुइ वस्तू न रहहिं यक भाजन[3]॥
* पुनि यक बोलि उठ्यो तेहि काला। तुम जानत नहिं ईसहेवाला॥
भूमि गगन सब कछु उपजावत। जबहिं ईश के मन में आवत॥
केवल यक 'कुन'[4] शब्द उचारत। कर्तब सो न कछू हिय धारत॥
अद्भुत सृष्टि तुरत बनि जाई। ईश्वर की यह ईश्वरताई[5]*॥
†कहु तबस्वामिसुनहुममबाता। पुनि विचार कीजै कछु ताता॥
आज्ञा ईश्वर दीन्ह सुनाई। सृष्टि बनन हित कहकुन भाई॥
काहि सुनायो केहिसुनि लीन्हों। करन हेत काने चित दीन्हों॥
अरु बनि गयो कहा बतरावहु। कारन कवन ताहि दर्शावहु॥
सृष्टि पूर्व जब कछु न बतावहु। केवल ईश्वर को ठहरावहु॥

दो०—जब कोइ दूसर वस्तु नहिं, बनी सृष्टि केहि भाँति।
बिन कारन कोऊ नहीं, बनत न कार्य लखाति॥३५॥

बिना कार्य यह जगत महाना। बन्यो कवन विधि सुन्दर बाना॥
यह तुम्हारि है बालकताई। नाहिन कोऊ उक्ति लखाई॥

---

१. ख़ुदा का घर। २. क़िबले की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ो और यह भी लिखा है चाहे जिधर मुख करो; क्योंकि ख़ुदा का मुख सब ओर है। जब ख़ुदा का मुख है तो एक ही ओर हो सकता है। दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं, इसलिये असंगत है। ३. बरतन। ४. हो जा। ५. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ५-६। † स० २७।

तबपुनि कहत सुनहु ऋषिराई । प्रभुइच्छा सों सब बनि जाई ॥
कहत स्वामि निज इच्छा देखहु । कछुक बनाइ सकत हौ पेखहु ॥
सकत बनाइ न माँछी टाँगा । निज इच्छा में करि अनुरागा ॥
जो तुम कहत ईशइच्छा सों । सृष्टि बनत ईश्वरकर्तब सों ॥
बहुरि कहत ईश्वर सब करई । सर्वशक्तिमन शक्ती धरई ॥
स्वामि कहततनि अर्थ बतावहु । सर्वशक्तिमन को समुझावहु ॥

दो०—जो चाहे सो करि सकत, कहत भयो समुझाय ।
पूछेहु स्वामि बनावई, कहा ईश दुसराय ॥३६॥

कहत भयो अस कबहुँ न होई । बोले स्वामि लखहु प्रभु सोई ॥
गुन अरु कर्म स्वभावविरुद्धा । करि न सकत ईश्वर ह्वै क्रुद्धा ॥
जब कोइ वस्तु बनै जग माहीं । प्रथम पदारथ तीन लखाहीं ॥
एक बनावन वारो होई । जिमि जग कुम्भकार है सोई ॥
दूजे घटनिर्मान के हेता । मृत्तिका कुम्भकार है लेता ॥
तीजे साधन जानहु सोई । जासों घड़ा बनत है वोई ॥
जिमि घट पूरब तीन पदारथ । रहे तहाँ पर हैं वे स्वारथ ॥
तिमिजगपूर्वप्रकृतियककारन । रहत सदा निज गुनको धारन ॥
ताते सत्य बात यह नाहीं । जो क़ुरान बिच परत लखाहीं ॥

दो०—*एक कहत पावनपरम, सुखदायी स्थान ।
नरन हेत निर्मित कियो, काबा यक स्थान ॥३७॥

तुम नेमाज़ के हेत सुहाई । गहहु इष्ट स्थान सदाई ॥
इबराहीम केर आधीना । ईश नेमाज़हेततेहिचीन्हा* ॥

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ११७ ।

† स्वामि कहत का प्रथमनहोई । शुचि स्थान तहाँ पर कोई ॥
प्रथम रह्यो कोउ पावन थाना । तौ पुनि काह बनायो आना ॥
जानि परत परमेश्वर भूल्यो । तुम्हरेहिसमजगभूलनभूल्यो॥
※कहतबहुरिसुनिये ऋषिराई । ईश्वर को जो है सुखदाई ॥
लखहु मूर्खजन हैं जग माहीं । मानत औन दीन[1] को नाहीं ॥
जो मानत ते मोहिं पियारे । अन्तसमयहोवहिंसुखभारे[2] ※॥
दो०—※निश्चय करि हमदेखहीं, फिरतगगनकेबीच ।
मुख तुम्हार हम फेरहीं, क़िबलाकेदिशिखीच॥३८॥
निजमुखफेरहुसकलजन, तुममस्जिद[3]कीओर ।
जहाँ होहु तहहीं पढ़हु, जोनेमाज़जनजोर[4] ※॥३९॥
† स्वामिकहतकससम्भवबाता । मानत जो न दान को ताता ॥
ते सब मूर्ख होहिं केहि भाँती । कहा अधर्मी हैं सब जाती ॥
जो न विचारेहु धर्म अधर्मा । तौ अन्याय सहितसबकर्मा ॥
यह ईश्वर की कस प्रभुताई । जो न बिचारत न्याय कदाई ॥
तुम मूरतिपूजक सब भाँती । कहिबुर्तशिकनभुलावतजाती[5]॥
एक कहत हम क़िबला काहीं । मानत ईश्वर हैं केहुँ नाहीं ॥
अरुतेहिओरजो मुखहमकरहीं । सो क़ुरान आज्ञा उर धरहीं ॥
बिना वेद आज्ञा वे करहीं । मूरतिपूजा में चित धरहीं ॥

---

† स० २८ । १. मुसलमानी धर्म । २. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १२२ । ३. मस्जिदुलहराम । ४. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १३५ । † स० २९, ३० । ५. मूर्तियों को तोड़ना ।

दो०—स्वामिकहतकुछभेदनहिं, दोनहुँ एक समान ।
तुम क़ुरान वे व्यास की, आज्ञा कहत बखान ॥४०॥
यदि तुम वैदिक धर्म बिचारहु । कर्म तासुके निज उर धारहु ॥
तब मूरतिपूजा छुटि जाई । नतरु मूर्तिपूजक अधिकाई ॥
*पुनिकह जो ईश्वरपथ लागी । मारे जात प्रेमअनुरागी ॥
तिनकहँमृतककबहुँनहिंजानहु । जीवितहैसबभाँतिबखानहु* ॥[1]
*अरु ईश्वर दुख देत महाना । जानहु यह अतिही बलवाना ॥
चलहु न तुम शैतान पिछारी । वह तुम्हार शत्रू बलकारी ॥
अवशि कुपन्थ माहिं लै जावै । निर्लज्जता सकलसिखलावै* [2] ॥
†स्वामि कहत है कहा प्रयोजन । मरैं ईशमारग में जो जन ॥
स्वारथहित यह बातविचारी । करहिं लूट बनि अत्याचारी ॥
दो०—यह सिखलायोसबनकहँ, ईशमार्ग बतराइ ।
जाते सब मिलिकेलड़हिं, कोउ नाहिं कदराइ ॥४१॥
यदि दुख देत ख़ुदा सब काहू । परखत पाप पुन्य जन ताहू ॥
तौ पुनि कहा रसूल प्रयोजन । अरुक़ुरानकोआनहिं किमिजन॥
अरु शैतान शत्रु बतलावत । परमेश्वर से सबन डरावत ॥
कहहु बनायो किमि शैताना । रचत प्रपंच रहत जो नाना ॥
यदि यह कहहु परीक्षा हेता । हो अल्पज्ञ ईश तव नेता ॥
यदि शैतानहिं ख़ुदा भुलावत । कहहुख़ुदातब कौन कहावत ॥

---

१. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १४४ । २. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १५१, १५४, १५५ । † स० ३१,३२ ।

सदा अविद्या और कुसंगा। उत्तम कर्म होत हैं भंगा॥
ताते है तुम्हारि जो बाता। महा असंगत दुखमय ताता॥
दो०—*बहुरिकहतईश्वरबचन, सुनहुसकलसमुदाय।
लोहू माँस हराम जो, विधीलखहुचितलाय॥४२॥
जो मुरदार रक्त जग माहीं। और सुअर को मांसबताहीं॥
अरु ईश्वर बिन दूसर नामा। गयो पुकारो बध के ठामा॥
सो हराम सब भाँति बतावा। जानहु यह कुरानकोभावा*[2]॥
†आवत हँसी बात यह सुनिके। मुर्दा कहत कौन को गुनिके॥
होहिं मृतक सब एक समाना। मरहिं कालवशमारहिं आना॥
सुअरमांस यक त्याज्यबतावा। मनुषमांस का खाद्य सुहावा॥
खुदा नाम लै जाकहँ मारहु। तेहिपावनकेहिभाँति उचारहु॥
जगउपकारी जन्तु दुधारे। तिनहिं अकारन जो संहारे॥
कहहु कहा अस ईश्वर होई। जो उपकार लखै ना कोई॥
दो०—ताते यह बातैं कतहुँ, ईश्वर की नहिं होंय।
अरु नहिं पुस्तक ईश की, लिखीं जासु में होंय॥४३॥
*अरु रोजा[3] में जौन हलाला। सुनहु तासु को परम हवाला॥
निज नारीप्रसंग सब करहू। दिवसत्यागिनिशिभोजनकरहू॥
जानेहु ईश करहु तुम चोरी। नारिभोग करिहौ बरजोरी॥

१. अग्राह्य (ग्रहण न किया जाय) निषिद्ध। २. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १५६। † स० ३३। ३. चान्द्रायणव्रत के समान है। चान्द्रायणव्रत में चन्द्रमा की कला के अनुसार मध्याह्न में ग्रासवृद्धि की विधि से भोजन होता है, पर रोज़ा में रात को खूब खाओ, दिन को भूखे-प्यासे रहो। चान्द्रायणव्रत में स्त्री-भोग त्याज्य, पर यह स्त्री-भोग भी बताते हैं।

तातें आज्ञा दीन्ह सुनाई। करहु ताहिसबकोउ[१]चितलाई॥*॥
†बात अनोखी सृष्टिविरुद्धा। जाहि करत सबकरिकेश्रद्धा॥
दिवसत्यागिनिशिभोजनकरहीं। व्रत महँ नारिभोग उरधरहीं॥
और बतावत नारिन खेती। गई खोय इनकी बुधि जेती॥
जो चन्द्रायणव्रत की रीती। तेहि विपरीत करतसबनीती॥
*बहुरि कहतहम मानत सोई। जो परमेश्वर आज्ञा होई॥
छं०—तुम ईशमारग में लड़हु उनसे जो तुमसे लड़त हैं।
जेहि ठौर पावहु मारि डारहु आइ जेते भिरत हैं॥
जौ लगि लड़ौ पुरुषार्थ करिकै कुफ़्र[२] तनिकौ ना रहैं।
यह करहु जेते देशवासी सब मुसल्माँ बनि रहैं॥ ४॥
क़तल[३] से बुरा कुफ़्र है जानि लीजै।
रहे न ज़रा कुफ़्र सो काम कीजै॥
लड़ो इस तरह कुफ़्र का नाश होवै।
बनें सब मुसल्माँ यही काम होवै॥ ५॥
तुम्हारे उपर ज़्यादती जिस तरह से।
करी क़ौम ने तुम करो उस तरह से[४]*॥
†कहा स्वामि ने जो क़ुराँ में ये बातैं।
न होतीं तो करते मुसल्माँ न घातैं॥६॥

१. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १७२। †स० ३४। २. मूर्ति-पूजा आदि। ३. मार डालना। ४. मं० १ सि० २ सू०२ आ० १७४ से १७६, १७८, १७९। † स० ३५।

हमें हिन्दू कहते बने ख़ुद मुसलमाँ ।
यह कैसा धरम और कैसे मुसलमाँ ॥
जो इस्लाम के दीन को नाहिं माने ।
उसे कहके काफ़िर क़तल करना ठाने ॥७॥

दो०—लड़त लड़त नंगे भये, रह्यो नहीं कछु पास ।
करत चाकरी पेटहित, बने बिदेसिनदास ॥ ४४ ॥

सो०—*कहत एक समुझाय, ख़ुदा न राखत मित्र केहु ।
द्वेष करत समुदाय, बनत मित्र ते कबहुँ नहिं ॥४॥

दो०—प्रविशहु तुम इस्लाम में, जो लाये ईमान ।
भोजन देत ख़ुदा सबन, और करत धनवान *[1] ॥४५॥

†स्वामि कहत झगड़ा प्रिय नाहीं । तौ किमि आज्ञा देत सदाहीं ॥
मुसलमान झगड़ा उर धरहीं । तिनहिं मित्र लखि आदर करहीं ॥
यह सब पत्तपात की बाता । नहिं इसलाम धर्म सुखदाता ॥
अरु विन कर्म किये फल देई । पाप पुन्य कछु लखत न तेई ॥
अस ईश्वर तब सुख केहि भाँती । होहिं न किमि क़ुरान जनघाती ॥
याते करत न बहु विश्वासा । त्यागत बहुत क़ुरान की आसा ॥
कहुँ कहुँ कहत बात अति नीकी । लिखी क़ुरान भावती जीकी ॥
*रजस्वला को कहत अपावनि । मासिक धर्म लहैं सुखधामिनि ॥

दो०—सब विचारि ऋतुकाल में, करहु नारि को भोग ।
ईशआज्ञा यह कहत, जो मानहिं सब लोग ॥४६॥

---

१. मं० १ सि० २ सू० २ आ० (१४०, १६३, १६७ । †स० ३६, ३७ ।

जौ लगि शुद्ध न होवे नारी । तौलगि त्यागहिं धर्म बिचारी ॥
शुद्ध होहिं करिके स्नाना । कह्यो जौन विधि ईशविधाना ॥
और कहत जो तुम्हरी नारी । खेती समुझहु तिनहिं विचारी॥
जौन भाँति तुम चाहहु जावहु । जानिआपनी सबअपनावहु*[1]॥
†या महँ कछुक बात है ठीका । और बात सब भाँतिअठीका ॥
जो नारिन खेती बतराई । विषय वासना अधिक बढ़ाई ॥
यह सब झूँठ प्रपंच रचाया । निज स्वारथहित अर्थबनाया ॥
*बहुरिकहत ऋषिवरसुनिलीजै। बातहमारितनिकचितदीजै ॥

सो०—कवन पुरुष जग माहिं, कर्ज देइ जो ईश कर ।
पावहिद्विगुणसराहि, "इष्ट"जानिके देत प्रभु*[2] ॥५॥

दो०—†कहत स्वामि यहबात कस, करज खुदा किमि लेत ।
जेहिनिर्मित जगकोकियो, सबप्राणिनसुखदेत ॥४७॥

तासु कोषमहँ का नहिं रहेऊ । का व्यापार करत सो भयऊ ॥
द्विगुण देइ केहि कारण ईशा । यह देवालियन कर्मनहिं ईशा ॥
यह बिन समझ केरि है बाता । नहिं व्यापारी ईश्वर ताता ॥
जो व्यय करहिअधिक जगमाहीं । पुनि धनहित भरमैसबठाहीं ॥
अस ईश्वर की नहिं है करनी । बालखेलसम जो तुम बरनी ॥
* कहेउ ईमान न लावहु कोई । भये तहाँ पर काफ़िर सोई ॥
ईश चहत जो लड़त न कोई । जो कछुचहतकरतहैसोई*[3] ॥

---

१. मं० १ सि० २ सू० २ आ० २०५ से २०८ । † स० ३८ ।
२. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १२७ । † स० ३१ । ३. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २३५ ।

†स्वामि कहत कहुँ होत लड़ाई। करवावत का है सो साँई॥
दो०—जब स्वतंत्र सब भाँति सों, का करि सकत अधर्म।
यदि करि सकत तो ईश नहिं, अरु जानत नहिं मर्म॥४८॥

यह सब मनुज केर नहिं कर्मा। शान्तिभंगकरिलहहिअधर्मा॥
*और बात यक कहत अनोखी। ईश्वर की प्रभुता जो चोखी॥
गगन भूमि जग जो सामाना। और पदारथ जो हैं नाना॥
सो सब कछु ईश्वर हित लागी। सकल बनायो निज अनुरागी*॥
†अरु यकदेशी ताहि जतावहु। बैठो कुर्सी उपर बतावहु॥
यक देशी ईश्वर नहिं होई। है व्यापक जग ईश्वर सोई॥
*बहुरि कहत काफ़िरन सुनाई। रहे रसूल तहाँ पर भाई॥
ईश पूर्व ते सूरज लायो। ताहि यहाँ पर है दर्शायो॥
दो०—यदि तुम पदवी चहत हो, तौ पश्चिम की ओर।
सूर्य देखावहु सबन कहँ, होत जबै है भोर॥४९॥

यह सुनि काफ़िर भे हैराना। ईश्वरवचन सत्य कर माना॥
निश्चय जानि लीन्ह मन माहीं। पापिन ईश न मार्ग देखाहीं*[2]॥
†स्वामि कहत कस विद्याहीना। जो भूगोल गती नहिं चीन्हा॥
सूरज केहु दिशि जात न भाई। घूमत परिधी रहत सदाई॥
सो खगोलविद्या नहिं जानत। जो यहि भाँति सबन दर्शावत॥
मार्ग न पापिन को देखरावहिं। पुण्यात्मन कहहु कस भावहिं॥

---

† स० ४०। १. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २३७। † स० ४१।
२. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २५८। † स० ४२।

धर्मात्मा धरमपथ चलहीं। बुधि अनुकूलकरमशुभकरहीं॥
जो कुपन्थ में जात सदाहीं। तिनहिं पन्थ देखरावत नाहीं॥
दो०—जो भूले संसार में, तिनहिं देखावहि पन्थ।
और सुनावहु प्रेम सों, भक्तिसहित सदग्रन्थ ॥५०॥

छं०—*कहा जानवर चार को लो निहारी।
हिये बीच पहिचान रक्खो सम्हारी॥
पुनः करके टुकड़ा पहाड़ों के ऊपर।
धरौ एक ही एक लै जाय ता पर॥ ८॥
पुनः तुम जहाँ पर खड़े हो पुकारो।
चले आवेंगे दौड़ते ही निहारो *[1]॥
† कहा स्वामि ने वाह कैसी खोदाई।
देखाता तमाशा मदारी कि नाँई॥ ९॥
इसे कौन इन्साँ कहैगा खुदा है।
खुदाई के कर्मों से बिलकुल जुदा है॥
महा मूर्ख होंगे फँसैंगे वही आ।
न होवे भलाई बुराई सभी जा॥ १०॥

सो०—*बहुरि कहत समुझाय, जेहि चाहे तेहि देत है।
नीति महा सुखदाय, "इष्ट" आपनो जानिकै *[2] ॥६॥

दो०—*क्षमा करहि जाको चहहि, दंड चहहि जेहि देइ।
परमेश्वर बलवान है, वस्तु सकल चित देइ *[3] ॥५१॥

---

१. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २४२। † स० ४३। २. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २५१। ३. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २६६।

†स्वामि कहत वह ईश्वर नाहीं। जो मनचाही करत सदाहीं॥
नीति देत [1]यक कहँ जो होई। अवशि अनीति दूसरन सोई॥
यह सब पक्षपात की बातें। स्वार्थिनसमुझिनिकारीघातैं॥
दंड विधान विचित्र बतावा। लेश न न्याय हृदय बिचआवा॥
निज इच्छा जहँ दंडविधाना। हुइ न सकत ईश्वर केहु आना॥
पाप पुण्य जब ईशअधीना। होय मनुज किमि पापन लीना॥
और अनोखी बात सुनावहु। जो बहिश्त के गुन दर्शावहु॥
सब सुख हैं बहिश्त के माहीं। कहत स्वर्ग हम सबतेहिकाहीं॥

दो०—*नहरें बहति अनूप जहँ, सो बहिश्त अति नीक।
और बीवियाँ तहाँ पर, [1]सुखदाई तन ठीक॥५२॥

सहित पुजारिन ईश निरन्तर। देखत रहत सदा निशिवासर॥
निश्चय यह जानहु सब कोई। दीन इस्लाम खुदा ते होई[2]॥
*करि पुरुषारथ जौन कमाया। देत ईश सब करिके दाया॥
जेहि चाहहि तेहि देत सदाई। छीनि लेत जेहि चाहत भाई॥
चहत जासु तेहि देत बड़ाई। दे अपमान चहै जेहि साँई॥
सब कुछ है ईश्वरआधीना। है वह मालिक जगत प्रबीना॥
रात्रि दिवस बैठत यक ठाईं। मृतक जिलाइ देत सो साईं॥
अन्न देत बहु चाहत जाहीं। अरु उपदेश करत सब ठाहीं॥

† स० ४४, ४५। १. अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लह उनको देखनेवाला है, साथ बंदों के। २. मं० [illegible] सि० ३ सू० ३ आ० १६।

दो०—यवन काफ़िरन को कतहुँ, नाहिं बनावैं मित्र ।
केवल यक इस्लाम को, हिय में राखत चित्र ॥५३॥
क्षमा करहि यदि चहहि वह, ईश हमारो जौन ।
करुणामय निश्चय लखहु, पापक्षमतहै तौन *[1]॥५४॥
†कहत ऋषी यह स्वर्ग कस, वेश्याबन देखराय ।
जासु ग्रन्थ में है लिखा, ईश्वरकृत है नाँय ॥५५॥

जे बहिश्त बिच नारि[2] लखाईं । तहँ जन्मी या कहँ ते आईं ॥
जो प्रथमहिं तिन लीन्ह बोलाई । बिना प्रलय केहि कारन भाई ॥
यदि जन्मीं ते स्वर्ग के माहीं । केहिविधिप्रलयकाललौंरहहीं ॥
अरु तहँ पुरुष नारि द्वौ अहहीं । तौ पुनि यवन जाइ का लहहीं ॥
सदा बहिश्त नारि उपजाई । काहे न दीन्हें पुरुष बनाई ॥
याते न्यायरहित तव ईश्वर । बुद्धिहीन तुम्हरो परमेश्वर ॥
कहहु ईश का तुम्हरोहि होई । तनिक न औरन को है सोई ॥
तुम्हरो धर्म[3] रह्यो जब नाहीं । तब ईश्वर का नहिं तेहिठाहीं ॥

---

१. मं०१ सि० ३ सू० ३ आ०२१ से २४ व २७ । † स० ४६ से ४८ । २. जब बीवियाँ पहले से वहाँ रहती हैं, तो कहो उनका निर्वाह कैसे ? यदि वहाँ पुरुष भी हैं, तो यहाँ से जानेवालों को बीवियाँ कहाँ से मिलेंगी, और जैसे बीवियाँ सदा रहनेवाली बनाई वैसे पुरुष क्यों नहीं बनाये ? क्या ख़ुदा पक्षपाती है जो सिर्फ़ दीन इस्लाम का ही है । ३. इस्लाम के पूर्व १३०० वर्ष के पहले क्या ईश्वरीय मत नहीं था ? इसलिये क़ुरान शरीफ़ ईश्वर का बनाया नहीं है, न क़ुरानी ख़ुदा ख़ुदा है ।

दो०—मृतक न जीवित है सकत, महा असम्भव बात ।
तौ क़ुरान को कौनविधि, मानें सारी जात ॥५६॥

पक्ष करत अति ईश तुम्हारा । एक समान न करत सहारा ॥
तैसेहि समुझावत सब काहीं । जो रसूल तुम्हरे मनचाहीं ॥
जो मम पक्ष करहु सब लोगू । तौ ईश्वर देवै सुख भोगू ॥
यह सब पक्षपात की बातैं । कही स्वार्थिन करिके घातैं ॥
बढ़ै स्वार्थ बुधि जात हेराई । और हृदय की पावनताई ॥
तैसेहि भये रसूल तुम्हारे । मुसलमान को रहत निहारे ॥
रचि क़ुरान सारे बहकाये । संग लिये जो निज मन भाये ॥
*एक कहत सुनिये ऋषिराई । बात फ़रिश्तन एक सुनाई ॥

सो०—मरियम सों यकबार, कहन फ़रिश्ता इमि लगे ।
तुम पावन सुकुमार, बड़ो किया प्रभु ने तुम्हैं ॥७॥

दो०—तुमहिं चीन्हि पदवी दई, सब नारिन सिरताज*[१] ।
†स्वामि कहत अबहूँ कोऊ, करत बात है आज ॥५७॥

छं०—तौ कहहु केहि विधि बात पहिले करत थे बतराइये ।
जो कहहु पहिले पुरुष पावन अब न हैं दिखराइये ॥
ते रहे विद्याहीन सारे मुसलमानी जब भई ।
अब न चल सकती तुम्हारी झूठ युक्ती निर्मई ॥ ११ ॥

१. मं० १ सि० ३ सू० ३ आ० ३[illegible] । † स० ४६ ।

छं०-*कही बात है[1] आइके[2] यक अनोखी।
ऋषी ने समीक्षा करी उसकी चोखी॥
*कहा अब खुदा की मदद क्या यह कम है।
तुम्हारी मदद का फ़रिश्तों का दम है॥ १२॥
सहस तीन साथी बनाये तुम्हारे।
लड़ो काफ़िरों से उन्हीं के सहारे[3] *॥
*है अल्लह सहायक तुम्हारा सदा से।
मरो राह अल्लाह में या क़ज़ा से॥ १३॥
खुदा की दया तुम पै हर ओर से है।
वही कारसाज़ "इष्ट" सरज़ोर से है॥
करो चाहे जो कुछ खुदा को न भूलो।
न धन और दौलत कमाई में फूलो[4]*॥ १४॥

---

१. * उसको कहता है कि हो, बस हो जाता है। काफ़िरों ने धोखा दिया, ईश्वर ने धोखा दिया। ईश्वर बहुत मक्कर करनेवाला है। मं० १ सि० ३ सू० ३ आ० ३६ और ४६। २. जब मुसलमान खुदा के सिवा दूसरी चीज़ नहीं मानते, तो खुदा ने किससे कहा और उसके कहने से क्या हो गया, इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे; क्योंकि बिना उपादान कारण के कार्य नहीं हो सकता। बिना कारण के कार्य कहना मानों बिना मा-बाप के अपना शरीर हो गया। जो धोखा खाता है, छल-कपट करता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता॥ ४०॥ ३. मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० ११०। ४. मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० १३०,१३३,१४०।

†स्वामि कहतवहबनतसहायक। जो इस्लामपन्थ को नायक ॥
तीनि सहस्र फ़रिश्तन लै सँग । लड़त ख़ुदा तुम्हरे शत्रुनसँग॥
तब पुनि अब वह कहँपरसोयो । यवनन अपनो सर्वसु खोयो ॥
छुट्यो राज्य प्रभुता दइ खोई । निज पौरुष सों जीती जोई ॥
मारै मरै ईशपथ जोई। तापर ईश्वर राजी होई ॥
याते प्रभु सब विधि अन्यायी । एक पक्ष करि बनहिं न न्यायी ॥
ईश्वर काम सम्हारहि सारे। कहहु तो काहे सब हैं हारे ॥
पक्षपात करि ईश निहारे । कहि न सकत तेहि ईश्वरसारे॥
दो०—*बहुरि कहत शक्ती तुमहिं, ईश न ऐसी देत ।
पाछिल बात न जानहू, बुधि सारी हरि लेत ॥ ५८॥
पर करि प्रेम जाहि पहिचाने । ताहि सकल विधि अपने जाने ॥
बस लावहु ईमान सदाई । ख़ुदा रसूल दुऔ यक जाई*[1] ॥
†कह तब स्वामिख़ुदा बिनकोई। नहिं लावत ईमान सँजोई ॥
अरु साझी मानत हैं नाहीं । ख़ुदा एक कोउ दूसर नाहीं ॥
पुनि रसूल ईश्वर सँग जोड़त । कही पूर्व की बातैं छोड़त ॥
अरु यह कहहु मदद के हेता । राखत इष्ट रसूल निकेता ॥
अस विधि सों असमर्थ लखाई । हुइ न सकत ईश्वर केहु ठाँई ॥
*बहुरि कहत करिये संतोषा । निजजन यामहँ करहु न रोषा॥
दो०—लड़त लड़ाई तुम रहहु, बिलम्ब न लावहु नेक ।
डरहु सदा अल्लाह सों, राखहु हिये विवेक*[2] ॥५९॥

---

† स० २१,२२ । १. मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० १२९ । † स० २३।
२. मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० १७८ ।

छं०—† कहा स्वामि दोनों लड़ाई लड़ाते ।
रसूल और खुदा नित्त झगड़ा कराते ॥
लड़ाई की आज्ञा जो देता सभी को ।
करें भंग शान्ती डरें ना ज़मीं को ॥१५॥
क्या सिर्फ़ नाम ही से डरना खुदा को ।
न पाओगे छुट्टी बुरों से जुदा हो ॥
※ कहा एक ने बात मानों हमारी ।
जो अल्लह की हद्दें कहीं मैं पुकारी ॥१६॥
रसूल और अल्लाह की बात मानो ।
मिलैगा बहिश्त जाके आनन्द ठानो ॥
वहाँ बहतीं नहरें शहद की प्रमानो ।
न मानेगा जोई[1] लगै न ठिकानो ॥१७॥
किया जायगा हद से बाहर वही नर[2] ।
इमाँ लायगा जो नहीं इस क़ुराँ पर ※ ॥
†कहा स्वामि ने जब खुदा ने किया है ।
शरीक कर मुहमद को हक़ जा दिया है ॥१८॥
बहिश्त और दुनिया ये दोनों जहाँ में ।
फँसाया खुदा को रसूले जहाँ में ॥

† स० ५४ । १. अर्थात् सदा रहनेवाली आग में जलाया जायगा और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख है । २. मं० १ सि० ४ स० ४ आ० १३, १४ । † स० ५५ ।

वह लाशिर्क होवे कहो किस तरह से ।
जो साथी मुहम्मद रहे सब तरह से ॥१९॥
किसी एक में भी न स्वाधीन है वह ।
जो नबियों को दे हक़ पराधीन है वह ॥
जहाँ ऐसी बातें लिखी सो बिचारो ।
वह ईश्वरवचन कैसे होवे निहारो ॥२०॥

दो०—होत न केहु विधि ईश अस, ना तेहि पोथी होत ।
ना क़ुरान से काहु की, उन्नति जगत उदोत ॥६०॥

*बहुरि कहत यकईश्वरन्यायी । सो न होइ तनिकौ अन्यायी ॥
करत भलाई जो जग माहीं । पावततासुदुगुणतेहिठाहीं[1]*॥
†स्वामिकहतजो नहिं अन्यायी ।हमतेहिजानहिंकेहिविधिन्यायी॥
जब अन्याय न उर बिच धरई । तौफलद्विगुणकौनविधिकरई॥
कर्म देखि फल देत न काई । वह है ईश महा अन्याई ॥
*बहुरिकहतसुनियेऋषिराई । ईश्वर की सुनिये प्रभुताई ॥
फेरिदईहैबहुतनकीमति । केहिबिधिसुधरिसकततिनकीगति॥
केहुबिधिसुधरिसकतसोनाहीं । किय गुमराह[2] ईश है जाहीं[3]* ॥

दो०—†स्वामि कहतयहईशहू, है शैतान समान ।
बहकावै सब भाँति सों, राह भुलावत जान ॥६१॥

१. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ३७ । † स० ५६ । २. राह भुलाना । ३. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ८७ । † स० ५७ ।

दो०—भेद कहा दोहून विच, जब हैं कर्म[1] समान ।
खुदा बड़ो शैतान है, वह छोटा शैतान ॥६२॥

※बहुरिकहतनिजहाथनरोकहु। जहँ पावहु तहँ मारहु फेंकहु ॥
मुसलमान नहिं मारन योगू । जो अनजान हनतकोउलोगू ॥
मुसलमान को त्यागहु भाई । मारहु और जिते समुदाई ॥
जानि यवन को जो तुम मारहु । तोदोज़खकी ओरसिधारहु ॥
क्रोध करहि अल्लह तेहिऊपर ।अरुभरिलानतडारहिंतेहिपर※[1] ॥
※ जो हम शिक्षा कहत सुनाई । प्रकट होत जो सनमुख आई ॥
जेहि रसूल सों कियो विरोधा । सन्मुख आयो बनिके योधा ।
तेहिदोज़खमेंसब बिधिडारहुँ । कहत ईश यहसतउच्चारहुँ ※[2]॥

सो०—†कहतस्वामिसमुझाय, पक्षपात की बात यह ।
यवन बचहिं समुदाय, और सबनमारियसदा ॥८॥

छं०—यह अनोखी रीति देखहु स्वर्ग[3] वे पग धारिहैं ।
जे त्यागि केवल यवनदल सब काफ़िरन को मारि हैं ॥
यहि पन्थ में सब देशबासी कहहु केहि बिधि आइ हैं ।
यातेमिलतनहिंसुःखकाहुहिबुधनतेहिअपनाइ हैं ॥२१॥
अरु पक्षपातभरी जो बातें सबन ना समुझावते ।
कोऊ न फँसतो जाल बिच जो युक्ति असनहिं ठानते ॥

---

१. मं० १ सि० ४ सू० ४ आ० ९० से ९२ । २. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ११२ । † स० ५८, ५९ । ३. बहिश्त ।

ताते सकल मिलि खोजकरि[1] इस्लाम को त्यागन करो ।
अरुप्रेमकरि वैदिक धरमनिज हृदयमेंधारनकरो ।।२२।।
*अल्लाह जमा करेगा, दोज़ख में काफ़िरों को ।
जोई करें बुराई, ले जायगा सभी को ।।
अल्ला को धोखा देते, काफ़िर जो हैं जहाँ में ।
उस ही तरह पै देता, धोखा खुदा उन्हीं को ।।
देता हुकुम खुदा है, सुन लो इमानवालो ।[2]
तुम दोस्त मत बनाओ, कबहूँ न काफ़िरों को* ।।
*बस याद रक्खो लोगो, सच साथ लेके आया ।
आया रसूल बनके, देगा बहिश्त सबको ।।
ईमान लाओ उस पर, अल्लाह जो अकेला ।[3]
वह ही रहम करेगा, भावे सभी के दिल को* ।।२३।।

१. * जो अल्लाह फ़रिश्तों, किताबों, रसूल और क़यामत के साथ कुफ़्र करे निश्चय वह गुमराह है। निश्चय जो लोग ईमान लाये, फिर काफ़िर हुए फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ़्र में अधिक बढ़े अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा, न मार्ग दिखलावेगा। मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० १३४, १३५ ।

(समीक्षा) क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है। क्या लाशरीक कहते आना, और उनके साथ बहुत से शरीक भी मानते आना क्या तीन बार क्षमा के बाद क्षमा नहीं करता बार बार कुफ़्र करने से बढ़ते ही हैं ॥ ६० ॥ २. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० १३८, १४१, १४३ । ३. मं० १ सि० ६ सू० ४ आ० १६७, १६८ ।

दो०—†तब स्वामी यहि भाँति सों, कहत सबन समुझाय।
जैसे को तैसा मिलै, तैसेहि माहिं समाय ॥६३॥
जासु ईश धोखा नित करई। तेहि चेला किमि सत उर धरई॥
दुष्टहु यवन होय जो कोई। तासों प्रेम करे हित होई॥
कहहु कौन अस धर्महि माने। जहँ अस होवें पुरुष सयाने॥
जाके गुन अरु कर्म स्वभावा। होहिं श्रेष्ठ पथ पावन भावा॥
नहिं अस धर्म मानिबे लायक। है सब भाँति विरोध विधायक॥
भेजि रसूल कहत निज बाता। हुइ सक केहि विधि ईश्वर ताता॥
ना ईश्वरकृत अहै क़ुराना। उदाहरण दीखत हैं नाना॥
दो०—और हराम बतावहीं, भखहु न तिनको मांस[1]।
और कहत हैं दोष जो, छुटहिं ईश की आस*॥६४॥
अरु धन माँगि बुराई टारे। दैकर लोभ बहिश्त सहारे[2]॥
*और कहत जासों हित करई। तेहि अपराधन उर बिच धरई॥
जेहि चाहे सुख देत महाना। चहत जासु दुख देवै नाना[3]*॥
†निज हित लागि हमारी जानी। कही मुहम्मद ने मनमानी॥

†स० ६१,६२। १. *तुम पर हराम किया गया है मुर्दार लोहू, सुअर का मांस, जिस पर अल्लाह के बिना कुछ और पढ़ा जावे गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से पड़े, सींग मारे, दर्द का खाया हुआ। मं० २ सि० ६ सू० ५ आ० ३। (समीक्षा) क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत से पशु तथा तिर्यग्जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इसलिये यह कल्पना मनुष्यों की है ईश्वर की नहीं, न कुछ प्रमाण है। ६३॥ २. मं० २ सि० ६ सू० ५ आ० १०। ३. मं० २ सि० ६ सू० ५ आ० १६, १८। † स० ६३ से ६५।

कहहु कहा ईश्वर अस होई। जो मनभावे करिहै सोई॥
भेद कहा पुनि कहहु बुझाई। है शैतान खुदा समताई[1]॥
*मानहु तुम अल्लाह की बानी। कहै रसूल जौन सुखदानी *॥
*जो करि चुके आज लौं कर्मा। करत क्षमा अल्लाह अधर्मा॥
क्षमा करहिं नहिं आगिल कर्मा। बदला लेइ ईश बे भर्मा[2] *॥
दो०—†स्वामि कहत जो पापको, क्षमा करत है ईश।
तौ जग में बहु होवहीं, पापी और अनीश ॥६५॥
पाप छोड़ावन की विधी, लिखी जौन में होय।
सो ईश्वरकृत है नहीं, जानि लेहु सब कोय ॥६६॥
बहुत अकारण[3] लिखि दीं बातैं। स्वारथहेत निकारी घातैं॥
*अरु शैतान खुदा की बातैं। करी जौन विधि दोहुन घातैं॥
कहत खुदा हमने उपजावा। बहुरि तुम्हारो रूप बनावा॥

---

१. मं० २ सि० ७ सू० ५ आ० ८६। २. मं० २ सि० ७ सू० ५ आ० ६२। † स० ६६, ६७। ३, *और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूँठ बाँध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूँगा कि जैसे अल्लाह उतारता है। मं० २ सि० ७ सू० ६ आ० ६४। (समीक्षा) इस आयत से सिद्ध होता है कि जब हज़रत मुहम्मद साहब कहते थे कि मेरे पास खुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी इसी प्रकार लीला रची होगी कि मेरे पास आयतें आती हैं, मुझे भी पैग़म्बर मानो। इसके हटाने आर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हज़रत ने यह उपाय किया होगा॥ ६८॥

बहुरि फ़रिश्तन कहा पुकारी। सिजदा[1] करहु आदमहि भारी॥
तेहि क्षण सबन नवायो माथा। यक शैतान उठ्यो नहि हाथा॥
तब रिसियाइ खुदा इमि कहई। किमि न नयो कारण का अहई॥
कहत तबै शैतान बुझाई। हम आदम ते श्रेष्ठ जनाई॥
हमहिं आग से नाथ बनावा। आदम माटी गूँधि रचावा॥

दो०—कहत खुदा अभिमान तेहि, उतर ठीक यह नाहिं।
अब तू बन्धन में पड़हि, यामें संशय नाहिं॥ ६७॥
दिवस क़यामत तक क्षमा, माँगि लई शैतान।
और कहत कबहूँ नहीं, चलहुँ कुपथ को जान॥ ६८॥

तब रिसियाइ बहुरि कह ईशा। तुमहिं निकारहुँ करहुँ अनीशा॥
अरु जो पक्ष तुम्हारो करहीं। तिनहिं सहित हम दोज़ख[2] भरहीं[3]॥
†स्वामि कहत इनकी जो करनी। है शैतान खुदा बिच बरनी॥
दूतहु ने जो कही न मानी। लेहु ईशबल को अनुमानी॥
जो शैतान सबन बहकावत। तौ ईश्वर तेहिको भरमावत॥
अस ईश्वर यवनन को होई। बुध समाज मानहिं नहिं कोई॥
याते अबुध फँसत तेहि माहीं। बुधवर निकट न कबहूँ जाहीं॥
जिन को ईश्वर मनुजसमाना। बातैं करैं लखात अयाना॥

दो०—*कहत एक समुझाइकै, देत क़ुरान प्रमान।
अल्लाह मालिक है सदा, तुम्हरो निश्चय जान॥ ६९॥

१. माथा नवाना (नमस्कार)। २. मुसलमानों की परिभाषा में नरक कहाता है। ३. मं० २ सि० ८ सू० ७ आ० १० से १७ तक।
† स० ६१।

दो०—भूमि गगन छै दिवस में, उपजायो है ईश।
बैठि अर्श बोलत भयो, कहहु सबै जगदीश ॥ ७० ॥[1]

सब दीनता से अपने, मालिक को तुम पुकारो* ।
*कोऊ नहीं ज़मीं पर, झगड़े का ढंग बिचारो ॥[2]
इस शान में फिरो मत, कुछ भी भला न होगा* ।
*यक बार आसा डाला, अजगर बना निहारो * ॥
*बस हमने उस पै भेजा, तूफ़ान मेंह का है ।
टिड्डी व मेढक सारे, लोहू बहा निहारो ॥
बस हमने लेके बदला, दरिया में है डुबोया ।[4]
इसराईल को किया है, दरिया के पार यारो * ॥
*देखैगा तुझको यह ही, जिसने किया उजाला ।
है ओट में पहाड़ी, मिलने को तुम सिधारो ॥
टुकड़ा किया उजाला, परमाणु की शकल में ।[5]
बे होश हो गया है, मूसा जो प्राणप्यारो * ॥
*निज दीनता औ डर से, आवाज़ धीमी करके ।
मन में तको उसी को, सुब शाम नामुचारो * ॥२४॥

१. मं० २ सि० ८ सू० ७ आ० ५३,५४ । २. मं० २ सि० ८ सू० ७ आ० ७३ । ३. मं० २ सि० ९ सू० ७ आ० १०५ । ४. मं० २ सि० ९ सू० ७ आ० १३०,१३३,१३७ । ५. मं० २ सि० ९ सू० ७ आ० १४२ । ६. मं० २ सि० ९ सू० ७ आ० २०४ ।

कुं०—†कहा स्वामि ने बात झूठी तुम्हारी।
छ दिन में बना लोक परकाशकारी ॥
वही जाइ के अर्श पर फिरके सोया।
सो है कैसे व्यापक दयालू अमाया ॥ २५ ॥
कहीं पर कहा है कि झगड़ा मचाओ।
बताया कहीं पर लड़ाई बचाओ ॥
यह दोनों परस्पर विरोधी हैं बातें।
इसी से न चलती तुम्हारी है घातें ॥ २६ ॥
गिरै आसा अजगर बने यह कहानी।
रसूल और अल्लाह दुओ ने यह मानी ॥
सुनो और सोचो कहाँ बुद्धिमानी।
न पैग़म्बरी है न है मुसल्मानी ॥ २७ ॥
जो पाखण्डियों की तरह है डराता।
वह कैसा ख़ुदा है जो सबको न भाता ॥
देखाई जो देता वह व्यापक न होई।
चमत्कार अब क्यों देखाता न सोई ॥ २८ ॥
कहीं धीमी आवाज़ से कह पुकारो।
कहीं बाँग देकर ख़ुदा को उचारो ॥
परस्पर विरोधी जहाँ पर हो बातें।
नहीं सो ख़ुदा की है पुस्तक न बातैं ॥ २६ ॥

---

† स० ७० से ७१ तक।

सो०—*कहहु लुटेरन जाइ, लूट करें सब माल को।
हेत ख़ुदा के लाइ, निकट सु धरहिं रसूल के *[१]॥९॥
दो०—*और काफ़िरन की सदा, जड़ काटहु निज हाथ।
बनहिं सहायक हम सदा, सहस फ़रिश्तन साथ॥७१॥
अवशि काफ़िरन के हिय माहीं। भरहुँ सदा भय संशय नाहीं॥
तिनके गले माहिं तुम मारहु। अरुसबसन्धिनदेखिप्रहारहु*
*अल्लह सदा संग यवनन के। जो लावत इमान है नीके॥
तो तहँ चोरी करहु न कोई। ख़ुदा रसूल वस्तु जहँ होई॥
नाहिं चुरावहु अपनि अमानत। जो सबभाँतिनअपनीजानत॥
अल्लह करत रहत बहु मक्कर। अरुखुशहोतकरतजोमक्कर*[3]॥
†स्वामि कहत यह डाकुनकर्मा। नहिंकोउ पन्थ नहैकोउधर्मा॥
दयाहीन दोऊ देखराहीं। ख़ुदा और पैग़म्बर आहीं॥
सो०—आज्ञा मारन देत, जो हिन्दुन सब भाँति सों।
मुसलमान सुख हेत, बनत सहायकसकलविधि॥१०॥
यह सब पक्षपात की बाता। का ईश्वर यवनन सुखदाता॥
तौ तेहि ईश न कहि सक कोई। केवल पक्षपात जहँ होई॥
यह बड़ि अनुचित बात लखाई। जो दिय संग रसूल मिलाई॥
और ख़ुदा को कौन ख़ज़ाना। जो न करहिं चोरी अनजाना॥

---

१. मं० २ सि० ६ सू० ८ आ० १। २. मं० २ सि० ६ सू० ८ आ० ७, ६, १२। ३. मं० २ सि० ६ सू० ८ आ० १६, २४, २७, ३०।
† स० ७६ से ७८।

हाँ रसूल अरु अपनी थाती[1]। त्यागि करहु चोरी सबजाती॥
अस उपदेश अबुध नर देहीं। करि कुकर्म जग अपयश लेहीं॥
जहँ पर ईश करत है मक्कर। जाइ फँसत जन तिनके चक्कर॥
अस ईश्वर जहँ माननवारे। तिनकी बुधि जग कौन सुधारे॥
दो०—ताते यह पुस्तक नहीं, परमेश्वरकृत होय।
स्वार्थी कपटी छली हैं, निर्मित कीन्ह्यो जोय॥७२॥
छं०—*तब एक बोल्यो सुनहु ऋषि हम दीन[2] बचन सुनावहीं।
तुम लड़हु सारे वेग सों समुहे जो काफ़िर आवहीं॥
बल काफ़िरन में रहहि जौलों लड़हु सब सन्नद्ध हो।
जौलगिमुसलमाँहोहिंनहिंबिनतीकरहिंकरबद्धहो॥३०॥
तौ लगि लड़हु अरु लूट मारहु सब खुदा के वास्ते।
करि भाग पंचम राखिये हज़रत रसूल के वास्ते *[3]॥
*अरु जब फ़रिश्ते काफ़िरन को बस करत हैं देखिये।
मुख पीठ पर मारैं कहैं यह कर्मफल है लेखिये॥३१॥
दो०—हमने उनके पापसों, मारि अधिक दुखदीन।
फ़िराआन के वंश को, ढूँढि डुबायो बीन *[4]॥७३॥
†कहत स्वामि केहि भाँति को, ईश तुम्हारो होय।
जो लड़वावत निशिदिवस, झगड़ालू है सोय॥७४॥

---

१. अमानत। २. पन्थ (मज़हब)। ३. मं० २ सि० ६ सू० ८ आ० ३६, ४१। ४. मं० २ सि० ६ सू० ८ आ० ५०, ५४।
† स० ७६, ८०

छं०—यह मज़हब अनोखा लुटेरों का दल है।
न इन्साफ़ कोई न बुद्धी का बल है॥
ख़ुदा औ मुहम्मद लुटेरों के साथी।
लिया भाग पंचम बने हैं प्रमाथी॥ ३२॥
ग़रज़ ऐसे मज़हब न आते जो याँ पर।
तो ख़ूँरेज़ी हरगिज़ न होती यहाँ पर॥
जहाँ ऐसी पुस्तक ख़ुदाई बताकर।
लड़ावें लुटावें ख़ुदादाद बनकर॥ ३३॥
भई दशा जो कुछ लखी सब मिश्र अरु इँगलैंड की।
तब फ़रिश्ता कित गये उनकी न तनिकौ मदद की॥
यदि सेवकन के शत्रुसँग बदला ख़ुदा ले सर्वदा।
तो कहहु है सोयो कहाँ अब किमि न करता है ख़ुदा॥ ३४॥

दो०—*बहुरि कहत समुझाइकै, नबी ख़ुदा की बात।
भेजि दियो इसलामहित, जो रसूल सुखदात॥७५॥

कहत ख़ुदा यहि बिधि समुझाई। बोलि नबी अस बचन सुनाई॥
देहु जाइ लालच यहि भाँती। लड़हिं लड़ाई जीवन घाती॥
बीस पुरुष यदि यकमत होहीं। दुइशत सम्मुख लड़ि हैं सोहीं॥
वस्तु लूट की सबकोउ खावहु। डरहु ख़ुदा सौं तनि भयमानहु॥
यह अपराध क्षमा सब करिहैं। दोष तुम्हारे उर ना धरिहैं*॥

१. मं० २ सि० १० सू० ८ आ० ६३, ६४, ६८।

†स्वामिकहतयह कवनिहुबाता । न्यायधर्म युत जोहो ताता ॥
शांतिभंग करि करहिं लड़ाई । लूट वस्तु पावन॰ बतलाई ॥
पुनितेहि दयावानकिमि कहहीं । तामहँत्तमाकौनविधिलहहीं ॥
दो०–याको ईश्वर कहहिं कस, महा असम्भव बात ।
भले आदिमिहु ना करत, जग में अस उत्पात ॥७६॥

छं०–※कहा फिर सदा बीच उसके रहेंगे ।
है नज़दीक अल्लाह उसी से कहेंगे ॥
है उससे बड़ा पुण्य यह जान लीजै ।
ऐ ईमानवालो यही मान लीजै ॥३५॥
न पकड़ा पिसर[१] औ बिरादर[२] को अपने ।
करी दोस्ती जो कभी होय सपने ॥
तसल्ली ख़ुदा ने उतारी नबी पर ।
औ लश्कर उतारे कुफ़ारों के ऊपर ॥३६॥
लड़ाई करो ख़ूब ज़ोरों से उनसे ।
जो ईमान लाते नहीं ठीक दिल से ॥
न घबड़ाना हरगिज़ ख़ुदा पीछे उनके ।
चला आता हैमय फरिश्तों के दलके[3]※३७॥

† स० ८१ । १. पिता । २. भाई । ३. मं० २ सि० १० सू० ६ आ० २१, २२, २५, २६, २८)

†कहा स्वामि ने यह हैं झूठी कहानी।
खुदा रहता यक जा पै बातै बखानी॥
तौ व्यापक कहौ कैसे होवे तुम्हारा।
खुदा बैठा लेता नबी का सहारा॥३८॥
जो तब काफ़िरों पर थे लश्कर उतारे।
तो अब क्यों न अपना ख़लीफ़ा निहारे॥
लड़ाई कराके बनाये मुसलमाँ।
धरम जानकर कोई लाया न ईमाँ॥३९॥

दो०–विना लड़ाई के कतहुँ, लाइ न सक ईमान।
असईश्वर को मम हृदय, नहिं तनिकौ सन्मान॥७७॥

✽तबयककहत बहुरिरिसियाई। नहिं इस्लाम बड़ाई पाई॥
हम सब देखत तुम्हरे हेता। पहुँचावहुँ जहँ ईश निकेता[१]॥
निज हाथन सों सबन पठावहुँ। आरसबनकेपापछोड़ावहुँ ✽॥
†कहत स्वामि यह हमरे हेता। पुलिस बनाई ईश सचेता॥
यह अधिकार तुम्हारेहि माहीं। पायो मुसलमान समुदाई॥
और जिते सब होहिं सुकर्मी। तिनहिं नमानहुतनिकौधर्मी॥
महा कुकर्मी तुम्हरे साथी। होत ईशप्रिय महा प्रमाथी॥
अस अंधेर जहाँ पर होई। निकट न बुधवर जावहिंकोई॥

सो०-मोहिं आश्चर्य लखात, किमि मानत बुधवर यवन।
सब अयुक्त दर्शात, महा असम्भव लिखा जहँ॥१०॥

---

† स० ८२। १. मं० २ सि० १९ सू० ६ आ० ५२। † स० ८३।

दो०–लोभ[1] बहिश्त देखावई, अरु बहु बाँधत जाल ।
वह अपने गृह भरत है, सदा लूट को माल ॥७८॥

बहुरि यवन यक कहत सुनाई । जानेहु नाहिं ईशप्रभुताई ॥
धन जीवन ईश्वर हित लागी । अरु रसूल आज्ञा हिय पागी ॥
तिनके हित जग होहि भलाई । औरन हिय दिय मुहर लगाई[2] ॥
ते नहिं जानत ईशप्रभावा । कह्यो जोहमईश्वर कोभावा * ॥
† कहत स्वामि देखहु चतुराई । मतलब सिंधु बने सब ठाँई ॥
जो रसूल की आज्ञा मानहि । लाइ इमान तिनहिं अपनावहि ॥
मानत तिनहि नीक सब भाँती । और बुरी हैं जेती जाती ॥
यह सब पक्षपात की बाता । कहत अबुधनरतसतुमताता ॥

दो०–अरु तिनको अपराध कहँ, हिय न धरत तब बात ।
मुहर लगाई हिये पर, परमेश्वर सुखदात ॥७९॥

---

१. ※ प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमानवालों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें सदैव रहनेवाली बीच उसके और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की और बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा । बस ठट्ठा करते हैं उनसे ठट्ठा किया अल्लाह ने उनसे । मं० २ सि० १० सू० ६ आ० ७२ से ८० । (समीक्षा) यह खुदा के नाम से स्त्री-पुरुषों को अपने मतलब के लिए लोभ देना है । क्योंकि जो ऐसा प्रलोभ न देते तो कोई मुहम्मद साहब के जाल में न फँसता । ऐसे ही अन्य मतवाले भी किया करते हैं । मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया करते ही हैं परंतु खुदा का ठट्ठा करना उचित न था । वह क़ुरान क्या है बड़ा खेल है ॥ ८४ ॥
२. मं० २ सि० १० सू० ६ आ० ८६, ६२ । † स० ८५ ।

छं०–* लो ख़ैरात में माल उनके जो पाओ।
हर एक शुद्ध बाहर व भीतर बनाओ॥
लीं इस्लाम की मोल जाने ख़ुदा ने।
अता की बहिश्तैं बिलेवज में उसने॥ ४० ॥
बस अल्लाह की राह पर तुम लड़ो सब।
मरौ और मारो न देरी करो अब [1] * ॥
† कहा स्वामि ने यह है कैसी ख़ुदाई।
नबी ने अजब चाल जो है चलाई॥ ४१ ॥
ग़रीबों को मरवाना दिल में है ठाना।
ख़ुदा कैसा न्यायी क़ुराँ ने बखाना॥
मुसलमान को स्वर्ग का लोभ देता।
सदा काफ़िरों से है उनको लड़ाता॥ ४२ ॥
* कहा एक ने हुक्म अल्लह का मानो।
जो लाये इमां हों लड़ाई को ठानो॥
सदा काफ़िरों से लड़ो ख़ूब कसकर।
ख़ुदा टालता है बलाओं को हँसकर॥ ४३ ॥
हर यक साल यक बार तोबा कराता।
मगर वह न समझें न उनको सुहाता [2] * ॥

1. मं० २ सि० ११ सू० ९ आ० १०२, ११०। † स० ८६।
2. मं० २ सि० ११ सू० ९ आ० १२२,१२५।

† कहा स्वामि ने जो सिखाई हैं बातैं।
वह विश्वासघाती तुम्हारी हैं घातैं ॥ ४४ ॥
इसी से मुसलमाँ कभी यह न माने।
सदा साथ रहते जो कर्तव्य ठाने ॥
समझ लो हमारी बुराई को छोड़ो।
मिलो आइ के दुखद कर्तव्य तोड़ो ॥ ४५ ॥

दो०—*बहुरि कहत अल्लाह ने, छदिन परिश्रम कीन्ह[१]।
भूमि गगन उपजाइ के, कर्मकरन चित दीन्ह * ॥ ८० ॥

† स्वामिकहतबुधितुम्हरीजानी। लिखी सकल अपने मनमानी ॥
नहिं पदार्थ विद्या हैं जानत। जो यह कहत गगन उपजावत ॥
गगन सदा यहि भाँति लखाई। शून्य प्रगट यह रूप जनाई ॥
अरु वह वाक्य झूँठ हुइ जाई। आज्ञा करे सकल बनि जाई ॥
बहुरि छदिनकेहिभाँतिबतावा। जब आज्ञा पाछिल दर्शावा ॥
अरु जब व्यापक ईश बतावहु। तब पुनि किमि बैठो बतलावहु ॥
अरु जब युक्ति काम हित करई। किमि सर्वज्ञ ताहि उर धरई ॥
ईश तुम्हारो मनुजसमाना। करत कर्म हितजोविधिनाना ॥

दो०—याते यह पुस्तक नहीं, परमेश्वरकृत होय।
अबुध अज्ञजन ने लिखी, जो क़ुरान है सोय ॥ ८१ ॥

* एक कहत शिक्षा अवलोकहु। और दया को भाव विलोकहु ॥
सो सब यवनन हेत बताई। परमेश्वर की नीति सोहाई[२] * ॥

---

† स० ८७। १. मं० ३ सि० ११ सू० १० आ० ३। † स० ८८।
२. मं० ३ सि० ११ सू० १ आ० ४५।

तुम्हरे महँ को नीक देखाई । लेत परीक्षा ईश्वर आई ॥
श्रेष्ठ होइ जो कर्मन माहीं । मृत्यु पिछारी ताहि उठाहीं[1]* ॥
†कहत स्वामि का ईश तुम्हारा । और कोउ नहिं ताकहँ प्यारा ॥
यह है पक्षपात की बाता । शिक्षा दया यवन हित ताता ॥
यवन इमानदार यदि होहीं । तौ शिक्षाविधि तिनहिन जोहीं ॥
औरन को उपदेश न करई । व्यर्थ ईश विद्या चित धरई ॥

दो०—कर्मपरीक्षा करत जब, नहिं सर्वज्ञ लखात ।
और उठावत मृत्यु से, तो अलपज्ञ सोहात ॥ ८२ ॥
टूटि जात प्रकृतीनियम, मरे न जीवहि कोय ।
बनत कलंकी ईश है, नियम तोड़ि दुःख होय ॥ ८३ ॥
*कहत एक ऋषि सों तबै, सुनहु खुदा की बात ।
भूमि गगन सो कहत भे, परमेश्वर सुखदात ॥ ८४ ॥

छं०—कहा भूमि सों किंतु पानी निगल जा ।
करो बस कहा आसमाँ सों यह हो जा ॥
जो आवाज़ सुनते गया सूख पानी ।
यह उँटनी है अल्लाह की जो निशानी ॥ ४६ ॥
सुनो क़ौमवालो इसे छोड़ दीजै ।
फिरै भूमि पर ख़्याल कोई न कीजै ॥
यह खाती फिरै सब जगह खेत सारे ।
रहै घूमती बस ख़ुदा के सहारे[2]* ॥ ४७ ॥

---

१. मं० ३ सि० ११ सू० ११ आ० ७ । † स० ८६,९० । २. मं० ३ सि० ११ सू० ११ आ० ४३,६३ ।

†कहा स्वामि ने यह लड़कपन की बातें ।
जो सुनता गगन और भूमी बताते ॥
रहे पास उँटनी खुदा के बताहीं ।
तो क्या और सारे पशू ना लखाहीं ॥ ४८ ॥
कहो खेत उँटनी से है जो खिलाता ।
खुदा को सवारी में यह ही है भाता ॥
यह बातें न अल्लाह की हो सकेंगी ।
गया है ज़माना न अब बन सकेंगी ॥ ४९ ॥

दो० *बहुरिकहतजौलगिरहत, यह पृथिवी आकाश ।
रहत सदा ते बहिश्तमें, भाग्यवानसुखआस* ॥ ८५ ॥
*निजपितुसोंयूसुफ़कहत, अरे बाप सुनिलेहु ।[2]
हौं देख्यो यक स्वप्नको, ताहितनिकचितदेहु* ॥ ८६ ॥[3]

†स्वामि कहत है लिखीकहानी । जो बहिश्तदोज़खमनमानी ॥
सब कोइ दिवस प्रलयकेमाहीं । जात स्वर्ग अरु नर्कसराहीं ॥
पुनि आकाश भूमि केहि लागो । रहै यहाँ पर बिन अनुरागी ॥
अरुवहसदा कौन विधि रहहीं । लहै सुःख वा दुख को लहहीं ॥
औ जामहँ पितु मातु कहानी । सो कस होवे ईश्वरबानी ॥
जा महँ मनुजन के इतिहासा । लिखेबहुतविधिस्वप्नबिलासा ॥

---

† स० ११ । १. मं० ३ सि० १२ सू० ११ आ० १०४, १०६ । २. ३. यह स्वप्न कथा जो क़ु० मं० ३ सि० १२ सू० १२ आयत ४ से ४९ तक लिखी गई है। † स० १२, १३ ।

*कहत बहोरि ईश वह होई । जेहिबिन खम्भन गगन रचोई॥
बहुरि ईश को देखहु धाई । बैठ्यो गगन उपर दर्शाई ॥
दो०-आज्ञापालक है महा, सूर्य चन्द्र उपजाय ।
भूमि छिपाई जासु ने, सो ईश्वर सुखदाय ॥८७॥
आसमान से बारि उतारा । नाले बहे मिल्यो नहिं पारा ॥
अरु जेहि चाहे भोजन देई । चाहे जासु छीनि सब लेई[1]* ॥
*यहनिश्चय तानहु सब लोगू । ईश देत है सब कहँ भोगू ॥
जेहिचाहततेहिमार्गदिखावत । चहतजासुतेहिमार्गभुलावत ॥
जेहि चाहे तेहि आपनि ओरा । करतध्यानताकोबरजोरा[2]* ॥
*याहिभाँति हम कुराँउतारा । अर्बी माहिं लिख्यो है सारा ॥
अरु यह पक्ष केर किमि होई । ईश्वरइच्छा आई सोई ॥
पहुँचावत सँदेस तुव पासा । हमहिसाबकी करिहैंआसा[3]*॥
दो०-†स्वामिकहततुम्हरोखुदा, नहिंजानतकछुभाव ।
जो पदार्थविद्या लखहु, ताको कौन स्वभाव ॥८८॥
छं०-जो कुछ जानता तो न लिखता कहानी ।
कथा पानी आकाश की जो बखानी ॥
खुदा और शैतान में फ़र्क़ क्या है ।
जो गुमराह दोनों करैं कस्त्र क्या है ॥५०॥

---

१. मं० ३ सि० १३ सू० १३ आ० २, ३, १७, २६ । २. मं० ३ सि० १३ सू० १३ आ० २७ । ३. मं० ३ सि० १३ सू० १३ आ० ३७, ४० । † स० ३४ से ३६ तक ।

जो शैतान है दोज़खी इस तरह से।
तो बेशक खुदा दोज़खी सब तरह से॥
उतारा किधर से क़ुराँ को खुदा ने।
जो अर्बी जबाँ में पठाया खुदा ने॥५१॥
जो सच है कि रहता खुदा आसमाँ पर।
तो हो सकता व्यापक खुदा किस तरह पर॥
रहे एक जा एकदेशी कहावे।
सो किस तरह पैग़ाम सबको पठावे॥५२॥
क़ुराँ का खुदा एक इन्साँ की सूरत।
उसी की तरह काम उसकी ही सीरत॥
समझ लो क़ुराँ को लिखा जिसने ऐसा।
नहीं है वह ज्ञानी है अल्पज्ञ जैसा॥५३॥

*कहत एक ऋषिवर सुन लीजै। प्रभुता मम ईश्वर चित दीजै॥
सूर्य चाँद को जो उपजावा। फिरहि सकल दिशिहु कुमसुनावा॥
मनुज करत निशिवासर पापा। करि अन्याय लहत संतापा* [2]॥
†स्वामि कहत का भूमि न घूमत। भरमत सूर्य चन्द्र यह सूझत॥
तौ दिन रात पता नहिं पावहु। वर्ष अनेक दिवस परमानहु॥
जब निश्चय मानुष है पापी। तब नहिं कोउ यहाँ निष्पापी॥
तब क़ुरान को किमि उपदेशा। करत अहरनिशि लहहु कलेशा॥
पाप करन स्वभाव बनिजाई। सो न कतहुँ धर्मी देखराई॥

---

१. स्वभाव। २. मं० ३ सि० १३ सू० १४ आ० ३३, ३४। स० १७।

दो०—ताते यह पुस्तक नहीं, परमेश्वरकृत होय ।
कहत बहुरि समुझाइकै, हिय धारहु तुम सोय ॥ ८९ ॥

छं०—*बस ठीक करके रूह[1] फूँकू बीच उसके अस कहा ।
अरु करहु तुम साष्टांग[2] स्तुति जानिकै प्रभुता महा ॥
मुझको भुलाया आपने शैतान ने है यह कहा ।
मैं भुलाऊँगा सबों को जो मिलेंगे मुझको जहाँ[3]* ॥ ५४ ॥

†स्वामि कहत जब राह भुलावै । है शैतानतुल्य दिखरावै ॥
जो बिच आदम जीवन फूँका । रूप बन्यो वह कहा प्रभू का ॥
जब वह ईशसमान न भयऊ । निजसमाजस्तुतिकिमि ठयऊ ॥
अरु शैतान भुलावत जबई । दण्ड न दै सक ईश्वर कबई ॥
तब यह दोष ईश बिच आवे । वह शैतानसमान लखावे ॥
*बहुरिकहायहनिश्चयजानहु । ईश्वर के यहवचन प्रमानहु ॥
हम भेजे बहुतक पैग़म्बर । निश्चयसब उम्मत के अन्दर ॥
जब हम चहहिं कहत होजावे । तबहितुरतसबकुछबनिजावे[4]* ॥

दो०—†कहत स्वामि सब जाति पर, भेजेउ जबहिं रसूल ।
तब काफ़िर किमि बनत हैं, अन्य जाति सुखमूल ॥ ९० ॥

आर्यवर्त बिच काहि पठावा । जो फैलायो अपनो भावा ॥
यह सब पक्षपात की बातैं । करिके अधिक निकारी घातैं ॥

---

१. रूह को अपनी भाषा में मुसलमान जीव कहते हैं । २. ज़मीन में गिरकर सिजदा करना । ३. मं० ३ सि० १४ सू० १५ आ० ३९ से ४६ तक । † स० ९८ । ४. मं० ३ सि० १४ सू० १६ आ० ३५, ३९ । † स० ९९ ।

जड़ पदार्थपृथिवीकिमि सुनई। जो कुन सुनै बस्तु सब बनई ॥
महा असम्भव बातैं सारीं। अज्ञानिनसम जोलिखिडारीं ॥
*कहत बहोरि बेटियाँ पावनि। नियति करीअल्लहसुखधामनि॥
पुनि सौगन्द खुदा की खाई। पैग़म्बर भेजे सुखदाई[1]* ॥
*जनसमूह जो तुमहिं लखाई। दी अल्लह ने मुहर लगाई ॥
कान आँख औ हिय के ऊपर। बेसुध भये लगाये मोहर ॥
दो०—सम्पूरन तिनको मिलहिं, निज कर्मन अनुसार।
उनसों कछु अन्याय नहिं, होयन करहु बिचार[2]* ॥९१॥
*और काफ़िरन हेत बनावा। दोज़ख यक स्थान सुहावा ॥
अरु प्रत्येक मनुज गल माँई। कर्मपत्र[3] लिखि दीन्ह लगाई ॥
प्रलय काल[4] पर पुस्तक एका। देखलावहिंगे जो धरिटेका[5]* ॥
†स्वामि कहतकसईश तुम्हारा। करहि कहा पुत्रिनपरिवारा ॥
चाहिय मनुजन हित जग पुत्री। ईश्वर हेत करी किमि पुत्री ॥
झूँठी सदा खात सौगन्दै। झूठो ईश खात सौगन्दै ॥
जब ईश्वर दिय मोहर लगाई। तब अपराध बिना ते भाई ॥
निज इच्छा सो कीन्ह न पापा। तबकिमिसहहिंईशपरितापा॥
दो०—दोज़ख है तिनके लिये, मानत जो न क़ुरान।
दिय बनाइ काफ़िरन हित, घिरे रहहिं अनजान ॥९२॥

---

१. मं० ३ सि० १४ सू० १६ आ० ५६, ६२। २. मं० ३ सि० १४ सू० १६ आ० ११५,११८। ३. आमालनामा। ४. रोज़क़यामत। ५. मं० ४ सि० १५ सू० १७ आ० ७, १२, १६। † स० १०० से १०२।

यह सब पक्षपात की बातैं। करत रहे हौ जो तुम घातैं ॥
ते क़ुरान मानहिं केहि भाँती। ईश्वर मुहर लगाइ सुहाती ॥
कर्मपत्र जब सब गल बाँध्यो। तौ इंसाफ़ नेम कस साध्यो ॥
नहिं काहू गल परत लखाई। कर्मपत्र जो बाँध्यो साँई ॥
यदि यह कहहु देन फल कारन। करत भये यहि भाँति उचारन ॥
तौ किमि नरन नेत्र हिय माँई। किमि दीन्हीं है मुहर लगाई ॥
पाप क्षमा जो होय सुनावा। कहहु कवन यह खेल मचावा ॥
दिवस क़यामत में चित दीजै। निकसहिंजोकिताबसुनिलीजै ॥
कहहु कहा अब तेहि ढिगनाहीं। धरीं कवन सन्दूकन माहीं ॥

दो०–पूर्वजन्म जब है नहीं, यह सोचहु चित लाय।
तौपुनि कर्म की रेख को, लिखी कहहु समुझाय ॥९३॥

बिना कर्म जो है लिखि दीन्हा। तौ अन्यायसकलविधिचीन्हा ॥
सोइ ख़ुदा पढ़ि सबन सुनावे। अथवा और कोउ समुझावे ॥
दीर्घकाल लगि जीवन मारी। यह अन्याय करत है भारी ॥
अरु अन्याय जहाँ पर होई। कहि न सकत तेहि ईश्वरसोई ॥
*बहुरिकहत ईश्वरकी आज्ञा। सुनि न करत है कोउ अवज्ञा ॥
कहत ईश उँटनी है दीन्ही। हर्ष सहित समूद[1] ने लीन्ही ॥
और कहा प्रमान यक एही। बहकावहु तुम पावहु जेही ॥
जासु दिवस हम आज्ञा करहीं। सैनिक[2]सहितसकलउरधरहीं ॥

१. एक पुरुष का नाम है। २. पेशवा (सेनापति)

दो०—मम समीप सो तुरत ही, आवहिं सुनिके बैन[1] ।
दक्षिण हाथन में धरहुँ, कर्मपत्र सुखदैन' ※ ॥ ६४ ॥

छं०—† कह स्वामि हैं आश्चर्यदायक जो निशानी ईश की ।
तिन महँ बताई एक उँटनी उस खुदा के परख की ॥
अरु जब भुलावा देन हित शैतान को समुझावई ।
तौ कहहु केहिविधि दोषयह शैतान के शिच आवई ५ ५

एकहि दिवस न्याय सब केरा । किमिन करत वह है सब बेरा ॥
यह सब बिधि अन्याय[2] लखाई । जो तुम कहत ईशप्रभुताई ॥
ईश्वर की अस नीति न भाई । न्याय करत प्रतिपल सब ठाँई ॥
ताते हुइ न सकत अस ईश्वर । दोष अज्ञता लागै तापर ॥
और जासु पुस्तक के माहीं । वात असंगत अस दर्शाहीं ॥
सो ईश्वरकृत नहिं केहु भाँती । नहिं मानत हैं बुधवर पाँती ॥
साक्षिहेत अवतार[3] जो राखत । अति अज्ञता ईश महँ लावत ॥
※ बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई । है बहिश्त की जो प्रभुताई ॥

दो०—सदा रहन हित बाटिका, शुभ सुन्दर सुखदैन ।
तेहि नीचे नहरैं बहति, जात भरे दोउ ऐन ॥ ६५ ॥

सोने के गहना अति पावन । पहिराये जैहैं तहँ कंकन ॥
हरित वस्त्र पहिरन के हेता । मिलहि तहाँ तकिया सुखहेता ॥

---

१. मं० ४ सि० १२ सू० १७ आ० ५७, ६२, ६६ । † स० १०३ ।
२. एक राजा यह आज्ञा निकाले कि पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे किये आवेंगे तब फ़ैसला किया जावे, यह कितने अन्याय की बात है । ३. पैग़म्बर (रसूल—नबी) ।

सुंदरतखतमिलहितहँसबको । लै बैठहु सुख आनँदजीका[1] ॥
याते श्रेष्ठ पुण्य जग माहीं । मिलहिबहिश्तजहाँदुखनाहीं* ॥
†स्वामिकहतकसस्वर्गबतावा । कह्यो क़ुरान केर जो भावा ॥
बस्तु बहिश्त बीच जो आहीं । कहहु कहा ते याँ पर नाहीं ॥
केवल यक अन्याय विशेषा । स्वर्ग तुम्हार माहिं जो शेषा ॥
जो सब काल सुःख में रहई । सुःखहि को वह दुखसमलहई ॥

सो०—प्रलयकाल के बाद, मुक्त जीव जन्मत सबै ।
पुनर्जन्म अविवाद, सिद्ध होत सब भाँति सों ॥ ११ ॥
* बहुरि कहत यहि भाँति, ईश्वर की प्रभुता लखहु ।
मार्‍यो तिनहि सजाति, करत रहे अन्याय जे ॥ १२ ॥

और प्रतिज्ञा मारन हेता । करिलीन्हीं है सबनसचेता[2]* ॥
† कहहु कहा पापी सब कोऊ । रहत ग्राम बिच हैं जन जोऊ ॥
पीछे करत प्रतिज्ञा जोई । सो सर्वज्ञ कतहु नहिं होई ॥
कारन जब देखत अन्यावा । तबहि प्रतिज्ञा करि ठहरावा ॥
याते दयाहीन देखराई । ईश तुम्हार विचारहु भाई ॥
*बहुरिकहतऋषिवरसुनिलीजै । तनि ईश्वर आज्ञा चित दीजै ॥
जो कछु पुत्र रहे तेहि ठाँई । धर्मात्मा मातु पितु भाई ॥
भय वश यह सोचत सो भयऊ । कुफ़ माहिं पकड़न हियठयऊ ॥

---

१. मं० ४ सि० १२ सू० १८ आ० ३० । † स० १०४ । २. मं० ४ सि० १५ सू० १८ आ० ५७ । † स० १०५ ।

सो०—गयो तहाँ नगिचाय, सूरज डूबत जहाँ पर।
डूबत देख्यो भाय, कीचड़ के चश्मान[1] में ॥ १३ ॥

बोलि कह्यो यक[2] सों यहि भाँती। यहडौलड़[3] तरहत दिनराती[4]॥
अरुनिजपुस्तकमाहिं निहारहु। मरियमजीवनतनिक विचारहु॥
जब मरियम पूरब दिशि जाई। निज मंदिर बिच बैठत आई॥
लागि गयो पर्दा तेहि ठाँईं। तब हमने निज रूह पठाई॥
सो यक पुष्ट मनुज बनि गयेऊ। तेहिक्षणमरियमयाविधिकहेऊ॥
मैं तो शरण तुम्हारी आई। दयावान पावत तुम भाई॥
कहन लगा मोहिं ईश पठावा। देहुँ तुम्हहि यक पुत्रसोहावा॥
केहिविधिममसुतहोइसोहावन। जब न छुयो हमने मानुषतन॥
हमनकरहिंकोउअनुचितकामा। करहिं सोपावहिंदुःखललामा॥

दो०—तेहि सँग गर्भित भई सो, मरियम अति सुकुमार।
संग गई ताके भवन, जहँ जंगल विस्तार[5]॥ ६६ ॥

† स्वामिकहतकसईशतुम्हारा। जो भयभीत होत निशिवारा॥
का भूगोल खगोल न जानत। जो सूरज[6] कीचड़ बिच मानत॥
अस विद्याविरुद्ध जहँ बातैं। और देखातीं बहुतै घातैं॥

१. सोते, जहाँ से पानी निकलता है। २. एज़ुल क़रनैन एक व्यक्ति का नाम है। ३. याजूज—माजूज। ४. मं० ४ सि० १६ सू० १८ आ० ७८, ८४, ९२। ५. मं० ४ सि० १६ सू० १९ आ० १५ से १९ तक और २१। † स० १०६, १०७। ६. जो सूरज को प्रातःकाल एक झील से निकलना और शाम को कीचड़ के चश्मे में डूबना बताते हैं।

सो न ईशकृत पुस्तक होई। कहि क़ुरान समुझायो जोई ॥
तुम्हरे जाल अबुध नर फँसहीं। बुधवर सदा देखिके हँसहीं ॥
और फ़रिश्तन को बतलावत। रूहखुदा की कहि गोहरावत ॥
रूह शरीर संग है भाई। अथवा तनते पृथक लखाई ॥
यह अन्याय लखो नहिं जाई। बालकुमारी जाइँ सताई ॥
दो०—तेहि इच्छा के विरुद्धतव, ईश्वर इच्छा जान।
गर्भाधान कियो तहाँ, ईश रूह[1] बलवान ॥ ९७ ॥

और बहुत अश्लील कहानी। लिख्यो नाहिं लज्जा को मानी ॥
※ और सुनहु ईश्वर की बानी। कही जौन करिबे को ठानी ॥
नहिं देखेउ तनि नयन उघारी। पठवा है शैतान सम्हारी ॥
बहकावहिं काफ़िरन बनाई। ईश्वरआज्ञा दी समुझाई[2] ※ ॥
† पठवत ईश जबै शैतानहिं। दोष कहा काफ़िरनबखानहिं ॥
हुइ न सकत तिनको कछु दंडा। अरु शैतान न पावहिं दंडा ॥
कारन ईश्वर आज्ञा करई। तब शैतान कर्म उर धरई ॥
ईश न्यायकारी सब काला। नरक तासु फल कौन हवाला ॥
त्यागे न्याय होत अन्याई। कहत ताहि पापी सब भाई ॥
दो०—※एक कहत निश्चय सुनहु, परमेश्वर की बात।
क्षमा करत उन जननपर, कहतजो तोबा[3] तात ॥ ९८ ॥
लाइ इमान करहि शुभ कर्मा। मारग सो पावत बे भर्मा[4] ※ ॥

---

१. फ़रिश्ता। २. मं० ४ सि० १६ सू० १६ आ० ८१। † स० १०८।
३. तोबा इनका क्षमावाची वचन है। ४. मं० ४ सि० १६ सू० २० आ० ७८।

और बहुत शङ्की[1] तेहि पासा। जासों करत रहत सब आसा॥
*ईश करत स्तुति बहु भाँती। सूर्य चाँद अरु तरुवर जाती॥
कंगन मिलहिं वहिश्त के माहीं। पहिरहु मोती तहँ हर्षाहीं॥
वस्त्र रेशमी पहिनन हेता। रहहु तहाँ बनिके सब नेता॥
अरु गृह स्वच्छ हमारो राखहु। करहिपरिक्रमाजेहिजनभाषहु॥
भेंट धरहिं घूमहिं चहुँ ओरा। बन्यो जो घर प्राचीन गँभीरा॥
रटहिं सदा ता प्रभु को नामा। अल्लहकहतसकलसुखधामा*[2]

दो०—†स्वामि कहत जो नरनके, क्षमा करत हैं पाप।
याते पाप सदा बढ़त, रहत न भय संताप॥६६॥

अरु तुमने जो स्वर्ग बतावा। कंगन तहँ सबको पहिनावा॥
राजभवन सम स्वर्ग तुम्हारा। अधिक न कोऊ काज निहारा॥

१. * और किये हमने बीच पृथ्वी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावें। मं० ४ सि० १७ सू० २१ आ० ३०। * और शिक्षा दी हमने उस औरत को और रक्षा की उसने अपने गुह्य अंगों की बस फूँक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को। मं० ४ सि० १७ सू० २१ आ० ८८। (समीक्षा) यदि क़ुरान का बनानेवाला पृथिवी का घूमनादि जानता तो यह कभी न लिखता। पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती फिर भूकम्प क्यों होता है ? ऐसी अश्लील बातें खुदा की क्या किसी सभ्य मनुष्य की भी नहीं हो सकतीं। सभ्य मनुष्य के सामने यह बातें नहीं कह सकते और लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है। ऐसी बातों से क़ुरान दूषित होता है। यदि अच्छी होतीं तो प्रशंसा होती, जैसे वेद॥ ११०,१११॥ २. मं० ४ सि० १७ सू० २२ आ० १६, २३, २५, २८, ३३। † स० १०६ से ११२ तक।

जब आपन गृह ईश बतावे। अरु परिकरमा सबन करावे॥
तब वह एकहि स्थल रहई। भेंट सहित सब आनँद लहई॥
सो न होहि किमि मूरतिपूजन। करत रहत तुम जाको खंडन॥
याते तुम सब एक समाना। हिन्दू जैन सहित मत नाना॥
या विधि सो न ईशकृत पोथी। भरी असम्भव बातें थोथी॥
*एक कहत जब वह दिन आवे। जाहि क़यामत कहि गोहरावे[1]॥
दो०—सबहि उठाये जायँगे, दिवस क़यामत बीच*।
*साक्षी सब कोउ देइगा, भरी सभा के बीच॥१००॥
छं०—हैं हाथ पाँव अरु अंग जेते देहिं साक्षी आइकै।
जेहि भाँति सों जो पाप कीन्हों ताहि भाँति बताइकै॥
है नूर[2] सुन्दर ईश को कंडील सम आकाश में।
चमकै देखावे रोशनी परकाश है सब नूर में॥५६॥
अरु चहत जाको तेहि देखावे मार्ग शुभ निज नूर से[3]*।
*उत्पन्न कीन्हों है पशुन को सब ख़ुदा ने वारि से॥
है तासु में यक जन्तु[4] ऐसा जो चलत है पेट से।
तेहि कहत हैं स्तेन सब कोइ डरत हैं सब भेंट से॥५७॥
आज्ञा तुम रसूल की मानहु। तौ फिरि दया होय अस जानहु*[5]॥
†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। दिवस क़यामत जो दर्शावहु॥
कहहु मृतक केहि स्थल माहीं। रहत क़बर बिच या केहु ठाहीं॥

---

१. मं० ४ सि० १८ सू० २३ आ० १६। २. प्रकाश। ३. मं० ४ सि० १८ सू० २४ आ० २३, ३४। ४. साँप। ५. मं० ४ सि० १८ सू० २४ आ० ४४, ५१, ५३, ५५। † स० ११३ से ११५।

पुन्यात्महु महा दुख भोगत । तनुसङ्गि जातनाहिं तहँ सोवत॥
हाथ पैर इन्द्रिय समुदाई । लखहु तिनहिं जड़रूप सदाई॥
कहहु कवन विधि देहिं गवाहीं । विरुद्ध सृष्टिक्रम झूँठ लखाहीं॥
उपमा नूर देत जो भाई । का विद्युत या आग लखाई ॥
ईश माहिं उपमा यह नाहीं । घटि न सकत जानहुकेहु ठाहीं॥
दो०—यह उपमा साकार में, घटत रहत सब काल ।
निराकार में लगत नहिं, उपमा केहू काल ॥१०१॥
पंचतत्त्वमय सकल शरीरा । एक तत्त्व से बनत न कीरा ॥
तब वह कौन क्रिया बतरावहु । एक बारि सों बदन बनावहु ॥
विद्यारहित सकल यह बातें । समुझाईं करिके बहु घातें ॥
कह रसूल की आज्ञा मानहु । शिर्क खुदा सँगआप लगावहु॥
पुनि तेहि लाशरीक किमि कहहू । बचन क़ुरान बीच जो लहहू॥
* बहुरिकहनयकऋषिसोंलागा । जोनिज धर्म माहिं अति पागा॥
जासु दिवस कटि है आकाशा । मेघ सहित जो रहै विकाशा ॥
ता दिन उतरि फ़रिश्ता आवैं । ईश्वर की आज्ञा जब पावैं ॥
दो०—और काफ़िरन का कहा, मत मानहु सब कोय ।
झगड़ा अधिक बढ़ावहू, सदा काफ़िरन सोय ॥१०२॥
छं०—उनकी बुराई को बदलता है भलाई से सदा ।
अरु करहि तोबा जो कोऊ शुभ काज में है रत सदा ॥
वह अवशि आवत है ख़ुदा की ओर निश्चय जानिये[1] ।
यहिभाँतिहमरोधर्मसबविधि "इष्ट" हैसुखदानिये *॥५८

1. मं० ४ सि० १६ सू० २५ आ० २४, ४१, ६७, ६८ ।

†कहतबस्वामिबातसच नाहीं। फटतगगनकेहुनाहिं लखाहीं॥
मूर्तिमान जो वस्तु लखाई। फटत फटत यह है दर्शाई॥
यह तुम्हरी क़ुरान जो पुस्तक। शान्तिभंग की है उत्पादक॥
नित प्रति झगड़ा रारि बढ़ावे। पक्षपात सब विधि सिखलावे॥
ताते धार्मिक अरु विद्वाना। धर्मग्रन्थ नहिं याको माना॥
देखी न्याय अनोखी रीती। पाप पुन्य बदलन की नीती॥
कहहु कहा अनाजसम यहहू। बदलत रहत सदा पलछणहू॥
छुटहि पाप तोबा उचारे। काहेक कोउ अपराध निहारे॥

दो०—*कहत वही[1] हमने करी, है मूसा की ओर।
और लै चलहु तहाँ मोहिं, जहँ सेवक हैं मोर॥१०३।

है जग मार्ग देखावनवारो। ईश एक बलवान उचारो॥
क्षमा करहिं अपराध हमारे। दिवसक़यामतकेदिनसारे[2]*॥
†स्वामि कहत किमि वहीपठाई। जो तुरतै मूसा ढिग आई॥
प्रथम भये दाऊद अरु ईसा। और मुहम्मद साहब ओसा॥
भेजा वही न थी सो पूरन। बहुरि पठाई जो सम्पूरन॥
अब यह कहहु कथन है साँची। सबन आपनी पोथी बाँची॥
होहिं सत्य तीनहु यदि भाई। तौ क़ुरान मिथ्या दर्शाई॥
पारस्परिक विरोध विलोकहु। याते ईश्वरकृत नहिं एकहु॥

---

† स० ११६। १. पुस्तक। २. मं० ५ सि० १८ सू० २६ आ० ५०, ५१। † स० ११७।

और लिखीं यहु तक मनमानी[1]। महाअसम्भव[2] अकथकहानी॥
छं०—*कह आयु पूरी कीन्ह मूसा दुष्ट हैं क्षणमें हन्यो।
पुनि कहत हे प्रभु क्षमा कीजै न्याय नहिं हमसे बन्यो॥

---

१. * नहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सचों में से। कहा यह उँटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक बार। मं० ४ सि० १६ सू० २६ आ० १५०, १५१। (समीक्षा) भला इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से उँटनी निकले। वे लोग जंगली थे, जिन्होंने यह मान लिया कि उँटनी की निशानी देना। केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वर-कृत नहीं। यदि यह किताब ईश्वर-कृत होती तो ऐसी असम्भव बातें उसमें न होतीं॥ ११८॥ २. * ऐ मूसा, बात यह है कि मैं अल्लाह हूँ ग़ालिब। और डाल दे असा अपना इस जब कि देखा उसको हिलता था मानों कि वह साँप है। ऐ मूसा, मत डर निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर। अल्लाह नहीं कोई माबूद—परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर। मं० ४ सि० १६ सू० २७ आ० ६, १०। *और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है, तू उनका जमे हुए और वे चले जाते हैं। चलते हुए मानिन्द बादलों के कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को निश्चय वह ख़बरदार है उस वस्तु के करते हो। मं० ४ सि० २० सू० २७ आ० २८। (समीक्षा) अब देखिये अपने आप बड़ा अल्लाह ज़बरदस्त बनता है मगर शैतान बाग़ी को न पकड़ सका न दंड दे सका और पहाड़ों को चलनेवाला बताता है। अपने मुँह अपनी प्रशंसा करता है यह श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं तो ख़ुदा क्योंकर हो सकता है तब भी जंगली मनुष्यों में ख़ुदा बन बैठा और यह पुस्तक (क़ुरान शरीफ़) ख़ुदा और हज़रत मुहम्मद की तारीफ़ों से भरी है।

सुन तेहि क्षमा करि दीन्ह ईश्वर जो दयालू है महा।
सोईजगतउपजायदियतेहिबुद्धिवरमालिककहा[1]*॥५९॥
†कह स्वामि है धनि ईश तुम्हरो दोष की क्षमता करैं।
हत्या करैं जन मारि कोऊ तासु को दूषण हरैं॥
यह कहहु का अन्यायकारी ईश तुम्हरो है नहीं।
जो चहत है सोई करै का हुइ सकत मालिक वही॥६०॥

दो०—कहहु कहा संसार में, बुधिवर औ बुधिहीन।
तेहि इच्छा से होत सब, जगत सुखी अरु दीन॥१०४॥

*आज्ञा दई सदा हित करनी। मातु पिता सेवा चित धरनी॥
जो दोउ झगड़ा तुम सन ठाने। कोउ बात कबहूँ ना माने॥
मेरि ओर हुइ कहहिं जो बाता। मानि लेहु हित सों सो ताता॥
पठयो नूह क़ौम की ओरा। रहे तहाँ सुनि लीजै ब्योरा॥
नव सहस्र नव सहस पचासा। रहहित हाँकरिजीवनआसा[2]*॥
*प्रथम बार जग को उपजावे। अल्ला दोसरिहु बार बनावे॥
आवहिदिवसक़यामत जबहीं। हों निराश पापीजन तबहीं॥
बहुरि इमान जौन जन लाये। अरु शुभ काम हिये में भाये॥
तिनको हो शृंगार नवीना। बिच उद्यान[3] तिनहिंसुख दीना॥
भाव सकल जो जानत नाँई। कारन अल्लह मुहर लगाई[4]*॥

. १. मं० ५ सि० २० सू० २८ आ० १४, १५, ६६। † स० १२१। २. मं० १५ सि० २० सू० २१ आ० १७, १३। ३. उद्यान का ही अपभ्रंश अदन बन गया। संस्कृत में उद्यान बाग़ को कहते हैं। ४. मं० ५ सि० २१ सू० ३० आ० १०, ११, १४, ५०।

छं०—†कह स्वामि जो पितु मातु आज्ञा मानिबो तुमने कह्यो।
सो ठीक है अरु सब अनर्गल सुनत हिय दुखभय भयो ॥
यक सहस लगि आयू बताई अब न कोऊ लखि परै।
हैं झूँठ तुम्हरीबातसबबुधिवरनकोऊहिय धरै ॥६१॥

दो०—कहहु कहा द्वै बार ही, जगत बनावत ईश।
फिर चुप को बैठो रहत, का हुइ जात अनीश ॥१०५॥
हों निराश सब कोउ जन, प्रलयकाल के बीच।
जे पापी सब भाँति सों, कुटिल कर्म गति नीच ॥१०६॥

पापी कौन तुम्हारी जानी। कहत रहत हौ जो मनमानी ॥
तुम्हरी जानि यवन सब साँचे। पुन्यात्मा धर्मव्रत राँचे ॥
यह है पक्षपात की बाता। पन्थ तुम्हारोसबहि न भाता ॥
जब शृंगार बहिश्त में होई। कहहु यहाँ का है नहिं सोई ॥
अरु जब दीन्हीं मुहर लगाई। तबकेहिविधिबहिश्तवहजाई ॥
*एक कहत आयत यह देखहु। पुस्तकहिकमतलिखीविलोकहु॥
बिन खम्भा अकाश उपजायो। भूमी उपर पहाड़ गिरायो ॥
और निहारत प्रभु की रीती। प्रविशतदिनबिचनिशियहनीती

दो०—और निशा में दिवसको, करत प्रवेश दयाल।
अद्भुत शक्ति विलोकिये, है प्रभु की विकराल ॥१०७॥
अल्लह की नियमत भरी, चलतिनदीबिचनाव।
ताकि देखावै सबन को, निजचिन्हौरिअतिचाव*[१] १०८॥

---

† स० १२२, १२३। १. मं० ५ [illegible] सू० ३१ आ० १, ६, २८, ३०।

†स्वामिकहत वैद्यक की पोथी। है सोऊ सबबिधिसों थोथी॥
विद्याविरुद्ध[1] लिखी बहु बातैं। इनहु चलाईं अपनी घातैं॥
याते तुम समुझहु मन माहीं। है क़ुरान ईश्वरकृत नाहीं॥
*कहतबहुरिईश्वर की बानी। सब प्रकार सों जो गुनखानी॥
लाभ तिनहिं नहिं तनिकौहोई। भजहि मृत्यु से जो नरकोई॥
और नबी की नारिन टेरी। कहत जो कोऊ आवहु नेरी॥
सो प्रत्यक्ष लाज तजि देई। दुर्गुण किये जायँगे तेई॥

दो०—पाप देइ तिनकोअवशि, ईश्वरसहजस्वभाव*[2]।
†कहतस्वामियहलखिपरत, नबीकेर जो भाव॥१०६॥

है अपने मन खूब बिचारी। लड़हिं युद्ध महँप्राणनिकारी॥
नारिन को जब लागहि पापा। नबी बचहिं किमिलगैंनपापा॥
कौन कहाँ को न्याय बतावहु। जोकछुसत्यहोय समुझावहु॥
*और कहत जगकी जे नारी। घर अपने में रहहु सम्हारी॥
आज्ञा पालहु प्रीति दृढ़ाई। अल्लह औ रसूल सुखदाई॥

† स०१२४, १२५। १. आकाश बिना खम्भा के कैसे बना पृथिवी पर पहाड़ों का गिराना दिन में रात का प्रवेश रात में दिन का प्रवेश नियामत की भरी नावें दौड़ाना महाअसंभव विद्याविरुद्ध बातें लिखी हैं। क्या खुदा है जो आसमान पर चढ़ता है उतरता है इससे तुम्हारा खुदा एकदेशी है जो एकदेशी है वह खुदा नहीं हो सकता और दोज़ख़ भरने को डराया करता है दुख देकर तमाशा देखाना चाहता है इत्यादि बातें भरी पड़ी हैं। २. मं० ५ सि० २१ सू० ३३ आ० १६, ३०। † स० १२६।

[1]भोग चुक्यो जब ज़ेद सुनारी। भयो नबी सँग ब्याह सुधारी[2]॥
अल्लह ने यह रीति चलाई। लावहिं जे इमान सुखदाई॥
ऐसे नबिह न हो स्त्री दुख। ब्याहिदीन्हजेहिपावहिंबहुसुख॥

छं०—नबी के उपर नाहिं तंगी किसी की।
जो हैं वस्तु जग में सबी हैं उसी की॥
मुहम्मद नहीं बाप मुर्दे का होता।
समय आपने को वृथा जौन खोता॥ ६२॥
नबी को हलाल स्त्रियाँ वह सबी हैं।
बिना मेहर के प्रेम करती जबी हैं॥
खुशी से जिसे चाहे तू छोड़ देवे।
जिसे चाहे अपनी तरफ़ खींच लेवे॥ ६३॥
सुनो और लोगो इमाँ लानेवालो।
नबी के घरों में न जाना सँभालो[3]॥
†कहा स्वामि अन्याय की हैं ये बातें।
फँसाने को दुनिया निकारी हैं घातें॥ ६४॥

१. जब अदा कर लो ज़ेद ने हाजत। यह ज़ेद हज़रत का मुतबन्ना बेटा था। २. ख़ुदा ने नबी के संग ब्याह कर दिया, ताकि ईमान-वालों को तंगी न हो। बीच बीवियों के लैपालक के उनके जब अदा कर ले, उनसे हाजत और है आज्ञा ख़ुदा की की गई। ३. मं० ५ सि० २२ सू० ३३ आ० ३२, ३७, ३८, ४०, [illegible] ४७, ४८, ५०। † स० १२७।

रहें नारियाँ क़ैद में जिस तरह से।
तो इन्सा रहे क्यों नहीं उस तरह से ॥
भला नारियों पै ग़ज़ब यह है ढाया।
न मिलती हवा शुद्ध तुमने सताया ॥ ६५ ॥

सो०–के तो है जग पाप, ब्याहकरैसुतनारिसँग।
होत नाहिं संताप, नबी और अल्लाह को ॥१४॥

दो०–जहाँखुलेव्यभिचार की, ईश्वर आज्ञा देत।
जेहिचाहे तेहि सँगरमें, जेहिचाहे तजिदेत ॥११०॥

कहहुकवन बिधि ईश्वर होई। किमि ईश्वरकृत पुस्तक सोई॥
*औरकहतपुनितनिचितदेहू। प्रभु के और वाक्य सुनि लेहू॥
दुःख न कबहुँ रसूलहि देहू। नबी नारि सँग करहु न नेहू॥
अल्लह निकट पाप यह भारी। करहुनतुममवचनविचारी*॥
†स्वामिकहतकसबातविचारी। तकै न कोउ रसूल पिछारी॥
जो कछु लिखा विलोकहु तेही। पक्षपातयुत देखहु जेही॥
मुसलमान से कछु ना कहहीं। औरसबन को मारन चहहीं॥
बिन शिक्षा सब पशूसमाना। मतलब सिन्धु बनायो बाना॥

दो०–*अरु अल्लह वह पुरुष है, भेजत पवन महान।
मेघ उठावत रहत वह, बरसत जाइ जहान ॥१११॥

और जिलावत मृतक सदाई। लेत निकारि क़बर से भाई॥[२]
और बहिश्त माहिं जो रहहीं। ते कबहूँ नहिं रोगकोलहहीं*॥

१. मं० ५ सि० २२ सु० ३३ आ० ५०, ५४। † स० १२८।
२. मं० ५ सि० २२ सू० ३५ आ० ९, ३५।

†नहिं पदार्थविद्या यह जानत । वायु पठायो ईश्वर मानत ॥
मृतकहुँ नहिं जियत जियाये । चाहे मरे क़बर से लाये ॥
नारि पुरुष जहँ रहत घनेरे । अवशि रोग होवें तिन केरे ॥
ईश्वर क़सम क़ुरा की खाई । कहत नबी को बात सुनाई ॥
अस बातैं जेहि पुस्तक माहीं । सो ईश्वरकृत कबहूँ नाहीं ॥
*कहत बहुरियक ऋषिसों बचना । श्रेष्ठ बताइ धर्म को अपना ॥
छं०—भरि शुद्ध पात्र फिराइ ऊपर लाइके है धरत जो ।
आनन्ददायक श्वेत मदिरा मद्यपिन[२] के अर्थ जो ॥

† स० १२६ । १.*निश्चय तू भेजे हुओं में से है उस पर मार्ग सीधे के उतारा है ग़ालिब दयावान् ने । मं० ५ सि० २३ सू० ३६ आ० १,२ । (समीक्षा) यदि क़ुरान ख़ुदा का बनाया होता तो क़सम क्यों खाता । यदि नबी ख़ुदा का भेजा होता तो अपनै लैपालक बेटा की स्त्री पर क्यों मोहित हो जाता । यह केवल कथनमात्र है कि क़ुरान के माननेवाले सीधे राह पर हैं । सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपातरहित न्यायाचरण करना । इसलिये अपने मुँह अपनी बड़ाई अच्छी नहीं ॥ १३० ॥ * और फूँका जावेगा बीच सूर के बस नागहाँ वह क़ब्रों में से मालिक अपने की दौड़ेंगे । और गवाही देंगे पाँव उनके साथ उस वस्तु के कमाते थे सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसका जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु का यह कि कहता वास्ते उसके कि हो जा बस हो जाता है । मं० ५ सि० २३ सू० ३६ आ० ४८, ६१, ७८ । (समीक्षा) अब सुनिये ऊटपटाँग बातें पग कभी गवाही दे सकते हैं । ख़ुदा के सिवा उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी, किसने सुना ? और कौन बन गया ? यदि न थी तो यह बात झूठी या ख़ुदा ने सब कुछ बना दिया यह झूठी ॥ १३१ ॥ २. शराब पीनेवाले ।

अरु बैठती हैं निकट सुन्दर आँखवाली नारियाँ ।
है आँख नीची रहत तिनकी स्वर्ग में जो नारियाँ ॥६६॥

दो०—तबहि लूत पैग़म्बर, हमने पठयो ताहि ।
अवशि ताहि मुक्ती दई, बुढ़िया एक पछाहि[1] ॥११२॥

अरु हमने सबको है माख्यो । ता पीछे सब जगत निहाख्यो[2]*॥
†स्वामिकहततुमजाहिबतावत। मद्य हराम[3] सकल समुझावत॥
पुनि बहिश्त में ताहि देखावहु । अरुनारिनबिचजाहिबिठावहु॥
भला नारि जहँ रहत सदाई । तहँ कस स्थिर होय न भाई ॥
जासु दोष बिच यह नर फँसई । सोइ बहिश्त माहिंतेहिडसई ॥
मद्य हेत कह लूतहि भेज्यो । आइ शराब माहिं सो रीझयो॥
लिख्यो बाइबिल में जेहि भाँती । पुत्रिनसंग रम्यो दिनराती ॥
अरु दुइ दुइ सुत हैं उपजाये । निज पुत्रिन सों लूत सुहाये ॥

दो०—अस पैग़म्बर हुइ सकत, केवल तुम्हरेहि धर्म ।
करत रहत निन्दित महा, अनुचित सारे कर्म ॥११३॥
औरन को जो सतावई, मारत है दिन रात ।
किमिहुइसकवह ईश जग, मानि लेहु मम बात ॥११४॥

*एककहत बहिश्त को हाला। सुनहु लिखा जो देत हवाला ॥
द्वार खुले जावहिं जो कोई । भोजन हित मेवा तहँ होई ॥
पियन हेत पानी वहुतेरा। सुन्दर नारि तहाँ सब बेरा ॥

१. छोड़कर । २. मं० ६ सि० २३ सू० ३७ आ० ४३, ४४, ४७, ५६, १२६ से १२६ तक । † स० ३२ । ३. त्यागने योग्य ।

सबन फ़रिश्तन माथ नवाया । यक शैतान न शीश झुकाया ॥
हौं तेहि दोनों कर[1] न बनावा । किमि अभिमान भयो तेहि भावा ॥
पूछा तेहि सन कहिये भाई । किमि नहिं बैठ्यो शीश नवाई ॥
कह शैतान श्रेष्ठ हम अहहीं । और अनन्द सहित नित रहहीं ॥
आग से हमहिं बनायो डाटी । अरु आदमहिं गूंधि के माटी[2]* ॥
†कहत स्वामि कस स्वर्ग बतावा । तहँ सब भाँति सुःख दर्शावा ॥

दो०–अरब देश दुखमय रह्यो, सुख को तहाँ अभाव ।
भरतखंड को स्वर्ग सम, समुझायो अति चाव ॥ ११ ॥

सो०–त्रिन को दै लोभ, सकल फँसाये जाल में ।
रहा न तनिकौ लोभ, आइ लड़े संग्राम सब ॥ १५ ॥

बात खुदा की सबहुन मानी । यक शैतान कीन्ह मनमानी ॥
करि न सक्यो ताकी कछु हानी । जो शैतान कीन्ह शैतानी ॥
दोऊ हाथ आदमहिं बनावा । आयो मानुष को है भावा ॥
जब शरीर नहिं कस है हाथा । लै माटी गूँधत निज हाथा ॥
सर्वशक्तिमन ईश न होई । प्रभुता कहौ ईश की जोई ॥
डरत न है शैतान कदाई । सत्य कहत जो रहत सदाई ॥
ताते वह ईश्वर नहिं होई । आज्ञा मानि सकै ना कोई ॥
*बहुरि कहत प्रभु की जो रीती । ईश चलावत अपनी नीती ॥

---

१. हाथों से । २. मं० ६ सि० २३ सू० ३६ आ० ४३, ४४, ४५, ६३ से ७२ । † स० १३३ ।

दो०—क्षमा करत अल्लह सदा, निश्चय सारे पाप ।
है दयालु रक्षा करहि, रहै न कोउ संताप ॥ ११६ ॥

मूठी बिच पृथिवी सब राखत । आवहि जौलौं दिवस क़यामत ॥
दाहिन कर बिच गगन लपेटे । सदा रहत जो दिशन समेटे ॥
भूमि प्रकाशवान हुइ जाई । निज मालिककीलखिमनुसाई ॥
आगे कर्मपत्र को राखी । बोलि पैग़म्बरअरु जो साखी[1] ॥
होय न्याय इन सबके आगे । ईश्वरकृपा कर्म जेहि जागे[2] ※ ॥
※ जो जानहिं ताके हितलागी । उतरी है क़ुरान गुनपागी ॥
पाप क्षमहि तोबा सुनि लेई । ईश्वर दयावान चित देई[3] ※ ॥

सो०—† कहत स्वामि समुझाय, पाप क्षमा जो करत प्रभु ।
होय पाप अधिकाय, दयाहीन हो ईश तब ॥ १६ ॥

दो०—एक दुष्ट पर यदि दया, करै क्षमा जो कोय ।
तो अपराध बढ़ै वहाँ, अपराधी बहु होय ॥ ११७ ॥

ईश्वर अग्निसमान लखाई । होत प्रकाशमान का भाई ॥
कर्मपत्र कहँ हैं यक ठौरे । कौन लिखत तिनके सब औरे ॥
यदि पैग़म्बर साक्षिभरोसे । न्याय करत यह नृप हैं जैसे ॥
यदि पैग़म्बर साक्षिसहारे । न्याय करत जो बिना विचारे ॥
तो असमर्थ महा तब ईशा । होय समर्थ न सो जगदीशा ॥
कर्म अनुकूल न्याय जो करई । तो उत्पत्ति कर्म चित धरई ॥

---

१. गवाह । २. मं० ६ सि० २४ सू० ३६ आ० ५४, ६८, ७७ ।
३. मं० ६ सि० २४ सू० ४० आ० १, २ । † स० १३४, १३५ ।

जो पुस्तक की करत बड़ाई । यह जग में ईश्वर से आई ॥

दो०—जा महँ किंचित सत्य है, असत महा अधिकाय ।
सोऊ ताके संग मिलि, बिगड़त है सब ठाँय ॥ ११८ ॥
याते ईश्वरकृत नहीं, यह पुस्तक देखराय ।
जे मानत ते पापमय, अरु क़ुरान दुखदाय ॥ ११९ ॥

* कहत बहुरि दो दिन के मांई । गगन साज लिय तुरत बनाई ॥
जाको काम ताहि पर डारा । देइ गवाही तनु परिवारा ॥
कान आँख आदिक सब कोई । चर्म सहित इन्द्री हैं जोई ॥
तबहि त्वचा सन वह जन बोलेहु । साक्षि देहु किमि पुनि दुख भोगेहु ॥
उतर दीन मोहिं ईश बोलावा । आपनि शक्ति सबन गोहरावा ॥
तासु वचन हम मानहिं नीके । मुर्दा ह्वै हम आये जी के ॥
सोई जियावनहारो साईं । जो पालक जन है सब ठाईं ॥
मुर्दन को जो जीवन देई । तेहि सब कोई ध्यान धरेई * ॥

दो०—*आसमान अरु भूमि की, कुञ्जी ताके पास ।
भोजन हित खोलत रहत, करत जो कोऊ आस ॥ १२० ॥

छं०—जेहि चहै देवै सुःख अरु जेहि चहै दुख देवै घना ।
अरु जाहि चाहे देत बेटी चाहे बेटा सुख मना ॥
करे चाहे जेहि नारी सपूतिन चाहे दे बाँझिन बना ।
नहिं शक्ति काहू पुरुष में करि बात ले बानाबना ॥ ६७ ॥

---

१. मं० ६ सि० २४ सू० ४१ आ० १२, २०, २१, २९ ।

सो०—परदे के बिच ईश, पठवत है संदेश को[1] ।
हाथ फ़रिश्तन ईश, भेजत है इलहाम को * ॥ १७ ॥

† स्वामि कहत यह ईश तुम्हारा । सर्वशक्तिमन जाहि पुकारा ॥
जब दो दिवसनमाहिं बनाया । सात गगन जेहि ने निर्माया ॥
सर्वशक्तिमन यक क्षणमाहीं । उत्पति जगत करत सबठाहीं ॥
कान आँख जड़ रूप बनाये । पुनि इनसोंकेहि विधिबतराये ॥
इनसों साक्षि प्रयोजन पाता । तो जड़ कबहूँ नाहिं बनाता ॥
बोलत त्वचा कौन विधि भाई । पूछत जासों बात बनाई ॥
बात असम्भव कहत सुनाई । मुर्दा जियत कबहुँ नहिं भाई ॥
कुंजी बहुत ख़ुदा ढिग हुइहैं । खोलहिं ताले सकल रिसैहैं ॥

दो०—भर्माया सब जगत को, कहिके एकहि बात ।
सब कुछ ईश्वर करत है, जो चाहे हिय तात ॥ १२१ ॥

नारि पुरुष दोउ लालच माहीं । जायफँसेउ दुख सहत सदाहीं ॥
यह सब बात लड़कपन केरी । कही जौन तुमने बहुतेरी ॥
नारिन को जो ख़ुदा सुत देई । अन्य पशू किमि उपजत तेई ॥
नारि पुरुष के बिन सँग कीन्हे । कहहु पुत्र केहु विधि कहुँ चीन्हे ॥
जब परदा[2] बिच ईश्वर रहई । तबसों निराकार किमि अहई ॥

---

१. मं० ६ सि० २५ सू० ४२ आ० १०, ४७, ४८, ४९ । † स० १३६, १३७ । २. परदे के बाबत तफ़सीरहुसेनी में लिखा है कि हज़रत मुहम्मद साहब दो परदों में थे और ख़ुदा की आवाज़ सुनी । एक परदा ज़री का, दूसरा सफ़ेद मोतियों का । दोनों परदों के बीच ७० वर्ष के चलने का मार्ग था । (बुद्धिमान् लोग विचार करैं कि ख़ुदा है या परदे में बात करनेवाली स्त्री है । इन लोगों ने ईश्वर की ही दुर्दशा कर डाली । कहाँ वेद प्रतिपादित ईश्वर, कहाँ क़ुरान का बताया हुआ परदे की ओट बात करनेवाला ! यह किसी प्रकार विद्वानों की बातें नहीं हो सकतीं ।)

*पुनि यक कहत सुनहु ऋषिराई। है रसूल की जो प्रभुताई॥
आयो जब ईसा यहि ठामा। प्रकटप्रमान साथतें कामा*[1]॥
*कहत ईश पकरहु तेहि धाई। और घसीटहु खूब बनाई॥
नरक मध्य तेहि मारि गिरावहु। जहँ अनाथ निर्बल कोउ पावहु॥

दो०—नयन चपल गोराबदन, सुन्दर युवती नारि।
ब्याहिदेहिंतिनसबनको, रहहिंजोबचनसम्हारि*[2]॥१२२

छं०—*अब मिलहु तुम उनसों जो काफ़िर भये हैं जग आइकै।
मारहु यहाँ तक चूर होवहिं त्यागिये अपनाइकै॥
अरु कठिन कारावास दीजै नाश करिके शक्ति को।
है ग्रामते हमने निकास्यो चल दिये आशक्त हो॥६८॥
कोऊ सहायक नहिं बन्यो जब मार की हमने महा।
अब बड़ाई स्वर्ग की सुनिये करत हैं जो तहाँ॥
तहँ रहत पावन करि प्रतिज्ञा बहति नहरें शुद्ध जो।
अरुदूधकीनहरेंअधिकतरनहिंबदलतास्वाद जो॥६९॥
हैं मद्य की नहरें भरी आनंद देतीं सबन को।
अरुशहदपावनभरी नहरें मिलहिं निशि दिनसुजनको॥
मिलहिं मेवा फल सोहावन नहर के बिच बिच लगे।
है"इष्ट"कीयहयकबड़ाईमिलहिंहोवहिंसबसगे*[3] ७०॥

१. मं० ६ सि० २५ सू० ४३ आ० ६२। २. मं० ६ सि० २५ सू० ४४ आ० ४४,५१। ३. मं० ६ सि० २६ सू० ४७ आ० ४,१२,१५।

†कहत स्वामि ईसा जब आयो । तब दूसर किमि बहुरि पठायो॥
जो ईसा उपदेश सुनावा । भयो विरोध क़ुराँ को भावा ॥
अरु इंजील तासु विपरीता । कौन भाँति से होय सुभीता॥
मारि घसीट बेगि लै जावें । दोज़ख में लै ताहि गिरावें ॥
कहहु कहा यह न्याय की बाता । ख़ुदा घसीटत मारत ताता ॥
जब इनके ईश्वर यहि भाँती । किमि न होहिं चेला उत्पाती॥
मानुष सम सो ब्याह करावे । यवन पुरोहित सम दरशावे॥
याही ते है गदर मचायो । ख़ुदाक़ुराननबिहिसमुझायो ॥
दो०—सबको दुख देवै सदा, निज स्वारथ के हेत ।
दया हीन सब कोइ कहत, ख़ुदा रसूल समेत ॥१२३॥
जेहि बहिश्त की करत बड़ाई । दै कर लोभ नरन भरमाई ॥
कहहु नवीन कौनसी बाता । कही बहिश्त माहिं जो ताता॥
दूध शहद मदिरा बहुतेरी । मिलहिं यहाँ पर "इष्ट" घनेरी॥
जो तुम दूधनहर बतरावहु । अरुयहहीसबकहँसमुझावहु ॥
सोहुइ सकत केहू विधि नाहीं । बिगड़त दूध एक निशि माहीं॥
याते करि विचार मन लाई । सोचहु समुझहु चित्त दृढ़ाई॥
नहिं क़ुरानमत मानन योगू । जाहु न ता ढिग कोई लोगू ॥
*कहत एक सुनिये ऋषिराई । है इतिहास यवन सुखदाई ॥
दो०—अवनि हिलाई जायगी, अरु पहाड़ बहु भाँति ।
भुनगे सम सब होयगी, टुकरा टुकरा जाति ॥१२४॥

†स० १३८ से १४० ।

दाहिन ओर सों दाहिन रहहीं । बाम भाग बाईं दिशि अहहीं ॥
स्वर्णपलँग तहँ सोहहिं नीके । बिने तार सों उपर ज़मी के ॥
अरु तकियादोउ दौदिशि धारी । सोवन हेत महा सुखकारी ॥
मद्यपात्र कर गगन-मशाला[1] । जल हित लीन्हें पात्र विशाला ॥
घूमत फिरहिं सदा यह बालक । एक आयु के हैं उर घालक ॥
मेवा मिलहिं तहाँ सब बेरा । और मांस पशु पक्षिन केरा ॥
सुघर नयन की नारि सयानी । मिलहिं तहाँ सबको मनमानी ॥
हमने नारि कुमारि बनाईं । तहाँ सोहागिनि नारि सदाईं ॥

दो०—भरहु पेट आदर सहित, बाल कुमारिन साथ ।
शपथ खाइ यह सब कहत, हैं तुम्हरे सब हाथ[2]॥१२५॥

†कहत स्वामि देखहु यह लीला । निर्माता क़ुरान को हीला ॥
हिलत रहत भूमी दिन राती । तुम्हहिं भूमि यह अचल देखाती॥
पक्षी उड़त रहत सब भाँती । केहि बिधि उड़त पहाड़न पाँती॥
स्वर्णतार सों बिनो बतावत । पलँग सुवर्ण जहाँ बतरावत ॥
तहँ अवश्य हुइहैं यह लोगू । बढ़ई और सोनार सँयोगू ॥
तकिया धरि सोवत सब कोऊ । अथवा कर्म करत तहँ सोऊ ॥
यदि न करत तौ रोगी होई । शीघ्र मरहिं निज जीवन खोई ॥
यदि तहँ कर्म करत सब कोई । जस यहँ करत रहत थे सोई ॥

दो०—कवन अधिकता है तहाँ, कहत बहिश्त पुकारि ।
यहिस्थल जेहि भाँति सों, निजकर्तब अनुहारि ॥१२६॥

१. आफ़ताब । २. मं० ७ सि० २७ सू० ५६ आ० ४ से ६ तथा १५ से २४ और ३५ से ३८, ४४, ४७ । † स० १४१ ।

यदितहँ बालक रहहिं सदाहीं । ता पितु मातु अवशि दर्शाहीं ॥
अरुसब सासु ससुर परिवारा । बसेउ ग्रामवत भीड़ अपारा ॥
तहँ पर मेवा मांस मिठाई । मिलहि तो कहा बजार लगाई॥
मद्य मांस अरु नारी बालक । मिलहिं जहाँ परसबकेलायक॥
तेसब सदा कुमारि सोहागिन । तहाँ रहत का बनके योगिन॥
केतिक के विवाह हुइ जाहीं । केतिक पौत्र सहित दर्शाहीं ॥
अरु जे रहहिं सदा तहँ काँरी । भोगहिं अपनी आयु विचारी॥
खात शपथ जो कोउ जग माईं । मनुज होय या ईश्वर साईं ॥

सो०—सुनत हिया अकुलाय, संगति रहित अनेक विधि ।
कहत बहुरि समुझाय, स्वर्ग नर्क की अस कथा ॥१८॥

छं०—*अल्लाह रखता मित्र है जे लड़हिं उसके मार्ग में ।
जो मित्र बनना चहहु लोगो चलहु ताके मार्ग में[1] *॥
*कहता खुदा है अय नबी जो वस्तु हमने हलाल[2] की ।
किमि कहहु तुम संसार में यह वस्तु हमनेहराम[3]की॥७१॥
यदि चहहु तुम हर्षित रहैं नारी हमारी ही सदा ।
अल्लह दयालू क्षमा करता अपने प्यारे की सदा[4] *॥

१. मं० ७ सि० २८ सू० ४६ आ० ४ । २. ग्रहण किया जावे । ३. जो त्याग दिया जावे, यह हलाल हराम का मसला मुहम्मदसाहब और खुदा में चला करता था यानी जिसको मुहम्मद साहब चाहते हैं अल्लाह हलाल कर देता है जिसको नहीं चाहते हराम करता है मानो खुदा मुहम्मद साहब का इन्तज़ामी मंत्री है। ४. मं० ७ सि० २१ सू० ३६ आ० १, ५ ।

†कह स्वामि सुनिये ध्यान देकर कर सकें बरनन कहा।
अल्लह लड़ाई को लड़ाता लड़ सके कोऊ जहाँ॥७२॥
दो०—होत ख़ुदा केहि भाँति सो, करत रारि दिन राति।
मित्र बनावत यवन दल, अन्य शत्रु सब भाँति॥१२७॥
*बहुरि कहतयकबात सुनाई। ख़ुदा रसूल जौन बतराई॥
सुनहु नबी झगड़ा हिन्दुन सों। करहु सदा सख़्ती उनहीं सों॥
अरु जो गुप्त शत्रु जग होहीं। लड़हुक्रोधकरितिनकोजोहीं*॥
*औ जब आसमान फटि जैहै। तेहिदिनवहआलसबसहुइहै॥
पुनि ऊपर जो अहैं किनारे। रहहिं फ़रिश्ता तहाँ बिचारे॥
निज मालिककातख़्त उठावहिं। आठपुरुषसबमिलिसधवावहिं॥
तादिन तुम सबतहँपरआवहु। छिपहि न कोई बात छिपावहु॥
दो०—कर्म पत्र जो ढिग रहत, ताहि देखावहु आय।
दोनहु हाथन जो गह्यो, परमेश्वरसे पाय[2] *॥१२८॥
‡स्वामिकहतयह उर में धारहु। निज ईश्वर की बात बिचारहु॥
मुसलमान सब अरु पैग़म्बर। करत लड़ाई को आडम्बर॥
ख़ुदा सलाह देत दिन राती। होहु सदा हिन्दुन के घाती॥
केहिविधिफटतअकाशबतावहु। का है वस्त्र समान सुनावहु॥
ऊपर लोकन को आकाशा। कहतजो हौतुमपरमहुलासा॥
तौ यह बात ठीक नहिं होई। विद्या विरुद्ध कहत सब कोई॥
जब तेहि आठ कहार उठावें। तख़्त उपर बैठो बतरावें॥

---

† स० १४२, १४३। १. मं० ७ सि० २८ सू० ६६ आ० ६। २. मं० ७ सि० २६ सू० ६६ आ० १८, १६, २५। ‡ स० १४४, १४५।

निश्चय मूर्तिमान है सोई। सर्वशक्तिमनकेहि विधि होई॥
दो०—दक्षिण कर धर्मात्मन, पापिन बायें हाथ।
कर्मपत्र देवे सदा, रहै जीव के साथ ॥१२६॥
सर्वज्ञता न ता महँ रहई। जो वह ईश तुम्हारो अहई॥
*बहुरि कहत वह बात अनोखी[१]। प्रकृतिविरुद्धसकलविधिचोखी॥
नाना विधि सों है उपजावा। नहिं देखेउ केहि भाँति बनावा॥
ऊपर तले अकाश बनाये। गनती में जो सात सुहाये॥
चन्द्र बीच कीन्हा परकाशा। अरुदीपकसमसूर्यप्रकाशा*[२]॥
*मसजिद खुदा अर्थ बनवाई। बनहु उपासक तुम तहँ जाई॥
ईश्वर संग काहु को नाहीं। करहुपुकारनतुमकेहुठाहीं*[३]॥
* सूर्य चाँद दोनों यक ठौरा। किये जायँगे जानहु ब्यौरा *[४]॥

---

१. * चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ उसकी वह अजाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष। जब कि निकलेंगे क़बरों में से दौड़ते हुए मानों कि वह बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं। मं० ७ सि० २२६ सू० ७० आ० ४, ४२। (समीक्षा) यदि पचास सहस्र वर्ष का परिमाण है तो उतनी ही रात्रि क्यों न हुई? यदि उतनी रात्रि नहीं तो दिन भी नहीं हो सकता। क्या उपरोक्त समय तक कर्मपात्र रूहें खुदा फ़रिश्ते सब जागते रहे होंगे? क्या क़बरों से निकलकर खुदा की कचहरी तक दौड़ेंगे? उनके पास सम्मन क़बरों में कैसे पहुँचेगा? आजकल तो कचहरी बन्द होगी तब सब बेकार बैठे होंगे? अथवा तमाशा देखते होंगे यह बातें सिवा अज्ञानियों के और किसमें हो सकती है॥ १४६॥ २. मं० ७ सि० २६ सू० ७१ आ० १४, १५, १६। ३. मं० ७ सि० २६ सू० ७२ आ० १८। ४. मं० ७ सि० २६ सू० ७५ आ० ६।

छं०—†कह स्वामि जो उत्पन्न कीन्हों जीव को संसार में ।
सो अमर नाहीं हुइ सकत किमि सदा रहत बहिश्त में ।
उत्पन्न होय सो नाश होवे नियम प्रकृती जानिये ।
ताते सकल जंजाल त्यागहु धर्म वैदिक मानिये ॥७३॥

दो०—और बात आकाश की, कही जौन तुम तात ।
वह केहु भाँति न हुइ सकत, महा असम्भव बात ॥१३०

है विभु निराकार सब ठाँई । जो आकाश केरि प्रभुताई ॥
[1]युक्ति तुम्हारि असंगत भाई । जो आकाश हेत बतराई ॥
अरु कलमा[2] बिच पढ़त सुनाई । अल्लहसंग रसूल मिलाई ॥
कहत क़ुरान न टेरहु कोई । ईश्वरसंग न दूसर होई ॥
पर तुम चलत क़ुरानविरुद्धा । कल्मा पढ़त करत अति श्रद्धा ॥
और खुदा घर मस्जिद जानहु । तबकिमिबुतपरस्तनहिंमानहु
जिमि जैनी पौराणिक भाई । करत ताहि विधि तुमहूँ आई ॥
सूर्य चन्द्र केहि विधि यकठौरा । हुइसक मोहिं बतावहु ब्यौरा ॥

सो०—बेसमझी की बात, कहत रहत निशि दिवस सब ।
हुइ न सकत सो तात, वह ईश्वर केहु भाँति सों ॥१९॥

*कहत बहुरि बहिश्त के माहीं । सदा रहत बालक तेहि ठाहीं ॥
करि अनुमान उन्हें जो देखहु । बिखरे मोतिन के सम पेखहु ॥

---

† स० १४७ से १४९ । १. आकाश निराकार और विभु पदार्थ है यदि दूसरी चीज़ का नाम आकाश रखते हो तो व्यर्थ होता है । यदि ऊपर तले बनाया तो उसके बीच में सूर्य चन्द्र नहीं रह सकते । एक में अवश्य अँधेरा रहेगा । २. लाइलाहः इल्लल्लाहो मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह ।

पहिनाए जैहहिं तहँ कंगन । सुन्दर चाँदी केर सुहावन ॥
मिलहिंतहाँमदिरा अति पावन । प्याला सुन्दर भरा सुहावन ॥
बदला मिलहि कर्मअनुकूला । कछु न होइ याते प्रतिकूला ॥
हूरैं और फ़रिश्ता दोऊ । बाँधि कतार खड़े हों सोऊ[1] * ॥
†कहतस्वामिकेहिकारनबालक । हैं मोती सम सब सुखदायक ॥
पुरुष नारि सों तृप्त न होई । जो लड़िका राखत तहँ सोई ॥

दो०—है आश्चर्य कछू नहीं, नरमैथुन की रीति ।
प्रचलित इनहीं सों भई, रही न मनु की नीति ॥१३१॥

जहँ जेवर अरु चलहि शराबा । कस है यह बहिश्त को भावा ॥
कर्मअनुसार मिलत फल जोई । रहत बहिश्तसदा किमिसोई ॥
हूर फ़रिश्ता औ तहँ बालक । रहहिंसदाहोंकेहिविधिलायक
पियहिं शराब होहिं मतवाले । मस्त होहिं उर छेदहिं भाले ॥
प्रलयकाल लगि सबकोउ भाई । बैठो रहत आलसिन नाँई ॥
तौ लगि खुदा जोरि सब सैना । करहि विजय मारहि शैताना ॥
औरहु बहुत असम्भव बातैं[2] । लिखो क़ुरान बीच हैं घातैं ॥

१. मं० ७ सि० २६ व ३० सू० ७६ व ७८ आ० १६, २१, २६, ३४, ३८ । † स० १५०, १५१ । २. ॐ (१) जब कि सूर्य लपेटा जावे । और जब कि तारे गँदले हो जावें । और जबकि पहाड़ चलाये जावें । और आसमान की खाल उतारी जावे । मं० ७ सि० ३० सू० ८१ आ० १, २, ३, ११ । (समीक्षा)—यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा । और तारे क्योंकर गँदले हो सकते हैं । पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे । आकाश को क्या

दो०—अरु जब मालिक आवही, पंक्ति फरिस्तन बाँधि ।
तादिन देखा जायगा, दोज़ख बुधि को साधि* ॥१३२॥
*पैगम्बर ने अस कहा, रक्षा करहु सम्हारि ।
ऊँटनी जो है खुदा की, राखहु ताहि निहारि ॥१३३॥

पशु समझा जो खाल उतारी जावेगी । यह सब बेसमझी की बातें हैं। ॥१५२॥ (२) * जब कि आसमान फट जावे, और तारे झड़ जावें। और जब दरिया चीरे जावें । और जब क़ब्रें जिलाकर उड़ाई जावें । मं० ७ सि० ३० सू० ८२ आ० १ से ४ तक । (समीक्षा)—वाह जी क़ुरान के बनानेवाले फ़िलास्फ़र आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा और तारों को कैसे झाड़ सकेगा । दरिया क्या लकड़ी है जो चीरा जायगा और क़ब्रें क्या मुर्दा हैं जो जी सकेंगी । यह सब बातें लड़कों के सदृश हैं॥१५३॥ (३) * क़सम है आसमान बुर्जोंवालों की। क्योंकि यह क़ुरान है बड़ा बीच लोह महफ़ूज़ (रक्षा) के। मं० ७ सि० ३० सू० ८५ आ० १,२१ । (समीक्षा)—इस क़ुरान के बनानेवाले ने भूगोल खगोल कुछ भी नहीं पढ़ा था, नहीं तो आकाश को क़िले के बुर्जों-वाला क्यों कहता । यदि मेष आदि राशियों को बुर्ज कहता तो अन्य को क्यों नहीं, इसलिए तारे बुर्ज नहीं हो सकते । क्या वह क़ुरान खुदा के पास है ? यदि क़ुरान उसका ही है तो वह भी विद्या और बुद्धि से गिरा हुआ अविद्या से भरा हुआ है ॥१५४॥(४) * निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर । और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर । मं० ७ सि० ३० सू० ८६ आ० १५, १६ (समीक्षा)—मकर कहते हैं ठगपन को । क्या खुदा भी ठग है ? क्या चोरी का जवाब चोरी और झूँठ का झूँठ है ? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या उस भले आदमी को चाहिये कि वह भी चोरी करे ? वाह जी क़ुरान के बनानेवाले ॥ १५५ ॥ १—मं० ७ सि० ३० सू० ८९ आ० २१, २२ ।

अरु तेहि पानी देहु पिलाई। मानि करी बहुतै चतुराई॥
काटेहु पाँध ताहि भुटकाई। अरुदी "रब[1]" ने मारिगिराई[2]※॥
※ताको अवशि घसीटैंगे हम। सहित साथवालों के यकदम॥
तिनके माथे हैं अपराधी। तिनहिंबोलावहिंदोज़खबाँधी॥[3]※
※हमने अवशि क़ुरान उतारा। बोच[4] निशा जबथा अँधियारा॥
पवित्र आत्मा तेहिनिशि माहीं। सहितफ़रिश्तनआवहिंजाहीं॥
करहिंसदा सब काम सम्हारी। निजजनकोकर्तव्यनिहारी॥[5]※
† कहतस्वामिसुनिये ममबाता। हमरेहिय बिच जौनसोहाता॥
दो०—का ईश्वर सेनापती, सेना लै जो जाय।
लरै लड़ाई नेक विधि, अपनो यूथ बनाय॥१३४॥
का सवार उँटनी पर हुइकै। घूमत खु़दा ताहि पर चढ़िकै॥
जानि परा उँटनी जेहि देशा। रही जहाँ पर फिरत विशेषा॥
सोइ अरबवासिन में कोई। किय क़ुरान निर्मित है सोई॥
अरु जब प्रलयकाल नहिंआवा। उँटनी कोकिमिआइसतावा॥
खु़दा कहा चपरासिन कामा। करत रहत सो सबके धामा॥
निज हाथन सों नरन घसीटत। अपने करसों मारत पीटत॥
कहहु कवन विधि ईश्वर होई। करत मनुज समकारजसोई॥
एकहि बार क़ुरान उतारा। अथवा आयो बारहि बारा॥
दो०—सत्य होय केहि भाँति सों, कौन तुम्हारी बात।
निशि अँधियारी जब रही, कापुनिपूछततात॥१३५॥

---

१. खु़दा। २. मं० ७ सि० ३० सू० ८१ आ १३, १४। ३. मं० ७ सि० ३० सू० ८६ आ० १५, १६, १८। ४. क़द्र की रात। ५. मं० ७ सि० ३० सू० ८७ आ० १, २, ४। † स० १२६ से १२८।

हम जो कह्योताहि अवलोकहु । ऊपर नीचे कछु नहिं पेखहु ॥
यह प्रबन्धकर्ता दर्शावत । हुकुम खुदा से जोकुरिपावत॥
शपथ खातनिशदिनबहुभाँती । अश्वादिक जोपशु की जाती॥
सज्जन पुरुषहु कबहु न करहीं । शपथखानकोउरबिचधरहीं ॥
विषय कुरान कह्यो समुझाई । बुधवर सुनहिं विचारदृढ़ाई॥
लखि विद्वान विचारहिं भावा । कहत कुरान ईश से आवा ॥
नहिं ईश्वर कृत हमरी जानी । नहिंलिखाइकेहुबुधवरआनी॥
किंचित दोष प्रकट हमकीन्हा । भरी दोषपुस्तकसबचीन्हा ॥
दो०—ताते मम भाषन सुने, पड़हिं न धोखे माहिं ।
जन्म व्यर्थ ही खोवई, विद्या बुद्धि नशाहिं ॥१३६॥
जो कछु या महँ सत्य कहानी । वह वेदादि शास्त्र से आनी ॥
सत्य जो बात ताहिहममानत ।ताहीविधिसबकहँसमुझावत॥
मानहु सत्य जहाँ कहुँ होई । असत त्यागि दीजै सबकोई॥
यामें विषय अविद्या केरा । भरा पड़ा भ्रमजाल घनेरा ॥
पशुवत देवे आत्म बनाई । शान्तिभंग करना सिखलाई ॥
बाढ़ै द्वेष दुःख हो उन्नत । और कर्म शुभकीहोअवनत॥
बारहिंबार बात यक आई । पुनरुक्ती की तहँ अधिकाई ॥
ईश्वरकृपा करहि सब ऊपर । मिलहिंपरस्पर रहहि न दूसर॥
दो०—एक दूसरे की सदा, उन्नति में चित देय ।
पक्षपात को त्यागिके, हम सबको हो धेय ॥१३७॥

---

१. खुदा, फ़रिश्ता और पैग़म्बर थे, पर एक पवित्रात्मा और आ गया । (न जाने तीनों को पवित्रात्मा माना या ईसाइयों की तरह पिता पुत्र पवित्रात्मा मानते हैं ।)

दो०—या विधि यदि विद्वान सब, सुनहिं हमारी बात।
चलहिं सकल मेरे सदृश, सुख पावहिं सब तात॥१३८॥

छुटहि परस्पर केर विरोधा। होय सबन को जब अस बोधा॥
सत्य एक पथ सब गहि लेहीं। त्यागि असत पथको चित देहीं॥
कछुक समीक्षा करि देखराई। बुधवर सोचहिं चित्त दृढ़ाई॥
समुझहिं ग्रंथकार को सारा। जो क़ुरान लिखि दीन्ह सहारा॥
यदि भ्रम होय केहू थल माहीं। लिखा अन्यथा पैर लखाहीं॥
तौ तेहि शुद्ध सकल करि लेहू। सत्य विचार सहित चित देहू॥
और सुनहु यक बात अनोखी। बहुतक यवन कहत अति चोखी॥
वेद अथर्व विलोकहु जाई। पावहु हमरो धर्म सदाई॥

दो०—अल्लोपनिषद[1] तहाँ पर, पढ़हु विचारहु जाइ।
तबकेहि विधि तुम कहत हो, हमसबको बिलगाइ॥१३९

१. अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणादिव्यानि धत्ते। इलल्ले वरुणो राजा पुनर्ददुः। हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥ १॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्रमहासुरीन्द्राः। अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥२॥ अल्लो रसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥ ३॥ आदल्ला बूकमेककम्। अल्ला बूकनिखातकम्॥ ४॥ अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्यचन्द्रसर्वनक्षत्रा॥५॥ अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परमन्तरिक्षाः॥६॥ अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥७॥ इल्लां कबर इल्लांकबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥ ८॥ ओम अल्ला इल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणयाश्यामां हुं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्॥ ९॥ असुरसंहारिणी ह्रां हुं ह्रीं अल्लो रसूल महमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥ १०॥ इति॥

जब प्रत्यक्ष मोहमद साहब । लिखे रसूल वेद में नायक ॥
तब मम धर्म वेद से आयो । ताही ते यह सबको भायो ॥
उतर देहु तिनको यहि भाँती । तुम सब भाँति महा उत्पाती ॥
यदि न वेद तुम देखा होई । देखहु मम समीप है सोई ॥
आदि से अन्त सबै अवलोकहु । केहु स्थल यह लिखा न पेखहु ॥
कहुँ न नाम पैगम्बर केरा । अथर्वसंहिता को सब हेरा ॥
गोपथब्रह्मण शाखा जानहु । अथर्ववेद की है पहिचानहु ॥
तिन काहु बिच नाहिं निशानी । कही सकल अपने मनमानी ॥

दो०—शाह अकब्बर के समय, लिखी यहै अनुमान ।
है कछु अर्बी[1] संस्कृत[2], लेखक को तेहि मान ॥ १४० ॥

या विधि की औरहु बहुतेरी । मतवादिन ने लिखी घनेरी[3] ॥
तब यक कहत ऋषी सों आई । कहत कवनविधिसेतुमभाई ॥
अब लौं कह्यो न काहू भाई । कही जौन विधि तुमने आई ॥
ताते केहि बिधि तुम्हरी बाता । मानहिंहमकहियेकिमताता ॥
कहऋषि सकल बताइअपावन । केवल धर्म हमारो पावन ॥
धर्म हमारोहि मुक्तीदायक । अरुसबभाँतिनसुःखविधायक ॥
तौ केहि की हम मानहिं वाता । जब सबकोनिजधर्म सुहाता ॥

१. अस्माल्लां और इल्ले अरबी । २. मित्रावरुणादिव्यानि धत्ते संस्कृत यह १० अंक में देखो । इसी प्रकार पूरी उपनिषद् में जान लो। अकबर शाह के समय में किसी ने, जो संस्कृत और अरबी जानता होगा, उसने लिखा है। अर्थ के विचार से कृत्रिम व्याकरण रीति के विरुद्ध पाया जाता है । ३. खोरोपोपनिषद्, नृसिंहतापिनी, रामतापिनी, गोपालतापिनी इत्यादि बहुत सी हैं ।

हम मानहिं शुभ गुन जेहि माहीं । सत्य अहिंसा दया सुहाहीं ॥
दो०-याही विधि के और गुन, होहिं धर्म जेहि माहिं ।
हम मानहिं ताको अवशि, धारहिं हिये सराहिं ॥ १४१ ॥
अरु जामहँ हैं वाद विवादा । ईर्षा द्वेष असद मर्य्यादा ॥
हैं वे पन्थ त्यागिबे लायक । सदा सुजन को हैं दुखदायक ॥
चलन सत्य पथ जो तुम चहहू । वैदिक धर्म आइ सब गहहू ॥
यहही देत सबन को अवसर । करहि विचार बुद्धि सों सब नर ॥
तर्कबुद्धि सों कारज कीजै । सब मिलि पक्षपात तजि दीजै ॥
सत्य विचार हेत यह शिक्षा । करि देखराई सबन समीक्षा ॥
अब तुमहू तनि लेहु बिचारी । सत्य भाव को हिय बिच धारी ॥
है जग सत्य वेद मत एका । सकल चलहु करि हृदय बिवेका ॥

शिष्य

सो०-नाथ सुनायो मोहिं, यवनपन्थ की कछु कथा ।
अब जान्यों यह होहिं, अवशि लड़ाका अबुध सब ॥ २० ॥
दो०-सकल सुनाई ऋषि कथा, भयो नाथ संतोष ।
भ्रम न रह्यो कछु हृदय मम, गयो मान मद रोष ॥ १४२ ॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षिस्वामीदयानन्द सरस्वतीवर्णित यवनमत विषय समीक्षा वैद्य कविराज पंडित गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी उपदेशक द्वारा विरचित गुरुशिष्यसंवाद चतुर्दशतरंगः ॥ १४ ॥

(स० १४ स०)

ओ३म्

अथ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

शिष्य

दो०—हे गुरु परम पुनीत तुम, शिक्षा दई महान ।
ऋषिवर की आनँदभरी, कथा सुनी सुखदान ॥ १ ॥
मानव को कर्तव्य बहु, अरु धर्मन का सार ।
नाथ सुनायहु मोहिं सब, दयानन्द अनुसार ॥ २ ॥

सकल कथा हम सुनी सुहाई । सतसागर विच जौन लखाई ॥
तरँग चतुर्दश सुनि अनुमाना । कह्यो ऋषीश्वर जौन विधाना ॥
सहित प्रमान कही सब बाता । करी समीक्षा सुन्दर ताता ॥
अपनो मत कहुँ नहिं दर्शायो । या गुरुवर मोहिं नाहिं सुनायो ॥
अब पुनि कृपा करहु मम ऊपर । ऋषि मन्तव्य सुनावहु सादर ॥
जाते मोर जाइ सन्देहा । होय अधिक ऋषिवर में नेहा ॥
अब भ्रमजाल पड़हिं हम नाहीं । गुरु की कृपा सराहत जाहीं ॥

गुरु

दो०—कह्यो गुरू हे शिष्य सुनु, है तुम्हार बड़ भाग ।
पूछत परम सनेह सों, करत महा अनुराग ॥ ३ ॥

सो०—शिष्यन के हित लागि, कह्यो ऋषी मन्तव्य निज ।
पक्षपात को त्यागि, नहिं मानत सोऊ कह्यो ॥ १ ॥

सोइ सुनहु हमतुमहिंसुनावहिं । चलहिं तासु पथते सुखपावहिं ॥
सर्व तंत्र सिद्धान्त सुहावन । कहत ऋषी हम मानत पावन ॥

अरु आगेहु मानहिं भाई । सत्य सनातनधर्म सुहाई ॥
जासु विरोध न करि सक कोई । मानन योग सबन कहँ सोई ॥
विद्यारहित अन्य मतवाले । भरमावहिं जो हिय के काले ॥
तिनकी बात कबहुँ नहिं मानहु । जो अन्यथा अनर्गल जानहु ॥
मानहिं आप्त[1] पुरुष जग माहीं । मानहु तेहि तुम सकल सराहीं ॥
आप्त पुरुष जो मानत नाहीं । तुमहु ताहि त्यागहु सब ठाहीं ॥
दो०—वेद आदि सद्शास्त्र जो, ब्रह्मा को लै आदि ।
अरु जैमिन पर्य्यंत लौं, कहे वाक्य अविवादि ॥ ४ ॥
तिनको हम मानत सदा, और सुनहु मम बात ।
सबके सन्मुख जो कछू, करत प्रकाशित तात ॥ ५ ॥
निज मन्तव्य ताहि को मानहु । मानन योग एक सम जानहु ॥
सब कोउ जानहि एक समाना । तीनहु काल होय नहिं आना ॥
मम इच्छा तनिकहु यह नाहीं । चलहि कोउ मत अन्य कदाहीं ॥
मानहुँ सत्य सत्य मनवावहुँ । प्राग असत्य सदा छोड़वावहुँ ॥
यदि कहुँ पक्षपात उर धरते । तो केहुँ मत के गुरु बनि फिरते ॥
फैले देश विदेशन माहीं । अधरमयुत बहुपन्थ लखाहीं ॥
तिन महँ मैं न पर्यो केहु काला । और फँस्यो नहिं काहू जाला ॥
धर्मगुरू जो बात लखाई । मानहु ताहि सदा हर्षाई ॥
दो०—इच्छा इनके त्याग की, करहु न कबहूँ भूल ।
जो कोऊ त्यागन करत, वह नर नशत समूल ॥ ६ ॥

1. सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित, विद्वान् ।

ता कहँ मानुष कोउ न कहई । त्यागि धरम अधरम रत रहई ॥
जो जग मननशील नर होई । निज सम जानहि दूसर सोई ॥
दुख सुख हानि लाभ सब केरा । अपने सम समुझहिं सब बेरा ॥
हो अन्यायी जो बलवाना । डरहि न तिनसे काहू आना ॥
धर्मात्मा निबल जहँ होईं । तासों डरत रहत बुध सोईं ॥
धर्मवान निर्बल जग माहीं । जो अनाथ गुणरहित लखाहीं ॥
सम्पूरन शक्ती सों तिनकी । प्रेम करहु उन्नति हो उनकी ॥
महाबली सनाथ गुणवाना । चक्रवर्ति हो नृपति महाना ॥

दो०—पर अधर्म को करत नित, अन्यायी अति क्रूर ।
ताकी अवनति नाशहित, यत्न करहि भरपूर ॥ ७ ॥

तेहि सँग प्रिय आचरण न कबहूँ । करहि शक्तिशाली हो जबहूँ ॥
बल अन्यायिन नष्ट करीजै । यथा समर्थ करन चित दीजै ॥
अरु जो चलत न्यायपथ भाई । तिनकी उन्नति करहु सदाई ॥
चाहे केतिक दुःख उठावहिं । चाहे प्राण दंडहू पावहिं ॥
तऊ न होवें धर्मविरुद्धा । नित नव करहिं सुमारग श्रद्धा ॥
भर्तृहरि आदिक ग्रन्थन[1] माँई । लिख्यो जौन विधि नीति दृढ़ाई ॥

१. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् । अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ [भर्तृहरि नी० श० ८४]

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्यास्त्वनित्यः २
(महाभारत)

चलहु सदा इनके अनुकूला । होहु न कतहुँ धर्मप्रतिकूला ॥
अब मैं जाको जेहि विधि मानहुँ । सोइ सुनावहुँ जो कछु जानहुँ ॥
यह संक्षेप रीति सों भाई । कहिहौं तात तुमहिं समुझाई ॥

सो०—जेहि प्रकरण की बात, ताही में बहु विधि कही ।
जानि लेहु तहँ तात, करि विचार हिय बिच धरहु ॥२॥

१—ईश्वर

ईश्वर जासु ब्रह्म है नामा । परमात्मादिक जो सुखधामा ॥
सत चित आनँद लक्षण भावा । पावन गुण अरु कर्म स्वभावा ॥
निराकार सर्वज्ञ लखाई । सर्वव्यापक परम सुहाई ॥
ईश अजन्म अनन्त दयालू । सर्वशक्तिमन अहै कृपालू ॥
न्यायकारि अरु है जगकर्ता । धर्ता जगत केर पुनि हर्ता ॥
जीवन को फल देत सदाई । कर्मनुकूल विचार दृढ़ाई ॥
सत्य न्याय सों सबन निहारै । अस बहु लक्षण ईश बिचारै ॥
या विधि हम मानत परमेश्वर । मानहु सकल याहि विधि ईश्वर ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ ३ ॥ (मनुः)
सत्यमेव जयते नानृतम् सत्येन पन्था विततं देवयानः ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामास्तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ४ ॥
नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥ ५ ॥ (उपनि०)

दो०—नियम दूसरे में लखहु, जो हम बरनन कीन्ह।
अरु सत्यार्थप्रकाश के, है प्रथमहिं लिखि दीन्ह ॥८॥

२—चारों वेद

भ्रान्तिरहित हम चारो वेदा[1]। मानत स्वतः प्रमाण अखेदा ॥
स्वतः प्रमाण वेद हम जानत। अन्य प्रमाण न यामहँ मानत ॥
जिमि सूरज जग स्वतः प्रकाशा। तैसेहि वेद केर परकाशा ॥
चारहु वेदन के छः अङ्गा[2]। चारि ब्राह्मण[3] षष्ठ उपाङ्गा[4] ॥
अरु उपवेद[5] चारि रखि लीजै। पुनि शाखा[6] ताकी चितदीजै ॥

३—धर्म और अधर्म

पक्षपात जहँ तनिक न होई। न्यायसहित आचार लखोई ॥
ईश्वरआज्ञा अरु सद्भाषन। वेदविहित जहँकर्मउपासन॥
वेदप्रणीत धर्म हम मानहिं। तेहिविपरीतअधर्म बखानहिं॥

१. विद्याधर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मंत्रभाग ऋग्वेद अष्टक १ मंडल १०२८ सूक्त २०४४ वर्ग १५०२८ मंत्र हैं, यजुर्वेद ४० अध्याय १९७५ मंत्र, सामवेद पूर्वार्ध ८७ उत्तरार्ध २६ प्रपाठक मं० १६४०४, अथर्ववेद २० कांड ३४ प्रपाठक १११ अनुवाक ७३१ वर्ग ५७४७ मंत्र। २. शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त और कल्प। ३. ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का साम ब्राह्मण, और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण। ४. न्याय, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, योग, वेदान्त। ५. ऋग् का आयुर्वेद, यजु का धनुर्वेद, साम का गंधर्ववेद, अथर्व का अथर्ववेद, यह उपवेद हैं ६. ११२७ शाखाएँ हैं।

दो०—धर्म ताहि को मानहीं, है अधर्म विपरीत ।
पक्षपात अन्याययुत, मिथ्या भाषन रीत ॥९॥
भंग करहिं ईश्वर की आज्ञा । करहिं कर्म नित वेद अवज्ञा ॥
सो अधर्म लक्षण हम मानत । जो करि सूक्ष्म तुमहिं सुनावत ॥

४—जीवात्मा

इच्छा द्वेष प्रयत्न विराजै । सुखदुख ज्ञान जहाँ पर राजै ॥
है अल्पज्ञ नित्य बलसीवा । ताही को हम मानत जीवा ॥

५—ईश्वर और जीव

जीव ईश वैधर्म्य विभिन्ना । अरु साधर्म्य से लखहु अभिन्ना ॥
व्यापक ईश व्याप्य है जीवा । ईश उपास्य उपासक जीवा ॥
पिता-पुत्र जिमि जग सम्बन्धा । तैसेहि ईश-जीव को धन्धा ॥[1]

६-७—अनादि पदार्थ

दो०—ईश्वर आत्मा अरु प्रकृति[2], हैं अनादि यह तीन ।
एही नित्य कहावहीं, अहैं न कबहुँ नवीन ॥१०॥
है जग प्रकृति केर यह भावा । नित्य अहैं गुण कर्म सुभावा ॥
हम प्रवाह सों लखहिं अनादी[3] । है संयोग वियोग अनादी ॥

---

१. जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा, और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ । २. जगत् का कारण प्रकृति है (सत् रज, तम-साम्यावस्था प्रकृति) । ३. जो संयोग से द्रव्य-गुण-कर्म उत्पन्न होते हैं, वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते; परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उसमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी । इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ।

८-सृष्टि, ९-सृष्टि का प्रयोजन

पृथक द्रव्य को होवे ज्ञाना। मेल होय तहँ युक्ती नाना॥
नाना रूप बनहिं तेहि ठाहीं। सृष्टिरूप सोइ परत लखाहीं॥
सृष्टिनिमित्त लखहु सोइभावा। फल होवे गुन कर्मस्वभावा॥
जिमि कोउ पूछत केहु ढिगजाई। केहि कारन यह नेत्र लखाई॥
उतर दीन्ह देखन के ताँई। ईश्वर सबके दीन्ह बनाई॥
याही विधि ईश्वरप्रभुताई। सृष्टि करन फलपरत लखाई॥
अरु सब जीवन को जो कर्मा। भोगवावत लखिके निजधर्मा॥
भोगत जीव कर्मफल भाई। यह है ईश्वर की प्रभुताई॥

१०-सृष्टि का कर्ता

दो०-जानहु कर्ता सृष्टि को, परमेश्वर सब भाँति।
पूर्व कहे गुन जासु के, अहै परम सुखदाति॥११॥

जबहमरचनाजगत विलोकहिं। जड़[1] अरुचेतन[2]दौअवलोकहिं॥

११-बन्ध

घोर अविद्या में सो परिके। भोगत पापकर्म तहँ रहिके॥

१. जड़ पदार्थ में अपने-आप यथायोग्य बीज आदि बनने की सामर्थ्य होने से सृष्टि का कर्ता अवश्य है। यथा-प्रकृति जड़ है और सत् अर्थात् सदैव से है। २. चेतन जीव जो ऊपर लक्षण सं० ४ में कर आये हैं। वह जीवात्मा चित् अर्थात् चैतन्य और सत् अर्थात् सदा से है और ब्रह्म परमेश्वर सत् (सदा से) चित् (चैतन्य) आनन्द (सदा आनंदमय सच्चिदानंद) जीवात्मा प्रतिक्षण ब्रह्म से आनंद प्राप्त्यर्थ उद्योग करता है, अतः सृष्टि का कर्ता ईश्वर, करनेवाला जीव और साधन प्रकृति है। यही तीनों अनादि हैं।

बन्ध निमित्त अविद्या जानहु । दुख अज्ञान तासु फल मानहु ॥
ईश्वर त्यागि भजत जो औरन । सोइ अज्ञानि पड़त नित भँवरन ॥
बिन इच्छा जो भोगन के बिच । परत बन्ध जानहु हिरदय खिच ॥

१२-मुक्ति

बंधरहित छूटहिं सब दुखते । पावहिं ईश्वर स्तुति करि ते ॥
निज इच्छा बिचरत तेहि ठाईं । सृष्टि ईश की है जहँ ताईं ॥
नियत समय लगि भोगै आनँद । पुनि आवत वह जग में सानँद ॥

१३-मुक्ति का साधन[1]

दो०-योगाभ्यास करहिं सदा, ब्रह्मचर्य सुविचार ।
सतविद्या पुरुषार्थयुत, बुधजन संग विचार ॥ १२ ॥
विद्याप्राप्ती करहिं नित, करहिं धर्मनुष्ठान ।
बनहिं उपासक ईश के, बोलहिं सत्य निदान ॥ १३ ॥

१४-१५-अर्थ, काम

[2]धर्मसहित जो मिलहिं सदाहीं । कहत ताहि सब अर्थ सराहीं ॥
[3]अधरमसहित प्राप्त जो होई । ताहि अधर्म कहत सब कोई ॥
धर्म अर्थ दोहुन संयोगा । करिके प्राप्त करहिं उपभोगा ॥

१६-वर्णाश्रम

बरणाश्रम हम मानहिं सोई । गुन अरु कर्म योग्यता होई ॥

१. निशिवासर आठौ पहर, एक जीभ सों काम ।
रटै सदा यक ओम को, बिलँब न एकहु याम ॥
२. सत्यसागर ५ त० पृ० ८४ में देखो । ३. स०सा० प्र० त० पृष्ठ ७ में देखो

१७–राजा

राजा ता कहँ कहत बुझाई । प्रजहि पुत्रवत मानहिं भाई ॥
अरु शुभहों गुन कर्म स्वभावा । राखहि न्यायधर्महियभावा ॥
करहिं न पक्षपात निशिवासर । पितुबनिकरहिंप्रजाकोआदर॥
उन्नति प्रजा चहहि दिन राती । रहहिं प्रसन्नसदासबजाती॥
दो०–गुन अरु कर्म स्वभाव सब, हों पवित्र अति ठीक ।
पक्षपात से रहित है, करहि न्याय जो ठीक ॥१४॥

१८–प्रजा

अरु नित धर्मसहित जो रहई । राजभक्ति निशिवासर लहई ॥
जिमि सुतकरतपितासँग नेहा । तैसेहि भूपति प्रजा सनेहा ॥

१९–न्यायकारी

सदा विचारकरहिं हियमाहीं । सत्य ग्रहन करिके सबठाहीं ॥
जो अन्याय कर्म जग माहीं । तिनको सब बिधि दूर भगाहीं॥
जग में न्यायकारि जो होई । तिनकी वृद्धिकरहुसब कोई ॥
निज आतम सम दूसर जाने । होय सुःख यहहिय बिचठाने ॥
न्यायकारि वह नर है पावन । अरु अन्यायी महाअपावन ॥

२०–देवता

जो विद्वान जगत के माहीं । तिनहिं देवता कहत सराहीं ॥

१. एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ भ० नी० ७५ ॥

विद्यारहित जो नर जगमाहीं । तिनकहँबुधवर असुरबताहीं॥
अरु पापित को राक्षस मानहु । अनाचारि पैशाच प्रमानहु ॥

२१-२२-देवपूजा और शिक्षा

दो०-मात पिता आचार्य्यजग, अरु विद्वान जो होय ।
न्यायी राजा अतिथिजन, धर्मात्मा जो कोय ॥१५॥

स्त्रीव्रत पति, पतिव्रत नारी । पूजा तिनकी करहु सम्हारी॥
पूजा नाम सत्कार कहावे । आदरकरिजोकोउअपनावे ॥
या विधि करै देवतन पजा । पूजन मार्ग ताहि है दूजा ॥
जो विपरीत भावना करई । वह अदेव पूजा चित धरई ॥
इन मूर्तिन कहँ पूज्य प्रमानहु । अन्यअपूज्यसकलविधिजानहु ॥
जो जड़मूर्ती परत लखाहीं । धातु पखान आदि बहु ठाहीं ॥
तिनहिंअपूज्यसदाहम मानहिं । औरकछूनहिंहियबिचआनहिं॥
जासों विद्या बढ़ै सदाई । अरु सभ्यता केरि अधिकाई ॥
धर्म बढ़ै इन्द्रीजित होहीं । दोष अविद्या छूटत ज्योंहीं ॥
तेहि शिक्षा हम मानत रहहीं । बुधि विद्या अरुबलकोलहहीं ॥

२३-पुराण

दो०-ब्रह्मा आदिकऋषिनजो, ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे जु ।
ताही को हम मानहीं, कल्प पुराण कहे जु ॥१६॥

अरु तेहि नाराशंसी कहहीं । गाथा अरु इतिहास बताहीं ॥
हम पुराण भागवत न मानहिं । पन्थन हेत लिखी हम जानहिं ॥

२४-तीर्थ

जो दुखसागर पार उतारे।सतभाषन सत्संग सम्हारे ॥

विद्यावृद्धि योग के अंगा। अरु पुरुषारथ करत अभंगा॥
विद्या दान आदि शुभ कर्मा। समझहुँ तिनको तीरथ धर्मा॥
इनसे इतर जो तीर्थ जलादी। मानहुँ नाहिं और मतवादी॥

२५–पुरुषार्थ प्रारब्ध

यक पुरुषारथ जगत लखाई। भाग्य से बड़ो सदा दर्शाई॥
ताही ते संचित जो कर्मा। बनत जाइ प्रारब्ध के धर्मा॥
दो०–जो पुरुषार्थ सुधारई, बनत सकल तेहि काज।
जग पुरुषारथ विमुख जो, बिगड़त सोइ समाज १७॥
याते है पुरुषार्थ बड़ाई। भाग्यसेअधिकविचारहुभाई॥

२६–मनुष्य

सब सों यथायोग्य दिनराती। बर्तैं निज आतम की भाँती॥
सुख दुख हानिलाभ सब माहीं। समतासों व्यवहार सदाहीं॥
तहैं मनुष श्रेष्ठ जगमाहीं। औरन अबुध लखहु सब ठाहीं॥

२७–संस्कार

संस्कार ताको जग कहई। जासों मन उत्तमता लहई॥
देह आतमा पावन होई। सोलह संस्कार लखु जोई॥
मृतक पछारू कछु नहिं होई। जीव हेत कर्तव्य न कोई॥

---

१. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ये योग के आठ अंग हैं। २. गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, निष्क्रमण, मुण्डन (चूड़ाकर्म), कर्णभेद, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास, अन्त्येष्टि। यह सोलह संस्कार हैं।

२८—यज्ञ

विद्वानन जहँ हो सत्कारा। यथायोग्य हो शिल्प¹ बिचारा॥

दो०—शुभगुनविद्याआदिको, दान होय जेहि ठाम।
अग्निहोत्रआदिकक्रिया, होत जौन से ग्राम॥१८॥

नाना विधि सो यज्ञ रचावे। शुद्ध सुखद सामग्रि बनावे॥
करहि हवन सो वेदि रचाई। ताहि यज्ञ ऋषि कहत बुझाई॥
जहाँ शुद्ध वायु अति होई। जल की वृष्टि तहाँ बहु होई॥
उपजहिं औषधि पावनताई। दे जीवन को सुख पहुँचाई॥
ताहि यज्ञ हम उत्तम मानैं। आगे आर्य्य दस्यु बखानैं॥

२९—आर्य्य दस्यु

जो जन श्रेष्ठ जगत में आहीं। ते सब आर्य्य पुरुष कहाहीं॥
जो जग दुष्ट कर्म नित करहीं। दस्युतिनहिं सुबुध उच्चरहीं॥
याही हम मानत हैं नीके। आर्य्यवर्त्तजहँ बसहिं अलीके॥

३०—आर्य्यवर्त

आर्य्यवर्त पड़ो है नामा। बसे आइ जहँ आर्य्य ललामा॥

दो०—आदि सृष्टि से आर्य्यजन, कीन्हो आइ निवास।
रहे सकल आनन्द सों, दीन्हो सबन सुपास॥१९॥

हिमगिरि उत्तरदिशा सुहावन। दक्षिण विंध्याचलअतिपावन॥
पश्चिम दिशा अटक नद सोहै। पूरब ब्रह्मपुत्र मन मोहै॥
आर्य्यवर्त यहि भाँति सोहाई। बसे आइ ते आर्य्य कहाई॥

१. रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग करना।

३१–आचार्य्य

अंग उपांग सहित जो वेदा। पढ़तरहतनित हैं तजि खेदा॥
सद्आचार ग्रहन जो करहीं। मिथ्याचार त्याग उर धरहीं॥
ते आचारी सुबुध कहावें। बनि अध्यापक सबन पढावें॥

३२–शिष्य

शिष्य कहत ताको जगमाहीं। सतशिक्षा को गहैं सदाहीं॥
विद्याग्रहनकरहिं निशिबासर। धर्मात्मा बनहिं अति आगर॥
दो०–इच्छा विद्याभ्यास की, शिष्य करैं दिन रात।
नेह होय आचार्य्य सों, गुरुसेवा सतरात॥२०॥

३३–गुरु

मात पिता विद्या को दाता। सत्य ग्रहन की रीति बताता॥
और असत को जो छोड़वावे। सोई गुरु जग बिच कहलावे॥

३४–पुरोहित

जो यजमान केर हित करई। सदउपदेश सदा उर धरई॥
वह प्रोहित जग बीच कहावे। तेहि विपरीत न प्रोहित भावे॥

३५–उपाध्याय

वेदन अंग पढ़ावत जोई। एक विषय में वक्ता होई।
ताहि उपाध्याय जग कहई। शिष्य पढ़इ सुःख को लहई॥

३६–शिष्टाचार

ब्रह्मचर्य्ययुत विद्या पढ़ई। धर्माचरण माहिं रत रहई॥
पुनि वह सत्यासत्य विचारै। यह जगशिष्टाचार निहारै॥

३७–प्रमाण

दो०–प्रत्यक्षादि[1] प्रमाण जे, आठ कहे मुनिवृन्द ।
तेऊ हम मानत सदा, करत सकल जगद्वन्द ॥ २१ ॥

३८–आप्त

जो यथार्थ वक्ता जग माहीं । धर्मात्मा सुःख को चहहीं ॥
यत्न करहिं सबके सुख लागी । सो है जग में आप्त विरागी ॥

३९–परीक्षा

पाँच प्रकार परीक्षा गाई । आप्त नरन जेहि भाँति बताई ॥
प्रथम ईश गुन कर्म स्वभावा । विद्या वेद केर जहँ भावा ॥
दूसर आठ प्रमाण लखावा । तीसर सृष्टाक्रम बतरावा ॥
चौथा है आप्तन व्यवहारा । पंचम अपनो आत्मविचारा ॥
इनसों ग्रहन करहु यह नीती । सत्यासत्य बिचारन रीती ॥
त्यागहु असत सत्य गहिलीजै । परखकेरि बिधियहचितदीजै ॥

४०–परोपकार

दो०–दुराचार दुख छुटत जेहि, बाढ़े श्रेष्ठ बिचार ।
करै कर्म सुख मिलहि नित, सो है परउपकार ॥ २२ ॥

४१–स्वतंत्र

जीव सदा परतंत्र लखाई । निज कर्तव्य स्वतंत्र सदाई ॥
कर्मभोग बिच सो परतंत्रा । ईश्वर निजकृत माहिं स्वतंत्रा ॥

1. प्रत्यक्ष, अनुमान, सम्भव, अर्थापत्ति, एतिह्य, उपमान, शब्द, अभाव ।

४२–स्वर्ग

सुख अरु भोग विशेषतहाँपर। बिना कष्ट है मिलत जहाँपर ॥
स्वर्ग नाम ताको बुध कहहीं। जहाँ मिलहि तुमजानहुतहहीं ॥

४३–नरक

नर्क है दुख विशेष अरुभोगा। जहाँ मिलत इनको है योगा ॥

४४–जन्म

जन्म शरीर करत जब धारन। प्रकट[1] होत तनु जगको कारन ॥
होत शरीर जीव संयोगा। जन्म कहत हैं तेहि सबलोगा ॥

४५–मृत्यु

अरु वियोगको मृत्यु बतावहिं। जबहिंशरीरसकलनशिजावहिं ॥
जीव शरीर विलगता होई। मृत्यु कहत ताकहँ सब कोई ॥

४६–विवाह

दो०–नियम सहित परसिद्धि करि, अरु इच्छा के साथ।
वह विवाह है जगविदित, गहै[2] नारि को हाथ ॥२३॥

४७–नियोग

दो०–है नियोग[3] याही सदृश, जिमि विवाह सुखसाज।
आपत्काल अरु पुत्र-हित, करत नियोग समाज ॥२४॥

४८–स्तुति

गुन कीर्तन निशिवासर करई। करहिं श्रवण सोई हिय धरई ॥
प्रीति आदि स्तुति फल होई। अरु प्रार्थना सुनिये जोई ॥

---

१. प्रकट होना—सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ॥ ४६ ॥ २. पाणिग्रहण (संस्कारविधि विवाहप्रकरण देखो)। ३. सत्य-सागर पृष्ठ ७० से ७६ तक चतुर्थ तरंग में देखो।

४९–प्रार्थना

जासु कात सामर्थ न भाई। ताहित याँचहु ईश सुहाई॥
ईशकृपा जो पावहिं कोऊ। तजि अभिमान धरै उर सोऊ॥

५०–उपासना

जासु ईश गुन कर्म स्वभाऊ। हैं अति पावन ताके भाऊ॥
तैसेहि तुम निज कर्म बनावहु। सर्व व्यापक तेहि ठहरावहु॥
अपने को तुम व्याप्य प्रमानहु। निज समीप ईश्वर तुम जानहु॥
जो यह निश्चय परत लखाई। तेहि साक्षात करहु तुम भाई॥
योग उपासन परम सुरीती। करहु सदा अभ्यास सप्रीती॥

दो०–फल उपासना धरहु चित, बुद्धि ज्ञानयुत होय।
तातें हम सब नेह करि, बनहिं उपासक कोय॥२५॥

५१–सगुण निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना

छं०–गुन जौन होवहिं ईश में तेहि जानिके स्तुति करैं।
ह्वै युक्त नित गुन माहिं निशिदिन ईश को उर में धरैं॥
जो होय गुन नहिं ईश में तेहि पृथक करि विनती करैं।
करि सगुन निर्गुन स्तुती पुनि 'इष्ट' प्रार्थना करैं॥१॥
शुभ गुनन गहिबे को करैं इच्छा जो परम सुहावनी।
अरु दोष छूटहिं जौनविधि विनती करहिं सुखदायिनी॥
तब ईश को गुन सहित मानहु दोषरहित बखानहू।
अर्पन करहु निज आत्मा आज्ञा प्रभू की मानहू॥२॥

निर्गुन सगुन उपासन एहीं। करहिं मनुज शुभ गुन चित देहीं॥

यह संक्षेप रीति सों बरना। जो सिद्धान्त मनुज आचरना॥
यदि विशेष देखन तुम चहहू। तौ मम लिखित भूमिका[1] लहहू॥
औरहु ग्रन्थन लिखा बिलोकहु। मानन योग ताहि अवलोकहु॥
सत्य सदा हम नीक बखानहिं। अरु ताही को उर बिच आनहिं॥
बोलत असत अयोग्य महाना। तेहि मानहिं हम दुष्ट प्रमाना॥
बोलहु सत्य सदा सब लोगू। झूँठ वचन सब भाँति अयोगू॥
मानहिं हम सिद्धान्त सदाई। नहिं मानहिं ग्रन्थन प्रभुताई॥

दो०—मत मतान्तर जगत में, दिय विरोध फैलाय।
सबन फँसाये जाल बिच, करि युक्ती अधिकाय॥२६॥
शत्रु बने हैं अधिकतर, कीन्ह न तनिक विचार।
ज्ञान बुद्धि खोई सबै, कीन्हों असत प्रचार॥२७॥

काटि सकल बातन यह चीन्हा। सत्यप्रचार करन चित दीन्हा॥
नियम एकता केर बनावा। दोष छुटैं सो यतन सिखावा॥
प्रीति परस्पर हो अधिकाई। ऐसी ही हम रीति सिखाई॥
पहुँचे लाभ सुःख अधिकाई। करत रह्यों यह सदा उपाई॥
सर्वशक्तिमन है जगदीश्वर। कृपा होय ताकी मम ऊपर॥
अरु जो आप्त पुरुष जगमाहीं। बनहिं सहायक जगहितचाहीं॥
यह सिद्धान्त जगत के माहीं। फैलहिं भूमंडल सब ठाहीं॥
जासों पावें सहज सुभाई। धर्म अर्थ की जो निपुणाई॥
सिद्ध होय कामना हमारी। पाय मोक्ष सब बनहिं सुखारी॥

---

1. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (स्वामी दयानन्दकृत)।

दो०—याते उन्नत होय जग, हो आनँद सब ठाम ।
मुख्य प्रयोजन है यही, सुनहु हृदय को थाम ॥२८॥
सूक्ष्मरूप मन्तव्य यह, तुमहिं सुनायों तात ।
जीवन केर सुधार हो, हिय धारहु ऋषि बात ॥२९॥

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्य्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यंवदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् अवतु वक्तारम् ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीसत्यसागर महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वतीवर्णित
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशव्याख्या वैद्य कविराज
पं० गदाधरप्रसाद वानप्रस्थी (इष्ट)
द्वारा विरचित गुरुशिष्यसंवाद
स्वमन्तव्यामन्तव्यं समाप्तम् ।

आर्यसमाज के नियम

शिष्य

नाथ स्वामि मन्तव्य सुनायहु। सुनतहि सकल हृदय को भायहु॥
तब तनि मोहिं बतावहु साईं। आर्यजन केहि मारग जाईं॥
आर्यसमाज केरि जो रचना। नेम बतावहु ऋषि के वचना॥
बिनानियम कछु बनत न काजू। जोरहु चाहे अधिक समाजू॥
ताते नाथ मोहिं समुझावहु। अरु समाज के नियम बतावहु॥

गुरु

सो०—दिय दस नियम बताय, आर्यसमाजहि थापिकै।
चलहि जो इन सम भाय, जानि आपनो धर्म यह॥१॥
दो०—इनहीं में सब कछु कह्यो, है जीवन को सार।
सुख पावहिं संसार में, चलहिं नियम अनुसार॥ १॥

१—नियम

सब सतविद्या जो जग माहीं। अरु विद्या सों जानहु जाहीं॥
आदि मूल तिन सबका ईश्वर। पूजनोय वह है परमेश्वर॥
प्रथम नियम समाज सुखदाई। दूसर नियम सुनहु चितलाई॥

२—नियम

ईश्वर सत चित आनँद रूपा। निराकार सब भाँति अनूपा॥
सर्वशक्तिमन न्याय करैया। और दयालु सकल सुखदैया॥

अहै अजन्म अनन्त अनादी। निर्विकार अनुपम सुखमादी॥
सर्वाधार, और सर्वेश्वर। सर्वव्यापक जगतउजागर॥
सर्वान्तर्यामी वह ईशा। अजर अमर पावन जगदीशा॥
अभय नित्य अरु सृष्टीकर्ता। बनहु उपासक जो दुखहर्ता॥

३–नियम

दो०–विद्या सत्य जो जगत में, ताकी पुस्तक वेद।
ताहि पढ़ावहु अरु पढ़हु, सुनहु सकल बिन खेद॥ २॥

परम धर्म लखि सबन सुनावहु। तीसरनियम याहि अपनावहु॥

४–नियम

उद्यत सदा रहहु सब कोई। ग्रहन करहु सत असतहि खोई॥
नियम चतुर्थ सत्य को पालन। सबके अर्थ एक सुखदायन॥

५–नियम

धर्म अनुसार करहु सब कामू। सत अरुअसतविचारिललामू॥
यह है पंचम नियम अनूपा। लखहुसकल जन जो सुखरूपा॥
जग उपकार करन यक धर्मा। मुख्य समाज केर है कर्मा॥

६–नियम

यथा करहिं शारीरिक उन्नति। अरुसामाजिकहोयनअवनति॥
नित ही आत्मउन्नती करहीं। षष्ठम नियम आर्य उरधरहीं॥

७–नियम

दो०–सबसे प्रीतीपूर्वक, और धर्म अनुसार।
यथायोग्य पुनि बर्तई, सप्तम नियम निहार॥ ३॥

८-नियम

नाश अविद्या करहु सदाई। विद्या बुद्धि महा सुखदाई॥
आर्य सदा यहि पालन करहीं। नियमआठवाँ यह उर धरहीं॥

९-नियम

निज उन्नति संतुष्ट न रहई। किन्तु उन्नती सबकी चहई॥
ताही को निज उन्नति मानहिं। नियमनवमयाकहँपहिचानहिं॥

१०-नियम

सामाजिकसबहितकर नियमा। परतंत्रता सहित धरु हियमा॥
निज हितकारी कर्म स्वतंत्रा। पालहु नियम बिना परतंत्रा॥
दसवाँ नियम लखहु चितलाई। जेहि समाजकी होय भलाई॥
यह दश नियम महा सुखदाई। पालहुइनहिं सकलमिलिभाई॥
सो०-चलहिं नियम अनुकूल, पावहिं सब विधिसुःखसो।
होहि जो कोउ प्रतिकूल, दुःखसहेभ्रमजालपड़ि॥२॥

शिष्य

दो०-नाथ सुनायहु मोहिं सब, ऋषी केर मन्तव्य।
और बताए हैं नियम, जो सबकहँ कर्तव्य॥ ४॥
जो समाजरचना बतराई। और संगठनरीति सुनाई॥
पावन हृदय भयो है मोरा। सनो रह्यो मल पापन घोरा॥
मम ऊपर कीन्हीं बहु दाया। जो सतसागर पाठ सुनाया॥

गुरु

शिष्य सुनहु कछु नहिं प्रभुताई। कथा जौन हम तुमहिं सुनाई॥

वह है कृपा ऋषीवर केरी। अन्तःकरन शुद्ध करि हेरी॥
यह ही नियमजोतुम्हहिंबताये। ऋषिवर दयानन्द समुझाये॥
धर्म अर्थ कामादिक जो फल। मिलहिंसबनकहँहोयननिष्फल॥
याते हम सब प्रेम दृढ़ाई। बनहिं सभासद् नेह बढ़ाई॥

सो०—हे प्रभु दीनदयाल, कृपा तुम्हारी सौं कियो।
निर्मित ग्रन्थ विशाल, सत-सागर भाषा रुचिर॥३॥
निराकार अविकार, सोइ अनन्त अज ब्रह्मवर।
सकल जगत कर्तार, सर्व शक्तिमन न्यायकर॥४॥
महापाप जग भूरि, जेपि अविद्या आदि दै।
करहु महा भ्रम दूरि, तिनते रक्षा कीजिये॥५॥
अन्त न पावत कोइ, विद्या बुधि प्रभु आपकी।
वेद प्रकट किय सोइ, चलहिं जासु पथ सकलजन॥६॥
विघ्नक धर्म सुकार्य, वेद विरोधी यज्ञ के।
दुष्ट स्वभाव अनार्य्य, करहु समूल विनाश सो॥७॥

---

१. अन्तःकरन को पवित्र करि आछी भाँति,
बिषय भोग बासना की चर्चा बिसारिये।
सांतता अरु धीरता दया की चारु बीरता में,
बनि उत्साही बीर हित चित धारिये॥
जगतप्रपंचन को त्यागि निष्काम ह्वै के,
चेतनसरूपधारी सुखमा पसारिये।
तिमिर कुबासना में ब्रह्मज्ञानदीप बारि,
"इष्ट" सुद्ध आत्मा को नयनन निहारिये॥

करत याचना ध्यान, तुमहिं त्यागि कोउ अन्य की।
होत विनष्ट महान, तासु शुभोत्तम काम सब ॥ ८

वैर भाव की मूल, है पाखण्ड असत्य मत।
करहु सकल निर्मूल, ताहि कृपाकरि शीघ्र प्रभु ॥ ९

करिये कबहूँ नाहिं, अपने से हमको पृथक।
भक्त तुम्हार कहाहिं, कोइ न आवहिं दोष ढिग॥ १०

काहू की नहिं कोय, तुमसे भिन्न उपासना।
अस सुबुद्धि ममहोय, करहिं न किंचित कबहुँहम॥ ११।

तव आज्ञा अनुकूल, चलि न सर्वदा सकत मैं।
क्षमहु "इष्ट" की भूल, अधमोद्धारक नाथ तुम ॥ १२॥

दो०—परम रम्य उपदेश यह, पढ़ै सुनै चित लाय।
मुक्तिमार्ग सो पावई, अधरमपथ नशिजाय॥ ५॥
पढ़ै जो नितप्रति नेहसों, छुटै सकल भ्रमजाल।
बुधि बल विद्या बढ़त सब, लहैं सुःख सब काल॥ ६॥
ईश नाम ते मोक्षलगि, अरु आचार की रीति।
यह पूर्वार्ध कथा लिखी, समुल्लास दस नीति॥ ७॥
अरु उत्तरार्ध की कथा, समुल्लास जो चार।
याविधि तरंग चतुर्दश, इष्ट लिख्यो लखि सार॥ ८॥
"इष्ट" सुभाषा काव्य में, लिख्यो मूल को भाव।
रामायण तुलसीसदृश, वरण्यो सहज सुभाव॥ ९॥

बुधजन भूल सुधारहीं, जानि देश को नेह ।
सतसागर की शुभ कथा, होहिं सबन के गेह ॥१०॥
छं०—यह कथा पावनि सुःखदायनि नित्त पढ़ि जो उर धरैं ।
सो धर्म अर्थ अरु काम मोक्षहि प्राप्त सब विधि सों करैं ॥
वह पड़त नहिं भ्रमजाल बिच तेहि ठगि सकत कोऊ नहीं।
सो "इष्ट" ईश्वरभक्त है आनंदमय बिचरै मही ॥ १ ॥
हम कवि न हैं केहु भाँति के अभिमान नहिं कतहूँ करैं ।
अबहूँ जो शिक्षा देइ कोऊ ताहि हम उर बिच धरैं ॥
है धृष्टता जो करी हमने ग्रन्थ यह निर्मित कियो ।
है "इष्ट" फल आशीर्वाद नवीन कवि जो कछु दियो ॥२॥

(इति श्रीसत्यसागरःसम्पूर्णः)

आदर्श औषधालय
मकबूलगंज, लखनऊ.

निवेदक
पं० गदाधरप्रसाद वैद्य
(इष्ट) वानप्रस्थी